प्रयोगवादोत्तर हिन्दी-काव्य के व्यंग्य का स्वरूप विकास

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डि० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
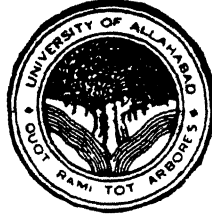
निर्देशक

डॉ० मालती सिंह
रीडर, हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्त्री

प्रकाश कुमारी सिंह

हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
१९९२

प्रमाण - पत्र

मै प्रमाणित करती हूँ कि प्रकाश कुमारी सिंह नें ' प्रयोगवादोत्तर हिन्दी काव्य के व्यग्य का स्वरूप - विकास ' विषय पर अपना शोध - कार्य मेरे निर्देशन में पूर्ण कर लिया है । मै इन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0फिल0 उपाधि प्रदान करने की संस्तुति करती हूँ ।

मालती सिंह

डॉ0 मालती सिंह
रीडर,
हिन्दी - विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

1992

आमुख

साहित्य के सर्वाधिक संवेद्य रूप कविता के प्रति मेरी प्रारम्भ से ही गहरी रूचि रही है । नयी कविता में समकालीन युग के राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा धार्मिक परिवेश के प्रति सत्यान्वेषण की अत्यंत जागरूक, प्रखर और सतर्क दृष्टि तथा उसकी विकृतियों के प्रति विद्रोह एवं सघर्षशीलता की जुझारू चेतना अपने प्रबल रूप मे विद्यमान है । नये कवियों की काव्य - लोक की यात्रा करना वस्तुतः आज के युग - यथार्थ के मूल स्पन्दनो की अनुभूति करना है । प्रयोगवादोत्तर काव्य बनाम नयी कविता अपने यथार्थवादी बौद्धिक दृष्टिकोण के कारण आक्रोश तथा व्यग्यात्मकता की अपनी मूल संवेदना के साथ समसामयिक यथार्थ के वैविध्यपूर्ण परिदृश्य से सम्बद्ध रही है । अत. नयी कविता की व्यंग्य की प्रवृत्ति मुझे काव्य विषयक मानसिक बुभुक्षा की परितृप्ति के लिए अध्ययन का सर्वोत्तम विषय प्रतीत हुआ । इसके अध्ययन द्वारा न केवल काव्य का आस्वादन होता है, बल्कि युग - सापेक्ष सत्य का भी नग्न रूप में दर्शन होता है ।

शोध के विषय ' प्रयोगवादोत्तर हिन्दी काव्य के व्यंग्य का स्वरूप - विकास' को छः अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय मे नयी कविता के व्यग्य की प्रकृति एवं उसके स्वरूप को हृदयंगम करने की भूमिका, व्यंग्य के सैद्धान्तिक विवेचन द्वारा निर्मित की गयी है । नये कवियों के व्यंग्यात्मक तेवर का मूल कारण उनकी यथार्थवादी बौद्धिक दृष्टि के साथ - साथ समसामयिक परिस्थितियाँ ही रही हैं । स्वातंत्र्योत्तर काल प्रयोगवाद एवं नयी कविता दौर से अब तक के अपने विविध परिवेश में नये कवियों के मानस को उद्वेलित करता रहा है । अतएव द्वितीय अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय विविध परिदृश्यों का तथ्यात्मक ब्योरा प्रस्तुत करते हुए नयी कविता के व्यंग्यात्मक तेवर के कारणों पर दृष्टि डाली गयी है । शेष चार अध्याय व्यंग्य के विषयगत विभाजन के रूप में हैं । विषय के सम्यक अध्ययन के उद्देश्य से ही व्यंग्य को राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक एवं धार्मिक वर्गो में विभाजित किया गया है । चूँकि नयी कविता के प्रत्येक कवि की अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति शैली, भाषा तथा निजी - भंगिमा है, अतएव उनके व्यंग्य के स्वरूप को अधिक स्पष्टता से कवियों के पृथक - पृथक विश्लेषण द्वारा ही परखा जा सकता था । इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्रत्येक कवि की काव्य - यात्रा में उसके व्यंग्य का स्वतंत्र रूप से विवेचन किया गया है । कवियों की व्यंग्यगत

विशिष्टताओं के विश्लेषण के साथ ही उसके विकासक्रम मे आये परिवर्तनों का भी प्रत्येक कवि के सन्दर्भ मे, अलग - अलग विवेचन किया गया है ।

अपना शोध - प्रबंध प्रस्तुत करते हुए सर्वप्रथम मै सर्वत्र गुरू रूप में व्याप्त उस परम सत्ता को नमन करती हूँ, जिसकी असीम कृपा के आलोक नें कठिनाइयों के अंधकार को मार्ग में कहीं भी टिकने नहीं दिया । इस शोध कार्य के पीछे मेरे स्वर्गीय माता एवं पिता के सत्यनिष्ठ, दृढ़ एवं मानवीय संवेदना से सिक्त व्यक्तित्व एवं विचारों की महत् प्रेरणा उनके अजस्र स्नेह की अदृश्य छाया बन कर सदैव ही साथ रही है ।

इस शोध कार्य की निर्देशिका डॉ0 मालती सिंह के आशिर्वाद तथा विद्वतापूर्ण कुशल मार्ग - निर्देशन के बल पर ही शोध की यह दुरूह यात्रा पूर्ण हो सकी है । उन्होंने जिस आत्मीयता, उदारता और सहज स्नेह के साथ अपना बहुमूल्य समय देकर मेरी अध्ययन विषयक समस्याओं को सुलझाने में अपना कृपापूर्ण सहयोग प्रदान किया है, उसके महत्व को आभार - प्रदर्शन की औपचारिकता द्वारा आँकना धृष्टता ही नहीं, कृतघ्नता भी होगी । अत. उनके प्रति मै अपनी अपार श्रद्धा तथा आदर भाव अर्पित करती हूँ ।

शोध कार्य को पूर्ण करने में हिन्दी - साहित्य - सम्मेलन प्रयाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के पुस्तकालयों से मुझे सर्वाधिक सहायता मिली है । इनके समस्त उदार एवं कर्तव्यनिष्ठ अधिकारियों तथा कर्मचारियों के स्नेहिल सहयोग के लिए मै उनकी चिर कृतज्ञ हूँ । इसके साथ ही इलाहाबाद विश्व विद्यालय के पुस्तकालय के कर्मठ कर्मचारियों के प्रति भी मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके उदार सहयोग के बिना यह शोध प्रबंध पूर्ण करना असंभव था ।

शोध कार्य के दौरान मेरे आत्मीय स्वजनों, मित्रों तथा परिवार के लोगों नें अध्ययन के लिए सुख - सुविधायें उपलब्ध कराने के साथ ही अपने स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन द्वारा मेरा उत्साह - वर्धन भी किया है । उन्हीं की स्नेहिल प्रेरणा नें शोध - कार्य को सरलतापूर्णक

सम्पन्न करने की वेगवती शक्ति प्रदान की है । उनके प्रति मेरे हृदय में जो असीम श्रद्धा, स्नेह तथा कृतज्ञ - भाव है, वह शब्दों की क्षुद्र सीमा से परे है ।

अत में टंकण कार्य के लिए श्री राम प्रकाश साहू को धन्यवाद देते हुए उनके प्रति भी मै अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने शोध कार्य को अंतिम रूप देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

सन् 1992 **(प्रकाश कुमारी सिंह)**

अनुक्रम

पृष्ठ

अध्याय - प्रथम

व्यंग्य : स्वरूप - विवेचन

व्यंग्यः अर्थ और परिभाषाः-

व्यंग्यशीलता मनुष्य की एक विकसित प्रवृत्ति है । हास्य का प्रस्फुटन जहाँ शिशु अवस्था में ही होने लगा है, वहाँ व्यंग्य क्रमशः मनुष्य के वय के विकास के साथ अपना स्वरूप एवं अर्थ ग्रहण करता है । पुनः यह मानव की सभ्यता के विकास साथ ही अपने स्वरूप में क्रमशः विकासपूर्ण जटिल अर्थो को भी ग्रहण करता है । हास्य मुनुष्य की सहज मूलप्रवृत्तिगत क्रिया एवं भाव है, जो प्रायः सुखकर स्थितियों से ही (सामान्य अर्थो में) सम्बद्ध होता है । हास्य मानव की उस विशिष्टता का भी सूचक है, जो उसे अन्य जीवों से भिन्न एवं श्रेष्ठ सिद्ध करता है । परन्तु जहाँ विशुद्ध प्रसन्नतासूचक हास्य मनुष्य को पशुओं से श्रेष्ठ सिद्ध करता एवं उसकी विशिष्टता का द्योतक होता है, वहीं उसमें व्यंगात्मकता का समावेश एवं उसका विकास, मानव - मस्तिष्क की क्रमशः परिपक्वता का सूचक है ।

व्यंग्य शब्द की उत्पत्ति एवं उसके अर्थ पर विचार करना समीचीन होगा । ' हिन्दी साहित्य कोश ' के अनुसार ' वि + अंग = व्यंग से व्यंग्य की व्युत्पत्ति है ।[1]

' भारतीय साहित्य - कोश ' में व्यंग्यार्थ के सन्दर्भ में व्यंग्य का विवेचन इस प्रकार किया गया है " व्यंजना को शब्द - शक्ति द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं ।[2]

संस्कृत शब्दार्थ - कौस्तुम में ' व्यंग्य ' शब्द को ' वि ' उपसर्ग पूर्वक ' अज्ज ' धातु में ' व्यत ' प्रत्यय लगाने से निर्मित बताया गया है । इसका अर्थ है विविक्षा द्वारा निर्देश, संकेतित अर्थ, गूढ़ अथवा अप्रत्यक्ष संकेत द्वारा निर्देश और शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना द्वारा निर्दिष्ट अर्थ ।[3] संस्कृत कोश शब्द कल्पद्रुम के अनुसार ' व्यंग्य ' वह है जो व्यंजना से प्रकट होने वाला अर्थ है । व्यंजनया बोधयोऽर्थः ।[4]

---

1. हिन्दी - साहित्यकोश - प्रथम संस्करण; प्रधान सं0 - धीरेन्द्र वर्मा;पृ0 - 741
2. भारतीय साहित्यकोश - संपादक - डॉ0 नगेन्द्र; पृ0 - 1222
3. हिन्दी व्यंग्य उपन्यास - डॉ0 राधेश्याम वर्मा; पृ0 - ।
4. शब्द कल्पद्रुम - चतुर्थो भागः- स्यार राजा राधाकांत बहादुरैण विरचितः; पृ0-530

संस्कृत के साहित्याचार्यों द्वारा भी इस शब्द का प्रयोग आर्थी व्यंजना के सन्दर्भ में हुआ है । छविनाथ मिश्र ने व्यंग्य को मूलतः भारतीय उपलब्धि माना है जो अपने विकसित रूप में विशुद्ध प्रहारात्मक व्यंग्य हो गया है । वे आधुनिक प्रहारात्मक व्यंग्य को पश्चिम की देन मानने का खंडन करते हैं । उन्हीं के शब्दों में - " आधुनिक प्रहारात्मक व्यंग्य - विधा के सम्बन्ध में यह धारणा उत्पन्न हो रही है कि यह भारतीय साहित्य - परम्परा से हटकर स्वतंत्र रूप में विकसित हुयी है । ---- लेकिन ध्वनि या व्यंग्य मूलतः भारतीय उपलब्धि है ।"[1] इन्होंने आधुनिक व्यंग्य की सम्बद्धता संस्कृत काव्य - शास्त्र के ध्वनि सिद्धान्त में विवेचित व्यंग्य से दिखलायी है । उनके अनुसार " ध्वनि - सिद्धान्त में " जिस व्यंग्य का विस्तृत और व्यापक विवेचन किया गया है, उसमें यह व्यंग्य आ जाता है । ---- यह उसी की एक विशिष्ट विधा है, जो नवलेखन की परम्परा में ध्वनिवादी व्यंग्य से पृथक होकर स्वयं पूर्णतः विकसित हो रही है ।"[2]

यद्यपि प्राचीन ' संस्कृत साहित्याचार्यों ने व्यंग्य का पृथक काव्य - शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है, परन्तु संस्कृत साहित्य में हास्य - व्यंग्य के रूप में व्यंग्य की उपस्थिति मिलती है । संस्कृत साहित्याचार्यों ने व्यंग्य की सत्ता को हास्य के अन्तर्गत मानकर ही हास्य - रस का विवेचन किया है । प्राचीन काल की नैतिक मान्यताओं में कटु, तिक्त एवं शुद्ध प्रहारात्मक व्यंग्य के लिए साहित्य में स्थान न था । वह हास्यवेष्टित रूप में ही ग्राह्य था । साहित्य मानव - हित के प्रयोजन को दृष्टि में रखकर ही रचा जाता था । अतः प्रहारात्मक एवं कटु आलोचनात्मक व्यंग्य प्रधान काव्य या साहित्य की रचना का साहित्याचार्यों एवं साहित्यकारों ने निषेध किया । वैसे व्यंग्य की धारणा संस्कृत के ' ध्वनि ' या ' व्यंग्य ' से जोड़कर देखी जा सकती है । हास्य - व्यंग्य के सन्दर्भ में व्यंग्य वह है, जिसमें जो कहा जाता है, उससे अलग एक विशेष अर्थ द्वारा किसी विकृति पर प्रहार किया जाता है या किसी वर्ग या व्यक्ति का उपहास किया जाता है । काव्यशास्त्रीय विवेचन के सन्दर्भ में जिस ' ध्वनि ' या ' व्यंग्यार्थ ' को काव्य की आत्मा माना गया है, वह सभी मानवीय भावों एवं रसों से

---

1. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र - पृ0 - ।
2. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र पृ0 - ।।

सम्बद्ध है । परन्तु काव्य शास्त्र में वर्णित ध्वनि, (व्यंग्य) एवं वक्रोक्ति इत्यादि सिद्धान्तों में व्यंग्यात्मक काव्य की महत्ता एवं व्यापकता का प्रमाण मिलता है, क्योंकि व्यंग्य स्वयं शब्दार्थ से अलग व्यंग्य अर्थ की प्रतीति कराता है तथा वक्रोक्ति व्यंग्य का एक विशिष्ट उपादान है । अतः व्यंग्यशील काव्य के लिए ' व्यंग्य ' शब्द संस्कृत काव्यशास्त्र में वर्णित व्यंग्य (ध्वनि) से अर्थ ग्रहण करता हुआ विकसित रूप में हास्य से स्वतंत्र पृथक अस्तित्व ग्रहण करता हुआ रूढ़ हो गया । छविनाथ मिश्र के अनुसार -----

" ध्वनिकार आनन्द वर्धन द्वारा प्रतिपादित व्यंग्य (ध्वनि) परवर्ती में लोक जीवन और साहित्य में प्रहारात्मकता के ही कारण विडम्बना, वंचना, विसंगति, आरोप आदि के अर्थ में संकुचित हो गया ।"[1]

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, संस्कृत साहित्याचार्यों ने हास्य के भीतर ही व्यंग्य की स्थिति को स्वीकृति दी है, जिसे उनके हास्य के विवेचन में लक्षित किया जा सकता है । इसके लिए संस्कृत साहित्याचार्यों द्वारा विवेचित हास्य के स्वरूप पर दृष्टि डालना समीचीन होगा । संस्कृत आचार्यों में सर्वप्रथम भरत ने चार प्रमुख रस स्वीकार किये और इनके आधार पर आठ रसों की कल्पना भी की । श्रृंगार की अनुकृति से हास्य का, रौद्र के कर्म से करूण का, वीर के कर्म से अद्भुत का और वीभत्स के दर्शन से भयानक रस की उत्पत्ति भरत ने मानी है । हास्य के सम्बन्ध में भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है -----

विपरीतालङ्कारैः विकृताचाभिधान वेषैश्च ।
विकृतैरर्थ विशेषर्हसतीति रसः स्मृतो हास्यः ।।
विकृताचारैर्वाक्यैङ्ग विकारैश्च विकृतवेषैश्च ।
हासयति जनं यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो रसो हास्यः ।।[2]

---

1. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र - पृ0 - 3
2. नाट्य शास्त्रम् - आचार्य भरतमुनि - टीकाकार - श्री मधुसूदन शास्त्री - पृ0-732

अर्थात् हास्य आकार, वेष, आचार, अभिधान, अलंकार, अर्थ विशेष, वाणी, चेष्टा आदि की विकृति द्वारा उत्पन्न होता है ।

साहित्य - दर्पण में हास्य की परिभाषा इस प्रकार की गयी है -----

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत ।
हास्यो हास स्थायिभावः श्वेतः प्रमथ दैवतः ।। 214 ।।
विकृताकार वाक्चेष्टं यमलोक्य हसेज्जनः ।
तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम ।। 215 ।।
अनुभावोऽक्षि संकोचबदन स्मेरतादयः ।
निद्रालस्यावाहित्थाद्या अत्र स्युर्वभिचारिणः ।। 216 ।।[1]

अर्थात विकृत आकार, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि के नाट्य से हास्य - रस उत्पन्न होता है । इसका स्थायी भाव ' हास ' है । वर्ण शुक्ल और अधिष्ठात देवता प्रमथ (शिवगण) हैं, जिसकी विकृत आकृति, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि को देखकर लोग हँसें, वह यहाँ आलम्बन है और उसकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं । नयनों का मुकुलित होना और वदन का विकसित होना इस रस के अनुभाव होते हैं और निद्रा, आलस्य अवहित्था आदि इसके संचारी होते हैं । उपरोक्त परिभाषओं मं हास्य की शारीरिक प्रतिक्रिया एवं विकृति पर अधिक ध्यान दिया गया है । वस्तुतः नाट्य के सन्दर्भ में अभिनय को दृष्टि में रखकर विवेचन करने के कारण हास्य को विकृतियों की, वाणी, वेष, चेष्टा आदि द्वारा प्रकटीकरण तथा सहृदय में उसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में ही लक्षित करने की प्रवृत्ति साहित्याचार्यों में रही है । प्रायः सभी की दृष्टि में हास्य किसी व्यक्ति की किसी न किसी विकृति या असंगत व्यवहार के द्वारा उत्पन्न होता हुआ माना गया है । इन परिभाषाओं में यद्यपि हास्य की तात्कालिक मुखर स्थिति है, परन्तु विकृतियों के प्रति व्यंग्य भी प्रच्छन्न रूप में अवश्य वर्तमान है । काव्य के सन्दर्भ में तो इसका व्यंगात्मकता से युक्त होना स्पष्टतः सिद्ध होता है, क्योंकि जब किसी विकृति (वाणी, वेष, चेष्टा, व्यवहार आदि) के प्रति हास्य की उद्भावना काव्य

---

1. साहित्य - दर्पण - विश्वनाथ; श्लोक - 214, 215, 216 - टीकाकार - पं0 शालग्राम शास्त्री - पृ0 - 115

में होगी तो व्यंगात्मकता का उदय भी हास्य के साथ ही प्रच्छन्न रूप में होना संभव है । जैसा कि पाश्चात्य विद्वान हव्स की हास्य की परिभाषा से स्पष्ट होता है कि हास्य में दूसरों की विकृतियों के दर्शन से उनके सम्मुख स्वयं की श्रेष्ठता का ज्ञान हास्य को जन्म देता है, हम हास्य में हँसने वाले के इस श्रेष्ठता - भाव को सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्तर पर उसके प्रच्छन्न व्यंग्य - भाव एवं निन्दा या आलोचना के भाव से जोड़ सकते हैं । हास्य के साहित्यिक रूप में यह व्यंगात्मकता ही उसकी विशिष्टता हो सकती है , जो व्यावहारिक जीवन के सहज आनन्द जनित हास्य से उसे पृथकता प्रदान करती है । व्यंग्य के विकासक्रम में हम हास्य में प्रच्छन्न रूप से निहित व्यंग्य को ही उसकी प्रारम्भिक अवस्था एवं उत्स मान सकते हैं ।

संस्कृत साहित्याचार्यों द्वारा किये गये हास्य के विभाजन के सूक्ष्म विवेचन द्वारा भी व्यंग्य की उपस्थिति एवं सहृदय द्वारा उसकी अनुभूति प्रमाणित होती है । ' रस गंगाधर ' में पंडित राज जगन्नाथ ने हास्य के आत्मस्थ एवं परस्थ, दो भेद बताये हैं ।[1] इनसे पूर्व भरत मुनि ने भी हास्य के आत्मस्थ एवं परस्थ दो भेद माने थे । पंडित राज जगन्नाथ के अनुसार जहाँ स्थायी भाव हास स्वयं द्रष्टा मं उत्पन्न होता है, वह आत्मस्थ हास्य है । जहाँ हँसने वाला व्यक्ति ही विभाव बने वहाँ परस्थ हास्य है । परस्थ हास्य के भी छः भेद इन्हीं ने माने हैं, जो प्रायः थोड़े - बहुत परिवर्तन के साथ इनके पूर्व के साहित्याचार्यों को भी मान्य रहे हैं । ये छः भेद व्यक्ति के वैचारिक स्तर को ध्यान में रखकर ही उत्तम, मध्यम एवं नीच पुरूष के हास्य के रूप में वर्गीकृत किये गये प्रतीत होते हैं । उत्तम पुरूष में स्मित और हसित, मध्यम पुरूष में विहसित और उपहसित तथा नीच पुरूष में अपहसित एवं अतिहसित कहा जायेगा । साहित्य - दर्पणकार ने भी प्रायः इस विभाजन को स्वीकार किया है ।[2]

---

1. आत्मस्थः परसंस्थश्चेत यस्य भेदद्वयंमतम् ।
आत्मस्थों द्रष्टुरूत्पन्नों विभावेक्षणमात्रतः ।।
हसन्तमपरं द्रष्ट्वा, विभावश्चोपजायते ।
योऽसौ हास्यरसस्तज्ज्ञैः, परस्थः परिकीर्त्तितः ।।
- रस गंगाधर - प्रथमाननान्तो भागः - व्याख्याकर - पं0 मनमोहन झा - पृ0 - 168, 169

2. ज्येष्ठानां स्मित हसिते, मध्यानां विहसितावहसिते च ।
नीचानामपि हसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः ।।
- साहित्य - दर्पण - विश्वनाथ, टीकाकार पं0 शालग्राम शास्त्री - श्लोक - 217, पृ0 - 115

परस्थ हास्य के इन छः भेदों पर यदि गहराई एवं सूक्ष्मता से दृष्टि डालें एवं उसका विवेचन करें तो ज्ञात होता है कि उसके विभाजन के आधार में व्यंगात्मक तत्व की सक्रियता निहित है । यह विभाजन यद्यपि हास्य की व्यक्त मात्रा को ही आधार बनाकर किया गया है, पर वह अपने चरम उन्मुक्त रूप में प्रकट होकर आश्रय की मानसिकता में बौद्धिकता एवं जागरूकतायुक्त तनाव से हटकर निर्द्वन्द्व सहज प्रफुल्लता की ओर इंगित करती है । साथ ही साहित्याचार्यो ने उसे हास्य में निम्न स्थान प्रदान किया है । उत्तम एवं मध्यम पुरूषों में वर्णित हास्य की संयमित स्थिति की नियंत्रिका शक्ति उनकी बौद्धिक चेतना एवं व्यंग्य - ग्रहण की क्षमता ही मानी जा सकती है जो तात्कालिक हास्यप्रद स्थितियों के पीछे छिपे गंभीर व्यंग्य मन्तव्य (जो सुधार की प्रेरणा एवं विकृतियों के समाज व्यापी स्वरूप से सम्बद्ध है)को अपनी तीव्र संवेदना एवं प्रखर बोद्धिकता द्वारा हृदयंगम कर लेते हैं । हास्यकारक उक्ति के प्रकट स्थूल रूप से अलग वे उसमें निहित सटीक मार्मिक उक्ति के प्रच्छन्न व्यंग्य अर्थ के व्यंग्य तक पहुँचने में समर्थ होते हैं ।

पाश्चात्य समीक्षकों ने कामेडी (Comedy) के सन्दर्भ में हास्य एवं व्यंग्य पर विचार किया है । कामेडी के सन्दर्भ में हास्य के निम्नलिखित भेद पाश्चात्य विद्वानों ने किये हैं -----

1. स्मित हास्य (Humour)
2. व्यंग्य (Satire)
3. वाग्वैदग्ध्य (Wit)
4. वक्रोक्ति या विडम्बना (Irony)
5. प्रहसन (Farce)
6. विद्रूपिका (Parody)

वस्तुतः उपरोक्त वर्गीकरण में स्मित हास्य (Humour) एवं व्यंग्य (Satire) अपने - अपने स्वरूप में प्रबल एवं स्पष्ट भावोद्वेग से युक्त होते हैं और इनका हास्य - व्यंग्य के रूप में सम्मिलित प्रयोग एवं साहित्य में इनकी समवेत स्थिति के बावजूद ये दोनों अपनी - अपनी चरम अवस्थाओं में एक - दूसरे से स्पष्टतः पृथक एवं स्वतंत्र होते हैं । इस प्रकार

इतना तो स्पष्ट ही है पाश्चात्य काव्यशास्त्र में व्यंग्य का पृथक एवं स्वतंत्र विवेचन किया गया है ।

अँग्रेजी शब्द ' सेटायर ' (Satire) की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों के मतों एवं प्रचलित धारणाओं में विभिन्नता है ।

एल0जे0 पाट्स के विचार से 'सेटायर' शब्द लैटिन शब्द 'सैतुरा' (Satura) से विकसित हुआ है । इसका अर्थ ' गड़बड़ - झाला ' होता है । ' सैतुरा के कम से कम दो रूप विकसित हुए । इसका जो रूप बाद में भी चलता रहा, वह ' पद्य - निबन्ध ' के समान था । ' सैतुरा ' शब्द प्राचीन काल में ' परनिंदा के अर्थ में प्रयुक्त होता था, और इस प्रारम्भिक अर्थ की छाया वर्तमान ' सेटायर ' शब्द पर भी पड़ी । परन्तु वर्तमान सेटायर (व्यंग्य) में केवल परनिंदा न होकर कुछ बातों में हेर - फेर कर दिया जाता है, आलम्बन की खिचाई (या उपहास) होता है एवं उसकी तुलना बुरे या घृणास्पद वस्तु से की जाती है, या बात को उलट दिया जाता है, या उसे बातों में उड़ा दिया जाता है ।'[1]

---

1. " Indeed it (satire) originated deliberatly form -less writting the word means 'Hoch-Patch'. Latin 'Satura' took at least two clistinct forms; the more persistent was no more than an essay in verse. Quit early in its history it was used largely for invective and from this historical accident, the modern sense of the word is derived. What that sense is, is far from clear. It is not more invective. It involves some kind of distortion, it caricatures its object or compaires it so some thing ridiculour or of ill repute or contemptible or stands on its head or drenches it merely in wit.'

   - Comedy - by L.J. Potts; Page - 153

गिलबर्ट हाइट भी ' सेटायर ' शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द ' सैतुरा ' से मानते हैं, परन्तु उसका अर्थ परनिंदा के रूप में न करके भिन्न रूप में करते हैं -----

" सेटायर का नामकरण लैटिन शब्द ' सैतुरा ' के आधार पर हुआ है, जिसका अर्थ प्रारम्भिक तौर पर ' परिपूर्ण ' होता है । पुनः यह पूर्ण विरोधी चीजों का मिश्रण देता है । ऐसा लगता है कि यह भोजन सम्बन्धी शब्दावली का अंग रहा है ।"[1]

ग्रीक में प्रचलित ' सैटिर ' (Satyr) शब्द से भी इसे सम्बद्ध किया गया है, पर अधिकांशतः इसका निषेध ही हुआ है । गिलबर्ट हाइट के शब्दों में -----

" इस नाम का कोई सम्बन्ध ' सैटिर ' कहे जाने वाले रोएँदार , अंशतः मानवीय, अंशतः पाशविक, व्यवहार में प्रायः बकरे जैसे रूक्ष, असभ्य ग्रीक प्राणियों से नहीं है ।"[2]

'सेटायर' शब्द का सम्बन्ध ' सैटरस ' नामक विचित्र जन्तु से भी माना जाता है - " व्यंग्य (सेटायर) का नामकरण सैटरस जैसे विचित्र जन्तु से किया गया है । लिवोन्ड्राइनिक्स नामक व्यक्ति ने सर्वप्रथम इसको प्ररष्कृत करके दृश्य - काव्य के रूप में प्रस्तुत किया । यह एक यूनानी गुलाम था । इसने नाटकों में व्यंग्य का प्रयोग किया ।"[3]

इस प्रकार ' सेटायर ' शब्द की उत्पत्ति एवं उसके साहित्यिक रूप के पीछे 'सैतुरा' के परनिंदा वाले अर्थ के साथ ही ' सर्टरस ' जैसे विचित्र जन्तु की प्रेरणा तथा पूर्ण विरोधी चीजों के मिश्रण के अर्थ में भोजन सम्बन्धी किसी शब्द के रूप में प्रयुक्त अर्थ से उसका सम्बन्व जोड़ा जाता है । अतः ' सेटायर ' शब्द के उद्भव के विषय में भी मतभेद है, परन्तु इन सभीअर्थों में व्यंग्य की प्रकृति से कुछ न कुछ साम्य अवश्य दृष्टिगत होता है ।

---

1. "The name satrie comes from the latin word 'Satura', which means primarily 'full' and then comes to mean" a mixture full of different things. It seems to have been part of the vacabulary of foods." The Anatomy of Satire - by Gilbert Highet. Page - 231
2. The Anatomy of Satire - by Gilbert Highet. - Pape - 231, 232.
3. हिन्दी नाट्य साहित्य में हास्य - व्यंग्य - डॉ0 सभापति मिश्र, पृ0 - 36

व्यंग्य के आविष्कारक रोमन तथा यूनानी माने जाते हैं । इनसाइक्लोपीडिया अमेरिका में रोमन कवियों को इसका प्रतुख आविष्कारक स्वीकार किया गया है ।[1] गिलबर्ट हाइट ने भी ' सेटायर ' का आविष्कारक रोमन तथा यूनानी को माना है , पर वे यह स्वीकार करते हैं । कि व्यंग्य (Satire) का प्रमुख रूप से प्रारम्भ रोम में ही हुआ, ऐसा विश्वास किया जाता है ।[2]

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटोनिका में भी रोमन लोगों को इसका उद्भावक स्वीकार किया गया ।[3]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य की धारणा एवं उसका साहित्यिक प्रयोग स्पष्ट रूप से हास्य से पृथक रूप में मिलता है । भारतीय काव्य शास्त्रीय विवेचन में इसे हास्य के अन्तर्गत ही रखा गया तथा इसकी विशुद्ध प्रहारात्मक शक्ति की पृथक पहचान नहीं की गयी । परन्तु प्राचीन संस्कृत वांङ्गय, वेद, गीता, रामायण, प्राचीन नास्तिक चार्वाक सम्प्रदाय इत्यादि में भी व्यंग्य का प्रयोग हुआ है । हिन्दी काव्य में रासों से लेकर सूर, तुलसी, केशवदास, बिहारी, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, निराला इत्यादि तक एवं उसके पश्चात प्रयोगवाद एवं नयी कविता के अब तक के काव्य में अपनी विविधि मुद्राओं एवं स्वरूपों के साथ मिलता है ।

---

1. "It is a word of Latin origin, and the ancient Roman poets were the chief inventors of the satire." - Encyclo.Americana, Page - 313 K.
2. "Satire as a distinct type of literature with a generic name and a continuous tradition of its own, is usually belived to have started in Rome" - The Anatomy of satire-by Gilbert Highet-Page-24.
3. "The Roman people, thus has originated the name of satire."
   - Encyclopedia Britanica - Page - 7.

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने व्यंग्य की परिभाषायें अपने - अपने ढंग से दी है सर्वप्रथम कुछ भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं पर दृष्टि डालना आवश्यक होगा । डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में -----

" व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो, फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो ।"[1]

उक्त परिभाषा में व्यंग्यकर्ता एवं व्यंग्यास्पद की सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं एवं हरकतों की पकड़ द्वारा एवं उसके प्रभाव की विशिष्टता द्वारा व्यंग्य को प्रत्यक्ष करने की चेष्टा की गयी है श्री हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के उद्देश्य एवं उसके निर्माणात्मक पक्ष पर अधिक जोर देते हुए लिखा है -----

" व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, विसंगतियों मित्थ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफ़ाश करता है ।" यह नारा नहीं है । जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है, जितनी गंभीर रचनाकार की, बल्कि ज्यादा ही । अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है ।"[2]

डॉ0 शंकर पुणतांबेकर के विचार में " व्यंग्य युगीन परिस्थितियों में निहित अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति है । इसमें शब्दों का चमत्कार, भाषा की वक्रता तथा झटका देने वाली शैली का प्रयोग होता है ।"[3]

---

1. कबीर - डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 - 143
2. सदाचार का ताबीज - हरिशंकर परसाई, पृ0 - 10
3. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - संपादक - डॉ0 श्याम सुन्दर घोष, पृ0 - 77

इस परिभाषा में व्यंग्य की शिल्पगत विशिष्टताओं को भी महत्व दिया गया है ।

डॉ0 महेन्द्र भटनागर के शब्दों में -----

" व्यंग्य शब्द - शक्ति का एक अंग है; जो किसी व्यक्ति, समाज, वस्तु या स्थिति की विरूपता प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है ।"[1]

इस परिभाषा में व्यंग्य को शब्द - शक्ति का अंग मानने से व्यंग्य के लिए शब्दों के विशिष्ट प्रयोग की महत्ता प्रतिपादित होती है । परन्तु व्यंग्य न केवल शब्द - शक्ति के रूप में प्रकट होता है वरन् वाक्यों तथा कभी - कभी सम्पूर्ण प्रसंग एवं सन्दर्भ द्वारा भी ध्वनित होता है ।

डॉ0 श्याम सुन्दर घोष के अनुसार " व्यंग्य - लेखन शुद्ध साहित्यिक लेखन न होकर रणमूलक लेखन है । उसके पीछे एक स्ट्रेटेजी या मोर्चाबंदी होती है ।"[2]

इस परिभाषा में व्यंग्य को शुद्ध साहित्यिक न मानकर उसकी आक्रामकता एवं मोर्चाबंदी को एक विशिष्ट कला के रूप में देखा गया है । इसमें व्यंग्य के प्रहारक पक्ष पर ही अधिक जोर है, जिसमें वह शुद्ध साहित्यिक कलात्मकता से विमुख भी हो सकता है ।

उपरोक्त विद्वानों के व्यंग्य - सम्बंधी विचारों के अनुशीलन से व्यंग्य में, विकृतियों पर प्रहार करने उनका उपहास करनें, यथार्थ में व्याप्त अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति करने एवं उनमें सुधार करने की प्रवृत्ति का विशेष महत्व स्पष्ट है ।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार की गयी है -----

" व्यंग्य की परिभाषा, उसके साहित्यिक रूप में इस प्रकार दी जा सकती है कि वह हास्यास्पद अथवा असामान्य द्वारा उत्पन्न मनोरंजन या अरूचि की भावना की उपयुक्त ढंग से की

---

1. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - संपादक - डॉ0 श्याम सुन्दर घोष, पृ0 - 60
2. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - संपादक - डॉ0 श्याम सुन्दर घोष, पृ0 - 117

गयी अभिव्यक्ति है, और ऐसा होने पर उसमें हास्य एक अलग से पहचाना जा सकने वाला तत्व हो तथा कथन की निर्मिति साहित्यिक रूप में हो ।"[1]

व्यंग्य की साहित्यिक अभिव्यक्ति में विशिष्टता एवं उसके अन्तर्गत हास्यकारक तत्वों के महत्व की ओर इंगित करते हुए आगे यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि " बिना हास्य के व्यंग्य गाली (भर्त्सना) के सदृश है तथा बिना साहित्यिक रूप के वह महज विदूषकत्वपूर्ण ठट्ठा (खिल्ली) है ।"[2] इनसाक्लोपीडिया अमेरिका के अनुसार व्यंग्य गद्य या पद्य में साहित्यिक रचना का एक प्रकार है जिसमें मूर्खतापूर्ण व्यवहार की निन्दा की जाती है और दुराचार से रोका जाता है ।"[3]

गिलबर्ट हाइट ने व्यंग्य के सम्बन्ध में लिखा है -----

---

1. " In its literary aspects, may be defined as the expression in adequate terms of the amusement or disgust exited by the ridiculous or unseemly, provided that humour is a distinctly with recognizable element and that the ulterance is invested with literary form."
   - Encyclopedia Britanica, - Page - 6
2. " Without humour satire is invective, without literary form it is mere clownish jeering."
   - Encyclopedia Britanica, - Page - 6
3. " Satire, a kind of literary composition in verse or prose, in which wickedness or folly is censured and held up to reprobation."
   - Encyclopedia Americana, - Page - 313 K

" व्यंग्य का अंतिम निरीक्षण या परीक्षण उस अद्‌भुत आवेग के साथ होता है, जो व्यंग्यकार अनुभव करता है और अपने पाठक के भीतर जिसे उद्‌बुद्ध करने की चेष्टा करता है ।[1]

पूर्वोक्त व्यंग्य सम्बन्धी परिभाषाओं से उसके सुधारात्मक उद्‌देश्यगत पक्ष, आलोचनात्मक एवं प्रहारात्मक अभिव्यक्तिपरक पक्ष तथा अनुभूतिगत पक्ष विशेष रूप से उभर कर सामने आते हैं । साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में उसमें वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य, विनोद, प्रतीक, श्लेष, अन्योक्ति आदि के प्रयोग की महत्ता भी सिद्ध होती है । व्यंग्य के विद्वेषपूर्ण, कटु , त्रासक एवं निरे निन्दात्मक रूप को हास्य के सामावेश द्वारा एक मानवीय एवं नैतिक आधार प्राप्त हो जाता है । यद्यपि विकृतियों की भयानकता एवं गंभीरता के अनुरूप ही व्यंग्य के रूप में सुधार के लिए दी गयी सजा भी कठोर, गंभीर तथा तीव्र आक्रामकता से युक्त हो सकती है, पर उसमें हास्य की एक हल्की सी भंगिमा का संतुलन अनिवार्य नहीं, तो काम्य अवश्य है । इस प्रकार व्यंग्य के विषय में हम निष्कर्षत: यह कह सकते हैं कि वह अपने साहित्यिक रूप में वह गंभीर उद्‌देश्य पूर्ण अभिव्यक्ति है, जिसमें किसी असंगति, विकृति या अन्तर्विरोध की विडम्बनामय या उपहासास्पद स्थिति पर विविध रूपों में प्रहार होता है, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सुधार की कामना द्वारा संचालित होता है । इसके लिए वक्र भाषा, चमत्कारपूर्ण शैली तथा विशिष्ट शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है ।

पाश्चात्य विद्वानों ने कामेडी के सन्दर्भ में हास्य के प्राय: छ: भेद स्वीकार किये हैं, इसका पूर्व में ही उल्लेख किया जा चुका है । इन्हीं में हास्य (Humour) एवं व्यंग्य (Satire) भी आ जाते हैं परन्तु ध्यान देने पर यह ज्ञात होता है कि अपनी - अपनी प्रबतम अभिव्यक्तियों में हास्य एवं व्यंग्य एक - दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रकृति एवं प्रभाव ग्रहण

---

1. "The final test for satire is the typical emotion which the author feels, and wishes to evoke in his readers."
   - The Anatomy of Satire - by Gilbert Highet - Page - 21

कर लेते हैं । अन्य भेदों की उपस्थिति हास्य एवं व्यंग्य दोनों में ही हो सकती है । वस्तुतः पैरोडी ﴾ विदूषिका ﴿ एवं प्रहसन ﴾Farce ﴿ व्यंग्याभिव्यक्ति की विशिष्ट शैलियाँ हैं । वाग्वैदग्ध्य ﴾Wit ﴿, एवं वक्रोक्ति ﴾ Irony﴿ उसके अंग या उपकरण ही हैं, पर अपनी प्रधान एवं स्पष्ट स्थिति के कारण ही ये दोनों स्वतंत्र भेद के रूप में स्वीकृत किये जा सकते हैं । वस्तुतः वाग्वैदग्ध्य, वक्रोक्ति, प्रतीक, श्लेष, अन्योक्ति व्याज - स्तुति एवं व्याज - निंदा आदि व्यंग्य के विविध घटक हैं । गिलबर्ट हाइट ने पैरोडी को व्यंग्य का एक रूप ﴾ Pattern ﴿ माना है । इनके अनुसार मुख्य रूप से व्यंग्य के तीन आकार ﴾ Patterns ﴿ है - एकालाप ﴾ मोनोलाग ﴿, विदूषिका ﴾ पैरोडी ﴿ एवं वक्तव्य या वर्णन रूप ﴾ Narrative ﴿ ।[1] इसमें प्रहसन को भी सम्मिलित किया जा सकता है । परन्तु एकालाप एवं वक्तव्य रूप में व्यंग्य उसकी वर्णनात्मक - शैली है । प्रहसन एवं विद्रूपिका में व्यंग्य विशिष्ट रचनात्मक ढाँचे के साथ प्रकट होता है । अतः व्यंग्य के संदर्भ में विद्रूपिका एवं प्रहसन पर अलग से विचार किया जायेगा । स्मित हास्य को व्यंग्य के एक महत्वपूर्ण तथ्य के रूप में एवं उससे सम्बद्ध रूप में देखने के बाद भी दोनों के अलग - अलग रूपों की स्पष्टता के लिए उनकी कुछ मूलभूत भिन्नताओं पर दृष्टि डालना आवश्यक है ।

हास्य एवं व्यंग्य में भिन्नताः-

हास्य एवं व्यंग्य का परस्पर सम्बन्ध प्राचीन भारतीय साहित्याचार्यों के हास्य - विषयक दृष्टिकोण में देखा जा सकता है । पश्चिमी विचारकों ने भी हास्य को व्यंग्य के आवश्यक या महत्वपूर्ण तत्व के रूप में देखा है । साहित्य में हास्य का व्यंग्यात्मक ﴾सोद्देश्य﴿ प्रयोग अधिक सार्थक होता है । दैनिक जीवन के प्रसन्नतासूचक हास्य से भिन्न साहित्यिक हास्य अपनी विशिष्ट पहचान तभी बना सकता है, जबकि उसमें सोद्देश्यता या कुछ व्यंग्यात्मकता हो । हास्य के साथ जुड़ा उद्देश्य ही उसे व्यंग्यशीलता प्रदान करता है । यदि हास्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन हो तो वह व्यंग्य से भिन्न हो उठता है ।

---

1. The Anatomy of Satire - by Gilbert Highet.

काव्य की आत्मा रस मानने वाले आचार्य किसी को चोट पहुँचाना या उसकी निंदा करना अशोभन मानते थे । हास्य की उद्‌भावना रस के रूप में ही की गयी थी, अतः आलोचना, निंदा, प्रहार आदि हास्यरस की सुखात्मक अनुभूति को बाधित भी करते थे । इनका हास्य वेष्टित प्रच्छन्न प्रयोग ही उसे एक विशिष्ट स्वाद से भर सकता है । अतः हास्य विशुद्ध रूप में हास्य - रस की उद्‌भावना करता है, जो सहृदय को एक मानसिक आह्लाद एवं तृप्ति से भर देता है । इसके विपरीत व्यंग्य घृणा, आक्रोश, करूणा आदि के भावों से अधिक सम्बद्ध होता है, तथा अवसाद, विक्षोभ, जुगुप्सा एवं करूणा आदि के भावों को उद्‌बुद्ध करता है ।

साहित्य में जहाँ शुद्ध हास्य की उद्‌भावना होती है, वहाँ वह प्रायः व्यक्ति के सन्दर्भ में उसकी चेष्टा, वाणी, वेश - भूषा आदि पर विदूषकत्व से पूर्ण होती है । व्यंग्य प्रायः वर्ग समुदाय एवं समाज की विकृतियों के प्रति ही साहित्यिक रूप में प्रकट होता है । व्यक्तिगत स्तर का व्यंग्य क्षुद्र एवं दुर्भावना युक्त होता है, तथा व्यंग्य का विकृत रूप होता है परन्तु हास्य प्रायः व्यक्तिगत स्तर पर ही अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण ग्राह्य होता है । हास्य का उद्रेक व्यक्तिगत प्रसंगों या सन्दर्भों में अधिक संभव होता है, परन्तु व्यंग्य प्रायः सामाजिक स्तर पर होता है, दैनिक वास्तविक जीवन के सन्दर्भ में नहीं। यथार्थ जीवन में निंदा एवं आलोचना की प्रवृत्ति व्यक्तिगत स्तर पर कटुतापूर्ण एवं विद्वेषपूर्ण व्यंग्य को भी जन्म देती है । साहित्य का क्षेत्र व्यक्तिगत आक्षेपों का क्षेत्र नहीं है, अतः वहाँ व्यंग्य का सामूहिक रूप ही दृष्टिगत होता है । हास्य में रस की उत्पत्ति से वह व्यक्तिगत स्तर पर होते हुए भी निंद्य या वर्ज्य नहीं माना जाता । हास्य में सामाजिकता तो होती है, परन्तु वह समाज के प्रति नहीं होता । इसका कारण यह है कि सामाजिक सांस्कृतिक या राजनीतिक, साहित्यिक विकृतियों के प्रति सुधार की प्रेरणा एवं उस पर प्रहार की भावना उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हास्य को जन्म नहीं देती, उसमें व्यंग्य का प्रयोग अनिवार्य हो उठता है । परन्तु व्यक्तिगत मूर्खताओं, अज्ञानताओं इत्यादि पर शुद्ध हास्य का जन्म होता है, क्योंकि उनमें व्यक्ति का कोई छल या ढोंग निहित नहीं होता ।

व्यंग्यास्पद व्यक्ति, वर्ग या समूह या व्यवस्था दोहरी - प्रणाली से युक्त होते हैं । वे वस्तुतः वैसे नहीं होते जैसा कि प्रकट रूप में दर्शाते हैं । वास्तव में होने और दिखने के

बीच यही ढोंग एवं आडम्बरपूर्ण स्थिति या पद्धति ही उनकी विकृति, विसंगति एवं विडम्बना होती है । यह स्थितिजनहित में नहीं होती और इसका व्यंग्यास्पद व्यक्ति या समूह को ज्ञान भी होता है । परन्तु हास्योद्रेक में हास्यास्पद व्यक्ति या समूह की विकृति किसी छलना से सम्बद्ध नहीं होती और न ही उसमें समाज का अहित निहित होता है । वह प्रायः मूर्खता एवं अज्ञानता की स्थिति के आकस्मिक सात्क्षात्कार द्वारा उत्पन्न होती है । उसमें हास्यास्पद की स्थिति के प्रति भी अनभिज्ञता अधिक होती है, जो हास्योद्रेक में सहायक होती है । इसके ठीक विपरीत व्यंग्यास्पद व्यक्ति या समूह की विकृति उसके चातुर्यपूर्ण ज्ञान के द्वारा जानबूझकर अनभिज्ञ बनने एवं पूर्ण अवज्ञान के साथ विकृति का पोषण करने की भावना से युक्त होती है । किसी विकृति या असंगति या विडम्बना का प्रतिनिधित्व करने वाला सचेतन व्यक्ति की धूर्तता या पाखंड अथवा वर्ग या व्यवस्था का खोखलापन या आडम्बर ही व्यंग्य का लक्ष्य बनता है । व्यंग्य सामाजिक (सामूहिक) सन्दर्भ में व्यक्त होने से प्रायः हर व्यवस्था या स्थिति की कमियों एवं दोषों के प्रति ध्यान आकृष्ट करता है । जिसकी तरफ वर्ग या समूह के लोगों का प्रायः ध्यान नहीं भी जाता । हास्य पात्र समाज में अप्रिय या असम्मानजनक नहीं होता, व्यंग्य पात्र अप्रिय एवं निंद्य हो जाता है, जब उसकी वास्तिविकता विकृति के रूप में सामने लायी जाती है ।

हास्य में हास्य - पात्र के प्रति एक सहानुभूति का भाव स्थायी रूप में होता है, भले ही हँसते समय कुछ व्यंग्य भाव या उसे स्वयं की अपेक्षा (उस हास्यास्पद विकृति के कारण) कम समझने का भाव जाकृत हो जाता है । हास्यास्पद चूँकि अपनी विकृति से अनभिज्ञ या उसके लिए स्वयं दोषी नहीं होता है, इसीलिए उसकी विकृति के प्रति आक्रोश या घृणा की उत्पत्ति नहीं होती । एक प्रच्छन्न करूणा एवं सहानुभूति ही उस हास्य में प्रच्छन्न रूप में निहित रहती है । इस सहानुभूति के समाप्त होने पर हास्य में कुछ या अत्यधिक मात्रा में व्यंग्य का समावेश हो जाता है ।

हास्य में हास्यकर्ता के अन्दर एक प्रसन्नता एवं मनोरंजन का भाव जागृत होकर उसे मानसिक रूप से शांति एवं प्रफुल्लता प्रदान करते हैं । व्यंग्यकर्ता आक्रोश एवं घृणा से

संचालित होने के कारण एक मानसिक उद्वेलन एवं तनाव की स्थिति का अनुभव करता है । व्यंग्य में हास्यपूर्ण उक्तियों आदि के द्वारा इस तनाव में कुछ कमी आती है । इस प्रकार हास्य जहाँ गंभीर परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव को भी अपने निर्बाध प्रवाह में बहाकर मानसिक रूप से तनावमुक्त करते हैं, वहीं व्यंग्य बौद्धिक चेतना को गतिशील बनाकर उसे एक वैचारिक द्वन्द्व एवं तात्कालिक उत्तेजना एवं तिलमिलाहट से भर देते हैं । हास्य जहाँ मानसिक उद्वेलन की तरंगों को तत्काल शांत कर देते हैं, व्यंग्य तृप्त एवं शांत मस्तिष्क में उद्वेलन की तरंगे पैदा कर देते हैं । हास्य सरल मानसिक स्थिति की सहजता में उत्पन्न होता है और व्यंग्य द्वन्द्वपूर्ण मानसिक स्थिति की जटिलता में जन्म लेता है । यह द्वन्द्व एवं जटिलता तथा उनका तनाव ही प्रहारात्मक व्यंग्य को जन्म देता है ऐसी स्थिति में व्यंग्य से हास्य की मुद्रा पूरी तरह लुप्त हो जाती है । व्यंग्य कठोर कटु एवं मारक हो जाता है ।

हास्यकर स्थितियों का दर्शन सहज एवं सरल प्रक्रिया है, अतः इसके लिए विशेष उच्च बौद्धिक स्तर की अनिवार्यता नहीं है। व्यंग्य एवं उद्देश्य विहीन हास्य के सम्बन्ध में ही भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में कहा गया होगा कि हास्यरस स्त्रियों एवं नीच पुरुषों में अधिक दिखाई देता है ।[1] यह मूलप्रवृत्तिगत होने से एवं विकृति के सहज व्यक्त रूप में होने से बौद्धिकता का मोहताज नहीं होता । व्यंग्य बौद्धिक - विकास का परिणाम होता है । बौद्धिकता द्वारा ही वह (व्यंग्यकार) कहीं भी छिपे असंगतियों एवं विकृतियों की विडम्बना की पहचान करने में सक्षम होता है । वह सामाजिक रूप से अधिक जागरूक एवं मानसिक स्तर पर अधिक सक्षम होता है । साहित्य के क्षेत्र में हास्यकार की अपेक्षा व्यंग्यकार की प्रतिभा अधिक प्रखर होती है । डॉ० श्याम सुन्दर घोष के शब्दों में " व्यंग्य एक परिपक्व और स्थायी मानसिकता की उपज है । यह परिपक्वता अनायास नहीं आती । यह अनुभव उष्मा की उपज है । इसीलिए व्यंग्य लेखन भावुकता मूलक लेखन से भिन्न होता है ।"[2]

---

1. नाट्य शास्त्र - भरतमुनि - अध्याय - 6, श्लोक - 51
2. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - संपादक - डॉ० श्याम सुन्दर घोष, पृ० - 115

हास्य का कोई विशिष्ट प्रयोजन या उद्देश्य नहीं होता । व्यंग्य का एक स्पष्ट प्रयोजन होता है , जो विकृतियों के विनाश एवं सुधार तथा अच्छाइयों की स्थापना के लिए कृत संकल्प होता है ।

हास्य एवं व्यंग्य का अन्तर जितना स्पष्ट है उतना ही उनका परस्पर सम्बन्ध भी । हास्य एवं व्यंग्य एक दूसरे के पूरक भी हैं, वे परस्पर सम्बद्ध भी है तथा उनकी अपनी स्वतंत्र सत्ता भी है । वे एक - दूसरे से सम्बद्ध भी हो सकते हैं और स्वतंत्र भी । या फिर ये दोनों स्वतंत्र होकर भी परोक्षतः एक - दूसरे से सम्बद्ध होते हैं । विशुद्ध हास्य उद्देश्य विहीन होने से साहित्य में उतने महत्वपूर्ण नहीं होते, जितने कि व्यंग्य । परन्तु हास्य विहीन नितान्त कटु व कठोर व्यंग्य भी विकृत भाषा के अशोभन प्रयोग से उच्श्रृंखल एवं अमर्यादित हो सकता है । अतः एक की दूसरे में सूक्ष्मतम व आंशिक उपस्थिति उनके स्वतंत्र अस्तित्व को एक विशिष्ट सौंदर्य एवं प्रभाव से युक्त कर देती है । डॉ0 महेन्द्र भटनागर के अनुसार --

" व्यंग्य अधिकतर कटु ही होता है । ----- शर्करावेष्टित कुनैन के रूप में वह ग्राह्य अवश्य हो जाता है ।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यद्यपि व्यंग्य हास्य का ही विकसित रूप है, पर विकासक्रम में वह इतने नये - नये सन्दर्भों एवं स्थितियों की जटिलताओं से गुजरा है कि उसकी हास्य की मुद्रा कहीं - कहीं पूर्णतया विलीन हो गयी है । कारण भयावह एवं जटिल विडम्बनाओं के बीच जीता व्यंग्यकर्ता मानसिक रूप से तटस्थ नहीं रह पाता, वह क्रोध, आवेश एवं आक्रोश की तात्कालिक मनोभूमि से तीखा व कटुतर व्यंग्य करता है । परन्तु जब वह स्थिति में कुछ सामंजस्य स्थापित कर लेता है, तो उसका आक्रोश एवं क्रोध अथवा घृणा तटस्थभाव के व्यंग्य में व्यक्त होकर हास्य की मुद्रा से युक्त होने लगता है । हम यह कह सकते है कि हास्य और व्यंग्य का सम्बन्ध माँ बेटे की तरह है । यद्यपि हास्य की प्रारम्भिक अवस्था से ही व्यंग्य का जन्म हुआ है, पर उनकी प्रकृति भिन्न हो गयी है । एक मधुर और कोमल है, दूसरा तिक्त और कठोर । दोनों का सम्बन्ध है, फिर भी उनका अपना अलग अस्तित्व

---

1. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - संपादक - डॉ0 श्याम सुन्दर घोष, पृ0 - 6।

है । हास्य में सहानुभूति का भाव तो होता ही है, पर व्यंग्य में सदैव ही सहानुभूति समाप्त हो जाती हो, ऐसा नहीं है । मानवीयता की करूणा एवं सहानुभूति का प्रच्छन्न रूप व्यंग्य के प्रहार के पीछे छिपा रहता है । साहित्य में जब व्यंग्य व्यक्तिगत आक्षेप या निंदा की विद्वेषपूर्ण भावना से युक्त होते हैं, तभी उनमें दया, करूणा या सहानुभूति का पूर्णतः लोप आवश्यक होता है । अत्यधिक क्रूर, भयावह एवं अमानवीय विकृति के प्रति ही व्यंग्यकार की सहानुभूति पूर्णतया समाप्त होकर घृणा एवं आक्रोश उत्पन्न होता है । ऐसे ही व्यंग्य में हास्य - तत्व समाप्त हो जाते हैं । पर यह व्यंग्य की एक स्थिति - विशेष है । यह व्यंग्य का उत्कृष्टतम रूप नहीं माना जा सकता । अपने श्रेष्ठ, परिपक्व एवं संतुलित स्थिति में व्यंग्य में हास्य की सूक्ष्म एवं संयत मुद्रा मिलती है । हास्य और व्यंग्य के मिश्रण को प्रस्तुत करने में वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य एवं श्लेष आदि को चमत्कारिक ढंग से प्रस्तुत कर कवि या लेखक अपनी कृति में साहित्य के एक उत्कृष्ट रूप को प्रस्तुत कर सकता है ।

हास्य (Humour) का हास्य पाठक या श्रोता एवं हास्यकार दोनों में समान रूप से होता है । वह हास्यास्पद में भी हास्य जागृत करता है । व्यंग्य का स्मित (हास्य) व्यंग्यकार के अधरोष्ठों पर होता है, सदस्य में होता है, पर व्यंगास्पद में नहीं होता ।

व्यंग्य और प्रहसनः-

प्रहसन हास्य प्रधान नाटक को कहते हैं । इंग्लिश में इसे फार्स (Farce) या कामेडी भी (Comedy) कहते है। प्रहसन भारतीय काव्य - शास्त्र में हास्य - रस से पृथक एक विशेष विधा के रूप में आचार्य भरत के काल से ही प्रचलित हो गया था । आचार्य भरत के अनुसार इसमें हास्य की प्रधानता होती है । प्रहसन प्रारम्भ से ही नाट्यरूप में विकसित हुआ । ' संस्कृत नाटकों में प्रहसन के लिए विदूषक का प्रयोग किया जाता था। ये विदूषक ब्राह्मण जाति के होते थे । -------

संस्कृत साहित्य में विदूषक अधिकतर पेटू, भुक्खड़ तथा लालची ही चित्रित किये गये हैं । भास, कालिदास इत्यादि नाटककारों ने विदूषक को इन्हीं रूपों में चित्रित किया है । संस्कृत साहित्य में ' भाण ' का उपयोग भी प्रहसन के लिए किया जाता है ।'[1]

---

1. हिन्दी नाट्य - साहित्य में हास्य - व्यंग्य - डॉ0 सभापति मिश्र, पृ0 - 44

अभिनव नाट्य शास्त्र में ' भाण ' के तुल्य ही प्रहसन को बताया गया है । 'भाण तुल्यं हास्य युक्तं प्रहसनम् ।।' अर्थात भाण के समान ही प्रहसन भी होता है । पर इसमें आधिक्य हास्य - रस का होता है । शुद्ध प्रहसन में पाखंडी, सन्यासी, तपस्वी अथवा पुरोहित नायक की योजना होती है । इसमें चेट , चेटी, विट आदि नीच पात्र भी आते हैं । इसका बहुत कुछ प्रभाव वेष - भूषा और बोलने के ढंग से ही डाला जाता है । हास्यपूर्ण उक्तियों का इसमें बाहुल्य होता है ।'[1] आचार्य भरत के विचार से प्रहसन में जनसाधारण में व्याप्त किसी दुराचरण दंभ, एवं पाखण्ड का प्रदर्शन आवश्यक होता है ।[2]

प्रहसन के समान ' भाण ' भी नाट्य रूप होता है । ' इसमें एक अंक और एक ही पात्र होता है । यह पात्र कोई बुद्धिमान विट होता है, जो अपने तथा दूसरों के धूर्ततापूर्ण कृत्यों को वार्तालाप के रूप में प्रकाशित करता है । वार्तालाप किसी कल्पित व्यक्ति के साथ होता है । रंगमंच पर आकर नायक आकाश की ओर देखता हुआ सुनने का नाट्य करके कल्पित पुरूष की उक्तियों को दुहराता है ।'[3] ' भाण ' को हम पाश्चात्य एकालाप (मोनोलाग) से मिलता - जुलता पाते हैं । मोनोलाग व्यंग्य की एक प्रणाली है, जिसमें कवि या लेखक स्वयं अथवा उसके द्वारा नियुक्त पात्र बिना व्यवधान के बोलता है । आधुनिक व्यंग्य में एकालाप का रूप प्रायः अधिकांश कवियों में मिलता है । इस प्रकार संस्कृत काव्य के ' भाण ' में प्रहसन के समान हास्योद्रेक जिस प्रकार एक पात्र द्वारा नाट्य रूप में मिलता है, उसी तरह एकालाप (मोनोलाग) का प्रयोग काव्य में व्यंगात्मक अभिव्यक्ति के लिए स्वयं कवि या उसके द्वारा किसी पात्र के द्वारा आत्मोद्गार के रूप में अधिक यथार्थपरक, स्वानुभूत एवं हास्यपरक मुद्रा में होता ।

---

1. अभिनव नाट्य - शास्त्र; प्रथम खंड, श्लोक 242 - पृ0 577
2. नाट्य शात्रत्र; आचार्य भरत, 18 पृ0 - 154, 158
3. अभिनव नाट्य - शास्त्र , प्रथम खण्ड, ले0 अभिनव भरत आचार्य, सीताराम चतुर्वेदी, पृ0 - 577

प्रहसन का सम्बन्ध संस्कृत साहित्याचार्यों ने मुख्यतः हास्य से ही बताया है । इसके नाट्य - रूप में हास्य की सर्जना उपदेशक, वेश्या और दुष्ट व्यक्ति के आचरण के अनौचित्य के चित्रण द्वारा की जाती है । अंग्रेजी साहित्य में कामेडी नाम सुखांत नाटकों के लिए प्रयुक्त होता है । प्रहसन या ' फार्स ' सुखांत नाटकों में सर्वप्रथम हैं । हास्य तथा व्यंग्य को चूँकि कामेडी के प्रकारों में रखकर देखा गया है, इसीलिए प्रहसन में हास्य एवं व्यंग्य दोनों की उपस्थिति रहती है । परन्तु जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसके द्वारा हास्य की सृष्टि की जाती है । साथ ही वर्ग या समाज की किसी बुराई पर व्यंग्य करने के उद्देश्य से ही इस हास्यमय नाटक की कलात्मक सृष्टि की जाती है । यह व्यंग्य का बड़ा शिष्ट, सभ्य एवं शालीन माध्यम होता है । व्यंग्य तो ध्वनि रूप में रहता है, प्रत्यक्ष में हास्य का मनोरंजक रूप रहता है । अतः इसके प्रस्तुतीकरण में वर्तमान हास्यकर एवं मनोरंजक उक्तियों, चेष्टाओं आदि के द्वारा एक सार्वजनिक हास्य का उदय होता है । सम्पूर्ण प्रभाव में एवं उद्देश्य में हास्यपूर्ण कलात्मकता के साथ समाज की किसी बुराई की ओर इंगित करके उसे हास्य - व्यंग्य के एक सुन्दर रूप में प्रस्तुत कर दिया जाता है । डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी के शब्दों में "कामेडी का लेखक बुराइयों की दुनिया में रहता है, जीवन के प्रपंचों , अनाचार और अत्याचार को देखती है, फिर भी निरपेक्ष होकर, कलात्मक ढंग से, विनोद के भाव से दुनिया का चित्र खींचता है । स्वानुभूति और निरपेक्षता का बाह्य रूप और वास्तविकता के द्वन्द्वों का प्रत्येक हास्य - लेखक प्रयोग करता है । कामेडी का हास्य अवैयक्तिक, सार्वजनिक और शिष्ट होता है ।"[1]

प्रहसन लेखक अधिक निरपेक्ष एवं तटस्थ होता है । साथ ही प्रबुद्धता भी व्यंग्यकार से विशिष्ट प्रखर होती है । उसमें संयम भी होता है और जागरूकता भी । इसमें नाट्य के चरित्रों में संगुफित करके किसी वर्ग - विशेष या विभिन्न वर्गों के चरित्र के अनुचित पक्ष को सामने रखा जाता है । यदि साहित्यकार उस विकृति के प्रति सीधी प्रतिक्रिया काव्यबद्ध रूप में करता तो वह व्यंग्य के तात्कालिक प्रभाव के रूप में तीखे आक्रोश एवं कटुता से भी युक्त हो सकती है । परन्तु प्रहसन में उसको हास्यकारक प्रसंगों, उक्तियों आदि के द्वारा सोच -

---

1. हिन्दी - साहित्य में हास्य - रस - डॉ0 बरसानेलाल चतुर्वेदी - पृ0 27

समझकर, संयमित दृष्टिकोण से, स्वयं आनन्द लेते हुए एवं सहृदय जनों को भी आनन्दित करते हुए प्रस्तुत करने से वह अभिव्यक्ति अधिक नैतिक एवं मानवीय हो उठती है । बिना किसी को आहत किये विकृति के प्रति कलात्मकता से व्यंग्य करना ही इसका उद्देश्य होता है । विकृति के सुधार के लिए उसे लक्ष्य बनाना एवं प्रहसन की कथा द्वारा प्रतीक रूप में या संकेत रूप में व्यंग्य करना इसकी विशिष्टता होती है । डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी के शब्दों में ---

" प्रहसन का यद्यपि हास्य एक आवश्यक गुण है, तथापि प्रहसन एक मात्र हास्य पर ही आधारित नहीं होता । इनमें हास्य एव व्यंग्य स्पष्ट भी हो सकता है तथा गुप्त भी ।"[1]

प्रहसन में व्यंग्य, वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य इत्यादि का भी प्रयोग हो सकता है । प्रहसन का मूल उद्देश्य मनोरंजन भी होता है, पर यह मनोरंजन विशुद्ध हास्य या निरूद्देश्य हास्य के साथ नहीं होता । इसमें समाज की बुराइयों पर प्रच्छन्न प्रहार होता है और यही प्रहार व्यंग्य से इसका सम्बन्ध जोड़ता है । पर इसमें व्यंग्य एक विशिष्ट प्रभाव के रूप में उभरता है । डॉ0 छविनाथ मिश्र के शब्दों में -----

" प्रहसन के कई रूप उपलब्ध होते हैं । सर्व प्रथम तो यह सामाजिक विसंगतियों का आधार ग्रहण करता है और सामाजिक संगति के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए प्रवृत्त होता है । दूसरे प्रहसन नैतिक मूल्यों की पुनः स्थापना करना चाहता है । हास्य की योजना के द्वारा यह कटुता और ईर्ष्यापरक व्यंग्योक्तियों से बचाव करता हुआ सर्वग्राह्य होता है । तीसरे इसमें कल्पना का आश्रय इसलिए ग्राह्य होता है कि प्रहसन के कत्थ्य का प्रभाव सार्वभौम हो और कोई खास व्यक्ति, समाज या आचरण का चित्रण न होकर इसमें सर्वजन संवेद्य भावाभिव्यक्ति और सम्प्रेषणीयता का निर्वाह हो ।"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रहसनकार सुधार के लिए प्रवृत्त तो होता है, पर उसकी दृष्टि उदार एवं सामाजिक होती है । उसमें आक्रोश व घृणा उस सीमा तक नहीं जाते जिसमें

---

1. हिन्दी - साहित्य में हास्य - रस - डॉ0 बरसानेलाल चतुर्वेदी, पृ0 - 27

2. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र, पृ0 - 49

बुराइयों की तीखी कटु व मारक आलोचना की जाय व सीधे चोट पहुँचाई जाय । इस दृष्टि से प्रहसनकार सामान्य व्यंग्यकार से उच्च मानसिक - स्थिति में रहता है । उसकी दृष्टि अधिक सुलझी हुयी होती है तथा वह बुराई को समाप्त करने के लिए अधिक समझदारीपूर्ण रवैया या दृष्टिकोण का परिचय देता है । व्यंग्यकार प्रत्यक्ष व्यंग्य में क्रूर एवं कठोर हो सकता है, पर प्रहसन आक्रोश व घृणा को उपशमित करके संयमित ढंग से प्रस्तुत करता है ।

प्रहसन व्यंग्य का एक संतुलित, शिष्ट एवं विनम्र माध्यम है तथा हास्य का उद्देश्य पूर्ण रूप है । प्रहसन में हास्य के साथ व्यंग्य का सुन्दर सामंजस्य प्राप्त होता है । इसमें व्यंग्यास्पद एवं उपहास्य को इस कलात्मक एवं मनोरंजक ढंग से लक्ष्य बनाया जाता है कि वह स्वयं भी उसमें आनंद लेता हुआ उस विकृति के प्रति अत्यंत सूक्ष्म स्तर पर लज्जित होता है, जिसकी प्रहसन में उद्भावना की जाती हे । व्यंग्य में व्यंगास्पद प्रत्यक्षतः आहत होता है, तथा उसमें प्रतिक्रियात्मक भाव भी आ सकते हैं, वह तिलमिला उठता है । प्रहसन में उपहास्य वर्ग के लोग परोक्ष रूप से बुराई के प्रति सचेत होत हैं ।

एल0जे0 पाट्स के अनुसार ----- ' प्रहसन जीवन तथा मानव की प्रकृति को यथावत मानता है और स्पष्ट कल्पना तथा बोध से उसका आविर्भाव होता है । व्यंग्य यथार्थ जीवन को स्वीकार नहीं करता और वह यथार्थ को स्वीकार न करने के साथ उसका नाश भी करता है, अस्वाभाविकताओं पर कसकर प्रहार करता है । × × × × × । परिपक्वता और प्रबुद्धता की मानसिक स्थिति में व्यंग्यकार अंत में प्रहसन लेखक बन जाता है '[1]

वस्तुतः प्रहसनकार अत्यंत मनोवैज्ञानिक स्तर पर सूक्ष्म ढंग से सुधार की कामना रखता है, अतः वह विकृति को तटस्थ ढंग से प्रहसन के माध्यम से प्रस्तुत करता है । प्रहसनकार व्यंग्यकार की मानसिकता से भिन्न मानसिकता वाला होता हे । वह जीवन में रस लेने वाला सामाजिक प्राणी भी होता है, जिसे विकृतियों का सुधार उसी समाज के बीच सहज ढंग से रहते हुए करना होता है । इसीलिए प्रहसनकार जिस वर्ग पर व्यंग्य करता है, उनको भी अप्रिय नहीं होता है ।

---

1. Comedy - L.J. Potts, Page - 154

व्यंग्य के प्रहारात्मक रूपों में हास्य का समावेश अनिवार्य नहीं रहता है । व्यंग्य के अन्तर्गत हास्यद्रेक हो भी सकता है, और नहीं भी हो सकता है । प्रहसन में हास्यात्मकता कम या अधिक मात्रा में एक अनिवार्य तत्व है । प्रहसन मं भी व्यंग्योक्तियों का प्रयोग हो सकता है, पर प्रधानता हास्य की ही होती हे, अतः हास्यमिश्रित व्यंग्योक्तियाँ भी होती हैं अथवा सम्पूर्ण प्रहसन के हास्य में उनकी कटुता उपशमित हो जाती है । साथ ही यह भी हो सकता है कि प्रहसन में प्रत्यक्ष व्यंग्य का प्रयोग न हो, वह प्रहसन द्वारा ध्वनित होता है । प्रहसन द्वारा समाज पर व्यंग्य होते हुए भी वह व्यंग्य से अपने स्वरूप एवं शैली में स्पष्टतया भिन्न होता है । इसमें गंभीर उद्देश्यों की पूर्ति हल्के - फुल्के ढंग से सहज एवं संतुलित मानसिक स्थिति में होती है । व्यंग्यकार का मानस विकृति से आक्रांत भी हो उठता है, पर प्रहसनकार विकृति को संयम के साथ ग्रहण कर उसकी कलात्मक निर्मिति प्रहसन के रूप में करता है । हम यह भी कह सकते हैं कि प्रहसनकार विकृत यथार्थ का प्रस्तुतीकरण आदर्शवादी पद्धति से हल्के आवरण के साथ करता है, जबकि व्यंग्यकार अभिप्रेत आदर्शों की पुनर्स्थापना के लिए विकृत यथार्थ को नग्न रूप में प्रस्तुत करता है ।

प्रहसन का प्रभाव सार्वभौमिक होकर समाज के किसी वर्ग के चरित्र के अनुचित पक्ष को एक अनुकूल एवं उचित वातावरण की निर्मिति के साथ सामने रखता है । यह बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से सुधार के लिए प्रेरित करता है ।

व्यंग्य और पैरोडीः-

पैरोडी को पाश्चात्य विचारकों ने कामदी के सन्दर्भ में हास्य के प्रकार के रूप में विभाजित किया है । इस प्रकार जिस तरह व्यंग्य एवं हास्य का परस्पर सम्बंध मूलतः है, वैसे ही पैरोडी एवं हास्य (Humour) का सम्बन्ध भी मूलतः है । परन्तु साहित्यिक क्षेत्र में विशुद्ध निरूद्देश्य हास्य से इतर व्यंग्य की व्यापकता एवं उपादेयता अधिक होने से पैरोडी का सम्बन्ध भी मूलतः व्यंग्य से ही हो जाता है । " जब कवि का उद्देश्य विद्रूपिका के द्वारा हास्य की सृष्टि करना होता है तो वह रचना हास्य एवं मनोरंजन परक होती है और जब

किसी संकेतित दूरस्थ विसंगत अर्थ की प्रतीति करना उसका लक्ष्य होता है तो विद्रूपिका (पैरोडी) व्यंग्य - प्रधान होती है ।"[1]

पैरोडी को विद्रूषिका भी कहा जाता है । डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी के अनुसार- ' पैरोडी ' में किसी विशिष्ट शैली या लेखक की ऐसी हास्यास्पद अनुकृति होती है कि वह गंभीर भावों को परिहास में परिवर्तित कर देती है ।'[2] इसमें जब किसी भी प्रसिद्ध कृति की शैली की या शाब्दिक या भावों की अनुकृति किसी की खिल्ली उड़ाने के लिए, परिहास के लिए अथवा मूल कृतिकार का ही उपहास करने के लिए की जाती है, तो एक प्रकार की अनपेक्षित असंगति उत्पन्न होने से हास्योद्रेक भी होता है तथा किसी विकृति, दोष या विसंगति की तरफ सुधार के उद्देश्य से यदि इंगित है, तो व्यंग्य की चुटकी काटने का भाव भी जागृत होता है । इस प्रकार तात्कालिक प्रभाव में तो पैरोडी मूलतः हास्यपरक ही होती है और उसमें रचनाकार का परिहास - भाव मुखर रहता है, परन्तु उसका गहरा प्रभाव व्यंग्य की धार से युक्त होता है ।

पैरोडी का अर्थ विद्वानों ने अधिकतर साहित्यिक परिहास अथवा व्यंग्य के सन्दर्भ में ही किया है । डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी के शब्दों में " पैरोडी अनजाने में ही लेखक को यह बताती है कि उसकी शैली में क्या और कहाँ कमजोरी है । इस प्रकार वह उसकी शैली को Mannerism (कोरा कहने का ढंग) होने से बचाती है (यह साहित्यिक शिथिलता को नष्ट करने में एक नायक के रूप में काम में लायी जाती है ।"[3]

पैरोडी गद्य एवं पद्य दोनों में हो सकती है, परन्तु पद्य में ही यह अधिक उपयुक्त, प्रभावक एवं मनोरंजक होती है । जिस प्रकार प्रहसन गद्य में मनोरंजक, हास्यपूर्ण व्यंग्य की कलात्मक अभिव्यक्ति होता है, उसी प्रकार पैरोडी को पद्य की हास्यपूर्ण, मनोरंजक एवं व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है । पैरोडी में विषय भी महत्वपूर्ण होता है । यदि वह किसी साहित्यकार की शैलीगत या भावगत दोषों का उपहास करती है, तो वह साहित्यिक

---

1. आधुनिक व्यंग्य का श्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र - पृ0 - 5।
2. हिन्दी साहित्य में हास्य - रस - डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी - पृ0 - 23
3. हिन्दी साहित्य में हास्य - रस - डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी - पृ0 - 23

व्यंग्य का एक रूप होती है । पर यदि उसमें किसी सामजिक - सन्दर्भगत विसंगति या विकृति के प्रति व्यंग्य होता है, तो मूल रचनाकार के प्रति पैरोडी - लेखक की कोई व्यंग्य - दृष्टि नहीं होती । वह केवल रचना की प्रसिद्ध का हास्योद्रेकपूर्ण मनोरंजकता हेतु प्रयोग करता है । इस प्रकार पैरोडी का रचना - कौशल मौलिक न होकर अनुकृति पर आधारित होता है । उसका विषय सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, व्यक्तिगत, कुछ भी हो सकता है । यह भी हो सकता है कि किसी रचना की पैरोडी में मूल लेखक के प्रति भी उपहास - दृष्टि हो और उसके द्वारा समाज की विकृतियों को भी व्यंग्य का निशाना बनाया जाय । यह पैरोडी - लेखक की अपनी प्रतिभा एवं उद्देश्य पर निर्भर करता है ।

डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी के शब्दों में " अच्छी पैरोडी का सम्बन्ध उसकी मूल रचना से घनिष्टता में है । सबसे सरल पैरोडी शाब्दिक होती है, जो प्रसादगणपूर्ण अत्यन्त प्रसिद्ध कविता को लेकर एक दो शब्दों या पंक्तियों के परिवर्तन द्वारा की जाती है, जिससे भिन्न अर्थ मिले, परन्तु मूल का रूप नष्ट न हो । शैली की पैरोडी उच्चकोटि की होती है ।"[1]

पैरोडी व्यंग्य का एक सशक्त माध्यम या रूप माना जा सकता है । यदि पैरोडी को सामाजिक व्यंग्य की दृष्टि से अपनाया जाता है तो उसका उद्देश्य व्यंग्य को हल्के - फुल्के मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करना होता है, परन्तु यदि पैरोडी किसी कवि की रचना की खिल्ली उड़ाने के लिए प्रयुक्त की जाती है, तो उसका व्यंग्य एवं उपहास तीखा एवं कटुतापूर्ण हो सकता है, क्योंकि पैरोडी किसी व्यक्ति विशेष की रचना पर ही आधारित होती है और इस प्रकार उसका व्यंग्य साहित्यिक व्यंग्य की श्रेणी में आता हुआ भी व्यक्तिगत - स्तर का व्यंग्य बन जाता है । इसीलिए पैरोडी का उत्कृष्ट साहित्यिक रूप मूल रचनाकार के उपहास में नहीं माना जाना चाहिए । प्रायः पैरोडी प्रसिद्ध लेखक या कवि की प्रसिद्ध कविता या पंक्ति की ही होती है, क्योंकि इससे सभी परिचित होते हैं । अप्रसिद्ध कविता या पंक्ति की पैरोडी अपने रचना कौशल की मूल विशिष्टता अनुकरण (रचना - शैली के) का हास्यपूर्ण एवं मनोरंजक

---

1. हिन्दी साहित्य में हास्य - रस - डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी - पृ0 24

प्रभाव नहीं डाल सकती और किसी प्रसिद्ध कवि या लेखक की प्रसिद्ध रचना पर व्यंग्य, व्यंग्य के गंभीर उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता । परन्तु कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो पैरोडी के लिए मूल के प्रति उपहास आवश्यक मानते हैं । गिलबर्ट हाइट के अनुसार ' यदि कोई नकल (Copy) अपनी अनुकरण की शुद्धता द्वारा अपने श्रोता और पाठकों को प्रसन्न तो करता है पर मूल के प्रति उनके प्रशंसा - भाव को, उसकी किसी कमजोरी के द्वारा, जिसे पूर्व में न अनुभव किया गया हो, उद्वेलित किये बिना या उसके प्रति कोई अरूचि जगाये बिना वैसे ही छोड़ देता है , तो वह पैरोडी नहीं है, न ही वह व्यंगात्मक है ।'[1]

गिलबर्ट हाइट के कथन से यही अर्थ निकलता है किवे पैरोडी में व्यंग्य को आवश्यक तत्व स्वीकार करते हैं, साथ ही व्यंग्य मूल रचनाकार के प्रति ही होना चाहिए । परन्तु आज पैरोडी का प्रयोग व्यक्ति एवं समाज के जीवन की विसंगतियों पर प्रहार के लिए भी किया जाता है तथा मूल रचनाकार या उसकी रचना के किसी दोष की तरफ इंगित न करते हुए भी उसके द्वारा हास्यवोष्टित व्यंग्य किया जा सकता है । इसलिए उक्त कथन की सार्थकता पैरोडी को केवल साहित्यिक व्यंग्यों से सम्बद्ध करके ही सिद्ध की जा सकती है । साहित्यिक - व्यंग्य के सन्दर्भ में किसी साहित्यकार की विषयगत स्थापनाओं को बदले हुए परिवेश में दोषपूर्ण, असंगत या निरर्थक सिद्ध करने में भी पैरोडी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । पर मान्यताओं से मदभेद रहने पर भी साहित्यकार की सृजनात्मक - प्रतिभा के प्रति सम्मान एवं आदर पैरोडी में वर्तमान रह सकता है । अतः कहा जा सकता है कि पैरोडी की सफलता मूल - रचना की अनुकृति को व्यंग्य एवं परिहास के लिए कलापूर्ण एवं बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से घनिष्टता के साथ

---

1. ' If a copy amuses its hearers and readers and pleases them with the accuracy of its imitation, but leaves them quite unshaken in their admiration of the original, feeling no scorn for it and seeing no weakness they had not seen before, then it is no parody and it is no satirical.'

   - The Anatomy of satire - by Gilbert Highet P. - 68.

प्रस्तुत होकर भी पैरोडी एक मनोरंजक हास्य से युक्त हो उठती है, क्योंकि मूल की अनुकृति से इसमें स्वतः नाटकीयता की सृष्टि हो जाती है ।

व्यंग्य का स्वरूप - विवेचनः-

व्यंग्य सत्य पर पड़े हुए असत्य के आवरण को बेधने का अस्त्र है । दुहरी प्रणाली, कथनी और करनी का फर्क ही व्यंग्य को आमंत्रित करता है । दुहरी आडम्बरपूर्ण व्यवस्था जिसमें सत्य रूप आवृत्त रहता है, और असत्य रूप को सत्य बनाकर प्रस्तुत किया जाता है, कि विरूद्ध व्यंग्यकार अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति करता है । वह विकृतिपूर्ण व्यवस्थाओं की यथास्थिति के प्रति विद्रोह एवं क्रान्ति - चेतना से युक्त होता है । विकृतियों की प्रबल एवं भयंकर स्थितियों के प्रति व्यंग्य में घृणा - भाव की प्रधानता होती है । कहीं - कहीं विसंगतियों एवं विडम्बनाओं की व्यवस्था के बीच बेबस, असहाय मानव की पीड़ा के प्रति अपने करूणा भाव का प्रकटनभी व्यंग्यकार करता है । इस प्रकार व्यंग्य जहाँ प्रमुखतः घृणा, तिरस्कार, आलोचना, आक्रोश द्वारा संचालित होता है, वहीं व्यंग्यास्पद करूणा व सहानुभूति का पात्र भी हो उठता है, क्योंकि वह भी प्रचलित पद्धतियों की विकृतियों का नियतिबद्ध शिकार है । परन्तु जहाँ सम्पूर्ण विकृति का जिम्मेदार व्यंगास्पद (व्यक्ति या समाज) होता है, वहाँ मूलतः आक्रोश एवं घृणा भाव की ही प्रधानता होती है । व्यंग्यकर्ता के मन में जब व्यंग्य का उद्देश्य स्पष्ट रहता है (वह मानव - हित जिसमें अन्ततः व्यंगास्पद का हित भी सम्मिलित है) तो वहाँ व्यंग्य करूणा या सहानुभूति का रूप लिये हुए आता है । जब विकृति की तीव्रता व्यंग्यकर्ता को अतिरिक्त आक्रोश एवं क्रोध या घृणा से भर देती है, वहाँ प्रहार की तीव्रता में व्यंग्यकर्ता निर्मम हो उठता है और प्रत्यक्षतः व्यंग्यास्पद के प्रति उसकी कोई सहानुभूति लक्षित नहीं होती । वहाँ तो केवल घृणा या आक्रोश ही दिखाई पड़ता है । व्यंग्य में घृणा एवं आक्रोश का तीव्र आवेग परिस्थितियों में व्याप्त विकृतियों, अन्तर्विरोधो, विडम्बनाओं की गहरे में जड़ जमाये जटिल स्वरूप के कारण एक अनिवार्य तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में होता है । इस प्रकार व्यंग्य की आक्रोशपूर्ण तीव्रता एवं कटुता तथा करूणा एवं सहानुभूति - मिश्रित गंभीरता दोनों ही व्यंग्य की स्थिति - परिस्थिति के अनुकूल ही निर्धारित होते हैं । जितना

बड़ा और जिस श्रेणी का शत्रु होगा, उसे आहत एवं परास्त करने के लिए उतने ही बड़े तदनुकूल शस्त्र की आवश्यकता पड़ेगी । अपनी लेखनी से व्यंग्यकार ऐसे विविध प्रकार के व्यंग्यास्त्रों का निर्माण करता है, जो उसे सबसे अनुकूल और प्रभावी जान पड़ते हैं । प्यार भरी चपत से लेकर बेधक शस्त्रों तक का प्रयोग वह करता है । यह व्यंग्यकार की मानसिक - निर्मिति पर भी निर्भर करता है कि वह निर्मम प्रहार करेगा या संयत वार । व्यंग्यकार की विशिष्टता इसी में है कि वह आक्रोश की अभिव्यक्ति तो करे, पर स्वयं उससे इतना प्रभावित न हो जाय कि उसकी मानसिक स्थिति (क्रोध, घृणा, द्वेष, इत्यादि की स्थिति) उसके व्यंग्य को शालीनता से विमुख कर दें । व्यंग्यकार सर्वप्रथम स्वयं विकृतियों एवं विसंगतियों से आहत होता है, तभी वह व्यंग्य करने के लिए प्रस्तुत होता है । आज का विकसित व्यंग्य आहत करते हुए स्वयं व्यंग्यकर्ता के आहत होने की कथा भी कहता है । वह तमाम विकृतियों के बीच असहाय रूप से सिर पटकते हुए व्यक्ति के आत्म प्रलाप के रूप में भी सम्मुख आता है । ऐसे ही व्यंग्यों में करूणारहित निर्मम प्रहार मर्यादाओं का भी उल्लंघन करने लगता है । गाली जैसे शब्दों के प्रयोग, विकृत , अशोभन भाषा का प्रयोग इनकी विशिष्टता बन जाती है । ऐसे में व्यंग्यकार की दृष्टि अपने उद्देश्य से च्युत होकर प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति मात्र बन जाती है ।

व्यंग्य प्रभाव की दृष्टि से हल्का एवं गंभीर दोनों प्रकार का हो सकता है । गंभीर व्यंग्य जहाँ परिस्थितियों की जटिलता के वैचारिक - विश्लेषण से युक्त होता है, वहीं हल्का - फुल्का व्यंग्य तात्कालिक स्थितियों या व्यक्ति - विशेष के असंगत कार्य - व्यापार इत्यादि की प्रतिक्रिया को हास्योद्रेक के साथ व्यक्त करता है । व्यंग्य का शालीन विभाजन एवं फूहड़ व्यंग्य के रूप में भी किया जा सकता है । कुछ व्यंग्य तीव्रतम प्रहार में भी शालीनता से च्युत नहीं होते, प्रहार करते हुए भी निशाना संयम के साथ साधते हैं, पर कुछ व्यंग्य क्रोध एवं घृणा की उत्तेजना में फूहड़ता एवं अश्लीलता का आश्रय ले लेते हैं तथा बदजबानी एवं गाली का प्रयोग करते हैं । यद्यपि ऐसे व्यंग्य भी किन्हीं भयंकर विरूपताओं एवं विसंगतियों से उद्वेलित क्रोध, घृणा एवं खीझ का अनिवार्य परिणाम हो सकते हैं, पर साहित्य में ऐसे व्यंग्य को सर्वश्रेष्ठ नहीं माना जा सकता , यद्यपि वे व्यंग्य की चरम एवं तीव्रतम अभिव्यक्ति होते हैं । व्यंग्य में

भी एक साहित्यकार से जो संवेदना एवं बौद्धिकता, भावुकता एवं यथार्थ दोन के प्रति जागरूक होता है, ऐसा असंयत एवं अशोभन लेखन अपेक्षित नहीं है । आलोचनात्मकता एवं प्रहार, उद्देश्य या लक्ष्य की प्रेरणा, साहसिकता, सामाजिक - दृष्टिकोण, उपहास की प्रवृत्ति, बौद्धिकता , अतिशयता, अपकर्ष या विदग्धता व्यंग्य के प्रमुख तत्व है । व्यंग्य की अभिव्यक्ति में लक्ष्य का ताप निहत रहता है । मलय के शब्दों में " लक्ष्य के ताप से सम्बन्धित मुख्य वस्तु यही है कि अपने अभिप्राय को पूर्ण करने के लिए मूर्खता की खिल्ली उड़ाना और दोषों को कड़वी घृणा का पात्र बनाना उचित है ।"[1] उद्देश्य की प्रबल प्रेरणा ही व्यंग्यकार को व्यंग्य के कटु - तिक्त रूपों की तीव्रतम स्थिति तक ले जाती है ।

व्यंग्य का एक प्रमुख तत्व आलोचनात्मक दृष्टि एवं प्रहार की प्रवृत्ति है । विशुद्ध व्यंग्य इस तत्व से अधिक युक्त होता है । इस प्रहार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही रूप व्यंग्य में प्रयुक्त हो सकते हैं । व्यंग्य में सामाजिक भावना निहित होती है । उसका सामाजिक अभिप्राय एवं दृष्टिकोण होता है । विकृति के प्रति सामाजिक जागरूकता लाने का कार्य व्यंग्य द्वारा सम्पन्न होता है एवं नव निर्माण की स्फूर्तिदायक प्रेरणा लोगों में जगाई जाती है ।

साहसिकता व्यंग्य के मूल में निहित है । जड़े जमाये हुए प्रबल विकृतियों एवं विरूपताओं की पोल खोल उन्हें नग्न रूप में सबके सम्मुख प्रस्तुत कर देना व्यंग्य में साहसिकता द्वारा ही सम्पन्न होता है ।

उपहास की प्रवृत्ति व्यंग्य का अनिवार्य तत्व है । तिक्त परिहास भी उपहास की ही श्रेणी में आता है । व्यंग्यकार विकृतियों के प्रति उपहासात्मकता एवं तीखे परिहास से युक्त होकर व्यंग्य को प्रभावक ढंग से व्यक्त करता है ।

व्यंग्य में बौद्धिकता का योग भी आवश्यक है पर यह बौद्धिकता शुष्क न होकर कल्पना के वैचित्र्य से युक्त होती है । इसी से व्यंग्यकार विकृतियों पर विदग्धता पूर्वक एवं

---

1. व्यंग्य का सौंदर्य शास्त्र - मलय - पृ0 - 68

कलात्मकता से युक्त प्रहार कर पाने में सक्षम होता है ।

अतिशयोक्ति भी व्यंग्य का एक महत्वपूर्ण तत्व होता है । वक्रोक्ति , विदग्धता, प्रतीकात्मकता इत्यादि के रूप में व्यंग्य में अतिशयता की परिव्याप्ति मिलती है । परन्तु यह तत्व व्यंग्य का अनिवार्य तत्व नहीं है । वाग्वैदग्ध्य एवं सांकेतिकता भी व्यंग्य के लिए महत्वपूर्ण तत्व है । इनका प्रयोग विरोधाभाष एवं श्लेष , प्रतीक, अन्योक्ति आदि के द्वारा लक्षित किया जा सकता है ।

व्यंग्य के सभी तत्व एक साथ या अलग - अलग भी विभिन्न व्यंग्य - रूपों में आ सकते हैं । आलोचनात्मक दृष्टि बौद्धिकता की अपेक्षा रखती है, प्रहार में साहसिकता का दर्शन हो जाता है । सामाजिकता की भावना व्यंग्य के लक्ष्य या उद्देश्य के साथ सम्बद्ध होती है । सांकेतिकता की प्रवृत्ति व्यंग्य में आवरण के पीछे से प्रहार करने की सुविधा प्रदान करती है । परन्तु व्यंग्य के ये सभी तत्व तभी व्यंग्य रूप में क्रियाशील हो सकते हैं, जब परिस्थिति या स्थिति में विकृति या विसंगति का अस्तित्व हो और वे अन्तर्विरोध एवं विरोधाभाष के साथ प्रकट या आभाषित हो । व्यंग्य की भाषा में व्यंजना एवं लाक्षणिकता अधिक होती है । व्यंग्यकार में विसंगतियों को पहचान के लिए जागरूक बौद्धिकता एवं प्रखर संवेदना भी आवश्यक है । उपहास - वृत्ति प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न रूप से व्यंग्य में अवश्य ही निहित होती है, क्योंकि उपहास - दृष्टि के बिना आलोचना व्यंग्य नहीं बन सकती और न प्रहार ही साहित्यिक रूप ले सकता है ।

व्यंग्य के विविध घटकः-

व्यंग्य के मूल में व्यंग्यकर्ता का आक्रोश एवं विद्रोह ही होता है, जो अनुचित स्थितियों या किसी विकृति के प्रति उसकी प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होता है । इसमें आलोचना या प्रहार, संकेतात्मक या यथार्थ की विसंगतियों के उद्घाटन के रूप में व्यंग्यकार की सही स्थितियों की पुनर्स्थापना की प्रच्छन्न महती प्रेरणा से युक्त अनुचित यथास्थिति के प्रति एक विद्रोह के रूप में होता है । अपने काव्य या अन्य विधाओं में व्यंग्यकार, जब व्यंग्य का प्रयोग

करता है, तो उसमें भिन्न - भिन्न घटक एक साथ या अलग - अलग काम करते हैं । कवि व्यंग्य के लिए अन्योक्ति, प्रतीक , श्लेष, ब्याज - स्तुति, ब्याज निंदा, वक्रोक्ति या वाग्वैदग्ध्य का प्रयोग करता है । व्यंग्य के लिए जब जहाँ जो माध्यम उपयुक्त एवं समर्थ होता है, लेखक उसका इस्तेमाल करता है । प्राय: व्यंग्य के आवेश में ये घटक स्वाभाविक रूप से लेखक की साहित्यिक - प्रतिभा एवं बौद्धिक क्षमता के अनुरूप लेखन में प्रकट हो जाते हैं ।

अन्योक्ति: -

व्यंग्य के लिए अन्योक्ति का प्रयोग बहुत प्राचीन पद्धति है । व्यंग्य की मूल परिभाषा ही अन्योक्ति के निकट है । व्यंग्यकर्ता का कथन व्यंगास्पद के प्रति सीधा न होकर किसी दूसरे कथन के रूप में होता है । व्यंग्य का प्रस्तुत पक्ष कोई और होता है, पर जिसके विषय में लेखक कहना चाहता है वह कोई और (व्यंगास्पद) ही होता है । इस प्रकार प्रस्तुत अर्थ से अभिप्रेत अर्थ भिन्न होता है । अन्योक्ति में प्रतीकात्मकता एवं सांकेतिकता होती है ।

संस्कृत काव्य - शास्त्र में सर्वप्रथम अन्योक्ति का प्रयोग नवम शताब्दी में रूद्रट ने एक स्वतंत्र अलंकार के रूप में अपने काव्यालंकार में किया है । इनके अनुसार " जहाँ उक्त उपमान से विशेषणों के असमान होने पर भी समानवृत्त (क्रिया) वाला उपमेय गम्य होता है, वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है ।"[1]

वस्तुत: यदि हम अन्योक्ति को व्यापक अर्थों में लें तो यह प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अर्थ देने वाली ' ध्वनि ' के रूप में प्रकट होता है । यह ध्वनित या व्यंग्य अर्थ ही आधुनिक व्यंग्य (Satire) के लिए अत्यधिक उपयुक्त सिद्ध होता है । अन्योक्ति पद्धति के ही अन्तर्गत प्रतीक एवं संकेत भी आते हैं । व्यंग्य के क्षेत्र में अन्योक्ति अलंकार के रूप में नहीं, ध्वनि, प्रतीकात्मक एवं संकेतात्मक अर्थ - द्योतन के लिए प्रयुक्त होते हैं । " जब प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का अभेदारोप हो और प्रस्तुत स्वयं निगीर्ण रहे, तब अप्रस्तुत ही प्रस्तुत का स्थानापन्न बनकर

---

1. काव्यालंकार - रूद्रट - अष्टमोध्याय: - व्याख्याकार - रामदेव शुक्ल; पृ0 - 285

प्रतीक का काम देता है ।"[1] अतः अन्योक्ति द्वारा जब व्यंग्य किया जाता है, उमें प्रतीकात्मकता एवं सांकेतिकता का समावेश हो जाता है । व्यंग्य के लिए अन्योक्ति का प्रयोग अलंकार रूप में कम, अलंकार्य रूप में अधिक होता है । " अलंकार्य रूप प्राप्त करने में इसके सिर पर आनन्द वर्धन का वरद हस्त रहा है । अलंकार्य रूप में यह ध्वनि के अन्तर्गत होती है ।"[2]

व्यंग्य (Satire) की प्राचीन पद्धति अन्योक्ति - पद्धति है, जो आधुनिक व्यंग्य के लिए भी उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी पूर्व में थी । व्यंग्यकार कवि की प्रतिभा अन्योक्ति के अधिकाधिक चमत्कारिक अर्थ - युक्त व्यंग्य के प्रकटीकरण में निहित होती है । अतः अन्योक्ति को व्यंग्य में एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में देखा जा सकता है । इसके (अन्योक्ति के) महत्व को निम्न कथन से भलीभाँति समझा जा सकता है, जो व्यंग्य के लिए एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रकट है -----

" अन्योक्ति अभिव्यंजमान एक ही अर्थ बताकर वहीं समाप्त हो जाती हो, यह बात नहीं । ध्वनि के ' अनुरजन ' की तरह इसकी चोट भी लम्बी और गहरी होती है, जो व्यंग्य - परम्परा के साथ - साथ भाव जगत को आन्दोलित करती हुयी चली जाती है । अन्योक्ति को एक तरह से आधुनिक आणविक अस्त्र समझिये ।"[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यंग्य के अन्तर्गत अन्योक्ति किस प्रकार दूर तक गहरी मार करने में समर्थ होती है । लम्बी कविताओं में अन्योक्ति का प्रयोग काफी दूर तक व्यंगात्मक उद्घाटन के लिए किया जा सकता है । अन्योक्ति व्यंग्य के लिए एक आवरण या आड़ का काम करता है ।

---

1. हिन्दी - काव्य में अन्योक्ति - डॉ0 संसार चन्द्र - पृ0 - 81
2. हिन्दी - काव्य में अन्योक्ति - डॉ0 संसार चन्द्र - पृ0 - 90
3. हिन्दी काव्य में अन्योक्ति - डॉ0 संसार चन्द्र - पृ0 - 27

प्रतीक:-

व्यंग्य का एक प्रमुख तत्व उसकी सांकेतिकता है । प्रतीक इस सांकेतिकता के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है । साहित्य में प्रतीक वह वस्तु या चिह्न होता है, जो लेखक के अभिप्रेत मूल वस्तु या विषम का परिचायक होता है । " किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है । अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है ।"[1] प्रतीक और अन्योक्ति का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध भी है । अन्योक्ति के लिए ही प्रतीक का प्रयोग होता है, विशेषकर व्यंग्य के क्षेत्र में । इस प्रकार व्यंग्य में अन्योक्ति पद्धति के रूप में और प्रतीक उसके माध्यम एवं उपकरण के रूप में प्रयुक्त होता है । प्रतीक में संकेतात्मकता होती है, पर वह प्रतीक से भिन्न स्वतंत्र रूप से भी व्यंग्य में निहित होती है यह संकेतात्मकता वाक्यों द्वारा या पूरी कविता द्वारा या किसी प्रसंग - विशेष द्वारा भी आ सकती है । उसमें प्रतीकों का प्रयोग किया ही जाय, यह आवश्यक नहीं है, लेकिन प्रतीकों का प्रयोग व्यंग्य में बड़े मारक ढंग से, बात को अप्रत्यक्ष ढंग से प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है । प्रतीकों का निर्माण व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक साहित्यकार भिन्न - भिन्न रूप में कर सकता है । कुछ प्रतीक प्रयुक्त होते - होते उसी अर्थ के लिए रूढ़ हो जाते हैं और अवस्था में वे काव्य में अलंकरण का कार्य भी करते हैं और प्रायः सामान्य भाषा की तरह प्रयुक्त होते हैं । प्रतीकों के प्रयोग से व्यंग्य की भाषा अधिक अर्थपूर्ण, संश्लिष्ट एवं सघन - प्रभाव - युक्त हो जाती है ।

हिन्दी काव्य में प्रतीकों के माध्यम से व्यंग्य बड़े प्रभावशाली ढंग से किये गये हैं । आधुनिक कवियों ने इसका प्रयोग व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए बहुतायत से किया है । निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तथा अन्य सभी महत्वपूर्ण नये कवियों में प्रतीकों के माध्यम से सार्थक एवं तीखी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति रही है ।निराला की

---

1. हिन्दी - साहित्यकोश - भाग - 1, द्वितीय संस्करण - प्रधान संपादक - धीरेन्द्र वर्मा - पृ0 - 398

' अबे सुन बे गुलाब ' नामक कविता प्रतीकात्मक व्यंग्य का एक अच्छा उदाहरण है । प्रतीकों के द्वारा जब व्यंग्य किया जाता है तो कविता एक तरफ तो अलंकृत हो उठती है, दूसरी ओर व्यंग्यकार के उद्देश्य (आलोचना, प्रहार एवं सजा देना) की भी पूर्ति होती है । परन्तु ये प्रतीक जब व्यंग्यकार के कत्थ्य के सार्थक वाहक होते हैं, तभी प्रभावशाली होते हैं । इन्हें ही साध्य मानकर सप्रयास प्रतीकों का प्रयोग कर चमत्कृत करने की भावना व्यंग्यकार के लिए उपयुक्त नहीं होती । भाव - सम्प्रेषण के प्रवाह में स्वाभाविक - रूप से जिन प्रतीकों की निर्मिति होती है, वे ही व्यंग्य को अनूठी अर्थवक्ता एवं सौंदर्य प्रदान करते हुए व्यंग्यकार के उद्देश्यों की सही ढंग से पूर्ति करने में समर्थ होते हैं । रूढ़ प्रतीकों के स्थान पर नये अर्थों के वाहक कवि के व्यक्तिगत प्रतीक व्यंग्य के लिए भी अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार " प्रतीकों का वस्तुपरक रूप भाषा होती है । सामान्य भाषा से जो कुछ भी बोध होता है, उससे भी अधिक महत्व व्यक्तिगत प्रतीक का होता है । अनुभूति की भाषा सदैव व्यक्तिगत भाषा होती है । "[1] व्यंग्य में साहित्यकार अपने क्रोध, घृणा, उपेक्षा एवं विक्षोभ को व्यक्त करने के लिए इनके उपयुक्त प्रतीकों का निर्माण व्यक्तिगत स्तर भी पर करता है । प्रचलित प्रतीकों का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है । कभी - कभी प्रचलित प्रतीकों को कवि नये सन्दर्भों में प्रयुक्त कर नये अर्थ - बोध से युक्त कर देता है । अतः कहा जा सकता है कि प्रतीक व्यंग्य का एक महत्वपूर्ण घटक है ।

श्लेष:-

काव्य में श्लेष संश्लिष्ट अर्थ का द्योतक है । व्यंग्य के लिए यह संश्लिष्ट अर्थ - बोध की क्षमता शब्दों में एवं भाषा में एक महत्वपूर्ण गुण है, जो व्यंग्य की शक्ति को बढ़ाने के साथ ही साथ भाषा के सौंदर्य में भी वृद्धि करता है । संस्कृत के प्राचीन साहित्याचार्यों ने श्लेष की गणना अलंकारों में की है, जो आज भी काव्य के सन्दर्भ में मान्य है तथा कविता को अलंकृत करने के लिए प्रयुक्त होता है । श्री रूद्रट ने अपने ' काव्यालंकार ' में श्लेष की

---

1. नये प्रतिमान, पुराने निकष - लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ0 - 232

उसके भेदों के साथ विवेचना की है । इसके भेदों में अर्थश्लेष, वक्र - श्लेष एवं व्याज श्लेष व्यंग्य के लिए अधिक अनुकूल है । रूद्रट ने अर्थ श्लेष की परिभाषा इस प्रकार की है " जहाँ अनेकार्थक पदों के द्वारा रचा गया एक वाक्य अनेक अर्थो की प्रतीति कराता है, उसे अर्थ - श्लेष जानना चाहिए ।"[1]

श्लेष का शब्दालंकार के रूप में द्विअर्थक प्रयोग बिहारी में खूब मिलता है । शब्दों एवं वाक्यों के अनेकार्थी प्रयोग से व्यंग्य परोक्ष ढंग से बड़ी चतुराई के साथ, स्वयं का बचाव करते हुए, किया जाता है । श्लिष्ट शब्दों, वाक्यों के प्रयोग व्यंग्य की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता की द्योतक होती है । रूद्रट ने ब्याज श्लेष का प्रयोग व्याज - स्तुति वाले अर्थ में किया है । इस अर्थ में भी श्लेष का प्रयोग शब्दगत न होकर पूरे वाक्य या कई वाक्यों के सन्दर्भ में किया गया है । रूद्रट के अनुसार " जिस वाक्य में विवक्षित स्तुति से प्रासंगिक निंदा अथवा विवक्षित निंदा से प्रासंगिक स्तुति की प्रतीति होती है , उसमें ब्याज श्लेष अलंकार होता है । "[2] व्यंग्य के सन्दर्भ में द्विअर्थी या अनेकार्थी वाक्यों के रूप में श्लिष्ट प्रयोग चमत्कारपूर्ण ढंग से, व्यंगास्पद को भ्रमित करते हुए, विकृतियों या दोषों पर बड़ी प्रच्छन्न लेकिन गहरी चोट करते हैं । यह शिष्ट एवं संयत व्यंग्यकार का एक प्रमुख उपकरण होता है । इसका प्रयोग व्यंग्य में प्रायः शाब्दिक रूप में किसी विशिष्ट संकेत या प्रसंग को लाने हेतु किया जाता है । इसका चमत्कारपूर्ण प्रयोग व्यंग्य में हास्योद्रेक एवं आकस्मिक चमत्कृति उत्पन्न कर व्यंग्य की कठोरता का भी कुछ परिहार करता है ।

व्याज - निन्दा, व्याज - स्तुतिः-

साहित्य स्तुति के द्वारा निंदा , आलोचना एवं प्रहार तथा कभी - कभी स्तुत्य की निंदा द्वारा निंद्य के प्रति व्यंग्य या उसका उपहास किया जाता है इसे ही व्याज स्तुति तथा व्याज - निंदा कहा जाता है । व्याज - स्तुति को भी संस्कृत साहित्याचार्यो ने अलंकार के रूप में

---

1. काव्यालंकार - रूद्रट, दशमोध्यायः - व्याख्याकार - श्री रामदेव शुक्ल, पृ0 - 327
2. काव्यालंकार - रूद्रटाचार्य, दशमोध्यायः, पृ0 - 333
   व्याख्याकार - श्री रामदेव शुक्ल

माना है । व्यंग्य में यह उसकी एक शैली बन जाती है । आचार्य मम्मट ने व्याज - स्तुति के विषय में लिखा है ' तद्रूपकमभेदो निंदा स्तुतिवो रूढिरन्यथा ' अर्थात ' प्रारम्भ में निंदा अथवा स्तुति मालूम होती है, परन्तु उससे भिन्न (अर्थात् दीखने वाली निंदा का स्तुति में अथवा स्तुति का निंदा में)। पर्यवसान होने से व्याज - स्तुति (अलंकार) होता है ।"[1] हिन्दी - साहित्य - कोश में व्याज - स्तुति के विषय में विवरण इस प्रकार है -----

" इस अलंकार में किसी वस्तु की प्रारम्भ में निंदा या स्तुति और अन्ततः स्तुति या निंदा की प्रतीति होती है ।"[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन आचार्यों में व्याज - स्तुति के द्वारा निंदा या व्यंग्य कथन के लिए ही इस अलंकार को अधिक उपयोगी पाया था । आज भी व्यंग्य के लिए व्यंग्यकार स्तुति करने का नाट्य - सा करता हुआ व्यंगास्पद को मूर्ख बनाकर उसपर व्यंग्य करता है । व्याज - निंदा भी व्याज - स्तुति अलंकार से ही सम्बद्ध होता है तथा उसके ठीक विपरीत इसमें निंदा द्वारा प्रसंशा की जाती है । स्पष्टतः व्यंग्यास्पद के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता, परन्तु किसी स्तुत्य की या स्वयं की या किसी अन्य की निंदा द्वारा लेखक चातुर्यपूर्ण ढंग से संकेत एवं वक्रोक्ति का प्रयोग करते हुए व्यंग्यास्पद के ऊपर प्रहार कर सकता है । व्यंग्य के लिए व्याज - स्तुति एवं व्याज - निंदा दोनों ही अनूठे एवं महत्वपूर्ण उपादान हैं । अपनी मूल प्रकृति में ही यह अलंकार व्यंग्य के निकट है । व्यंग्यकार स्तुति एवं निंदा दोनों का प्रयोग व्यंग्य के लिए कर बड़े शालीन परन्तु तिलमिला देने वाले व्यंग्य की सृष्टि करता है । वस्तुतः अन्योक्ति, प्रतीक, श्लेष एवं व्याज - स्तुति, व्याज - निंदा ये ही प्रमुख अलंकार - रूप भाषा के वे अंग है, जो व्यंग्य को गहरा, प्रच्छन्न, अर्थगर्भित एवं सौंदर्ययुक्त करके उसे विशेष मारक बनाते हैं । उपरोक्त घटकों के अतिरिक्त वक्रोक्ति, एवं वागवैदग्ध्य भी व्यंग्य के अत्यधिक महत्वपूर्ण घटक है । इनको पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों ने हास्य के एक भेद के रूप में रखा है । प्रतीक, श्लेष, अन्योक्ति, व्याज - स्तुति आदि के द्वारा व्यंग्य अधिक प्रभावी एवं संयत रूप, को कलात्मकता के साथ प्राप्त करते हैं ।

---

1. काव्य - प्रकाश - मम्मटाचार्य, सूत्र - 168, पृ0 - 505
   (प्रारम्भिक पृष्ठ फटे होने से व्याख्याकार एवं संस्करण अनुपलब्ध)
2. हिन्दी - साहित्य कोश - प्रधान संपादक - धीरेन्द्र वर्मा - पृ0 - 750

व्यंग्य का मूल अभिप्राय ही वह है, जो कुछ कहना है, उसे सीधा न कहकर घुमाफिराकर या किसी ओर से अप्रत्यक्ष ढंग से कहा जाय । इससे व्यंग्यास्पद अन्दर ही अन्दर चोट से आहत होता है, पर प्रगट रूप में वह कुछ कह नहीं पाता ।

वक्रोक्तिः -

वक्रोक्ति की संस्कृत साहित्याचार्यों ने शब्दालंकार के रूप में प्राचीन काल से ही पहचान की है । भामह ने अतिशयोक्ति को सभी अलंकारों में व्याप्त माना है तथा इसी अर्थ में समस्त अलंकारों में वक्रोक्ति की स्थिति स्वीकृत की है ।[1] वे वक्रोक्तिहीन उक्ति को वार्ता कहते हैं ।[2] उन्होंने इसके श्लेष वक्रोक्ति तथा काकु वक्रोक्ति दो भेद माने हैं । श्लेष वक्रोक्ति में उत्तरदाता व्यक्ति वक्ता के अन्यथा कथित शब्दों का पद भंग. कर अन्यथा अर्थ लगाता है और काकु वक्रोक्ति में वक्ता के स्वर विशेष के कारण अन्य अर्थ लगा लेता है । इन्हीं अर्थों के अनुसार वह वक्ता को उत्तर देता है । इसमें वक्ता के अर्थों का जानबूझकर दूसरा अर्थ लगाकर विचित्र उत्तर दिया जाता है । कुन्तक ने वक्रोक्ति को ही एक मात्र अलंकार माना है। इन्होंने काव्य को ही ' वक्रोक्ति जीवित माना है । कुंतक की वक्रोक्ति की धारणा भामह की वक्रोक्ति की सभी अलंकारों में अतिशयोक्ति रूप में व्याप्ति से ही उद्‌भूत है । कुन्तक ने वक्रोक्ति को इतने व्यापक अर्थों में लिया कि वह शब्द अर्थ, सभी को समाहित करती हुयी काव्य की आत्मा ही बन गयी । वक्रोक्ति के सम्बन्ध में कुन्तक का दृष्टिकोण उनके स्वयं के उत्तर में निहित है - जो है ' साधारण प्रतिपादन से भिन्न (अन्य) विचित्र ही प्रतिपादन शैली ।[3] स्पष्टतः ही यह विचित्र प्रतिपादन - शैली व्यंग्याभिव्यक्ति की भी एक महत्वपूर्ण

---

1. काव्यालंकार - आचार्य भामह - श्लोक - 85 - पृ0 - 62
2. काव्यालंकार - आचार्य भामह - श्लोक - 87 - पृ0 - 63
3. कासौ - वक्रोक्तिरेव । वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधान व्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा । - वक्रोक्ति जीवितम् - कुन्तक - 1/10 - व्याख्याकार - श्री राधेश्याम मिश्र - पृ0 - 46

शैली है । कुन्तक ने वक्रोक्ति को अपरिमित महत्व प्रदान किया ' परन्तु क्रमशः इसका महत्व कम होता गया और रूद्रट ने ' काव्यालंकार ' में इसे शब्दालंकार के रूप मे स्वीकार किया है और इसके श्लेष तथा काकु को भेद भी माने हैं । मम्मट ने इसे स्वीकार किया है -----
' यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते । श्लेषेण काक्का वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा ।'[1]

हिन्दी साहित्य में वक्रोक्ति को अँग्रेजी शब्द आइरनी (Irony) का पर्याय माना गया है । इसके लिए विडम्बना शब्द का भी प्रयोग होता है । डॉ0 वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता विडम्बना शब्द को ही अधिक उपयुक्त मानते हैं । मलय भी अपनी पुस्तक ' व्यंग्य का सौंदर्य - शास्त्र ' में इनका समर्थ करते हुए विडम्बना शब्द को ही आयरनी का पर्याय स्वीकार करते हैं । डॉ0 इन्द्रनाथ मदान इसे ' आयरनी ' ही कहते हैं । डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार -----
" आयरनी व्यंग्य का विकसित रूप है या नया रूप है, जिसका सम्बन्ध परिष्कृत व्यंग्य से है, जो बौद्धिक विकास का परिणाम है । इसे विडम्बना के बजाय आयरनी कहना बेहतर जान पड़ता ----- आयरनी में मूल बोध छिपाव का है या उस अन्तर का है, जो कहने और होने में हैं । शाब्दिक आयरनी एक ऐसा कथन है जिसके मायने उससे भिन्न होते है, जिसे कहा जाता है । इसकी तलाश शायद लक्षणा - व्यंजना में की जा सकती है । ----- लेखक जब आयरनी का उपयोग करता है तो वह अपने पाठकों को समझदार मानता है ।"[2]

आइरनी के पर्यायवाची के रूप में जिस ' वक्रोक्ति ' का प्रयोग साहित्य में हास्य - व्यंग्य के सन्दर्भ में होता है, वह संस्कृत - साहित्य - शास्त्र की वक्रोक्ति से विशिष्ट भिन्न अर्थ है, लेकिन उसका सम्बन्ध प्राचीन वक्रोक्ति की अवधारणा से अवश्य है । वक्रोक्ति में भी बात को सीधे न कहकर वक्रीकृत उक्ति के द्वारा कहा जाता है और आइरनी में भी कवि का मन्तव्य वस्तुतः वह नहीं होता है जो वह प्रकट करता है । इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में वक्रोक्ति या विडम्बना की परिभाषा इस रूप में दी गयी है कि ' वक्रोक्ति - कथन का एक प्रकार, जिसमें वास्तविक अर्थ छिपा रहता है अथवा प्रयुक्त शब्दों से उसका अन्तर्विरोध

---

1. हिन्दी - साहित्य कोश - द्वितीय संस्करण; प्रधान संपादक - धीरेन्द्र वर्मा,पृ0-775
2. हिन्दी की हास्य - व्यंग्य विधा का स्वरूप और विकास - डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0 - 3

रहता है ।"[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वक्रोक्ति में शब्दों एवं भाषा का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि उसका कवि के अभिप्रेत अर्थ से अन्तर्विरोध होता है । इस प्रकार वक्रोक्ति या विडम्बना द्वारा विरोधाभाषपूर्ण स्थितियों का सृजन करके कवि व्यंगास्पद स्थिति को बड़ी सांकेतिक पद्धति से नग्न करता है या उस पर प्रच्छन्न प्रहार करता है । विडम्बनाकार स्वयं मुखौटा पहनकर व्यंग्यास्पद को भ्रमित करता हुआ उसके प्रति व्यंग्य करता है । वह असत्य को सत्य के रूप में प्रस्तुत करता है, परन्तु इस ढंग से कि व्यंग्यास्पद एवं श्रोता एक दुविधापूर्ण मनः स्थिति में व्यंग्यकर्ता के वास्तविक मन्तव्य को समझ लेते हैं । गिलबर्ट हाइट के अनुसार 'व्यंग्यकार अतिशयोक्ति एवं झूठ को स्वयं समझते हुए भी उसे सत्य के रूप में उद्घोषित करता है, जिसे सुनकर विज्ञजन सोचते हैं कि सत्य नहीं हो सकता । संभवतः उसका अभिप्राय ऐसा नहीं हो सकता । वे जानते है कि जो कहता है उसका मतलब उसका ठीक उल्टा होता है ।'[2]

विडम्बना या आयरनी प्रबुद्ध व्यंग्य का वह महत्वपूर्ण घटक है । इसमें व्यंग्यकार समाज या व्यक्ति की छलनाओं पर व्यंग्य करने के लिए स्वयं भी छलना का आश्रय अपनी

---

1. ' Irony aform of speech in which the real meaning is concealed or contradicted by the words used. ' Volume - 12 P.

2. ' The voice speaks a grass exaggeration or a falsehood, hnowing it to be exagerated or false, but announcing it as serious truth. Listening to it, intelligent men think, " That can not be true. He can not possibly mean that " The realize that he means the reverse of what he says.' - The Anatomy of satire, by - Gilbert Highet - Page - 55.

रचना में लेता है । यथार्थ में निहित व्यंग्यों का उद्‌घाटन करने के लिए वह उन्हें इस प्रकार व्यक्त करता है, जैसे कि वह उसकी विरोधाभास एवं अन्तर्विरोधी स्थितियों के प्रति निस्पृह है । आधुनिक व्यंग्य में विडम्बना के उद्‌घाटन द्वारा व्यंग्य करने की पद्धति आज के जटिल परिवेश की विसंगतियों के सन्दर्भ में सर्वाधिक उपयुक्त, प्रचलित एवं गहरे स्तर पर उद्वेलित करने वाली है । विडम्बना में व्यंग्यकार का यथास्थिति के प्रति दिखावे का स्वीकार भाव होता है, और उसे इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि उसके प्रति कवि का व्यंग्य भाव स्वतः उद्‌घटित हो उठता है । जो हो रहा है और जो होना चाहिए, इनको व्यंग्यकार इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि विडम्डना का व्यंग्य स्वतः उद्‌भूत हो उठता है, जबकि व्यंग्यकार उसे इस दिखावे के साथ प्रस्तुत करता है कि उसके प्रति स्वंग्यकार का अस्वीकार भाव नहीं है । इस प्रकार भ्रमित करते हुए व्यंग्य करना विडम्बना की प्रमुख विशेषता है । झूठी विनम्रता व्यंग्यकार की खास मुद्रा होती है । इस दृष्टि से यह व्याज - स्तुति से मिलता - जुलता है । पर व्याज - स्तुति मं निंद्य वर्ग के किसी प्रतिनिधि को ही अधिकतर लक्ष्य बनाया जाता है, विडम्बना या वक्रोक्ति का व्यंग्य सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक किसी भी क्षेत्र में व्याप्त विसंगति को उसके प्रकट रूप के साथ प्रस्तुत करके काम्य रूप के अभाव को भी संकेतित कर देता है । पर वह अपनी अन्तर्निहित भावों का प्रकटीकरण न कर उन्हें छिपाता हुआ विसंगतियों का चित्रण करता है । अतः आधुनिक व्यंग्य में विडम्बना के इसी विकसित सामाजिक - संदर्भयुक्त रूप के व्यंग्य के दर्शन होते हैं । वक्रोक्ति (Irony) का प्रयोग व्यंग्योत्पादक हो भी सकता है और नहीं भी । यदि परिस्थितियाँ, जिनके प्रति कवि ' आयरनी ' का उपयोग कर रहा है, विकृतियों, अन्तर्विरोधों एवं विसंगतियों से पूर्ण हैं, तो ' आयरनी ' द्वारा व्यंग्य बड़े प्रभावशाली ढंग से कार्य करेगा, परन्तु यदि सामान्य प्रकरणों में इसका प्रयोग हो तो इससे एक चतम्कार - पूर्ण अर्थ - बोध ही होगा, और केवल हास्य का उद्रेक ही होगा । वक्रोक्ति का व्यंग्य के लिए प्रयोग व्यंग्यकार सत्यदृष्टा की प्रबुद्ध उच्च मानसिक स्थिति में पहुँचकर करता है, जबकि उसमें इतना धैर्य एवं गंभीरता उत्पन्न होती है कि वह विकृति को स्वीकार करने की छलना या प्रपंच कर सके ।

वाग्वैदग्ध्य (Wit):-

वाग्वैदग्ध्य को अँग्रेजी में ' विट ' (Wit) कहते हैं । यह व्यंग्य को चमत्कारिक प्रभाव से युक्त कर उसमें एक अनूठे सौंदर्य की चमक पैदा कर देता है । डॉ0 सभापति मिश्र के शब्दों में " वाग्वैदग्ध्य शब्दों का वह समुच्चय है, जो पाठकों को आनन्दित करता है । इसके कथन में आश्चर्य चकित करने वाले भावों की प्रधानता होती है ।"[1]

मराठी विद्वान नृसिंह चिन्तामणि केलकर ने वाग्वैदग्ध्य को चोज् कहा है । नृसिंह चिन्तामणि केलकर ने शाब्दिक वैदग्ध्य एवं रसात्मक वैदग्ध्य के रूप में इसकी विवेचना करते हुए रसात्मक वाग्वैदग्ध्य को श्रेष्ठ एवं अधिक प्रतिभा सम्पन्न माना है । उनके अनुसार शाब्दिक वाग्वैदग्ध्य का प्रयोग करना आसान होता है - " केवल शब्दों पर आधारित चोज् कहने की बुद्धि का बीज प्रायः सभी मनुष्यों के मस्तिष्क में वर्तमान रहता है । विचार, तर्क, परिचय और विवेक यह बीज विशेष अंकुरित नहीं होने देते ।"[2]

वाग्वैदग्ध्य व्यंग्यकार की विशिष्ट प्रतिभा का परिचायक होता है । इसी से इसे सहजोत्पन्न प्रतिभा भी कहा जा सकता है , क्योंकि यह सायास नहीं सहज रूप में अनायास ही रचना के बीच प्रकट हो जाता है । नृसिंह चिन्तामणि केलकर के अनुसार ----- " चोज् इच्छापूर्वक नहीं कहा जा सकता, वह लिखने या बोलने में अनायास कलम या मुंह से निकल जाता है । चोज् जिस मौके पर कहा जाता है, वह मौका भी कोई जानबूझकर नहीं ला सकता, वह भी अनायास ही आ पड़ता है ----- उपस्थिति बुद्धिवाला व्यक्ति ही चोज् कहने में समर्थ हो सकता है ।"[3]

---

1. हिन्दी नाट्य - साहित्य में हास्य - रस - डॉ0 सभापति मिश्र; पृ0 - 38
2. हास्य - रस - नृसिंह चिन्तामणि केलकर कृत मराठी के सुभाजित आणि विनोद का हिन्दी रूपान्तर; रूपान्तरक - रामचन्द्र वर्मा; पृ0 - 5।
3. हास्य - रस - नृसिंह चिन्तामणि केलकर - अनुवादक ; रामचन्द्र वर्मा; पृ0 - 69

वाग्वैदग्ध्य या चोज् में आकस्मिक रूप से प्रकट होने का जो गुण या स्वभाव है, वह व्यंग्यकार की निश्चिंत , उत्फुल्ल एवं सजग तथा संतुलित तत्कालीन मानसिक स्थिति एवं उसकी वर्तमान में पूर्ण मानसिक सजगता के साथ उपस्थित रहने की क्षमता की ओर इंगित करता है । अतः वाग्वैदग्ध्य अत्यधिक आक्रोश या क्रोध एवं खीझ की व्यंगात्मक अभिव्यक्ति में कम उत्पन्न होते हैं , परन्तु संयत दृष्टि के निर्लिप्त व्यंग्यों में अधिक दृष्टिगत होते हैं । आकस्मिक रूप से व्यंग्य में चमत्कार की सृष्टि करके ये व्यंग्य को एक मनोरंजक एवं कलात्मक रूप भी देते हैं । व्यंग्य के बीच उत्पन्न वाग्वैदग्ध्य या चोज् व्यंग्य में प्रासंगिक प्रभाव भर देता है, क्योंकि वह तत्काल उपस्थित परिस्थिति से ही सम्बद्ध होकर उद्भूत होता है । इससे व्यंग्य के प्रभाव में एक चटपटा एवं चुटीला प्रभाव तथा हास्य की मुद्रा निर्मित हो जाती है । हास्य का सम्बन्ध भी चूँकि किसी आकस्मिक असंगति के दर्शन से ही होता है, अतः व्यंग्य में प्रयुक्त वाग्वैदग्ध्य (Wit) की आकस्मिक चमत्कारिक उपस्थिति भी प्रायः हास्यकारक प्रफुल्लता से युक्त हो जाती है । कटुतर व्यंग्यों में भी वाग्वैदग्ध्य एक चमत्कारिक कलात्मकता के द्वारा व्यंग्य को अधिक काव्यात्मक या साहित्यिक स्वरूप प्रदान करता है । हास्य के अन्तर्गत इसका प्रयोग उसे अधिक वजनदार एवं सौंदर्यमय गंभीरता प्रदान करता है, व्यंग्य में इसको सहजता एवं सौंदर्य की सृष्टि करते हुए पाया जा सकता है।' विट ' के सम्बन्ध में छविनाथ मिश्र की विवेचना उल्लेखनीय है कि " चमत्कारयुक्त उक्तियों के द्वारा विचित्र आर्थिक संगति उत्पन्न करना विट या वाग्वैदग्ध्य का उद्देश्य है । वाग्वैदग्ध्य का अर्थ है - वाणी की कुशलता, मधुर भाषण, मनोहारिता आदि । वाणी की कुशलता का आधार है शब्दगत विविध अर्थों की समसामयिक संगति की सूझ ।"[1]

वाग्वैदग्ध्य (Wit) के साथ हास्य का उद्रेक स्वाभाविक है, पर व्यंगात्मकता अनिवार्य नहीं । व्यंग्य के बीच में वाग्वैदग्ध्य का उदय या प्राकट्य हो सकता है, पर प्रत्येक वाग्वैदग्ध्य व्यंग्यपूर्ण नहीं होता । इसके व्यंग्य से सम्बद्ध हो जाने के लिए उपस्थित परिस्थिति से सम्बद्ध कोई विकृति या विसंगति का उस प्रकरण में रहना आवश्यक होता है । व्यंग्य में

---

1. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र ; पृ0 - 50

जो विकृति, आन्तर्विरोध, विसंगति या विडम्बना उसके लक्ष्य एवं प्रेरक होते हैं, वे ही नवीन चमत्कारयुक्त कल्पना एवं सूझ को प्राप्त करने से वाग्वैदग्ध्य को जन्म देते हैं । व्यंग्यात्मक सन्दर्भों में प्रकट होकर ' विट ' व्यंग्य को आकस्मिक रूप में अनपेक्षित तथा नवीन सन्दर्भों से युक्त करके कल्पना द्वारा प्रस्तुत स्थिति से इतर, और आगे की स्थिति की भी झलक दिखा देता है । इसके द्वारा व्यंग्य अधिक रोचक ढंग से वार करने में समर्थ होता है । जब व्यंग्यकार किसी स्थिति - विशेष पर व्यंग्य कर रहा होता है, तो उसमें छिपी विभिन्न असंगतियों से कुछ नवीन चमत्कारपूर्ण स्थितियों की आकस्मिक झलक सहजरूप से मिलने से, तथा उन्हें अपनी बुद्धि - चातुर्य एवं उपस्थित बुद्धि द्वारा अनायास रचना या वाणी में प्रकट कर देने से उसका व्यंग्य एक आकर्षक भँगिमा से युक्त हो उठता है । प्रमोद के अवसरों पर हास्य के साथ व्यंग्यात्मक प्रकरण को प्रस्तुत करने की क्षमता वाग्वैदग्ध्य में होती है । वागवैदग्ध्य द्वारा व्यंग्य भी स्मितयुक्त हो उठता है और हास्य भी कुछ गंभीरता धारण कर लेता है । यह उपस्थिति परिस्थिति पर निर्भर करता है कि वाग्वैदग्ध्य द्वारा हास्य उत्पन्न होगा या व्यंग्य या एक के भीतर दूसरे का प्रस्फुटन होगा । व्यंग्य के बदलते हुए विकसित रूपों में जहाँ हास्य का प्रायः निषेध हो, जाता है वाग्वैदग्ध्य का प्रयोग उसके तीखेपन में वृद्धि एवं उसकी कटुता में संतुलन उत्पन्न करता है । विशुद्ध व्यंग्य में वाग्वैदग्ध्य उसकी कटुता को, कलात्मकता एवं चमत्कृति से भरकर, शमित कर सामान्य एवं ग्राह्य बनाते हैं । इसके द्वारा एक सरसता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । अतः यह व्यंग्य को अधिक सहज व सरस बना देती है । छविनाथ मिश्र के शब्दों में " व्यंग्य से यह इस दृष्टि से पृथक है कि इसका प्रयोजन हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है, किन्तु व्यंग्य का स्पष्ट उद्देश्य होता है ।"[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यंग्य के अन्तर्गत वाग्वैदग्ध्य तो होता है, परन्तु ' विट ' का व्यंग्य से स्वंत्रत अस्तित्व भी है । हर वाग्वैदग्ध्य व्यंग्य नहीं होता परन्तु यह व्यंग्य का एक महत्वपूर्ण तत्व, अंग या घटक है, इसमें कोई संदेह नहीं । यदि यह व्यंग्य के अनतर्गत प्रयुक्त होता है, तो इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध भी व्यंग्य के उद्देश्य से जुड़ जाता है तथा यह व्यंग्य मं चमत्कृति, मनोरंजकता, सरसता एवं कलात्मकता की सृष्टि द्वारा

---

1. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र; पृ0 - 50

उसे विशिष्ट तेवर प्रदान करता है, परन्तु साथ ही वाग्वैदग्ध्य मात्र चमत्कारपूर्ण उक्ति भी हो सकता है, जिससे अप्रत्याशिक अर्थों की सूझ द्वारा हास्य का उद्रेक हो तथा जो बुद्धि को चकित भर कर दे ।

व्यंग्य का मनोविज्ञानः-

व्यंग्य के मूल में किसी विकृति के प्रति व्यंग्यकार की घृणा, क्रोध एवं विक्षोभ होता है, परन्तु इस आक्रोश, तिरस्कार या विक्षोभ से प्रेरित जो व्यंग्य किया जाता है, उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उसका मूल उद्देश्य क्या होता है ? वह ध्वंसात्मक होता है या निर्माणात्मक ?

वस्तुतः प्रत्येक व्यंग्यकार के मानस की एक वैचारिक पृष्ठभूमि होती है । यह पृष्ठभूमि जीवन - जगत के विविध सन्दर्भो तथा आयामों से कवि की संवेदना द्वारा जुड़ी रहती है और उससे उर्जा ग्रहण करती है । यही वैचारिक पृष्ठभूमि व्यंग्यशील कवि को जीवन - जगत के क्रियाकलापों के प्रति जागरूक बनाये रखती है । इसीलिए व्यंग्यकार कवि या लेखक किसी भी स्थिति - परिस्थिति की विकृति को विविध सन्दर्भो के वैचारिक आलोक में स्पष्ट देख पाता है, और विविध सन्दर्भो से युक्त कर देखने के कारण उनकी विडम्बना की भी सूक्ष्म पहचान करने में समर्थ हो पाता है । इस विकृति या विडम्बना पर कवि का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रहार आक्रोश या तिरस्कार के स्वर में होता है । परिस्थितियों में व्याप्त विकृतियों एवं अन्तर्विरोधों इत्यादि के बीच अनिवार्यतः विवश भाव से फँसे मानव के अवांछनीय या असंगत कृत्यों या स्थितियों के प्रति कवि करूणा का अनुभव भी करता है तथा उनके प्रति सहानुभूति से भरकर ही वह व्यंग्यबाण चलाकर विकृत स्थितियों को नष्ट करना चाहता है । आक्रोशपूर्ण स्थितियों के प्रति वह प्रतिहिंसा के भाव से चोट करता है तथा विकृति के लिए दोषी को दंडित करता है । कवि की विविध तलस्पर्शी संवेदना कहीं विकृतियों की विडम्बना में फँसे मानव की करूणा से प्रेरित होकर तथा कहीं कठिन, क्रूर , अमानवीय एवं भयंकर विकृतियों के प्रति क्रोधाविष्ट होकर अपना व्यंग्य - शर छोड़ती है, जो सीधे बुराई के मर्मस्थल को बेधता हैं ।

इस प्रकार व्यंग्य कमोवेश आक्रामक होते हैं । व्यंग्यकार के इस आक्रामक रूख का

कारण उसकी मानव जीवन तथा उसकी समस्याओं में रूचि ही है । उसे मनुष्य मात्र की चिन्ता होती है । परन्तु विकृतियों के पोषक तत्व शक्तिशाली रूप में क्रियाशील होते हैं । इसलिए साधारण कथन या यथास्थिति के वर्णन मात्र से उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । अतः कवि व्यंग्य का विशेषकर स - चोट तीखे, आक्रामक व्यंग्य का सहारा लेने के लिए विवश हो उठता है क्योंकि ' ताकतों से सधे और बने रिश्तों के सामने असहाय आदमी या तो विलाप कर सकता है या व्यंग्य ।'[1] असहाय विलाप निरर्थक है । यह दुर्बलता का प्रदर्शन है । व्यंग्य कवि की अपराजेय मानसिकता का प्रतीक बनकर आता है । कवि ताकतवर विकृतियों के विध्वंस के लिए अधिक कठोर, धारदार तथा घातक हथियार के रूप में व्यंग्य का प्रयोग करता है । गिलबर्ट हाइट के शब्दों में ' व्यंग्यकार मानव जीवन को उधाड़कर रख देना, उसकी आलोचना करना तथा उसको लज्जित करना चाहता है, परन्तु वह सम्पूर्ण सत्य और केवल सत्य ही कहने का बहाना करता है ।'[2]

परन्तु प्रहारक व्यंग्य, जिसे ध्वंसात्मक माना जाता है, न तो सामान्य परिस्थितियों की उपज है और न ही सामान्य सुख - दुखात्मक मानसिक स्थितियों के द्वन्द्व का परिणाम होती है । सामान्य राग - विरागपूर्ण स्थितियों में प्रहार की आकाँक्षा जन्म नहीं ले सकती । यह तो आक्रोश एवं घृणा की उस मानसिक भूमि की उपज है, जो बाह्य परिवेश में व्याप्त असंगति, विरोधाभास, विरूपता, विडम्बना इत्यादि के निर्लज्ज क्रिया - कलापों द्वारा उर्वरित होता है । 'व्यंग्य प्रायः हमेंशा ही सत्ता और व्यवस्था के विरूद्ध खड़ा होता है और जोखिम उठाने की उसकी जुझारू चेतना से ही उसे शक्ति मिलती है ।'[3]

अतः यदि व्यंग्य के मूल उद्देश्य की ओर जायँ, जो प्रत्यक्षतः ध्वंसात्मक प्रतीत होता है, तो वह विकृतियों में सुधार या उसका नवनिर्माण ही है । असत्य स्थितियों की समाप्ति एवं

---

1. नयी कविता की पहचान - डॉ० राजेन्द्र मिश्र; पृ० - 16
2. द एनाटॉमी ऑफ सटायर - गिलबर्ट हाइट; पृ० - 158
3. 'व्यग्य की हिंस्सेदारी' - मधुरेश; आलोचना - जन०-मार्च 89; पृ० - 73

सत्य की प्रतिष्ठा ही इसका अन्तः प्रयोजन है । परन्तु व्यंग्यकार प्रत्यक्षतः निर्माण का कार्य करता नहीं, वह तो विकृतियों के झाड़ - कॉट पर चोट करता है , उन्हें कहीं काटता, कहीं उखाड़ फेंकता है, कहीं उन्हें अनावृत्त कर देता है, ताकि उनका परिष्कार संभव हो सके । डॉ0 महेन्द्र भटनागर व्यंग्य के इसी निर्माणात्मक उद्देश्य की तरफ संकेत करते हुए कहते हैं - ' जब व्यंग्य एक हथियार - पैने हथियार के रूप में लेखक के हाथ में आता है, तब वह सामाजिक स्वास्थ्य की वृद्धि करता है -- विकृतियों की शल्य क्रिया करके ।'[1] व्यंग्य विकृति का तो ध्वंस करता है, पर वह इसके द्वारा सम्पूर्ण मानवता से जुड़ी सुख - शांति की कामना करता है । दंडित करके वह स्वयं भी विक्षोभ, घृणा, क्रोध आदि कष्टकारक मानसिक स्थिति से तात्कालिक रूप से छुटकारा पाता है । इसी प्रकार का मानसिक तोष, विकृति के लिए दोषी व्यक्ति, वर्ग या स्थिति पर प्रहार करने से, मानव समाज को भी होता है । केवल दोषी व्यक्ति, वर्ग या समाज इस चोट से आहत व, धराशायी होता है ।

यह कहा जाता है कि " आधुनिक व्यंग्य चोट खाने वाले व्यक्ति के सन्दर्भ में करूणारहित हो गया है ।"[2] आज का व्यंग्य अत्यंत निर्ममता पूर्वक प्रहार करता है । कटु, अशोभन शब्दों, गाली के शब्दों के प्रयोग तथा हास्यविहीन आक्रामक मुद्रा एवं प्रत्यक्ष प्रहार आधुनिक व्यंग्य की विशेषता है । परन्तु व्यंग्य का यह तीव्र आक्रामक रूख परिस्थितियों में या मानव - चरित्रों में व्याप्त बुराइयों के निर्लज्ज स्वरूप के कारण ही है । अतः यह करूणाहीनता भी अन्ततः विराट मानव - समुदायों के जीवन की जटिल त्रासद स्थितियों एवं उनसे उत्पन्न समस्याओं में घिरे मानव की करूणा से ही निःसृत है । डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में 'व्यंग्य भी दर्द का ही रूपान्तर है ।'[3]

आज काव्य में व्यंग्य का जो नितान्त तिक्त, कटु आक्रोशग्रस्त एवं वीभत्स रूप

---

1. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - 'भावाभिव्यक्ति का माध्यम व्यंग्य' - लेखन - डॉ0 महेन्द भटनागर; पृ0 - 64
2. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र; पृ0 -
3. नयी समीक्षा, नये सन्दर्भ - डॉ0 नगेन्द्र ; पृ0 - 83

मिलता है वह कवि द्वारा झेली जा रही दोहरी विडम्बना का परिणाम है । एक ओर विकृतियाँ अपने भयानक रूप में चरम विकास को प्राप्त कर खुलेआम हर्ष नृत्य कर रही है, दूसरी ओर विविध ज्ञान - विज्ञान - संवेदित, प्रबुद्ध एवं जागरूक कवि - मानस है, जो यथार्थ - स्तर पर इन विकृतियों से जूझता है, भावनात्मक स्तर पर स्वयं भी इन विकृतियों से आहत होता है । कवि की स्वयं की विडम्बना इसी बात में निहित है कि वह विकृतियों के नग्न यथार्थ को उसकी सम्पूर्णता में देख - पकड़ पा रहा है, पर वह उस पर संयत रूप में व्यंग्य का प्रहार नहीं कर पा रहा है, क्योंकि वह व्यंग्यकार होने के साथ ही स्वयं अपने समय की उन विकृतियों के बीच फँसा हुआ तथा उनसे जूझता - लड़ता एक भावुक मनुष्य भी है । ऐसे में आक्रोश एवं घृणा का तीव्रतम होकर ध्वंसात्मक एवं मारक रूपों में व्यक्त होना अनिवार्य - सा हो उठता है । इसी दुहरी विडम्बना की चेतना कवि के व्यंग्य को कटुतर बना देती है । परन्तु जो व्यंग्य अपने प्रकट पक्ष में घृणा एवं आक्रोश की शब्दावली का मारक अस्त्र लेकर चलता है, वही दूसरे पक्ष में असीम मानवीय करूणा और सहानुभूति को दबाये रहता है, जो अव्यक्त रहता है । इसका कारण यही है कि कवि नैसर्गिक रूप से भावुक प्राणी होता है । इसी नैसर्गिक भावुकतावश व्यंग्यकार मानवीय करूणा का अनुभव कर, मानवीय पीड़ा की अथाह संवेदना लेकर पीड़क हो उठता है । व्यंग्यकार द्वारा दी गयी यह पीड़ा उपचारात्मक होती है । इसका उद्देश्य तो पीड़ा - मुक्ति ही है ।

साहित्य एवं साहित्यकार की अभिव्यक्तियाँ अपने मूल रूप में सद् होती है । व्यंग्य भी साहित्य की ही एक विधा एवं शैली होने से उसकी ध्वंसात्मक तथा पीड़क प्रवृत्तियाँ मूलतः सद् होती हैं । परन्तु यदि व्यंग्य साहित्य क्षेत्र से बाहर है या नकली है अथवा फैशन के रूप में अपनाया गया आरोपित व्यंग्य है, तो वह असद्, निरूद्देश्य एवं अप्रभावी हो सकता है । मानव जीवन के व्याक्तिगत प्रसंगों में व्यंग्य किसी महत् उद्देश्य या नवनिर्माण की भावना से संचालित नहीं होते । वे निजी - स्तर पर अपने दृष्टिकोण से किसी में विकृति का दर्शन करते हैं, अतः वहाँ व्यंग्य का मात्र ध्वंसात्मक रूप प्रकट होता है । यह कलह, द्वेष एव

संहार को जन्म देता है । इसका परिणाम विनाशकारी हो सकता है । परन्तु व्यक्तिगत रूप से किसी पर किये गये व्यंग्य का लक्ष्य भी यदि समाज व्यापी या मानव मात्र में व्याप्त कोई बुराई रहती है, तब भी वह ध्वंसात्मक नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसका उद्देश्य व्यक्ति के माध्यम से उस बुराई पर आक्रमण करना है, व्यक्ति पर नहीं । परन्तु यदि व्यंग्य अपनी स्वार्थ सिद्धि या निजी द्वेषों के वशीभूत होकर किये जाते हैं, तो वे वैमनस्य बढ़ाते हैं तथा और अधिक विकृत स्थितियाँ उत्पन्न कर देते हैं । साहित्य के क्षेत्र में ऐसे व्यंग्य काम्य नहीं हैं । द्वेषसूचक व्यक्तिगत व्यंग्य यदि साहित्य में आता भी है, तो वह निंद्य है । ऐसा व्यंग्य जीवन की सही व्याख्या करने के सन्दर्भ में साहित्य में परोक्ष ढंग से (नाटक, कथा, इत्यादि के पात्रों के परस्पर व्यंग्यात्मक प्रहार के रूप में) तक ही सीमित रहता है, यथा महा भारत की कथा में द्रौपदी का दुर्योधन के प्रति किया गया व्यंग्य । यह व्यंग्य साहित्यकार का न होकर पात्र का ही है तथा कथा के अन्तर्गत ही उसका विध्वंसक प्रभाव भी स्पष्ट है । जहाँ व्यंग्य कविता या अन्य किसी साहित्यिक विधा में लेखक की अपनी दृष्टि बनकर प्रत्यक्षतः प्रकट होता है, वहाँ वह सामाजिक - निर्माणात्मक मूल्यों से सीधा सरोकार रखता है । ऐसे साहित्यिक व्यंग्य में यदि साहित्यकार के निजी राग - द्वेष व्यक्तिगत स्तर पर प्रदर्शित किये जाते हैं, तो वे निर्माणात्मक होने के बजाय विध्वंसक हो उठते हैं, क्योंकि वे उस व्यक्ति विशेष को पीड़ा देते हैं, उसमें कटुता उत्पन्न करते है तथा उसे प्रतिक्रिया के लिए प्रेरित करते हैं, जिसके द्वारा सामाजिक जीवन में लोगों को कोई व्यवधान नहीं पहुँचता है । परन्तु ऐसे व्यंग्य साहित्य में मिलते भी नहीं । डॉ0 महेन्द्र भटनागर के शब्दों में - " व्यक्तिगत स्तर पर एक दूसरे की भर्त्सना करना अवांछित है । उसमें कुरूपता है । ऐसा व्यंग्य गाली - गलौज के निम्न धरातल पर भी उतर आता है । ऐसा साहित्य चाहे किसी भी विधा में लिखा जाय, सही अर्थों में (Genuine) साहित्य नहीं है । वस्तुतः व्यंग्यकार समाज सुधारक होता है । वह चिकित्सक होता है, त्रासक नहीं ।"[1]

अतः साहित्य में व्यंग्यशीलता के संबन्ध में यह कहा जा सकता है कि वह

---

1. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - संपादक - डॉ0 श्याम सुन्दर घोष - लेख - ' व्यंग्य का प्रहार ' - डॉ0 शंकर पुणताबेकर; पृ0 - 7।

रचनाकार की समाज सम्पृक्ति द्वारा ही जन्म लेती है । चाहे वह समाज के किसी वर्ग या समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति से सम्बद्ध हो या पूरे समाज से, या समाज की एक इकाई के रूप में व्यक्ति से, उसकी मूल प्रेरणा सुधार लाना, नवीनता लाना या नव - निर्माण करना होता है । व्यक्ति से सम्बद्ध होकर वह विकृति पर प्रहार द्वारा सामाजिक चरित्र का नव निर्माण करता है । असंगत के ध्वंस का उद्देश्य सुसंगत के निर्माण की आकाँक्षा तथा उसकी पृष्ठभूमि तैयार करने का प्रयत्न ही है । इस प्रकार साहित्य में व्यंग्य का मनोविज्ञान निर्माणात्मक प्रेरणा तथा ध्वंसात्मक आवेग है, जो एक दूसरे से सम्बद्ध है । ध्वंसात्मकता व्यंग्य में निर्माण के प्रथम चरण के रूप में दिखाई पड़ती है । यह ध्वंसवादी प्रत्यक्ष प्रहार के रूप में कहीं केवल विकृतियों के बोध के रूप में प्रच्छन्न ढंग से साहित्य में दृष्टिगत होता है । अन्त में व्यंग्य के सम्बन्ध में डॉ0 शंकर पुणतांबेकर के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि " हर तरह के साहित्यका काम है चेतना में हलचल पैदा कर देना । व्यंग्य भी यही करता है । यह हलचल वह जरा ज्यादा तीव्रता के साथ पैदा करता है, इतना ही । अन्ततः इस तरह की हलचल कभी न कभी अपना असर दिखाती ही है ।"

अध्याय - द्वितीय

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य

प्रयोगवादी एवं नयी कविता का आरम्भ स्वतंत्रता पूर्व के कुछ वर्षो से लेकर स्वतंत्रता के पश्चात की जटिल परिस्थितियों में हुआ था । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दो महायुद्धों का अनुभव और राष्ट्रीय स्तर पर स्तंत्रता के साथ भारत विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे, गांधी की हत्या ऐसी महत्वपूर्ण घटनायें थीं, जिसने भारतीय मानस को अत्यन्त गहराई से उद्वेलित किया था । भारत में यह काल मूल्यों के संक्रमण एवं विघटन का माना जाता है । इसके मूल में कुछ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, वैचारित परिस्थितिगत कारण थे, जिनको समझने के लिए इन विविध परिस्थितियों पर दृष्टि डालना समीचीन है ।

1. राजनीतिक परिदृश्यः-

स्वतंत्रता पूर्व बीसवीं शताब्दी की महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनायें या तो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष से सम्बंधित हैं या फिर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली घटनाओं - विशेषरूप से विश्व - युद्धों से । स्वतंत्रता पूर्व की जो घटना सबसे महत्वपूर्ण है - वह है द्वितीय विश्व - युद्ध । इस युद्ध का प्रभाव भारतीय मानस पर दूरगामी पड़ा । ' अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर फ़ासिज़्म का उदय , म्यूनिख - समझौता, स्पेन में जनतंत्र की रक्षा के लिए देश - विदेश के लेखकों और बुद्धिजीवियों का मोर्चे पर लड़ना, द्वितीय विश्व युद्ध की विनाशकारी छाया, राष्ट्रीय पैमाने पर काँग्रेसी मन्त्रिमंडलों का निर्माण, त्रिपुरा कांग्रेस और राष्ट्रीय अन्तर्द्वन्द्व , राष्ट्रीय आन्दोलनों में शिथिलता तथा नये उभरने वाले वामपंथी दलों का असंतोष, ये सब राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंच को उद्विग्न कर रहे थे ।'[1]

इसी पृष्ठभूमि पर भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की, परन्तु स्वतंत्रता के तुरन्त बाद ही देश - विभाजन के फलस्वरूप गृह - कलह एवं तद्जन्य साम्प्रदायिक विद्वेष की स्थिति उत्पन्न हुयी । कृष्ण बिहारी मिश्र के शब्दों में ----- " 15 अगस्त 1947 को भारत दो देशों के रूप में स्वतंत्र हो गया । परन्तु कष्टों का अन्त अभी नहीं हुआ था । भीषण दंगे एक साथ दोनों देशों में हुए, जिनमें हत्या, आगजनी, लूट , बलात्कार आदि पाशविक घटनायें नित्य-प्रति

----

1. नयी कविता - डॉ0 कान्ति कुमार; पृ0 - 36

की साधारण बातें हो गयीं । आबादियों की अदला - बदली भी एक करूणाजनक वस्तु थी, हजारों व्यक्ति बेघर बार हो गये ।"[1] इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के उल्लासपूर्ण वातावरण में कटुताओं एवं समस्याओं का भी श्रीगणेश हुआ -----

स्वतंत्रता के पश्चात देशी रियासतों के विलयन के समय काश्मीर तथा हैदराबाद की रियासतें स्वतंत्र ही रहीं । स्वतंत्रता के पश्चात ही अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान द्वारा काश्मीर पर आक्रमण किया गया तब काश्मीर के महाराजा बचाव हेतु भारत अधिराज्य में शामिल हो गये भारत और पाकिस्तान में विराम - संधि हुयी, परन्तु काश्मीर की समस्या बनी ही रही तथा भारत पाकिस्तान में इस मुद्दे को लेकर और युद्ध हुए ।

राज्यों के पुनर्गठन पर विचार करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की गयी, जिसकी संस्तुतियों में पुनर्गठन में केवल भाषा - संस्कृति को आधार मानने को अवांछनीय ठहराया गया था तथा देश की वित्त - व्यवस्था एवं राष्ट्रीय भावना को प्रमुखता दी गयी थी । ' इसके पश्चात भाषा एवं संस्कृति के आधार पर गठन को लेकर बहुत क्षोभ एवं आक्रोश की स्थिति पैदा हो गयी । राज्यों की सीमाओं को लेकर भी बिहार, असम, उड़ीसा और बंगाल में असंतोष व्यक्त हुआ । इसके साथ ही विशाल महाराष्ट्र, महा गुजरात का अलग सिख - क्षेत्र बनाने की मांग की जाने लगी ।'[2] इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राज्यों के पुनर्गठन में आन्तरिक विवाद एवं मदभेद के बीच गई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये ।

विदेशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बंधों की नीति स्वतंत्र - भारत ने अपनायी । भारत ने गुटनिरपेक्षता तथा अन्तर्राराष्ट्रीय शांति के समर्थन की नीति अपनायी । ' भारत की नीति सदैव तटस्थ एवं साम्राज्यविरोधी रही । सन् 1951 - 52 में कोरिया - युद्ध 1954 में हिन्द - चीन समस्या, 1957 में साइप्रस - समस्या तथा 1960 क- 61 कांगों - युद्ध में भारत एवं उसकी

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और हिन्दी - साहित्य - कृष्ण बिहारी मिश्र; पृ0-225
2. स्वतंत्र भारत की एक झलक - बाबूराम मिश्र; पृ0 - 226

सेना की मध्यस्तता से शांति - स्थापना के प्रयास की विश्व में प्रशंसा हुयी ।'[1] ' 1961 में बेलग्रेट में गुटनिरपेक्ष देशों का प्रथम सम्मेलन हुआ था । इस आन्दोलन का प्रतिपाद्य यह था कि स्थायी शान्ति तभी हो सकती है जब साम्राज्यवाद, तथा उपनिवेशवाद का अन्त होकर सहअस्तित्व मान्य हो । जवाहर लाल, मार्शल टीटो और नासेर आन्दोलन के प्रवर्तक नेता थे ----- 1983 में दिल्ली में हुए इसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में इन्दिरा जी इसकी प्रधान चुनी गईं । उन्होंने सारे संसार की ओर से आणविक युद्ध रोकने के लिए एक जबर्दस्त अपील की । तमाम दावों के बावजूद यह सिद्ध हो चुका है कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ किसी भी कमजोर देश के उत्थान में हाथ बटाना नहीं चाहतीं, उनका एक मात्र उद्देश्य है आर्थिक शोषण, जो तभी सिद्ध हो सकता है, जब अविकसित देश उद्योग के क्षेत्र में पिछड़े रहें ।'[2] गुटनिरपेक्ष आन्दोलन द्वारा छोटे - छोटे राष्ट्र एक - दूसरे की सहायता के लिए एवं साम्राज्यवादी ताकतों के विरूद्ध एकजुट हुए । गुटनिरपेक्ष देशों के सम्मेलन द्वारा भारत की शांतिपूर्ण नीति स्पष्ट हो गयी तथा संसार के प्रबुद्ध लोगों का भारत की तरफ ध्यानाकर्षण हुआ ।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर दो महा शक्तियों एवं छोटे - छोटे विकासशील देशों के बीच एक विसंगतिपूर्ण एवं त्रासक स्थिति का दर्शन होता है । अमेरिका और रूस इन दो महाशक्तियों में प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति है । बाकी छोटे - बड़े राष्ट्र इन्हीं दोनों में से किसी पर आर्थिक रूप से निर्भर है भारत अपनी तटस्थता की नीति के कारण साम्राज्यवाद का स्पष्ट विरोध नहीं कर पाता । आणविक शक्ति से सम्पन्न इन दोनों देशों की होड़ एवं प्रतिद्वन्द्विता ने तृतीय विश्व - युद्ध के आसन्न संकट से समस्त विश्व को आतंकित कर रखा है । डॉ0 राम विलास शर्मा महाशक्तियों के बीच भारत की तटस्थ - नीति की विवशता एवं विडम्बना को प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं ----- " आणविक युद्ध का खतरा साम्राज्यवाद और उसकी विदेश - नीति के कारण नहीं है, उसका कारण दो महाशक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता है । युद्ध के खतरे का सम्बन्ध साम्राज्यवाद से जोड़ा जाय तो शांति आन्दोलन को साम्राज्य विरोधी ढंग से

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और हिन्दी साहित्य - कृष्ण बिहारी मिश्र; पृ0-313
2. कांग्रेस के सौ वर्ष - मन्मथनाथ गुप्त; पृ0 - 205

चलाना जरूरी होगा । तब ब्रिटेन और अमरीका से कर्ज लेने में दिक्कत होगी, क्योंकि कर्ज का सूद युद्ध की तैयारी में लगेगा । इसलिए भारत दो महाशक्तियों के बीच तटस्थ है ।"[1]

भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में दक्षिणी अमरीका की रंगभेद नीति के विरोध में कई बार आवाज उठायी गयी । रूसी और अमरीकी गुटों से भारत ने यद्यपि तटस्थता की नीति अपनायी, पर इस नीति में बाद में कुछ परिवर्तन आया । इसका कारण था भारत और रूस - मैत्री संधि, जिसके द्वारा रूस के साथ अधिक अच्छे सम्बंधों की स्थापना हुयी । भारत ने निःशसत्रीकरण एवं परमाणु समस्या के सन्दर्भ में विश्व शांति स्थापित करने के प्रयास किये । इसी के लिए भारत ने अफ्रीका और एशिया के नवनिर्मित छोटे - छोटे राष्ट्रों का एक तीसरा गुट बनाने का प्रयास किया था ।

पड़ोसी देशों में चीन और पाकिस्तान के साथ भारत के सम्बंध आगे चलकर अच्छे नहीं रहे । चीन के साथ यद्यपि भारत ने 1954 ई0 में मैत्री की घोषणा पंचशील के सिद्धान्तों के आधार पर की थी, परन्त चीन से सीमा - विवाद तथा कुछ अन्य मुद्दों पर सम्बन्ध खराब होने लगे 1962 में 20 अक्टूबर को चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया । इस युद्ध से रानजीतिक स्तर पर मोहभंग हुआ तथा पंचशील एवं भाईचारे के नारों का खोखला स्वरूप स्पष्ट रूप में उजागर हो गया । नेहरू जी की मृत्यु देशवासियों के लिए दूसरा आघात था ।

काश्मीर समस्या को लेकर पाकिस्तान के भी सम्बंध भारत से मैत्रीपूर्ण न रहे । सन् 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया, जिसमें भारत को विजय मिली । यह युद्ध 21 दिन तक चला । भारतीय सेना पाकिस्तान में लाहौर तक घुस गयी । रूस की मध्यस्थता में जनवरी 1966 में ताशकंद - समझौता हुआ । समझौते के बाद ताशकंद में ही भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का निधन हो गया ।

सन् 1970 - 71 में पाकिस्तान के तानाशाह याहया खाँ ने चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने वाले दल के नेता को बंदी बनाकर दमन - चक्र चलाया । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप

---

1. प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल - डॉ0 राम विलास शर्मा; पृ0 - 22

बांग्लादेश की सैनिक सहायता की एवं वहाँ से आये शरणार्थियों को शरण दी ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विश्व के विशालतम गणराज्य भारत में 1952 में प्रथम चुनाव सम्पन्न हुआ । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को इसमें शानदार विजय मिली तथा पं0 नेहरू का नेतृत्व प्रारम्भ हुआ । अन्य दलों - वामपक्षी, साम्यवादी और समाजवादी को संसद और विधान सभाओं में कुछ स्थान मिले । भारतीय जनसंघ (1951 में स्थापित) को बहुत ही कम स्थान मिले ।

दूसरा निर्वाचन 1957 में हुआ, जिसमें केरल विधान सभा में साम्यवादी दल को बहुमत मिला । इसी बीच समाजवादी दलों में मतभेद के परिणाम स्वरूप विभाजन हुआ । सन् 1959 में दक्षिण पंथी स्वतंत्र दल बना । इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात जैसे - जैसे चुनाव सम्पन्न होते गये, राजनीतिक दलों में विभाजन एवं नवीन दलों की स्थापना द्वारा क्रमशः वृद्धि होती गयी जिनमें आपसी चुनावी दाँव - पेंच की भी शुरूआत क्रमशः होती गयी । धीरे - धीरे कांग्रेस की लोकप्रियता कम हाने लगी ।

इसी बीच देश ने दो प्रधानमंत्रियों की मौत का आघात और दो युद्धों की त्रासद स्थितियाँ भी झेलीं । 1965 में लाल बहादुर शास्त्री के निधन के पश्चात श्रीमती इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री बनीं । 1967 के मध्यवर्ती चुनाव में कांग्रेस को कम सीटें मिलीं । कांग्रेस के भीतर मतभेद की स्थिति प्रारम्भ हुयी । 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद कांग्रेस के भीतर का मतभेद और बल पकड़ने लगा कांग्रेस के दिसम्बर अधिवेशन में कांग्रेस का नयी और पुरानी कांग्रेस के रूप में विभाजन हो गया । सरकार ने राजाओं को दिये जाने वाले भत्तों तथा रियायतों को समाप्त कर दिया । मध्यावधि चुनाव की एक बार फिर घोषणा की गयी, जिसमें नयी कांग्रेस को बहुमत मिला । परन्तु विरोधी दलों के कुछ लोगों ने 1973 में देश में कई प्रकार के आन्दोलन प्रारम्भ किये । गुजराज में आन्दोलन के फलस्वरूप ही विधान सभा भंग कर दी गई । इसी समय जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन चलाया गया, जिसका विस्तार आगे चलकर बिहार आन्दोलन के साथ हुआ । इंदिरा गांधी के चुनाव को चुनौती दी गयी , जिसमें इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इंदिरा गांधी के चुनाव के विरोध में फैसला सुनाया । इंदिरा जी से इस्तीफे की मांग होने लगी ।

इसी समय 26 जून, 1975 में देश में आपात स्थिति घोषित कर दी गयी । आन्दोलनकारी नेताओं एवं सरकार का विरोध करने वाले बुद्धिजीवियों को भी जेल में डाल दिया गया । इंदिरा गांधी ने इसी अवधि के दौरान बीस सूत्री कार्यक्रम की भी घोषणा की, जिसमें कमजोर वर्ग के लोगों की आर्थिक उन्नति का लक्ष्य था । ' 1976 के अन्त में इन्दिरा गांधी ने आम चुनाव की घोषणा की । 1977 के इस चुनाव में कांग्रेस हार गयी । नवनिर्मित विरोधियों की जनता पार्टी की जीत में सबसे बड़ा घटक यह रहा कि कांग्रेस ने कुछ सख्ती से परिवार - नियोजन का कार्यक्रम चलाया था, जिसके कारण जनता क्षुब्ध थी । इस कार्य में इंदिरा गांधी के छोटे बेटे संजय गांधी ने अगुवाई की थी ।'[1]

वस्तुतः देश में आपातकाल की घोषणा के बाद बंदी बनाये गये नेताओं के साथ अमानुषिक व्यवहार भी किये गये । सर्वत्र आतंक एवं भय की छाया व्याप्त हो गयी । सरकार के विरोध में बोलने का जो साहस करता, उसे लोकतांत्रिक पद्धति की रक्षा करने के नाम पर जेल में डाल कर उत्पीड़ित किया जाता । इस सब में पुलिस ने जुल्म करने की मिसाल कायम की । तत्कालीन साहित्य में इस स्थिति का चित्रण अपनी सम्पूर्ण विभीषिका के साथ मिल जाता है । जनता गुट शासन में आया, जिसमें मोरारजी देसाई कके नेतृत्व में सरकार बनी । इस गुट में भूतपूर्व कांग्रेसी चरण सिंह, जगजीवन राम आदि भी थे, जो मंत्री बनाये गये । इस प्रकार दल - बदलकर सत्ता प्राप्त करने की जोड़ - तोड़ का सूत्रपात हुआ ।

काँग्रेस में पुनः विभाजन हुआ । भविष्य में इंदिरा कांग्रेस ही बहुमत में रही । जनवरी, 1978 में एक सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें कांग्रेस के अधिकांश सदस्य मौजूद थे । इस सम्मेलन की प्रतिक्रिया में दूसरे अध्यक्ष ब्रहमानंद रेड्डी ने, इंदिरा - समर्थकों को कांग्रेस से निकाले जाने की घोषणा की । इस अवधि के बीच इंदिरा - गांधी अपदस्थ होकर जेल भी जा चुकी थीं तथा उनपर तरह - तरह के अभियोग लगाकर मुकदमें चलाये गये थे । सन् 1978 के नवम्बर में वे पुनः लोक - सभा के लिए चुनी गयीं ।

---

1. कांग्रेस के सौ वर्ष - मन्मथनाथ गुप्त - पृ0 - 20।

जनता सरकार में प्रारम्भ से ही मतभेद व विवाद की स्थिति रही । ' जनता दल के अधिकांश सांसद जगजीवनराम को दल का नेता बनाना चाहते थे, परन्तु जय प्रकाश जी ने मोरार जी का नाम प्रस्तावित किया और वे प्रधानमंत्री हो गये । चरण सिंह जबर्दस्त महत्वाकांक्षी थे और प्रधान मंत्री बनने का स्वप्न देखते थे । राजनारायण का व्यक्तित्व अपने ढंग का अनोखा था ।'[1]

आपस के झगड़े ने जनता सरकार को समय से पूर्व ही उखाड़ दिया । मोरार जी की सरकार को गिराकर चरण सिंह ने प्रधानमंत्री बनने की महत्वाकांक्षा पूरी की । परन्तु संसद में बहुमत न होने की वजह से उन्हें भी इस्तीफा देना पड़ा । बीच में ही फिर चुनाव की स्थिति आयी और 1980 के चुनावों में कांग्रेस की सरकार फिर बनी और इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री चुनी गयीं । कांग्रेस सरकार ने पुरानी गल्तियाँ नहीं दुहराई तथा इस अवधि के शासनकाल में कुछ ऐसे ऐतिहासिक निर्णय लिये गये, जिनका तात्कालिक परिणाम त्रासदी में हुआ । खालिस्तान की मांग को लेकर आतंकवादी गतिविधियाँ फैलायी जाने लगी थीं तथा राजनीतिक हत्याकांड एवं निरीह जनता का कत्लेआम प्रारम्भ हो गया था । पंजाब में स्वर्ण - मंदिर आतंकवादियों का शरण स्थल था । इंदिरा गांधी ने आतंकवादियों से निपटने के लिए कड़े कदम उठाये तथा स्वर्ण मंदिर में सैनिक कार्यवाही की, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें अपने प्राण गँवाने पड़े । इंदिरा गांधी ने अपने प्राणों का बलिदान धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त की रक्षा करते हुए किया । उन्हीं के सिख अंगरक्षकों ने उन पर हमलाकर उन्हें गोलियों से भून डाला । इस हत्या से सारा राष्ट्र शोक में डूब गया । प्रतिक्रिया स्वरूप सिखों पर स्थान - स्थान पर निर्दय आक्रमण हुए, उनकी सम्पत्ति को जहाँ तहाँ आग लगा दी गयी । इंदिरा - गांधी की मृत्यु से देश एक भयानक संकट की स्थिति में पहुँच गया था, परन्तु राजीव गांधी के निर्विरोध प्रधानमंत्री चुन लिये जाने से स्थिति संभल गयी । श्री राजीव गांधी ने अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में बड़े कुशल - नेतृत्व का परिचय दिया, परन्तु बाद में वे भी कांग्रेस की आपस की फूट का लक्ष्य बने और उन पर आक्षेप लगाया जाने लगा । श्रीलंका में तमिल उग्रवादियों के दमन के लिये भारतीय सेना भेजने की प्रतिक्रिया स्वरूप राजीव गांधी की हत्या कर दी गयी । इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात

---

1. कांग्रेस के सौ वर्ष - मन्मथनाथ गुप्त - पृ0 - 204

तीन महान नेताओं की जीवन लीला राजनीति के मतभेदों एवं धार्मिक अंधता की भेंट चढ़ गया । इन हत्याओं के द्वारा समसामयिक राजनीति में आतंकवादी तत्वों की क्रूर भूमिका उजागर हो जाती है ।

उपरोक्त प्रमुख राजनीतिक घटनाओं पर दृष्टिपात करते हुए उसमें विघटन के तत्वों को स्पष्ट पहचाना जा सकता है । नेहरू युग के बाद से अवमूल्यन और राजनीतिक भ्रष्टता का जो प्रारम्भ हुआ, वह दिनोदिन सत्ता - मोह, सत्ता हथियाने के लिए अनुचित साधनों के प्रयोग, सिद्धान्त विहीन राजनीतिक की अवसरवादी प्रवृत्ति, जनता को आश्वासनों एवं झूठे नारों से भ्रमित करने की प्रवृत्ति, के रूप में विकसित होता रहा । सातवें दशक की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियों की उथल - पुथल को व्यक्त करते हुए डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी ने राजनीतिक भ्रष्टता का चित्र इस प्रकार खींचा है - " देश के भीतर विरोधी दलों में संघर्ष उत्पन्न हुए और देश के बाहर तीन भयावह युद्ध भी किये गये - करने पड़े । नेहरू, लोहिया, शास्त्री की मृत्यु, सत्ता - सरकार का विभाजन, बैंको का राष्ट्रीयकरण गरीबी हटाओ, समाजवाद लाओ आदि घटनाओं और नारों ने देश की जनता में टूटन पैदा की । राजनीतिक नगर - केन्द्रित हुए, भौतिक वादी बने, विलासिता आवश्यक अंग हुयी । वे गांवों मं उद्घाटन, मतदान या मेम्बर - निर्माण के समय जाने लगे ----- समाचार पत्रों में सर्वाधिक घटनायें मोटे अक्षरों में राजनीतिज्ञों की छपती है, पत्रिकायें राजनीतिज्ञों का प्रचार करती हैं, पुलिस उन अपराधियों को नहीं छेड़ती जो राजनीतिज्ञों से सम्बंधित होते हैं ----- राजनेता होना एक प्रलोभनकारी गुण बन गया । फिर क्या था - गाँवों में प्रधान के पद से लेकर भारत के प्रेसिडेन्ट पद तक चुनाव होने लगा और जीतने के लिए ईमानदारी आवश्यक गुण न रह गया वरन् तोड़ - फोड़ आवश्यक हुयी ।"[1]

वस्तुतः लोकतांत्रिक पद्धति में चुनाव की प्रक्रिया विसंगतिपूर्ण इसलिए हो गयी है, कि जनता का बहुसंख्यक भाग अशिक्षित एवं अज्ञानी है । जनता की अशिक्षाजनित अज्ञानता व मूढ़ता का फायदा उठाकर उसे चुनावी झूठे वायदों के भ्रम में डालकर प्रत्येक पार्टी उसे अपनी

---

1. नयी कविता के बाद - डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी; पृ0 - 11

तरफ खींचना चाहती है । अशिक्षित जनता भीड़ की मानसिकता का शिकार होकर किसी भी एक लहर में भेड़ - चाल से सम्मिलित हो जाती है । वे चुनाव के ठीक पूर्व उपलब्ध करायी गयी सुविधाओं के जाल में फंसकर अपना मत डालते हैं । उनकी इस मानसिकता का लाभ उठाने के लिए भ्रष्ट राजनीति में और भी नयी - नयी चाले सोंची और चली जाती हैं । नेता के चुनाव में भी पात्र अपात्र का भेद न होने से अशिक्षित एवं राजनीतिक ज्ञान से हीन व्यक्ति भी सत्ता प्राप्त कर लेता है । ऐसे में सत्ता उसे सुयोग से मिली वस्तु सी प्रतीत होती है, जिसका वह अधिक से अधिक लाभ शासन अवधि के दौरान ले लेना चाहता है । वस्तुतः व्यक्ति जीवन में नैतिकता के मूल्यों का पतन ही राजनीति में भ्रष्ट - आचरण का कारण बनती हे । आज मूल्यों का जो विघटन सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में हुआ है, उसका प्रभाव राजनीतिक जीवन पर भी पड़ा है ।

2. सामाजिक परिदृश्यः-

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में नवीन जागरूक चेतना का आविर्भाव हुआ, जो विदेशी सभ्यता - संस्कृति एवं विचारधाराओं के प्रभाव स्वरूप तथा वैज्ञानिक उन्नति एवं उपलब्धियों के फलस्वरूप मानी जा सकती है । यद्यपि स्वतंत्रता के पूर्व से ही सामाजिक सुधारों की लहर चल पड़ी थी, परन्तु स्वाधीन भारत की सरकार ने कानून में संशोधन तथा अन्य प्रयासों द्वारा एक नवीन सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया ।

भारत सरकार ने सबको स्वतंत्र समान रूप से उन्नति के अवसर प्रदान करने का उद्देश्य अपनाया । अछूतों दलितो, जन जातियों, महिलाओं तथा विकलांगों को - जिनकी स्थिति समाज में पिछड़ी हुयी थी -----सम्मानपूर्ण तथा बराबरी का दर्जा देने हेतु कुछ ठोस कदम उठाये गये । इसके लिए दो प्रकार से प्रयत्न किये गये । एक तो प्रचार - माध्यमों का उपयोग कर सामाजिक कुरीतियों एवं दोषों को दूर करने की प्रेरणा प्रदान की गयी । दूसरे , व्यावहारिक धरातल पर इन कुरीतियों से छुटकारा पाने के लिए कानून में कुछ संशोधन एवं परिवर्तन किये गये । छुआछूत की भावना को दूर करने के प्रयास स्वतंत्रता - प्राप्ति के पूर्व से ही महात्मा गांधी के नेतृत्व में किये जा रहे थे । स्वतंत्रता के पश्चात इसमें और तीव्रता आयी ।

समाज के गरीब श्रेणी के लोगों के लिए विशेष प्रयास किये गये । कुष्टरोगी , भिखमंगों को अलग रखकर उनकी चिकित्सा का प्रबंध करने का भी प्रयत्न हुआ । कारागार में अपराधियों के साथ किये जाने वाले व्यवहार में भी परिवर्तन आया तथा उन्हें सुधार कर समाज में स्वस्थ जीवन जीने के लिए आवश्यक शिक्षा देने का कार्य प्रारम्भ किया गया ।

अनुसूचित जातियों के विकास एवं उन्हें समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान करने के उद्देश्य से अश्पृश्यता का पूर्ण परित्याग, उनके लिए सार्वजनिक स्थलों के प्रयोग की स्वतंत्रता, सरकारी नौकरियों में समानता के अतिरिक्त कुछ प्रतिशत का आरक्षण, संसद तथा राज्य - विधान - मंडलों में इनके प्रतिनिधित्व की विशेष व्यवस्था तथा इनकी शिक्षा एवं आर्थिक उन्नति के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं । 1955 ई0 में सरकार ने ' अश्पृश्यता अधिनियम ' बनाकर इसे दण्डनीय अपराध घोषित किया । ' अश्पूश्यता निवारण आन्दोलन ' 1954 ई0 में ही जन - जागरण के उद्देश्य से चलाये गये । जंगली और अविकसित क्षेत्रों के लोगों के लिए तथा दलित व पिछड़ी अन्य जातियों के शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए अनेकों पाठशायें खोली गयीं । बच्चों का शोषण रोकने के लिए 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को जोखिम भरे कार्यों पर लगाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया ।

इन कानूनी संशोधनों एवं सामाजिक - जागरण की लहर का परिणाम यह हुआ है कि पुरानी सामाजिक रूढ़िया टूटने लगी है । जाति - प्रथा की विकृति पहले से कम हुयी है । कानूनी तौर पर स्वतंत्र भारत में प्रत्येक नागरिक को धर्म, जाति, लिंग आदि के भेद के बिना न्याय, समानता तथा स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार प्राप्त हैं ।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में भी स्वतंत्रता के पश्चात सुधारात्मक परिवर्तन आया । स्त्रियों का समाज में अनेक स्तरों पर शोषण हो रहा था । उनके अनैतिक उपयोग, क्रय - विक्रय, वेश्यावृत्ति इत्यादि पर कोई प्रतिबंध नहीं था । उन्हें समाज में पुरूषों से निम्न स्तर का समझा जाता था । उत्तराधिकार में उनके लिए कोई व्यवस्था न थी । उनकी शिक्षा दीक्षा की तरफ भी अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था । फलतः उन्हें विवाहिता के रूप में पुरूष की दासी बनकर जीवन यापन करना पड़ता था, उनकी अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं थी । दहेज के लिए

महिलाओं का उत्पीड़न भी किया जाता था । कम उम्र में ही कन्या का विवाह कर अपने कर्तव्य बोझ से मुक्त होने की प्रवृत्ति भी प्रचलित थी । पुरूष स्त्री को सन्तानोत्पत्ति का साधन एवं निजी सम्पत्ति समझता था । वह एक स्त्री के रहते दूसरा या कई विवाह कर सकता था ।

इन सभी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए सरकार ने कानून में संशोधन किये तथा नये कानून भी बनाये । हिन्दू - विवाह अधिनियम 1955 के द्वारा बाल - विवाह पर प्रतिबंध लगा । कन्या की न्यूनतम आयु 15 वर्ष तथा वर की 18 वर्ष कर दी गयी । स्त्रियों का शोषण एवं उत्पीड़न रोकने के लिए उन्हें न्यायिक विलगाव की सुविधा प्रदान की गयी । एक पत्नी के रहते हुए दूसरे विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया गया । इस प्रकार विवाह को मात्र अय्याशी का माध्यम बनने से रोका गया । विवाह - विच्छेद की व्यवस्था पति तथा पत्नी दोनों के लिए समान कर दी गयी । महिलाओं के लिए भी पुनर्विवाह को वैध माना गया । महिलाओं के लिए भी पुनर्विवाह को वैध माना गया । इससे महिलाओं में आत्म - सम्मान, आत्म - विश्वास एवं स्वतंत्र जीवन यापन का साहस पैदा हुआ । समाज की मानसिकता में भी नारी के स्वतंत्र एवं सम्मानपूर्ण अस्तित्व की पहचान की गयी ।

उत्तराधिकार में भी नारियों को पूर्व की अपेक्षा पर्याप्त समानता के अधिकार दिये गये हिन्दू उत्तराधिकार नियम 1956 में स्त्रियों को अपने अधिकार में रखी गयी सम्पत्ति की स्वामिनी माना गया । पुत्रों के साथ पुत्रियों को भी पिता की सम्पत्ति में अधिकार मिलने की व्यवस्था की गयी । परन्तु फिर भी इस आधिनियम में स्त्रियों को सम्पत्ति में पुरूषों के बराबर अधिकार नहीं दिये गये । वेश्यावृत्ति उन्मूलन के लिए भी कानून बने तथा वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य करने को दण्डनीय अपराध माना गया । मद्रास तथा बम्बई में देवदासी प्रथा की आड़ में वेश्यावृत्ति के उन्मूलन के लिए कानून बनाया गया । देवदासियों को भी विवाह करने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी ।

कानून में स्त्रियों के लिए शिक्षा, रोजगार, स्वतंत्रता आदि के समान अवसर प्रदान किये गये , पर सही अर्थों में उन्हें ये सुविधायें अभी भी नहीं मिली हैं । परिवार में पुत्री एवं स्त्री के रूप में अभी भी मध्यम एवं निम्न वर्गों में उनकी दशा अधिक नहीं सुधरी है ।

अन्तर्जातीय एवं अन्तरधार्मिक विवाहों की प्रवृत्ति भी बढ़ी है, विधवा - विवाह, विवाह - विच्छेद कर पुनर्विवाह आदि के द्वारा नारी को शोषण से आंशिक रूप में मुक्ति मिली है । आंशिक रूप में इसलिए क्योंकि सामाजिक जागृति के बावजूद भारतीय समाज का अधिसंख्या भाग आज भी पुरानी शताब्दियों के विचारों व रीति रिवाजों में जीता है । सतही तौर - तरीकों में वह आधुनिकता को फैशन की तरह अपनाता है, पर विचारों से वह दकियानूसी है । स्त्रियों को कानूनी अधिकार तो मिले हैं पर समाज की मानसिकता उन्हें अब भी दूसरा दर्जा देने की है । सरकार महिलाओं व बालिकाओं की उन्नति के लिए प्रयासरत है, अनेकों संस्थायें महिला कल्याण का कार्य कर रहीं हैं, पर अशिक्षा, पर निर्भरता अब भी उनपर थोपी जा रही है । दकियानूसी विचार वाले परिवार की स्त्रियाँ व बालिकायें उक्त कानूनों का लाभ कम ही ले पाती है । दहेज - विरोधी कानून बनने के बाद से दहेज - हत्याओं में वृद्धि ही हुयी है । विवाह - विच्छेद इत्यादि की सुविधा से पारिवारिक विघटन एवं तनाव की स्थितियाँ भी बढ़ी हैं ।

स्वतंत्र भारत में शिक्षा के प्रसार के लिए प्रौढ़ - शिक्षा , बच्चों की प्राइमरी शिक्षाह तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गयी । विधवाओं के लिए पेन्शन की व्यवस्था की गयी । शिक्षा की नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया, परन्तु इसके प्रचार - प्रसार की पर्याप्त व्यवस्था की गयी । व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था न होने तथा शिक्षा की डिग्री को ही नौकरियों में महत्व दिये जाने से शिक्षित बेरोजगारों की संख्या दिन - प्रतिदिन बढ़ती जा रही है । नौकरी प्राप्त करने के लिए किसी भी तरह शैक्षिक - योग्यता का प्रमाण - पत्र धारण करने पर बल दिया जाने लगा है । शिक्षा अब मानव के संस्कार को उच्चतर बनाने के स्थान पर नौकरी प्राप्त करने का माध्यम भर मान ली गयी है । इसी मानसिकता के तहत तथा बढ़ती हुयी बेरोजगारी से आतंकित युवा - वर्ग परीक्षाओं में नकल की ओर अधिक प्रवृत्त हुए हैं ।

स्वतंत्र भारत में हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया, पर साथ ही अंग्रेजी को भी सरकारी कामकाज की सहायक भाषा के रूप में रखा गया है । हिन्दी - भाषा के लिए सरकारी एवं बुद्धिजीवियों के स्तर पर जो उन्नति के प्रयत्न किये गये हैं, वे हिन्दी के विकास में किस प्रकार सहायक हैं, यह मुक्तिबोध के निम्न कथन से स्पष्ट हो जाता है -----

" जो भारतीय संस्कृतिवादी एक ओर हिन्दी को दुरूह से दुरूह बनाने पर तुले हुए हैं, वे दुरूह से दुरूह पारिभाषिक शब्दावली भी बनाते हैं और दूसरी ओर वे हैदराबाद में हिन्दी यूनिवर्सिटी की स्थापना की बात भी करते हैं ।"[1]

हिन्दी - भाषा के समुचित विकसित न हो पाने से, उच्च शिक्षा में वैज्ञानिक ज्ञान - विज्ञान के समुचित ग्रहण के लिए अंग्रेजी शिक्षा अनिवार्य सी हो जाती है । पर जो तथाकथित भारतीय संस्कृतिवादी हिन्दी की हिमायत करते हैं, वे सहज रूप में अन्य भाषाओं (उर्दू) के शब्दों को हिन्दी में ग्रहण न करके उसके विकास में बाधा पहुँचाते हैं । इस सन्दर्भ में मुक्तिबोध लिखते हैं -----

" सदियों से भारत में जो कानूनी शब्दावली प्रचलित है, उसका तिरस्कार करना यह बतलाता है कि हम अपनी विरासत, अपनी परम्परा के प्रति मात्र सम्प्रदायवादी दृष्टि अपना रहे हैं ।"[2]

इस प्रकार स्वतंत्रत भारत में व्यक्ति मात्र के सामाजिक जीवन को स्वस्थ विचारधारा से मुक्त करने के प्रयास कानूनी तौर पर किये गये हैं । पर व्यावहारिक जीवन में सर्वत्र व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में सुधार नहीं हो पाया है । गरीबी एवं अमीरी के अनुसार समाज में उच्चवर्ग, निम्न वर्ग, एवं मध्यम वर्ग, का उदय हुआ है । इनमें से उच्च वर्ग तो अपनी सुविधानुसार परम्परा से प्राप्त नैतिक मूल्यों को तोड़ता गढ़ता है । वह आधुनिकता में विश्वास करता है, वैभवपूर्ण जीवन - जीता है । मध्यम वर्ग, उच्च वर्ग का ही अनुसरण करना चाहता है, पर वैसा आधुनिक जीवन जीना उसके लिए संभव नहीं हो पाता, जैसा उच्च वर्ग जीता है । फलतः वह एक खोखली नकली जिन्दगी जीता है । वह उच्च वर्गीय मूल्यों को अपनाता हुआ भी भीतर से कुंठित होता है । निम्न वर्ग इन्हीं दो वर्गों के नीचे पिसता रहता है । इस वर्गीय सामाजिक - व्यवस्था में नैतिक मूल्यों का विघटन प्रारम्भ होता है, जिसका प्रमुख कारण समाज में व्याप्त असमानता व मध्यवर्गीय मानसिकता ही है । मध्यवर्ग में नैतिक मूल्यों का ह्रास सर्वाधिक है,

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 6 - मुक्तिबोध; पृ0 - 42
2. मुक्तिबोध रचनावली - 6 - लेख - अंग्रेजी जूते में हिन्दी को फिट करने वाले ये भाषाई रहनुमा ; पृ0 - 41

क्योंकि अपने खोखले दोहरे जीवन स्तर को जीने व बनाये रखने के संघर्ष में वे टूटते जाते हैं । निम्नवर्ग में गरीबी व अशिक्षा के कारण नैतिक पतन हो रहा है । राजनीतिक भ्रष्टाचार का प्रभाव समाज पर पड़ रहा है तथा स्वार्थ की प्रवृत्तियाँ परस्पर स्नेह, विश्वास एवं भाइचारे को समाप्त करती जा रही हैं । शहरी मध्यवर्ग की मानसिकता का उद्घाटन करते हुए डॉ0 राजेन्द्र मिश्र लिखते हैं - " जन्म से ही अपने अस्तित्व में विभाजित यह वर्ग ' एक आदमी दो दिमाग' की ट्रेजेडी का सबसे बेहतर उदाहरण है । एक में ईश्वर है, पौराणिक प्रथायें हैं, शरण्य की असहाय प्रार्थनायें हैं । दूसरे में आधुनिकता की अधकचरी पर आकर्षक रूढ़ियाँ हैं, उनके मोहक प्रतीक - विह्न हैं । एक में वेसुधैव कुटुम्बकम ' से मिलते - जुलते हजारों उदात्त शब्द और दूसरे में कर्म की संशयहीन क्रूरता और जाने उसकी कितनी अवसरजीवी मुद्रायें हैं । इन दोनों में से किसी एक से भी बाहर आने में उसे दहशत होती है ।"[1]

स्वतंत्रता के बाद के सामाजिक ढाँचे का एक महत्वपूर्ण अंग है नगर - सभ्यता । ग्रामीण परिवेश से अलग औद्योगिक विकास की चकाचौंध से युक्त नगरीय जीवन का आकर्षण लोगों को गाँवों से शहरों की तरफ खींच रहा है । गाँवों से शहरों में बढ़ती यह भीड़, जीवन स्तर को नगरीय सभ्यता में ढालने की होड़ में तनावग्रस्त व कुंठित हो रही है । नगर - सभ्यता ने खोखला जीवन, प्रदर्शन की प्रवृत्ति, फैशन एवं अनुकरण तथा परस्पर प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति से प्रेरित क्षुद्र स्वार्थ - वृत्ति को जन्म दिया है । ऐश्वर्यमय जीवन की प्राप्ति का लोभ अपराधों में भयानक वृद्धि कर रहा है । नगर में एक अलग कृत्रित सभ्यता का विकास हो रहा है, जिससे मानव - जीवन के वास्तविक सुख - दुख से सरोकार कम होता जा रहा है । स्वतंत्रता के पश्चात की इसी सामाजिक स्थिति को व्यक्त करते हुए गोविन्द द्विवेदी ने लिखा है ----- " यह आकस्मिक नहीं कि सन् 50 - 53 के आस - पास देश का वातावरण बड़े पैमाने पर नये -नये बदलावों से नियमित होने लगा था । मशीनी विकास तथा नयी सभ्यता ने, खासकर शहराती जीवन की छोटी-बड़ी सभी गतिविधियों को तीव्रता से प्रभावित करना शुरू कर दिया था । नतीजा हुआ कि शहरों में लगातार भीड़, अलगाव, मूल्य-संकट तथा बेचारगी के भावों का दबाव बढ़ता गया ।"[2]

---

1. नयी कविता की पहचान - डॉ0 राजेन्द्र मिश्र; पृ0 - 14
2. आलोचना-जनवरी-मार्च, 71; लेख - 'नयी कविता: भारतीय मनुष्य के सन्दर्भ में;पृ0-70

3. **आर्थिक परिदृश्य:-**

स्वतंत्रता के पश्चात भारत को गंभीर आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा । यह आर्थिक संकट विस्थापितों के पुनः स्थापना की समस्या, कश्मीर में युद्ध की परिस्थितियों तथा खाद्य एवं कच्चे माल की कमी के कारण उत्पन्न हुआ था । सरकार ने इन चुनौतियों का सामना कर धीरे - धीरे इनका समाधान किया । अप्रैल 1948 में सरकार ने औद्योगिक नीति को सुनिश्चित किया, जिससे विकास कार्यों का प्रारम्भ हुआ ।

देश की आर्थिक प्रगति के लिए पंचवर्षीय योजनायें बनायी गयीं । प्रथम पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य रखा गया था उत्पादन में वृद्धि करना तथा विषमताओं को दूर करना । द्वितीय पंचवर्षीय योजना " अधिक महत्वाकांक्षी लक्ष्यों की ओर उन्मुख थी और इसमें 4800 करोड़ रूपये की पूँजी का उपयोग सार्वजनिक क्षेत्र में करने का निश्चय किया गया था । "[1] इन दोनों योजनाओं के द्वारा उत्पादन में वृद्धि हुयी । परन्तु देश में बेरोजगारों की संख्या दिन - प्रति - दिन बढ़ती ही गयी । " इस बीच बेकारों की संख्यायें चालीस लाख की वृद्धि हुयी तथा तृतीय योजना के प्रारम्भ में 90 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे । चतुर्थ योजना के आरम्भ में यह संख्या बढ़कर तीन करोड़ पचास लाख हो गयी ।"[2]

तृतीय पंचवर्षीय योजना का काल भारत में घोर संकट का काल था । इस योजना के मध्य चीन तथा पाकिस्तान से दो युद्ध हुए । पंजाब तथा दक्षिण में सूखा पड़ा तथा देश में आपात स्थिति की घोषणा की गयी । पाकिस्तान से युद्ध के समय (1965 ई० में) से अमरीका ने भारत को सहायता देना बंद कर दिया । इन सब कारणों से देश की आर्थिक स्थिति खराब हो गयी तथा योजना अपने लक्ष्य - पूर्ति में विफल रही । इस प्रकार आर्थिक प्रगति के लिए सरकार योजनायें तो बनाती रहीं, पर परिस्थितिवश तथा कुछ योजनाओं के सही ढंग से क्रियान्वयन के अभाववश, गरीबी निरंतर बढ़ती रही । इस सम्बंध में प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं -----

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और हिन्दी - साहित्य - कृष्ण बिहारी मिश्र; पृ0-316
2. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और हिन्दी - साहित्य - कृष्ण बिहारी मश्र;पृ0-317

" 1962 भारत के लिए बहुत भयानक वर्ष था । एक तरफ दो तिहाई जनता भुखमरी के बिन्दु पर गुजारा कर रही थी, दूसरी तरफ निरंतर दिखाये जा रहे सब्ज - बाग और वास्तविकता के बीच खाई चौड़ी होती जा रही थी ।"[1]

सरकार ने भूमि - सुधार एवं मध्यस्थों के लोप के लिए जमीदारी उन्मूलन अधिनियम पास किये । 1955 - 56 तक सारे देश से मध्यस्थों को लगभग समाप्त कर दिया गया । चकबंदी तथा सहकारी खेती की व्यवस्था की गयी, जिससे छोटे - छोटे खेतों वाले काश्तकारों को लाभ पहुँचा । अप्रैल सन् 1951 में आचार्य बिनोबा भावे के नेतृत्व में भूदान आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसमें बड़े भू - स्वामियों से दान में भूमि प्राप्त कर छोटे तथा गरीब किसानों में वितरित करने की व्यवस्था की गयी ।

सरकार द्वारा आर्थिक प्रगति के हेतु, विद्युत शक्ति का विकास तथा खेती के लिए वैज्ञानिक विधि, अच्छे औजार, उत्तम बीज एवं खाद इत्यादि की समुचित व्यवस्था की गयी । परन्तु मूल्यों में वृद्धि बड़ी तीव्र गति से हुई है । मूल्य वृद्धि से देश के गरीब व मध्यवर्ग अधिक त्रस्त हुए हैं । मूल्य - वृद्धि की सर्वाधिक मार गरीब व निम्न - वर्ग पर पड़ी है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े भूमिहीन किसानों का शोषण करते हैं । सरकार द्वारा ग्राम के गरीब किसानों की प्रगति के लिए उपलब्ध कराये गये धन को भ्रष्ट अफसरशाही के कारण बीच के सम्पन्न लोग हड़प जाते हैं । शहरों में पूँजीपति वर्ग व मजदूर वर्ग के रूप में दो भिन्न आर्थिक स्थितियों वाले लोग हैं । मजदूरों व मिल - मालिकों में संघर्ष, हड़ताल, दंगे - फसाद, तालाबंदी इत्यादि की स्थितियाँ पैदा होती हैं । पूँजीपति वर्ग चाहे गाँव के बड़े किसान के रूप में हो, चाहे शहर के मिल मालिक के रूप में, गरीबों का शोषण दोनों अपने - अपने ढंग से करते हैं । फलतः गरीब और अधिक गरीब तथा धनवान और अधिक धनवान होता जा रहा है गरीबी, बेरोजगारी तथा मंहगाई रोकने के चुनावी वायदे झूठे सिद्ध होते हैं । भ्रष्ट अफसर व नेता की मिली भगत से जनता के लिए विनियोजित धन जनता तक पहुँचने नहीं दिया जाता है । आर्थिक शोषण - चक्र अपनी एक वर्ग - भावना बना कर चलाया जाता है । इस सम्बंध में

---

1. रचना एक यातना है - प्रभाकर श्रोत्रेय; - पृ0 - 8

मुक्तिबोध इस वर्गीय भावना को साहित्य तक में व्याप्त देखते हैं ----- " समाज में, शोषकों, उत्पीड़कों और उनके साथियों का जोर बढ़ गया है । नयी कविता के क्षेत्र में भी दो दल तैयार हो रहे हैं । एक दल वह है जो उच्च - मध्य वर्ग का अंग है; दूसरे वे हैं, जो निचले गरीब मध्य वर्ग से सम्बंधित हैं । उनकी वर्गीय प्रवृत्तियाँ न केवल उनके काव्य में, वरन् साहित्य - सम्बंधी उनके सिद्धान्तों में परिलक्षित होती है ।"[1]

देश में विषमता ग्रस्त वर्गीय सभ्यता के कारण ही युवा - वर्ग में सातवें और आठवें दशक की अवधि में विद्रोह पनपता रहा । ' नक्सलबाड़ी में युवा क्रान्तिकारियों ने किसानों के हित में, भूपतियों को बलपूर्वक बेदखल किया । वे ' भारतीय साम्यवादी दल ' (मार्क्सवादी - लेनिनवादी) की स्थापना करते हैं । चारू मजूमदार, कानु सान्याल इस सशस्त्र क्रान्ति के युवा - आन्दोलन के आयोजित और विचारक थे । बंगाल आंध्र, पंचाब, केरल के अंचलों में हिमालय की तराई में इस विद्रोह के केन्द्र स्थापित किये गये । वोट की व्यवस्था से उभरे मध्यवर्गीय शासक दलों की आपसी खींचतान और भ्रष्टाचार से विकास कार्यों में लगे अरबों - खरबों रूपये का लाभ गांवों में प्रबल किसानों या भूपतियों को होता है और नगरों में नव - समृद्ध वर्ग उत्पन्न हो जाता है , जिसमें ठेकेदारों, नौकरशाहों, बड़े नेताओं, आयात निर्यात के हथकंडे अपनाने वालों, दलालों के घर भर जाते हैं ।'[2]

इस प्रकार सरकार की आर्थिक प्रगति की अनेकों योजनाओं एवं गरीबी हटाने के आकर्षक नारों के बाद भी मजदूर व किसान वर्ग को विशेष लाभ नहीं मिला है । सरकार द्वारा दिया गया धन बिचौलिये खा जाते हैं । गाँवों में बड़े भूपतियों का जन्म हुआ है, जो छोटे किसानों तक आर्थिक राहत पहुँचने नहीं देते ।

स्वतंत्र भारत की आर्थिक समस्याओं एवं संकटों के लिए उसकी विनिमय एवं व्यापार

---

1. नयी कविता का आत्म - संघर्ष - मुक्तिबोध; पृ0 - 32
2. समकालीन कविता और धूमिल - डॉ0 मंजुल उपाध्याय; पृ0 - 33, 34

की पद्धति भी उत्तरदायी है । " राष्ट्रीय अर्थतंत्र का बहुत महत्वपूर्ण अंग है विदेश - व्यापार ' हमारे विदेश व्यापार पर ब्रिटिश इजारेदारों का नियंत्रण है । इसलिए वह मुख्यतः साम्राज्यवादी विश्व बाजार तक, खास तौर से ब्रिटिश और अमरीकी बाजार तक सीमित है । नतीजा यह कि भारत पर व्यापार की असमान शर्ते लादी गयी हैं और हमारी संपदा लूटी जा रही है ।' (डाकूमेन्ट्स ऑफ दि हिस्ट्री ऑफ दि कम्युनिस्ट पार्टी आफॅ इन्डिया, पृ0 - 445 "[1] (

विदेशों से असमान व्यापारिक शर्तो पर व्यापार, भारत की राजनीतिक भ्रष्टता के कारण है । इस सम्बंध में डॉ0 राम विलास शर्मा का मत है कि " भारत में जितना आर्थिक संकट है, उससे ज्यादा राजनीतिक संकट है । वह राजनीतिक संकट स्वतः स्फूर्त नहीं है, उसे योजनाबद्ध तरीके से संचालित किया गया है । समय - समय पर कांग्रेसी नेता कहते भी हैं कि यह सब विदेशी ताकतें करा रही हैं । किन्तु वे साफ - साफ उन ताकतों का नाम नहीं लेते, कारण यह है कि उन्हीं से वे अत्यंत मधुर आर्थिक और कूटनीतिक संबंध कायम किये हुए हैं ।"[2]

इस प्रकार भारत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार में स्वयं शोषण का शिकार है । यह उसकी (सत्ता पक्ष की) राजनीतिक कूटनीति से भी सम्बद्ध है । राष्ट्र के भीतर धन का उपयोग उचित पात्रों व व्यक्तियों में नहीं हो पाता । इसमें भी भ्रष्ट राजनीति एवं अफसरशाही के कारण ही व्यवधान उपस्थित होता है । देश की आर्थिक प्रगति के लिए तमाम योजनाओं की विडम्बनामय परिणति यही है कि आज भी गरीबी एवं ऋण की मार से देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग त्रस्त एवं संतप्त है ।

---

1. प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल - डॉ0 रामविलास शर्मा; पृ0 - 30
2. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - डॉ0 रामविलास शर्मा; पृ0 - 23

4. धार्मिक परिदृश्य:-

स्वतंत्रता - पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी से ही धार्मिक सामाजिक चेतना बीसवीं शताब्दी में भी गतिशील रही । धर्म को उसके रूढ़, मृतप्राय खोखले रूप से मुक्ति दिलाने के लिए उसकी नवीन व्याख्यायें की गयी । उन्नीसवीं शताब्दी में ही ब्रह्म समाज, आय - समाज, रामकृष्ण मिशन आदि आन्दोलनों के द्वारा भारतीय हिन्दू धर्म को उसके रूढ़ कर्मकाण्डी रूप से अलग करके नैतिक पक्ष को मान्यता दी गयी । इस प्रकार ये धार्मिक सुधार - आन्दोलन सामाजिक - चेतना से सम्पन्न थे । इनके द्वारा भारतीय धार्मिक चेतना नैतिक मूल्यों से मुक्त हुयी । इसमें त्याग, अहिंसा, साहिष्णुता जैसे उच्च नैतिक आदर्श धार्मिक भावना के रूप में ग्रहीत हुए । परन्तु अधिकांश भारतीयों में ये सुधार - आन्दोलन केवल चेतना में उद्वेलन पैदा करके रह गये तथा व्यावहारिक जीवन में कर्मकांड, परम्परा का आग्रह तथा आदर्शवाद की धारणा का प्राधान्य बना रहा ।

महात्मा गांधी के धार्मिक - विचारों का प्रभाव, स्वतंत्रता - पूर्व से लेकर बाद तक के काल में, जनमानस पर पड़ा । महात्मा गांधी ने भी आत्मिक - उत्थान पर बल दिया था । स्वतंत्रतापूर्व के गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन, अहिंसात्मक क्रान्ति, शान्ति एवं सद्भावनापूर्ण आन्दोलनों ने उनके धार्मिक विचारों व नैतिक आदर्शों को व्यावहारिक भूमि प्रदान कर दी थी । सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता गांधी जी के नैतिक - धार्मिक मूल्यों की व्यापक स्वीकृति एवं प्रभाव का प्रतीक थी । बालगंगाधर तिलक ' गीता के कर्म - सिद्धान्त का महत्व बतला चुके थे । गांधी जी " वैयक्तिक जीवन में सदैव आत्म - निग्रह, ब्रह्मचर्य, त्याग तथा अपरिग्रह की शिक्षा देते थे ।"[1]

स्वतंत्रतापूर्ण से ही विभिन्न आन्दोलनों के द्वारा धार्मिक संकीर्णता के परित्याग की जो मनोभूमि निर्मित हुयी थी, वह स्वतंत्रता के पश्चात उत्तरोत्तर विकसित होती गयी । गांधीवादी विचारधारा तथा आर्य समाजी विचारों ने धार्मिक दृष्टिकोण में सबसे अधिक परिवर्तन उत्पन्न किये । ये परिवर्तन नैतिक एवं आत्मिक शुद्धता के महत्व प्रतिपादन के रूप में थे ।

---

1. साहित्य और संस्कृति - डॉ0 देवराज; पृ0 - 135

' कुल मिलाकर बीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज में पवित्रता और शुद्धता का जितना व्यापक प्रसार आर्य - समाज और गांधीवाद के द्वारा हुआ, उतना कदाचित और किसी आन्दोलन के द्वारा नहीं हो सका ।'[1]

धार्मिक जागरण की इसी लहर में भारत सरकार की सामाजिक सुधार - सम्बंधी नीतियों के तहत किये गये कानूनी संशोधन एवं परिवर्द्धन ने भी परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को तोड़ने के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार कर दिया । इससे छूआछूत, मंदिरों में अश्पृश्यों का प्रवेश - निषेध, कुष्ट - रोग को धार्मिक अभिशाप समझना; स्त्रियों को पति को परमेश्वर समझकर पूजने तथा उसके कुकृत्यों का भी विरोध न करने, पति के साथ सती होने, विधवा विवाह न होने देने, कन्यादान के फल हेतु बाल - विवाह करने इत्यादि की धर्मसम्मत रूढ़ियों में परिवर्तन तथा रूकावट आयी । मनुष्य मात्र को समभाव से देखने की चेतना का भी प्रचार प्रसार हुआ । अंग्रेजों के काल में जो ईसाई मिशनरियाँ सक्रिय थीं, वे भी अपना कार्य करती रहीं इनके द्वारा दलित, शोषित निर्धन जनों को, आर्थिक एवं सामाजिक असहायतावश, ईसाई धर्म ग्रहण कराने का अभियान कमबेश चलता रहा ।

वैज्ञानिक उन्नति एवं नवीन विचारधाराओं के सम्पर्क से भी भारतीय मानस में धर्म के रूढ़ स्वरूप में परिवर्तन घटित हुए । मनुष्य के चन्द्रमा पर पहुँचने जैसे वैज्ञानिक उपलब्धि तथा टेस्ट ट्यूब बेबी के जनम जैसी घटनाओं ने मनुष्य में तर्कशक्ति को विकसित कर धर्म के वैज्ञानिक चिन्तन की प्रेरणा उत्पन्न की । पाश्चात्य विचारधाराओं में अस्तित्ववादी दार्शनिक सार्त्रे व कार्ल मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन ने ईश्वर की सत्ता का निषेध किया । फलतः साहित्य में भी ईश्वर की मृत्यु की घोषणा की गयी तथा ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाया जाने लगा । चिकित्सा पद्धतियों में सन्तानोंत्पत्ति पर रोक के साधन अविष्कृत होने से तथा सामाजिक प्रतिबंधक्षीण होने से शारीरिक पवित्रता का भी महत्व कम होने लगा । वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास ने शारीरिक पवित्रता के स्थान पर आत्मिक पवित्रता पर बल देने की

---

1. हिन्दी - साहित्यों - प्र0 सं0 - डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा; पृ0 - 42 का इतिहास -

भावना विकसित की । इस प्रकार धार्मिक रूढ़ियों, कर्मकांडों का महत्व शिक्षित एवं जागरूक समुदाय में नगण्य रह गया । ईश्वर से अधिक महत्व मनुष्य को दिया गया तथा मानवता के गुणों को धर्म के मूल्य के रूप में स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ी ।

इतना सब कुछ होने के बाद भी प्राचीन धार्मिक रूढ़िया समाज से लुप्त नहीं हुयी है । अब भी विभिन्न धर्मो के लोग अपने - अपने धर्मो का झंडा लेकर चलते दिखते हैं । वस्तुतः स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक भ्रष्टाचार ने धर्म को भी अपने लिए एक हथियार की तरह प्रयुक्त किया है । भारत को धर्म निरपेक्ष देश घोषित करके यहाँ सभी धर्मो के लोगों को अपने धर्म - पालन की स्वतंत्रता एवं समान नागरकि अधिकार दिये गये । पर अलग - अलग धर्म के लोगों में वैमनस्य की भावना पैदा करने की राजनीतिक चाल के तहत चेष्टा की जाती है । धर्म के साम्प्रदायिक उन्माद का विष स्वतंत्र - भारत में दिनोदिन बढ़ता जा रहा है । हिन्दू - मुस्लिम दंगे, हिन्दू सिख दंगे इसी साम्प्रदायिक धार्मिकता के फलस्वरूप होते हैं । पंचाब में धर्म के आधार पर ही आतंकवाद का जन्म हुआ है तथा असंख्य निर्दोष लोगों की हत्यायें हुयी हैं । इस प्रकार साम्प्रदायिक भावना के रूप में धर्म प्रेम, दया, करूणा के स्थान पर घृणा के बीज बो रहा है ।

सामाजिक जीवन में धार्मिक विश्वासों में कमी आई है, पर अब धर्म का पालन साम्प्रदायिक हठधर्मिता के कारण अधिक द्रृष्टिगत हो रहा है । व्यक्ति भीतर से धर्म पर आस्था भले ही न रखता हो समाज में एक राजनीतिक दलबंदी के रूप में धार्मिक अनुष्ठानों को महत्व दे रहा है । धर्म के ठेकेदार पंडित, पुरोहित भी आज धर्म को आजीविका के साधन के रूप में ही अपनायें हुए हैं । बड़े - बड़े पूँजीपति कालाधन लगाकर मंदिर एवं धर्मशालायें बनवाते हैं । मुस्लिम धर्म अभी भी अपने रूढ़िगत रूप में है, क्योंकि मुसलमानों के धर्म - सम्बंधी नियम पर भारतीय कानून लागू नहीं होता । समाज में व्यवहारिक स्तर पर ऊँच - नीच, छुआछूत, धार्मिक कट्टरता आदि की भावना में कमी तो आई है, पर यह पूर्णतया समाप्त नहीं हुयी है । आज मानव के चेतन - स्तर एवं व्यावहारिक - जीवन में एक संघर्ष एवं तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । समाज पुराने से निकल कर नये में प्रवेश कर रहा है, पर प्राचीन मूल्यों के गहरे

संस्कार उसे नवीन मूल्यों में व्यक्तित्व को पूर्णतः ढालने नहीं देते । परिवर्तित परिवेश में निर्मित नवीन धार्मिक - नैतिक मूल्य एवं प्राचीन मूल्यों की टकराहट आज के मानव जीवन को असहज, आडम्बरपूर्ण एवं खोखला बना रही है ।

5. वैचारिक परिदृश्य:-

साहित्यिक अध्ययन के सन्दर्भ में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य के ठोस अथवा वस्तुगत व्योरे, के अतिरिक्त उसके वैचारिक पक्ष पर भी दृष्टि डालना आवश्यक है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता प्रयोगवादी एवं नयी कविता है । इन्हीं वैचारिक परिप्रेक्ष्यों में इसका (प्रयोगवादोत्तर कविता का) विकास हुआ । प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिवादी स्वरों की प्रधानता है । इस पर व्यक्तिवादी विचारधाराओं का प्रभाव है । प्रयोगवादोत्तर काव्य - दृष्टि क्रमशः समाजोन्मुख होती हुयी, प्रगतिवादी रूढ़ियों मुक्त परन्तु मार्क्सवादी प्रभाव लिए हुए प्रगतिशील कवियों के कृतित्व के रूप में नयी कविता को समृद्ध करती रही है । इन कवियों के कृतित्व पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव है । गांधीवाद भी स्वातंत्र्योत्तर कविता एवं जन - जीवन को नयी चिन्तन - धारा से अनुप्राणित करता है ।

प्रयोगवादोत्तर कविता पर जिन व्यक्तिवादी विचारधाराओं का प्रभाव है, वे पाश्चात्य चिन्तकों, विचारकों एवं मनोवैज्ञानिकों की नवीन स्थापनाओं के द्वारा भारतीय - जन - मानस में विशेषकर प्रबुद्ध वर्ग में - विदेशी ज्ञान - विज्ञान के अध्ययन एवं सम्पर्क द्वारा जागृत हुयीं ।

स्वातंत्र्योत्तर वैचारिक परिदृश्य की व्यक्तिवादी चिन्तन - धारा में फ्रायड की मनोवैज्ञानिक स्थापनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । फ्रायड के विचार में मनुष्य की मूल प्रवृत्ति 'कामवृत्ति' है । व्यक्ति के जीवन के हर क्षेत्र का संचालन मूलतः उसकी इसी मूलप्रवृत्तिगत प्रेरणा द्वारा होता है । फ्रायड ने मानव - व्यक्तित्व के तीन भाग किये हैं, इड, अहं तथा आदर्श । ' इड ' का सम्बन्ध मूलप्रवृत्ति (काम) से है । शिशु में ' इड ' ही विकसित रहता है । ' इड ' कामवृत्ति ' का प्रारम्भिक निर्द्वन्द्व रूप है, जिसमें सामाजिक औचित्य, अहं आदि का प्रभाव न होने से दमन की प्रक्रिया भी नहीं होती ।

आयु बढ़ने के साथ - साथ व्यक्ति में ' अहं ' का विकास होता है तथा ' आदर्श अहं ' की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है । इसके द्वारा मूल वृत्ति के दमन का कार्य प्रारम्भ होता है फ्रायड ने शैशव - अवस्था में माँ तथा पुत्र के सम्बंध में भी इसी कामवृत्ति का प्रभाव माना है । इसी प्रकार पिता तथा पुत्री के आकर्षण का कारण भी अचेतन - स्तर पर क्रियाशील कामवृत्ति को माना है । फ्रायड ने इसके लिए ' लिविडो ' शब्द का प्रयोग किया है । सामाजिक प्रतिबंधों तथा आदर्श अहं के कारण कामवासना के दमन के फलस्वरूप ही अनेकों रोगों का जन्म होता है । इस प्रकार फ्रायड की विचार धारा समाज में नैतिकता में आग्रह रखने वाले लोगों के अज्ञात अचेतन मन की पर्तो को खोलकर उसके नग्न वास्तविक स्वरूप को सामने रख देती है । फ्रायड के अनुसार दमित अनैतिक इच्छायें व्यक्ति के अचेतन मन में दबकर पूर्णतः विलीन हो जाती है, पर वे रोगों के रूप में प्रकट हो जाती है । उपचेतन में भी कुछ इच्छायें रहती हैं जो उपयुक्त अवसर पाकर प्रकट हो उठती हैं ।

फ्रायड के अनुसार स्वप्न अतृप्त दमित यौन - इच्छाओं की पूर्ति का माध्यम हैं । ये स्वप्न प्रतीकों के रूप में आते हैं तथा इनका प्रतीकार्थ यौन भावनाओं से सम्बद्ध होता है । स्वप्न की भाँति ही दिवास्वप्न भी व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति का माध्यम होते हैं, जिनमें इच्छित या कल्पित घटनाओं - " या तो आकांक्षा की अहंकार मूलक लालसाओं को, या सत्ता की लिप्सा को अथवा पात्र की कामुक इच्छाओं को तृप्त करती हैं ।"[1]

साहित्यकार चूँकि सृजनकर्ता होता है, इसलिए उसके दिवास्वप्न साहित्य में रूपान्तरित हो जाते हैं । अन्य लोगों में इन दिवास्वप्नों का अन्त भिन्न - भिन्न प्रकार से होता है । दिवास्वप्नों की व्याख्या साहित्य के सन्दर्भ में करते हुए फ्रायड कहते हैं कि "उन्हें बदली हुयी परिस्थियों के अनुकूल बना लिया जाता है । ----- वे काव्य - रचना का उपादान बन जाते हैं, क्योंकि लेखक अपने दिवास्वजों का रूप बदलकर या उन्हें छोटा बड़ा करके, उनमें से ही वे स्थितियाँ पैदा करता है, जो वह अपनी कहानियों, उपन्यासों और नाटकों

---

1. मनोविश्लेषण - फ्रायडकृत; अनुवादक - देवेन्द्रकुमार वेदालंकार; पृ0 - 88

के रूप में पेश करता है ।"[1]

फ्रायड की इन स्थापनाओं से परिचित प्रबुद्ध वर्ग - विशेषकर साहित्यिक - वर्ग के लिए अब नैतिकता के प्रतिमान बदल गये । कामवासना को मूलप्रवृत्ति मानने तथा अचेतन के रहस्य से परिचित हो जाने के पश्चात कवियों या लोगों में यौन - वर्जनाओं के प्रति उपेक्षा - दृष्टि विकसित हुयी । **अज्ञेय** ने इसे इन शब्दों में स्वीकार किया है ----- " आधुनिक युग का साधारण मनुष्य यौन - वर्जनाओं का पुंज है । उसके जीवन का एक पक्ष है उसकी सामाजिक रूढ़ि की एक लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ विकसित नहीं हुयी और दूसरा पक्ष है स्थिति - परिवर्तन की असाधरण तीव्र गति, जिसके साथ रूढ़ि का विकास असंभव है । इस विन्यास का परिणाम है कि आज के मानव का मन यौन - परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनायें दमित हैं, कुंठित हैं । उसकी सौंदर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है । उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं ।"[2]

फ्रायड के अतिरिक्त एडलर तथा युंग ने भी मानव की मूलप्रवृत्ति की व्याख्या प्रस्तुत की । युंग ने फ्रायड के ही सिद्धान्तों को थोड़े से परिवर्तन एवं विस्तार के साथ प्रस्तुत किया । एडलर ने कामवृत्ति को मानव की मूलप्रवृत्ति स्वीकार न करके ' अहम् ' को अधिक महत्वपूर्ण माना । इन मनोवैज्ञानिक खोजों का साहित्य के क्षेत्र में एक और प्रभाव दृष्टिगत होता है । नयी कविता के कवियों में मनोविश्लेषणात्मकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुयी । मुक्तिबोध का काव्य इस प्रवृत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है । उनके काव्य विषयक चिन्तन में भी मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । फ्रायड की स्थापनाओं से प्रभावित होते हुए भी कवि अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है । मुक्तिबोध के इन विचारों को उनकी प्रस्तुत पंक्तियों में देखा जा सकता है ----- " फ्रायड का यह कहना ठीक है कि कला में जो अनायासता और प्रवाह है, जो रंगीन चित्रात्मक वातावरण है, वह अब चेतन स्रोतों के कारण है । मैं अपनी एक बात स्पष्ट कर दूँ कि फ्रायड का Sub - Conscious केवल दमित इच्छाओं का

---

1. मनोविश्लेषण - फ्रायडकृत - अनुवादक - देवेन्द्र कुमार वेदालंकार; पृ० - 88
2. तार - सप्तक - संपादक - अज्ञेय - वक्तव्य; पृ० - 278

पुंज मात्र है । मेरे लिए वह केवल यही न होकर प्राकृत शक्ति का एक गतिमान प्रवाह है, जिसके तत्व समाज से प्राप्त होते हैं, संस्कारों द्वारा, आनुवंशिकता द्वारा यह प्रवाह अपने शक्ति रूप में व्यक्तिगत (Genotype) होता है । परन्तु प्रवाह में बहने वाले तत्व सामाजिक ही होते हैं । "[1]

इस प्रकार मुक्तिबोध ' सब कान्सश ' की व्याख्या अपने सामाजिक दृष्टिकोण से करते हैं । वे उसे व्यक्ति के परिवेश से सम्बद्ध एक निरन्तर प्रवाह के रूप में देखते हैं । स्पष्ट है कि फ्रायड के सिद्धान्तों ने बुद्धिजीवी वर्ग को मानव - मन के गूढ़ रहस्यों से न केवल परिचित कराया, बल्कि उन्हें स्वयं भी मनोविश्लेषण के लिए प्रेरित किया । फ्रायड ने व्यक्ति एवं उसकी मूल प्रवृत्ति काम वासना को दृष्टि में रखकर ही उसके समस्त कार्य - व्यापारों एवं व्यवहारों का विश्लेषण प्रस्तुत किया था । इससे व्यक्ति एवं उसकी इच्छाओं, विशेषकर नैतिक दृष्टि से क्षुद्र समझी जाने वाली इच्छाओं को भी महत्व मिला । नारी के प्रति आदर्शवादी पवित्र प्रेम के स्थान पर स्थूल शारीरिक सम्बंधों को मान्यता मिली ।

1950 ई0 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले इग्लैंड के महान विचारक बर्टेण्ड रसल के व्यक्तिवादी दर्शन में भी व्यक्ति की विशिष्ट सत्ता का महत्व प्रतिपादित किया गया । वह व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता का विकास आवश्यक मानता है । बर्टेण्ड रसल ने व्यक्ति मे दो प्रकार के आवेग माने हैं ----- संग्रहात्मक आवेग तथा रचनात्मक आवेग । वह व्यक्ति में निहित रचनात्मक आवेग के आधार पर ही उसकी विशिष्टता का प्रतिपादन करते है । उसके अनुसार रचनात्मक आवेग के द्वारा ही व्यक्ति विशिष्टता अर्जित करता है । " इसी विशिष्ट व्यक्तित्व में एक सुन्दर संसार के निर्माण की संभावना निहित है अतः ----- इस विशिष्ट व्यक्तित्व के प्रति विशेष रूप से जागृत होने की आवश्यक है, क्योंकि यह उसकी जीवन्त शक्ति (Living Force) का रूप होता है, जिसे किसी भी तरह कुचलने का प्रयास उसके लिए घातक सिद्ध होता है ।'[2]

---

1 नयी कविता का आत्म संघर्ष - मुक्तिबोध; पृ0 - 14

2. आधुनिक राजनीतिक विचार धारायें - डॉ0 वीरकेश्वर प्रसाद सिंह; पृ0 - 713

नयी कविता में मानव - विशिष्टता की रक्षा के साथ ही उसकी सामाजिक सम्पृक्ति दृष्टिगत होती है । अज्ञेय का काव्य मानव की अद्वितीय विशिष्ट सत्ता के प्रति विशेष रूप से सचेत है । बर्टेण्ड रसल ने प्रेम तथा विवाह और नारी के प्रति की क्रान्तिकारी नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किये । वह यौन - भावना की तृप्ति के लिए विवाह को आवश्यक नहीं मानता । रूमानी प्रेम - भावना का बहिष्कार कर यौन - सम्बंधों की महत्ता स्वीकार करता है । इन सब आधुनिक विचारों का प्रभाव नयी कविता में बड़े स्पष्ट रूप में प्रकट है ।

व्यक्तिवादी चिन्तन में अस्तित्ववाद का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । इसका प्रवर्तन कीर्केगार्द ने उन्नीसवीं शताब्दी में किया था । इसके अतिरिक्त नीत्शे, कार्ल यास्पर्श, गेब्रेल मार्सेल, मार्टिन हैडेगर तथा ज्यां पाल सार्त्र ने अस्तित्वाद पर विचार प्रस्तुत किये । कीर्केगार्द ने अस्तित्ववाद की व्याख्या आस्तिक दृष्टिकोण से की है । ज्यां पाल सार्त्र ने, जो अस्तित्ववादी दर्शन का आधुनिककतम विचारक है, इसकी व्याख्या नास्तिक - भाव से की है । स्वातंत्र्योत्तर काल में मुख्यतः सार्त्र के इसी नास्तिक अस्तित्ववाद का प्रभाव पड़ा।साहित्य में अस्तित्ववाद के प्रभावस्वरूप, क्षणवाद, मृत्युबोध, अनास्था तथा संत्रास - बोध का जन्म हुआ ।

कीर्केगार्द आस्तिक विचारधारा का था । परन्तु वह व्यक्ति की निर्णय की क्षमता पर विश्वास करता था । ' व्यक्ति को स्वयं निर्णय लेना पड़ता है । जो वस्तुतः अस्तित्वशाली है, वस्तुतः जीवन्त है, उसे पद - पद पर अपने निर्णय स्वयं करने पड़ते हैं ----- जीवित रहने का अर्थ है नैतिक निर्णय लेते या करते चलना - सम्पूर्ण भावना प्रवेग के साथ, अपनी जिम्मेदारी का पूर्ण अहसास रखते हुए ।'[1]

सार्त्र ने अस्तित्ववाद की नवीन संशोधित व्याख्या प्रस्तुत की । वस्तुतः सार्त्र ने अस्तित्ववाद में मानववाद को सिद्ध करने की चेष्टा की । इस सम्बन्ध में डॉ0 राम विलास युद्ध के बाद फ्रांस में अस्तित्ववाद के बढ़ते हुए प्रभाव की चर्चा करते हुए लिखते हैं ----- " बुद्धिजीवियों का एक दल पूँजीवादी संकट से उबरने के लिए एक ही रास्ता देखता था - व्यापक सामाजिक परिवर्तन द्वारा एक नयी व्यवस्था कायम हो । दूसरा दल कहता था - इस

---

1. साहित्य और संस्कृति - डॉ0 देवराज; पृ0 - 46

तरह के परिवर्तन से कुछ न होगा - असली चीज है निरर्थक संसार में अपना उद्देश्य स्वयं निश्चित करना । 1946 में सार्त्र ने एक भाषण दिया जो पुस्तक रूप में छपा " अस्तित्ववाद मानववाद है ।" इसमें उन्होंने उन लोगों को उत्तर दिया, जो अस्तित्ववाद को मानवता का विरोधी मानते थे । सार्त्र का कहना था कि मनुष्य जब पैदा होता है, तब वह तुरन्त मानवीयता प्राप्त नहीं कर लेता; वह मानवीयता अर्जित करता है, स्वतंत्र इच्छा से उद्देश्य निश्चित करके ।"[1]

सार्त्र ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते । वे स्वतंत्रता को मानव की वास्तविकता के रूप में स्वीकार करते हैं । सार्त्र के विचार में ' विश्व - ब्रहमांड का कोई ऐसा प्रयोजन नहीं है, जिसकी पूर्ति मेरे द्वारा हो रही हो; मैं विश्व - ब्रहमांड की प्रयोजन पूर्ति का यंत्र नहीं हूँ मैं स्वतंत्र हूँ और स्वयं अपने मूल्यों का निर्माण करता हूँ ।[2] मानव - प्रकृति का निर्माता कोई ईश्वर नहीं है । मनुष्य स्वयं जैसा बनना चाहता है, वैसा अपनी कल्पना एवं कृति - शक्ति द्वारा बन सकता है । मनुष्य अपने लिए श्रेय का चुनाव स्वतंत्र रूप से करता है, जिसमें उसे अन्तर्द्वन्द्व एवं वेदना का अनुभव होता है ।

स्वतंत्रता के पश्चात् गांधीवादी दर्शन भी जन - मानस के साथ ही साहित्य को भी प्रभावित कर रहा था । गांधीवाद में भी व्यक्तिवादी चिन्तन है । पर वह नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों से अनुप्राणित है । गांधी जी की ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास था । वे मानवतावादी भी थे तथा सबकी उन्नति में विश्वास रखते थे । गांधी जी शोषण का विरोध करते थे, पर उनके विरोध का मार्ग सत्य, अहिंसा, दया आदि से समन्वित शान्ति का मार्ग था । इसीलिए नयी कविता में मार्क्सवाद का जितना प्रभाव ग्रहण किया गया, उतना गांधीवाद का नहीं । नयी - कविता की दृष्टि यथार्थ आग्रही रही है । वह ठोस यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य में मानव के गुणों -

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद - डॉ0 रामविलास शर्मा;
2. साहित्य और संस्कृति - डॉ0 देवराज; पृ0 - 5।

अवगुणों का मूल्यांकन करती है । गांधीवादी विचारधारा में आध्यात्मिक एवं आदर्शवादी मूल्यों से समन्वित व्यक्ति - सत्ता पर बल था । नयी कविता में गांधीवादी आदर्शों पर कहीं - कहीं व्यंग्य करने की प्रवृत्ति मिलती है । डॉ0 देवराज गांधीवाद की व्याख्या के साथ ही आधुनिक यथार्थ के बीच उसकी सीमाओं पर आक्षेप की चर्चा करते हुए जो तत्थ्य प्रस्तुत करते हैं, वह नवीन पाश्चात्य विचारधाराओं से प्रभावित क्षणवाद एवं लघुमानववाद की धारणा से ग्रस्त, घोर यथार्थवादी दृष्टि सम्पन्न नयी कविता की प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता । डॉ0 देवराज लिखते हैं ----- " गांधीवाद के विरूद्ध कहा जाता है कि वह एक अव्यवहार्य सीमा तक आदर्शवादी है; वह मानव - जीवन और मानव - प्रकृति की वास्तविकता की उपेक्षा करता है गांधीवाद अहिंसा और क्षमा की शिक्षा देता है, जबकि मनुष्य स्वभावतः हिंसात्मक प्रतिशोध चाहता है, वह आत्मनिग्रह पर जोर देता है; निःस्वार्थ सेवा का पाठ पढ़ाता है; जबकि मनुष्य निसर्गतः शक्ति और श्रेय चाहता है ।"[1]

साहित्य में गांधीवाद की आदर्शवादी तथा आस्तिक मान्यताओं के कारण उसकी अपेक्षा मार्क्सवाद का प्रभाव बढ़ता गया । डॉ0 जनेश्वर वर्मा के शब्दों में " यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि मार्क्सवाद की तुलना में गांधीवाद की साहित्यिक प्रगति बहुत धीमी पड़ गयी है ।"[2]

व्यक्ति की स्वतंत्र - सत्ता को महत्व देने वाली विचार धारा के अन्तर्गत महात्मा गांधी तथा बर्टेण्ड रसेल को भी रखा जाता है । ' अराजकतावाद एक राजनीतिक विचारधारा है, जिसमें राज्य की सत्ता का बहिष्कार कर वर्ग - विहीन समाज की स्थापना का लक्ष्य है, तथा क्रान्तिकारी तरीके इसके माध्यम है ।"[3] गांधी जी ने क्रान्ति के लिए अहिंसात्मक मार्ग चुना । अराजकतावाद की विचारधारा से सम्बद्ध आतंकवादी अराजकतावाद की धारणा का भी प्रारम्भ

---

1. साहित्य और संस्कृति - डॉ0 देवराज; पृ0 - 138
2. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ0 जनेश्वर वर्मा; पृ0 - 503
3. आलोचना - जनवरी - मार्च 68; पृ0 - 39

हुआ । इसमें परिवर्तन के लिए आतंकवादी गतिविधियों - हिंसा एवं राजनीतिक हत्याओं - का सहारा लिया जाता है । भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलनकारियों ने ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ने के लिए इसका प्रयोग किया था । स्वतंत्र - भारत में विघटनकारी तत्व इसका प्रयोग देश में और विभाजन तथा विलगाव की स्थिति लाने के लिए कर रहे हैं । मुद्राराक्षस साहित्य पर इस आतंकवाद का प्रभाव उसकी विस्फोटक मुद्राओं एवं प्रचलित मान्यताओं तथा मूल्यों पर ध्वंसात्मक प्रहार में देखते हैं । वे लिखते हैं कि " संयोग की बात है कि राजनीतिक असफलता के साथ जहाँ आतंकवाद की धारणा जुड़ने लगती है, वहाँ नव - लेखन में भी आतंकवादी प्रवृत्ति बढ़ने लगती है । इधर युवा - पीढ़ी के समूचे लेखन में सहसा एक उद्धतता, क्षोभ की उत्कटता और जबर्दस्त जहरीलापन उभरता मिलता है । मैं इसे आतंकवादी चेष्टा ही मानता हूँ ।"

स्वतंत्रता पूर्व से ही समाजवादी विचारधारा के रूप में मार्क्सवादी साहित्य का सृजन हो रहा था । स्वतंत्रता के पश्चात प्रयोगवादी कविता में व्यक्तित्व की प्रधानता होने तथा मार्क्सवादी प्रगतिवाद के रूढ़िगत बद्ध रूप के प्रति प्रतिक्रियात्मक होने के कारण मार्क्स का प्रभाव क्षीण हो गया । यह प्रभाव नयी कविता में एक स्वतंत्र काव्य चेतना से सम्पृक्त होकर विकसित हुआ ।

मार्क्सवाद एक भौतिकवादी दर्शन है, जो समाजवादी विचारधारा पर आधारित है । मार्क्स ने अपने पूर्ववर्ती विचारक हीगेल के द्वन्द्ववाद से प्रभाव ग्रहण किया है । उसने मानव - संसार की प्रत्येक वस्तु में द्वन्द्व की स्थिति का दर्शन किया है । इसी कारण इनके सिद्धान्त को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है । ' उनके अनुसार संसार भौतिक है । उसका विकास भौतिक जगत के चलते होता है । नैतिक भावना, आध्यात्मिक विचार आदि सभी भौतिक जगत के चलते ही उत्पन्न होने वाली चीजें हैं । अतएव भौतिक जगत ही मुख्य है । आध्यात्मिक जगत तो इसी का परिणाम है, इसी पर आधारित है ।'[1]

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार संसार के पदार्थ सदैव परिवर्तनशील

---

1. आधुनिक राजनीतिक विचारधारायें - डॉ0 वीरकेश्वर प्रसाद सिंह; पृ0 - 359

अवस्था में रहते हैं । इनमें निरन्तर द्वन्द्व की स्थिति रहती है । प्रत्येक पदार्थ में उसके विरोधी तत्व भी निहित होते हैं, जो कुछ समय तक प्रच्छन्न अवस्था में दबे पड़े रहते है । इसको मार्क्स ने " वाद ' (Thesis) की अवस्था माना है । जब इन दो विरोधी तत्वों में द्वन्द्व या संघर्ष उत्पन्न होता है, तब उस स्थिति को ' प्रतिवाद ' (Antithesis) कहते हैं । जब ' वाद ' तथा ' प्रतिवाद ' की स्थिति से भिन्न तीसरी स्थिति का जन्म होता है, जो विरोधी तत्वों के द्वन्द्व का परिणाम होता है, तब उसे ' संवाद ' (Synthesis) कहते है। । ' संवाद ' में ' वाद ' तथा ' प्रतिवाद ' के तत्व भी निहित रहते हैं ।

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्तों द्वारा प्रकृति के क्रिया - व्यापार की व्याख्या करने के साथ ही उसका उपयोग सामाजिक जीवन के विकास - क्रम को समझने में भी किया । मार्क्सवाद की धारणा है कि ' जिस प्रकार प्रकृति का सम्पूर्ण घटना - चक्र कार्यकारण के सूत्र में बंधा हुआ संश्लिष्ट और सुसम्बद्ध है, उसी प्रकार इतिहास भी असम्बद्ध एवं आकस्मिक घटनाओं का संकलन मात्र न होकर कार्यकारण के सूत्र में बंधा हुआ एक सुसम्बद्ध घटना - प्रवाह है । [1] इस प्रकार मानव - इतिहास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया की भौतिकवादी व्याख्या को ' ऐतिहासिक भौतिकवाद ' कहा गया है ।

मार्क्स ने सम्पूर्ण मानव - जाति को शोषक तथा शोषित - दो वर्गों में बाँटा है । उसके अनुसार मानव - इतिहास इन्हीं दो वर्गों के द्वन्द्व का इतिहास है । शोषक वर्ग सत्ताधारी होता है तथा शोषित वर्ग उसके अधीन होता है । पूँजी वादी व्यवस्था में मार्क्स इस द्वन्द्व की व्याख्या पूँजीपतियों एवं मजदूरों के सन्दर्भ में करता है । मजदूर जितने श्रम से वस्तु का उत्पादन करता है, उसके बराबर मजदूरी उसे नहीं मिलती । मजदूर द्वारा किये गये श्रम का वास्तविक मूल्य तथा पूँजीपति मालिक द्वारा दिये गये मूल्य में जो अन्तर होता है, उसे मार्क्स ने ' अतिरिक्त मूल्य ' कहा है । यह ' अतिरिक्त मूल्य ' वस्तुतः श्रमिक का होता है, पर पूँजीपति इसे लाभ के रूप में स्वयं अपने पास रखता है । मार्क्स के अनुसार ' वर्तमान पूँजीवादी समाज में उत्पादन शक्तियों और उत्पादन सम्बंधों की असंगतियों के फलस्वरूप ही वर्ग - संघर्ष

---

1. हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ0 जनेश्वर वमा; पृ0 - 75

एवं तद्‌जन्य अव्यवस्था छाई हुई है । अतः समाज को उस वर्ग - संघर्ष से मुक्त करने के लिये वह मजदूरों का संगठन करता है, उसकी यूनियनें बनाता है और हर संभव उपाय द्वारा उनक अन्दर वर्ग चेतना का संचार करता है । ----- उसका विश्वास है कि श्रेणी सजग मजदूर वर्ग ही अपने व्यापक एवं दृढ़ संगठन के आधार पर एक ऐसी क्रान्ति का आयोजन करने में सफल हो सकेगा, जिसके द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके एक नवीन श्रेणी - विहीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की जा सके ।'[1]

इस प्रकार मार्क्सवादी चिन्तन - पद्धति द्वारा साम्यवादी - व्यवस्था का पोषण किया गया है । मार्क्सवाद में धर्म का खंडन है । धर्म मनुष्य को भाग्यवादी बना कर अकर्मण्य बनाता है । मार्क्स धर्म को इसलिए हेय समझता है क्योंकि ' पूँजीपति धर्म के नाम पर अपने शोषण को छिपाता है । दूसरी तरफ श्रमिक और सर्वहारा - वर्ग अपनी स्थिति से असंतुष्ट और दुखी होते हुए भी धर्म से संतोष और शांति ग्रहण करने की सीख लेता है । इस प्रकार मार्क्स के अनुसार धर्म धोखा देने वाली और भुलावा में डालने वाली चीज़ है ।'[2]

मार्क्सवाद में साहित्यकार एवं कलाकार के निश्चित उद्‌देश्य होते हैं । मार्क्सवादी कलाकार पूँजीवादी विकृतियों को प्रत्यक्ष करता है । वह शोषक वर्ग का हितैषी होता है तथा अत्याचारी वर्ग के लिए संघर्ष की प्रेरणा से युक्त होकर रचना करता है । राजनीति भी सामाजिक सत्य के महत्वपूर्ण अंग के रूप में कला में व्यक्त होती है । मार्क्स राजनीति का चित्रण कला में वर्ज्य नहीं मानते । इसीलिए विशुद्ध मार्क्सवादी विचारधारा का साहित्य राजनीति के किसी दल विशेष से सम्बद्ध होता है । कम्युनिष्ट पार्टी मार्क्सवादी विचारधारा की राजनीतिक पार्टी है इसी विचारधारा का साहित्यिक रूप ' समाजवादी यथार्थवाद के आन्दोलन के रूप में प्रगतिवादी कविता में दृष्टिगत होता है । समाजवादी यथार्थवाद आन्दोलन की धारणा में साहित्यकार को ' जनजीवन में प्रयुक्त मार्क्सवाद - लेनिनवाद का सक्रिय रूप पहचान कर समाज के विभिन्न

---

1. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ0 जनेश्वर वर्मा; पृ0 - 91
2. बीसवीं शताब्दीः हिन्दी साहित्यः नये सन्दर्भ - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय; पृ0 - 207

वर्गों के जीवन और मनोविज्ञान का अध्ययन कर साहित्यकार को ' दुश्मन ' की अनीतियों पर प्रकाश डालना चाहिए । ऐसा करते समय साहित्य का रूप और शैलीगत पक्ष गौड़ और विषयगत एवं मूल्यगत पक्ष प्रधान हो जाता है ।'[1]

मार्क्सवाद में सौंदर्य की भी व्याख्या नवीन दृष्टिकोण से की गयी है । वह प्रकृति तथा उसके उपकरणों को न तो अपने आप में सुन्दर मानता है न ही असुन्दर । उसके अनुसार मनुष्य में सौंदर्य की भावना ऐतिहासिक परिस्थितियों के फलस्वरूप रूप ग्रहण करती है ।

हिन्दी की नयी कविता में प्रगतिशील एवं जनवादी कवियों ने मार्क्स का प्रभाव - ग्रहण किया है । गांधीवादी विचारधारा भी शोषण - मुक्त समाज की कल्पना करती है, पर उसके आध्यात्मिक एवं आदर्शवादी मूल्य नयी कविता की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि में प्रभावहीन हो जाते हैं, क्योंकि नयी कविता अनीश्वरवादी विचारधाराओं से अधिक प्रभावित है । उसमें ' महत्' एवं ' आदर्शवाद ' का आग्रह नहीं है । फ्रायड की कामवृत्ति तथा सार्त्र के क्षणबोध का प्रभाव है । पुराने मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों की तलाश है, नये मनुष्य की प्रतिष्ठा है । इसी कारण स्वातंत्र्योत्तर कविता का वैचारिक परिवेश सार्त्र के अस्तित्ववाद, फ्रायड के मनोविश्लेषण तथा मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद से अधिक प्रभावित है । मार्क्सवादी विचारधारा के अधिक प्रभावी होने का कारण डॉ0 जनेश्वर वर्मा ने बताया है कि " मार्क्सवाद ने परोक्ष चिन्तन और आत्मवाद की बात छोड़कर भौतिक - जीवन के स्वस्थ उपभोग को अपना लक्ष्य घोषित किया । भौतिक जीवन के स्वस्थ उपभोग के लिए साम्य सिद्धान्त पर आधारित एक शोषण - विहीन समाज के नव - निर्माण की प्रेरणा दी ।"[2]

जिन कवियों ने व्यक्ति को अधिक महत्ता प्रदान की है, उनका काव्य सार्त्र के अस्तित्ववाद के प्रभाव स्वरूप क्षण - बोध, व्यर्थता - बोध, मृत्युबोध इत्यादि से युक्त है । परन्तु अस्तित्ववाद का प्रभाव केवल निषेधात्मक रूप में ही नहीं पड़ा । उसके द्वारा मनुष्य के

---

1. बीसवीं शताब्दी: हिन्दी साहित्य: नये सन्दर्भ - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय; पृ0 - 207
2. हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ0 जनेश्वर वर्मा; पृ0 - 504

स्वतंत्र निर्णय की महत्ता एवं व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता को काव्य में अभिव्यक्ति मिली । नवीन मूल्यों के अन्वेषण की शक्ति एवं प्रेरणा प्राप्त हुयी, क्योंकि ----- " भौतिकवाद के लिए मनुष्य भी एक वस्तु है; अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य अपनी क्षमता को सर्जनात्मक ढंग से कर्ममय जीवन में चरितार्थ करके अपना निर्माण स्वयं करता है ।"[1] वस्तुतः नयी कविता एक स्वतंत्र - चेतना एवं आधुनिक भाव बोध के नित्य परिवर्तन की प्रवृत्ति से युक्त है । अतः उसमें यथार्थ - परिवेश एवं कवि के अन्तर्जगत के विविध - भाव - चित्र एवं स्थितियाँ कमबेश पूर्वोक्त वैचारिक धाराओं से अनुप्राणित होकर व्यक्त हुयी है ।

6. साहित्यिक परिदृश्यः-

स्वतंत्रता के पूर्व ही हिन्दी कविता में " प्रयोगवाद " के रूप में नयी कविता का आरम्भ हो चुका था । अज्ञेय द्वारा सन् 1943 ई0 में ' तार - सप्तक के प्रकाशन के बाद पिछली कविताओं से भिन्न भाव - बोध एवं शिल्प वाली कविताओं का स्वरूप सामने आया । छायावाद की उत्तरकालीन (परवर्ती) कविताओं में ही कहीं - कहीं नवीनता के संकेत मिलने प्रारम्भ हो गये थे । इस सम्बंध में प्रभाकर श्रोत्रिय का मत है कि ' यद्यपि पंत के सम्पादन में निकली पत्रिका ' रूपाभ ' में (1938 में ही) नवीनता के लक्षण प्रकट होने लगे थे , लेकिन इसका स्पष्ट रूप 1949 में निकली नरोत्तम नागर की पत्रिका ' उच्छृंखल ' में सामने आया ।'[2]

निराला की परवर्ती रचनाओं में भी नयी कविता के बीज अंश देखे जा सकते हैं । इस सन्दर्भ में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का यह कथन सारयुक्त है कि ' आज की नयी कविता में जो बौद्धिकता प्राप्त होती हे, उस पर निराला का ऋण स्वीकार किया जा सकता है । वास्तव में निराला ही वह प्रथम कवि थे, जिन्होंने छायावादी भावुकता से अपने को मुक्त कर इस विशेषता को ग्रहण किया था ।'[3]

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद - डॉ0 रामविलास शर्मा; पृ0 - 95
2. रचना एक यातना है - प्रभाकर श्रोत्रिय; पृ0 - 6
3. कल्पना - वर्ष 22, अंक - 6 - जून' 71; पृ0 - 29

परन्तु किसी काव्यधारा के अन्तर्गत या किसी कवि में आँशिक रूप में नवीनता के दर्शन होना और बात है, तथा उन्हें एक समग्र धारा के रूप में नयेपन की पहचान तथा नयी प्रवृत्ति के साथ प्रस्तुत करना दूसरी बात है । ' तार - सप्तक ' काव्य में नयी प्रवृत्तियों को लेकर अन्वेषण की उद्घोषणा के रूप में प्रकाशित हुआ । इसके प्रकाशन के बाद ही काव्य में नयी कविता के विकास का पथप्रशस्त हुआ । तार - सप्तक में सात कवियों को संकलित किया गया था । इनके सम्बन्ध में अज्ञेय ने भूमिका में स्पष्ट कर दिया था कि ये सभी कवि ' राहों के अन्वेषी ' हैं तथा अभी ' प्रयोग ' कर रहे हैं । ' तार - सप्तक ' में ' अज्ञेय तथा उनके सहयोगी के वक्तव्य में बार - बार ' प्रयोग ' शब्द का उल्लेख हुआ था । इसी कारण आलोचकों द्वारा ' तार - सप्तक ' में संकलित कविताओं को ' प्रयोगवाद ' का नाम दिया गया था ।'[1]

' प्रयोगवाद ' नाम का विरोध करते हुए अज्ञेय ने ' दूसरा - सप्तक ' की भूमिका में कहा कि ये नये कवि ' कवियशः प्रार्थी और काव्यक्षेत्र के अन्वेषी होते हुए भी किसी वाद के प्रवर्तक नहीं हैं ।' परन्तु फिर भी तत्कालीन साहित्य में ' वाद ' के प्रचलन की प्रवृत्तिवश तथा आलोचनाओं एवं चर्चाओं में ' प्रयोग ' का अधिक प्रचार हो जाने से यह ' प्रयोगवाद ' के रूप में स्थापित हो गया ।

प्रयोगवाद से पूर्व प्रगतिवाद ने काव्य की स्वतंत्र - सत्ता एवं व्यक्तित्व - चेतना को पूर्णतः विलीन कर दिया था, तथा मार्क्सवादी विचारों पर आधारित समाज - दर्शन के चित्रण की वजह से कविता खोखली एवं आत्म विहीन हो रही थी । इसके भी पूर्व छायावादी कवियों ने कविता को अति वायवीय बनाकर काल्पनिक मायालोक की सैर करायी थी । प्रयोगवाद इन दोनों ही प्रवृत्तियों का आत्यंतिक रूप में विरोधी था । इसमें व्यक्ति के नये यथार्थ से समन्वित नयी भावानुभूतियों, विचारानुभूतियों एवं नयी अभिव्यक्ति शैलियों को प्रश्रय दिया गया था । इसमें प्रगतिवाद तथा छायावाद दोनों के तत्व यथार्थपरक रूप में समन्वित थे । ' तार - सप्तक'

---

1. नयी कविता - डॉ0 कान्तिकुमार ; पृ0 - 6

' दूसरा - स्पतक ' एवं पुनः तीसरा - सप्तक में जिन कवियों को लिया गया था, वे सब बाद में ' नयी कविता ' में सम्मिलित हो गये । ' दूसरा - सप्तक ' (1951) के सात कवि थे- भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरि नारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय, और धर्मवीर भारती । इसी समय बिहार के तीन कवियों नलिन विमोचन शर्मा, केशरी कुमार और नरेश ने प्रयोगवीद का समर्थन करते हुए तथा अज्ञेय द्वारा ' दूसरा - सप्तक' की भूमिका में दिये गये वक्तव्य में प्रयोग की साध्य न मानने का विरोध करते हुए अपनी कविताओं को सही अर्थो में प्रयोगवादी माना । ' प्रयोगशील और प्रयोगवाद नामों के बीच तथाकथित संभ्रम को मिटाने के लिए अपने प्रयोगवादी काव्य को प्रपद्य अथवा नकेनवाद कहा ।'[1] पर यह प्रवृत्ति आगे विकसित न होकर वहीं समाप्त हो गयी । अज्ञेय ने ' दूसरा - सप्तक ' में इन कवियों को ' नये कवि ' के रूप में प्रस्तुत किया । ' तीसरा - सप्तक ' (1959) में अज्ञेय ने प्रयोगवादी कवियों की कविता के लिये ' नयी कविता ' शब्द का प्रयोग किया । इसमें संकलित सात कवि इस क्रम में थे ----- प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना । इस प्रकार अज्ञेय ने जिस प्रयोगवाद के काव्यान्दोलन का प्रारम्भ किया था, वह आगे चलकर नयी कविता के साथ मिल कर एक समन्वित धारा के रूप में विकसित होता रहा ।

प्रयोगवादी काव्य का मूल - स्वर व्यक्तिवादी था । इसका कारण था उस पर व्यक्तिवादी विचारधाराओं का प्रभाव । प्रयोगवाद फ्रायड की स्थापनाओं से सर्वाधिक प्रभावित था इसीलिए कहा गया कि ' प्रयोगवाद का मूलस्वर मनोवैज्ञानिक है । वह व्यक्ति को मनोविश्लेषण के चश्में से देखता है ।[2] इसमें परम्परा के अस्वीकार का स्वर भी है । मुक्तिबोध ने प्रयोगवादी कवि के बारे में लिखा है ' जिस बात पर वह सोचना चाहता है, जिस स्थिति पर सोचने के लिए उसे मजबूर होना पड़ता है, उसके प्रति उसका दृष्टिकोण घनघोर

---

1. नयी कविता - डॉ० कान्तिकुमार; पृ० - 7
2. हिन्दी साहित्य तृतीय खण्ड; पृ० - प्र०सं० - धीरेन्द्र वर्मा; पृ० - 81

व्यक्तिवादी स्थिति से लगाकर तो अविकसित मार्क्सवादी स्थिति तक फैला हुआ है । ----- समाज में पुराना पन है, दकियानूसी जड़ता है और कुचलने की शक्ति है । व्यक्ति इससे विद्रोह करता है, परन्तु विद्रोह करने का तरीका उसे नहीं मालूम । इसलिये मात्र भावनात्मक विस्फोट करके वह रह जाता है ।'[1]

प्रयोगवादी कवियों ने एजरा पाउण्ड, ऑडेन, स्पेन्डर, हरबर्ट रीड, डाइनस टामस, लेविस मैकनिस आदि पाश्चात्य कवियों एवं समीक्षकों से भी प्रभाव ग्रहण किया था । इनमें सबसे अधिक प्रभाव टी॰ एस॰ इलियट का पड़ा । इलियट पर एजरा पाउण्ड का प्रभाव माना जाता है । अज्ञेय की कविताओं पर इलियट का प्रभाव अधिक पड़ा है । डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी - साहित्य तृतीय खण्ड में भी प्रयोगवाद पर विदेशी साहित्य के प्रभाव की चर्चा की है । 'टी -एस इलियट, एजरा पाउण्ड, ई0ई0 कमिंग्ज जैसे कवियों का पूरा प्रभाव प्रयोगवाद पर दिखाई देते हैं । इंग्लैंड में नये लेखकों का एक काव्य - संकलन ' न्यू सिग्नेचर्स ' (नये हस्ताक्षर) 1932 में प्रकाशित हुआ । ----- ये सभी लेखक परम्परागत रचना - पद्धतियों को नवयुग के लिए अपूर्ण और अपर्याप्त समझकर नयी दिशा की तलाश में थे । इस प्रकाशन के एक ही वर्ष बाद एक और संकलन ' न्यू कंट्री ' (नया देश) अस्तित्व में आया । ----- अमेरिका में प्रयोगवादी रचनाओं का एक महत्वपूर्ण संग्रह ' स्पियरहेड ' (भाले की नोक) प्रकाशित हुआ था । इन संकलनों संग्रहों का प्रभाव हिन्दी के प्रयोग वादियों पर कई जगह स्पष्ट हुआ है । ' स्पियरहेड ' के कवि अपनी अनास्था के लिए नहीं, बल्कि अपनी नई राहों के लिए महत्वपूर्ण हैं ।'[2]

प्रयोगवादोत्तर काव्य बनाम नयी कविता:-

सप्तकों की परम्परा से बाहर भी नये कवियों की चेतना नवीनता की खोज एवं अभिव्यक्ति में लगी हुयी थी, जिसे ' नये पत्ते ' (संपादक - डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी एवं

---

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष - मुक्तिबोध; पृ0 - 95
2. हिन्दी - साहित्य - तृतीय खण्ड - प्रधान संपादक - धीरेन्द्र वर्मा; पृ0 - 106,107

श्री लक्ष्मीकांत वर्मा, द्वारा सन् 1953 में पर्याप्त प्रचार एवं प्रसार मिला । पुनः 1954 में ' नयी कविता ' पत्रिका के पकाशन ने नयी कविता को व्यापक स्वीकृति एवं प्रचार दिलाया । नयी कविता के आठ अंकों के माध्यम से अनेक कवि नये भाव - बोध एवं अभिव्यक्ति की नयी शैली के साथ सामने आये । इसमें कविता के साथ - साथ नयी कविता के स्वरूप पर व्यापक चर्चायें एवं समीक्षायें भी प्रस्तुत की गयी थी । विभिन्न पत्र - पत्रिकाओं ने भी नयी कवितायें तथा उन पर लेख प्रकाशित किये । इन समीक्षाओं द्वारा नयी कविता का स्वरूप उभरकर सामने आया तथा उसे समझने की दृष्टि निर्मित हुयी ।

नयी कविता यद्यपि प्रयोगवादी कविता की प्रेरणा से ही जन्मी थी, पर पृथक रूप में अस्तित्व ग्रहण करते हुए उसमें प्रयोगवादी कविता से कुछ भिन्नतायें भी स्पष्ट हुयीं । डॉ0 जगदीश गुप्त ने प्रगति और ' प्रयोग ' के पिछले दस - पन्द्रह वर्षों के विकास के अन्तर्गत घटित संश्लेष को नयी कविता की प्रमुख उपलब्धि माना है - " मैं इस संश्लेष को नयी कविता की एक प्रमुख उपलब्धि मानता हूँ, क्योंकि इसके द्वारा दोनों की सत्ता अतिक्रमित हो जाती है और नयी कविता के निजी एवं व्यापक स्वरूप का परिचय भी मिल जाता है । लोगों का कहना है कि नयी कविता की धारा में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद, दोनों अन्तर्भुक्त हो गये हैं ।"[1]

वस्तुतः नयी कविता में प्रगतिवादी तत्व स्वतंत्र - चेतना के अंग बनकर प्रकट हुए हैं । नयी कविता में जीवन के प्रति आस्था है । क्षणवाद, लघुमानवादी दृष्टि, कत्थ्य की व्यापकता और दृष्टि की उन्मुक्तता आदि नयी कविता की विशिष्टतायें हैं । इसमें अनुभूति की सच्चाई तथा यथार्थ आग्रही दृष्टि मिलती है । इसकी दृष्टि समाजोन्मुख होती गयी है । यथार्थ की जटिलता एवं अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से, कुंठा, निराशा तथा मृत्युबोध जैसी स्थितियों की अभिव्यक्ति भी नयी कविता में मिलती हैं । नयी कविता में ' नये मनुष्य की खोज ' एवं 'लघु मानव ' के चित्रण की धारणा का भी व्यापक प्रचार हुआ । इसके फलस्वरूप मनुष्य के लघु

---

1. नयी कविताः अंक - 8; पृ0 - 288

एवं निकृष्ट पक्ष का विकृत चित्रण भी हुआ । परन्तु नयी कविता में ' लघु मानव ' के चित्रण का अर्थ था मानव को उसके सम्पूर्णत्व में ----- लघुताओं के साथ भी - चित्रित करना । उसका उद्देश्य मनुष्य के मात्र आदर्शवादी महत् रूप का निषेध एवं लघुताओं से समन्वित सहज रूप का महत्व प्रतिपादित करना था । इस विषय में विजयदेव नारायण साही का मत है कि ----- " मनुष्य की हर परिभाषा मूलतः सहज मनुष्य की परिभाषा है, चाहे हम उस परिभाषा को कितना ही विकृत या अयथार्थ क्यों न समझें ।"[1] ' लघु मानव ' का तात्पर्य परम्परित ' महामानव ' की आदर्शवादी एवं अयथार्थ धारणा का निषेध कर मानव के सहज मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा से था, जिसमें लघुतायें स्वाभाविक रूप में होती है ।

नयी कविता में बौद्धिकता की प्रधानता है, रसानुभूति के स्थान पर सह - अनुभूति है । डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार " जिस प्रकार रस - ग्रहण के लिये आचार्यों ने श्रोता में अनेक गुणों की आवश्यकता बतलायी है, उसी प्रकार नयी कविता का आस्वाद ग्रहण करने के लिए विशेष मानसिक संस्कार व बौद्धिकता की अपेक्षा है ।"[2] इसी कारण " वह उन प्रबुद्ध, विवेकशील आस्वादकों को लक्ष्य करके लिखी जा रही है, जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नये कवि के समान है ।"[3] रस का निषेध प्रयोगवादी दौर की कविताओं में भी है, जो नयी कविता में भी आ गया । डॉ० इन्द्रनाथ मदान इसकी रसवादी कविता से भिन्नता इस रूप में प्रकट करते हैं कि " रसवादी कविता लोरी देकर चेतना को सुला सकती है, लेकिन प्रयोगवादी कविता, इसे जगा देती है ।"[4] काव्यशास्त्र की प्रचलित कसौटी पर खरी न उतरने के कारण नयी कविता की काफी आलोचना हुयी । ' आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी और आचार्य नगेन्द्र ने इसे सिफर देकर अकाव्य की कोटि में रखना उचित समझा है ।'[5] इन कारणों से

---

1. नयी कविता - संयुक्तांक - 5,6; पृ0 - 65
2. नयी कविताः स्वरूप और समस्यायें - डॉ0 जगदीश गुप्त; पृ0 - 83
3. नयी कविताः स्वरूप और समस्यायें - डॉ0 जगदीश गुप्त ; पृ0 - 142
4. कविता और कविता - डॉ0 इन्द्रनाथ मदान; पृ0 - 28
5. कविता और कविता - डॉ0 इन्द्रनाथ मदान ; पृ0 - 27

' अज्ञेय ' जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि कवि - आलोचकों को परम्परागत काव्य सिद्धान्तों का खण्डन करना पड़ा ।

लक्ष्मीकांत वर्मा ने ' नयी कविता के प्रतिमान ' का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया तथा डॉ0 नामवर सिंह ने ' कविता के नये प्रतिमान की बात की । इनकी नवीन स्थापनाओं से नयी कविता का मूल्यांकन नवीन दृष्टि से करने तथा उसे समझने में पर्याप्त सुविधा हुई ।

नयी कविता की भाषा गद्य - भाषा के निकट है । इसमें कठोर अनगढ़ एवं परूष शब्दों को भी अपनाया गया है । प्रयोगवादी कविता में ही अंग्रेजी के प्रभाव - स्वरूप शब्द के विविध प्रकार के प्रयोग दृष्टिगत होते हैं । इसमें लोक प्रचालित शब्दों तथा अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को भाषा की यथार्थ - भंगिमा के रूप में प्रयुक्त किया गया है तथा आडम्बर पूर्ण भाषा के स्थान पर सीधी - शुद्ध अभिव्यक्ति को अधिक महत्व दिया गया है । इस धारा के प्रत्येक कवि की अपनी विशिष्ट रचना शैली है तथा भाव - बोध के भिन्न - भिन्न स्तर हैं । इसमें बिम्बों एवं प्रतीकों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति अधिक है । नयी कविता ने गीति - शैली को भी अपनाया, पर पेशेवर गीतकारों को नयी कविता में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। डॉ0 जगदीश गुप्त को गीत और नयी कविता के बीच ' समान तत्व के रूप में अनुभूति की वैयक्तिकता और भाव की गहनता के आते और कोई वस्तु ऐसी नहीं दिखाई देती, जिसके आधार पर दोनों का अविरोध सिद्ध किया जा सके ।"[1]

नयी कविता छठे दशक के अन्त तक आते - आते पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति से ग्रस्त होकर अपना सहज प्रवाह खोने लगी थी । उसमें भी गतानुगतिकता एवं रूढ़िबद्धता के दर्शन होने लगे । सहज भाव - बोध की अभिव्यक्ति के स्थान पर अनुकरण की प्रवृत्ति, चमत्कृत करने की भावना पर अनुकरण की प्रवृत्ति, चमत्कृत करने की भावना जोर पकड़ने लगी । डॉ0 शम्भूनाथ सिंह के शब्दों में ----- " जब एक कवि आत्मा में झूठ, माथे पर शर्म और हाथों में टूटी तलवारों की मूठ वाली पराजित पीढ़ी का गीत गाना शुरू करता है, तो अन्य कवि भी

---

1. नयी कविता: स्वरूप और समस्यायें - डॉ0 जगदीश गुप्त ; पृ0 - 159

' हम नये छोटे लोग ' ' हम सब बौने है ' ' हम लघु हैं ' ' हम नगण्य है ' आदि की ऐसी ' दादुर - रट ' शुरू करते हैं, जिसे सुनने वाले के मन में इस तरह की कविताओं के प्रति वितृष्णा पैदा होने लगती है ।'[1]

इस प्रकार नयी कविता, जो प्रचलित रूढ़ियों को तोड़ने के साथ अस्तित्व में आयी थी, स्वयं में अनेकों काव्य - रूढ़ियों को जन्म देने लगी । परन्तु अपनी अन्तर्निहित नवीनता की शक्ति से वह पुनः इस निस्तेज पड़ते दायरे को तोड़ती आगे बढ़ी । नयी कविता के नयी ' विशेषण को कविता की नित्य नवीनीकरण की प्रक्रिया से सम्बद्ध करते हुए डॉ0 शम्भूनाथ सिंह ने इसे नयी कविता में वर्तमान स्थायी क्रान्ति (परमानेन्ट रिवोल्यूशन) की निरन्तर प्रवृत्ति से प्रेरित हो एक स्थिति से दूसरी स्थिति में विकास की सूचक माना है ।[2] मुक्तिबोध ने इसे नयी कविता के आत्मसंघर्ष के रूप में व्याख्यायित किया है । उनके अनुसार यह संघर्ष त्रिविध रूप में होता है - (1) तत्व के लिए संघर्ष (2) अभिवयक्ति को सक्षम बनाने के लिए संघर्ष तथा (3) दृष्टि - विकास का संघर्ष । इस प्रकार नयी कविता मैं विकसनशील तत्व संघर्षरत थे । मुक्तिबोध नयी कविता की बद्ध - रूद्ध होती जाती अवस्था के प्रति चिन्तित एवं उसके उन्मुक्त प्रवाह के प्रति सजग होकर लिखते हैं " यह घेरा तब तक नहीं टूट सकता, जब तक कि वस्तु - तत्व भिन्न - भिन्न होकर, व्यापक होकर, विभिन्न काव्य - रूप ग्रहण नहीं करते।'[3]

मुक्तिबोध के इन विचारों की परिणति सन्'60 के बाद विविध धाराओं एवं वस्तु - रूपों में आकार ग्रहण करती हुयी नयी कविता के रूप में हुयी । वस्तुतः इस काल की नयी कविता का नया तेवर तत्कालीन यथार्थ के बदले हुए तेवर की ही प्रतिच्छाया थी । इस काल की कविता में आक्रोश एवं विद्रोह के स्वर तथा क्रान्ति की चेतना अपनी सम्पूर्ण तीव्रता से व्यक्त हुयी है । इसी काल में नयी कविता में युवा ' कवियो ' की रचनायें भी आ मिलीं । इस

---

1. नयी कविता - अयुक्तांक - 5-6; पृ0 - 33
   डॉ0 शम्भूनाथ सिहं;
2. नयी कविता - संयुक्तांक - 5,6, पृ0 - 30,31
3. नयी कविता का आत्मसंघर्ष - मुक्तिबोध; पृ0 - 158

अवधि में नये - नये नामों से विभिन्न काव्यान्दोलन चलाये गये, जो कुछ काल के पश्चात स्वतः मंद पड़ते गये । सन् साठ के बाद नयी कविता में जो विशेष परिवर्तन घटित हुए वह थे - समकालीन सामाजिक स्थिति, आद आदमी की स्थिति तथा उसके संघर्ष की दिशाओं की अभिव्यक्ति, यथास्थिति की विसंगतियों के प्रति गहरी - पीड़ा, छटपटाहट तथा आक्रोश , व्यंग्य की प्रवृत्ति, राजनीतिक विसंगतियों पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भो में दृष्टिपात । सातवें दशक की कविता के विषय मं डॉ0 परमानन्द का कथन महत्वपूर्ण है कि " इस उत्तर शती की मानवीय नियति को, उसकी तमाम जटिलताओं, अन्तर्विरोधों के बीच व्यक्त करने की जैसी कोशिश पिछले चार - पाँच वर्षो की कविता में मिलती है, पहले की कविता में उपलब्ध नहीं है । इसके पीछे बहुत से कारण हैं और उनमें सबसे महत्वपूर्ण कारण है - आज के विश्व की आसन्न स्थिति, जिसके दबाव ने आज की कविता को सीधी और नंगी जमीन पर ला दिया ।"[1]

डॉ0 बच्चन सिंह छठें दशक की नयी कविता के काव्यांदोलन की मृत्यु घोषित करते हुए सातवें दशक की कविता के मूल स्वर की भिन्नता प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं -----' छठें दशक में नयी कविता का काव्यांदोलन अपनी व्यक्तिगतता और आत्मस्थता के कारण अपनी मौत मर गया । सब मिलाकर उसमें आस्था का स्वर ही प्रधान था, यद्यपि अनास्था की कमी नहीं कही जा सकती । ----- राजनीतिज्ञों के वादों की तरह कवियों की आस्थायें भी झूठी सिद्ध हुयीं । इसलिये सातवें दशक के पहले दौर से अस्वीकार और नकार का स्वर अधिक मुख होकर आया ।[2] डॉ0 बच्चन सिंह ने सातवें दशक को ' मोहभंग का काल ' कहा है । परन्तु मलयज इस सम्बंध में अलग दृष्टि रखते हैं । वे सातवें दशक की कविता को स्थिति के कटु स्वीकार से उत्पन्न मानते हैं । उनके अनुसार ' नेहरू युग की राजनीति ' भारत की खोज के आधार पर आशावाद से ग्रस्त एक ऐसी राजनीति थी, जिसके पैर यथार्थ पर कम, स्वर्णिम मानव - भविष्य के स्वप्न पर अधिक टिके थे । आदर्शवादी राजनीति का अन्त यदि

---

1. नयी कविता का परिप्रेक्ष्य - डॉ0 परमानंद श्रीवास्तव; पृ0 - 121
2. आधुनिक हिन्दी - साहित्य का इतिहास - डॉ0 बच्चन सिंह; पृ0 - 341

मोहभंग में हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।----- नेहरू युग का साहित्य इसी शानदार मोहभंग का साहित्य है । ----- नेहरू युग के बाद की राजनीति आम आदमी की राजनीति है । छात्र - असंतोष, घेराव और दल - बदल में आम आदमी की ही नस बजती है । जिस राजनीति के अन्तर्गत न्यूनतम कार्यक्रम का झंडा पार्टी सिद्धान्तों के चिथड़े को सिलकर बनाया गया हो, वहाँ मोहभंग की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती : आम आदमी की राजनीति स्थिति के इस कटु स्वीकार से ही शुरू होती है । पिछले दशक का साहित्य बुनियादी तौर पर इस स्थिति के कटु स्वीकार और उससे उत्पन्न प्रतिक्रियाओं का साहित्य रहा है ।"[1]

इस सम्बंध में डॉ0 परमानन्द श्रीवासतव का मत है कि " नये कवि की प्रतिबद्धता सबसे पहले आज की स्थिति के सीधे स्वीकार के प्रति है ।"[2] डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव अकविता - आन्दोलन के समानान्तर विकसित नयी कविता की परिवर्तित प्रवृत्ति को ' प्रतिबद्ध कविता ' का नाम देते हैं । इस काल में नये आये युवा कवियों में आक्रोश एवं विद्रोह के साथ प्रतिबद्धता के दर्शन होते हैं । साठोत्तर नयी कविता विकास - यात्रा में उस काल - विशेष के ऐतिहासिक - राजनीतिक दबावों एवं तत्प्रेरित परिवर्तनों की सूचक बन गयी है । इसी के अन्तर्गत ' युवा कविता ' भी आती है । इस काल में ही नये - नये नामों से अनेकों काव्यान्दोलन चलाये गये, जिनमें कुछ तो केवल नाम के ही थे, तथा कुछ आन्दोलन थोड़ी दूर चलकर ठंडे पड़ गये । इनमें ' अकविता ' का काव्यान्दोलन विवादास्पद रूप में सर्वाधिक चर्चित हुआ ।

सातवें दशक के प्रमुख युवा कवि, जिन्होंने सन्' 60 के बाद कविता में कुछ मूलभूत परिवर्तन की दिशायें खोली हैं, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, धूमिल, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, मणि मधुकर, विष्णु खरे, वेणु गोपाल, आलोक धन्वा, विजेन्द्र , ऋतराज, मलयज, नीलाभ, राजीव सक्सेना, प्रयाग शुक्ल आदि है ।

---

1. कविता से साक्षात्कार - मलयज; पृ0 - 165
2. नयी कविता का परिप्रेक्ष्य - डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव; पृ0 - 111

इनमें से जगदीश चतुर्वेदी तथा राजकमल चौधरी ' अकविता ' के ' प्रमुख कवि है । प्रारम्भ में धूमिल, वेणु गोपाल, राजीव सक्सेना इत्यादि कवियों में भी यौन - कुंठा की अभिव्यक्ति मिलती है, पर उत्तरोत्तर ये सभी कवि जनवादी चेतना से भी जुड़ते गये हैं तथा प्रतिबद्ध कवितायें लिखने लगे हैं । न केवल नये युवा कवि, वरन् बिचली पीढ़ी के नये कवि तथा प्रयोगवादी दौर के नये कवियों ने भी सन् ' 60 के बाद की कविता में नवीन चेतना से मुक्त होकर लिखा है । सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक - बौद्धिक सभी क्षेत्रों मं जो विडम्बनामय स्थितियाँ हैं, उनका मूल उत्स व्यवस्था - पक्ष की मूल्यहीन राजनीति ही है । अतः व्यवस्था पक्ष पर प्रहार एवं आम आदमी के कष्टों, द्वन्द्वों का चित्रण इस दौर की नयी कविता में सभी पीढ़ी के कवियों में दृष्टिगत होता है ।

सन् साठ के बाद उत्पन्न हुए विभिन्न काव्यान्दोलनों में ' अकविता ' का उल्लेख किया जा चुका है । इस काव्यान्दोलन का प्रारम्भ जगदीश चतुर्वेदी द्वारा संपादित चौदह कवियों के काव्य - संकलन ' प्रारम्भ ' से हुआ । इसमें जगदीश चतुर्वेदी ने इन कवियों को पूर्ववर्ती नयी कविता की रूढ़ियों से मुक्त घोषित किया । ' प्रारम्भ ' की भूमिका में वे लिखते हैं " आज हमारी संवेदना, हमारी अनुभूति की विशिष्टता, दृष्टिकोण की विविधता, किसी भोग्य - स्थिति के प्रति सचेतनता ने हमें एक उन्मुख किया है । इन्हीं स्थितियों के अनुरूप हमारी भाषा, हमारे प्रतीक, हमारी बिम्ब - योजना सभी कुछ उस पुरानी परम्परा से अलग दिखाई देते है । हमारी उपलब्धियाँ उनके भाव - बोध के स्तर से भिन्न है ।"[1]

पुनः 1964' में अभिवयक्ति - 1 ' में ' अभिनव - काव्य ' के सन्दर्भ में ही जगदीश चतुर्वेदी ने उसे ' एन्टी पोएट्री ' के अर्थ में अकविता नाम दिया । इसमें प्रारम्भ के भी कुछ कवि थे जो बीटनिक वर्ग में रखे गये थे । अस्वीकृत कविता ' तथा ' भूखी - पीढ़ी ' की कविता का नारा भी इस काल में आया । वस्तुतः अकविता तथा ' भूखी - पीढ़ी ' या ' अस्वीकृत कविता ' में यौन - कुंठा की अभिव्यक्ति विकृत रूप में की गयी । इन आन्दोलनों या नारों ' पर अमरीकी बटिनिक कवियों - विशेषकर गिन्सबर्ग तथा उनसे प्रभावित बंगाल के

---

1. प्रारम्भ - भूमिका - जगदीश चतुर्वेदी;

कवियों का प्रभाव था । बंगाल के कवियों में मलयराय, चौधरी तथा सुविमल बसाक इत्यादि से प्रभाव ग्रहण कर हिन्दी में ' भूखी पीढ़ी ' के राजकमल चौधरी, मुद्राराक्षस, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार इत्यादि कुछ कवियों ने ' यौन - शब्दावली के अशोभन प्रयोग तथा विकृत काम - कुंठाओं की कुत्सित अभिव्यक्ति को काव्य का विषय बनाया और कविता को समाज से विच्छिन्न कर नितातं व्यक्तिवादी बनाने की चेष्टा की । इस दौर के व्यक्तिगत कुंठा की अभिव्यक्ति करने वाले कवि राजकमल चौधरी से ' प्रभावित ' थे और राजकमल चौधरी बंगाल की भूखी पीढ़ी से । डॉ0 बच्चन सिंह के शब्दों में " बंगाल की भूखी पीढ़ी के साथ उनका गहरा सम्पर्क था । बंगाल के बसाक, बिमल राय आदि ने ईश्वर, धर्म और औरत पर खुला हमला किया ।"[1]

परन्तु बीटनिक आन्दोलन हिन्दी - कविता में ज्यादा दूर तक नहीं चल सका । ' बीटनिक आन्दोलन हिन्दी में एक फैशन की तरह आया और कुछ ही समय में निष्प्रेरक हो गया, क्योकि उसकी जड़े देश के यथार्थ में नहीं थी ।"

अकवितावादी व्यक्तियों ने बाद में बीट जेनरेशन से स्वयं को पृथक कर लिया । बीटनिक प्रभाव से युक्त जगदीश चतुर्वेदी ने भी अकविता का बीट - कविता से पार्थक्य घोषित किया । पुरानी पीढ़ी के गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे तथा भारतभूषण अग्रवाल की अकविता से सम्बद्ध हुए तथा अकविता को नये सिरे से प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की । पर उन्हें इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुयी । डॉ0 जगदीश गुप्त के शब्दों में " अकविता ' नयी कविता ' के बाद अविर्भूत अन्य कविता - संज्ञाओं की अपेक्षा कुछ अधिक व्यापक स्वीकृति या सकी ----- किन्तु दृष्टिकोण की अस्थिरता, प्रदर्शनवादियों एवं बीटनिकों के प्रभाव को नकराने - स्वीकारने की अन्तर्विरोधी एवं संशयग्रस्त मनः स्थिति के कारण उसका प्रभाव भी गहरा होने के स्थान पर बिखर गया ।"[2]

---

1. आधुनिक हिन्दी - साहित्य का इतिहास - डॉ0 बच्चन सिंह; पृ0 - 342
2. नयी कविता - अंक - 8; लेख - 'किसिम-किसिम की कविता' - डॉ0 जगदीश गुप्त; पृ0 - 273

अकविता की यौन - कुंठा का पूर्वरूप प्रयोगवादी काव्य की स्थापनाओं में स्वीकृत किया जा चुका था । नयी कविता के लघु - मानव की धारणा से प्रेरणा पाकर भी सन् साठ के बाद ' अकविता ' के रूप में मनुष्य - विकृतियों एवं नाम - कुंठाओं को लघुता के रूप में आग्रह पूर्वक व्यक्त किया गया । डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी के शब्दों में ----- " अकविता प्रगतिशील कविता कहीं न कहीं से नयी कविता की प्रेरणा पाकर प्रकट हुयी । अकविता तो नयी कविता की यौन - कुंठाओं का विकास है और प्रगतिशील कविता भी प्रगतिवादी साहित्यकारों की उन्हीं की धुरी पकड़कर चलती है, जो प्रयोगवादी हो गये थे ।"[1]

डॉ0 जगदीश गुप्त ने ' किसिम किसिम की कविता ' में सातवे दशक में उत्पन्न हुए काव्यान्दोलनों का व्यंग्यात्मक विवेचन ' नयी कविता ' के आठवें अंक में किया है । इसमें उन्होंने ' सनातन सूर्योदयी कविता', अभिनव - काव्य, गीत कविता, निर्दिशायामी कविता, अकविता और अ - अकविता, अस्वीकृत, आज की कविता, नवप्रगतिवादी या नव प्रगतिशील कविता, अगली कविता या सहज कविता के आन्दोलनों के स्वरूप पर चर्चा करते हुए लिखा है " जिन लोगों ने इस बड़े अभियान को छोटी - छोटी अनेक नामधारी टुकड़ियों में बाँटकर इसकी प्रगति को विश्रृंखल करने का उपक्रम किया है, उन्होंने अपने ऐतिहासिक दायित्व का ठीक ढंग से संवहन नहीं किया है ----- आज भी मुक्त - छंद ही अभिव्यक्ति का प्रमुख स्वरूप है ।----- भाषा का प्रयोग बहुत सी नयी विधियों के साथ किया गया है और किया जा रहा है । जिसे ' नंगी भाषा ' कहा जाता है, वह कटु - यथार्थ की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । नयी कविता में आरम्भ से ही ऐसी अभिव्यक्ति मिलती है ।--- केवल यौन - विषयों और शब्दों तक सीमित हो जाना नंगी भाषा का प्रयोग करना नहीं है ।"[2]

यद्यपि सन्' 60 के बाद उभरे विभिन्न काव्यान्दोलन स्वयं को नयी कविता से पृथक घोषित करते हैं, पर उनमें नयी कविता की ही किसी प्रवृत्ति को ग्रहण किया गया है । जगदीश चतुर्वेदी के अनुसार " सामूहिक रूप से ये आन्दोलन उस साठोत्तरकालीन यथार्थ को

---

1. नयी कविता के बाद - डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी ; पृ0 - 22
2. नयी कविताः स्वरूप और समस्यायें

अभिव्यक्त करते हैं, जो मूल्यहीन राजनीति, मुनाफाखोर अर्थ - व्यवस्था और जड़ - समाज - व्यवस्था का मिला - जुला रूप है ।"[1]

डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी ' साठोत्तरी कविता ' की पहचान ' समाज के खांखले आदर्श, वैज्ञानिक युग की जटिलता से उत्पन्न वर्ग - चरित्र, परिवर्तित मूल्यों को चित्रित करने वाली शलाका - पुरूष - विहीन कविता ' मानते हुए उसे ' नयी कविता की प्रतिक्रिया - स्वरूप उत्पन्न ' बताते हैं । परन्तु इसे नयी कविता की क्रमशः संकुचनशील होती धारा का यथार्थ परिवेश के भीषण दबाव से सहसा अनेकों धाराओं के वेग से युक्त होकर प्रवाहित हो उठना ही माना जायेगा । साथ ही यह भी निर्विवाद है कि नयी कविता सन् ' 60 के बाद नवीन परिवर्तनों को आत्मसात कर नवीन स्फूर्ति एवं चेतना से युक्त हो उद्दाम गति से आगे बढ़ी है । इस नवीनता को यदि अलग - अलग अध्ययन का विषय बनाया गया है, तो वह नयी कविता के विस्तार का ही सूचक है । नवप्रगतिशील कविता, जिसमें समाज के निम्न व मध्यम वर्ग के उपेक्षित व त्रस्त जीवन के चित्रण तथा व्यवस्था पक्ष को भ्रष्टता का उद्घाटन है, तथा युवा कविता जिसमें सम्मिलित रूप से सन्' 60 के बाद लिखने वाले कवियों की कवितायें हैं, जिसके अन्तर्गत राजनीतिक विसंगतियों के प्रति आक्रोश, प्रहार एवं व्यंग्य है, समाज के खोखलेपन एवं जीवन की जटिलताओं के चित्र हैं, इन दोनों के अतिरिक्त नयी कविता के वे सभी कवि, जो छठें दशक में क्रियाशील रहे, और इन नवीन चेतनाओं को आक्रामक तेवर के साथ व्यक्त करते हैं, साठ के बाद की कविता को सम्मिलित रूप से समृद्ध कर रहे हैं । अकवितावाद का तथाकथित आन्दोलन एक प्रभाव के रूप में इन सभी कवियों पर कमबेश दिखता है । अकवितावादी यौन - चित्रण ने अपनी विस्फोटक मुद्रा द्वारा नैतिक रूढ़ियों के दुर्ग को ध्वस्त करने का कार्य किया । नयी कविता में परवर्ती काल में यौन - शब्दावली का प्रयोग अकुंठित सहज - अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में किया गया । इस सन्दर्भ में डॉ0 जगदीश गुप्त का यह कथन उद्धृत किया जा सकता है कि " अश्लीलता, कुत्सा, कुण्ठा तथा अन्यान्य विकृतियों की अभिव्यक्ति साहित्य में वर्जित न हो, यह भिन्न बात है, किन्तु उन्हीं पर

---

1. आज की हिन्दी कविता - संपादक - जगदीश चतुर्वेदी, हरदयाल, भूमिका - पृ0 - 5

विशेष बल देना अथवा उनसे बंधकर रह जाना अन्ततः अस्वस्थ मनः स्थिति की सूचना देता है। नव लेखन वर्जनाओं की प्रतिक्रिया मात्र न होकर अनुभूति की यथार्थता एवं समग्रता का परिचायक है । वैचारिकता से समर्थित तथा अनुभव से प्रमाणित, व्यक्तित्व - सम्पृक्त यथार्थ - ग्रहण उसकी प्रकृति के अनुकूल रहा है, जिसके लिए वह मानव - चेतना के अगणित, अलक्षित आयामों की खोज में प्रवृत्त हुआ है ।"[1]

आठवें दशक की कविता में पुनः नये - नये युवा कवियों की संख्या बढ़ी है । इनमें एक सहजता सामान्य स्तर पर परिलक्षित होती है । आक्रोश एवं विद्रोह क्रमशः संतुलित होते गये हैं । वस्तुतः सामाजिकता का स्वर नयी कविता में छठें दशक में उभर कर सातवें एवं आठवें दशक की कविताओं में नये - नये आयामों को छूता रहा है । कहीं वह सामाजिक विषमता एवं असमानता के स्तर को उद्घाटित करता है, तो कहीं व्यक्ति - चरित्र की गिरावट को । कहीं व्यवस्था - पक्ष की धज्जियाँ उड़ाता है , तो कहीं निजी सुख - दुखात्मक संवेगों तथा प्रकृति एवं सौंदर्य के नवीन पक्षों को उजागर करता है । आधुनिक मनुष्य के खोखलेपन तथा रिक्तता के ऊपर भी इनकी विक्षुब्ध दृष्टि गई है । भाषा की दृष्टि से नयी कविता निरन्तर एक यथार्थ धरातल को प्राप्त करने में प्रवृत्त रही है और भाषा को उसके सहज स्वाभाविक रूप में प्राप्त भी कर सकी है ।

प्रयोगवादोत्तर काव्यः व्यंग्यात्मकता के कारणः-

व्यंग्य नयी कविता की एक ऐसी प्रवृत्ति रही है, जो उत्तरोत्तर विकसित होती रही है । नये कवियों की मनोभूमि व्यंगात्मकता के अनुकूल रही है । यूँ तो साहित्य के हर युग के, प्रत्येक काल खण्ड की काव्य - कृतियों में कम या अधिक व्यंग्य पाया जाता है, परन्तु प्रयोगवादोत्तर काव्य (नयी कविता) में व्यंग्यशीलता का आधिक्य है । वैसे तो पेशेवर व्यंग्यकारों द्वारा रचित हास्य - व्यंग्य की एक पृथक धारा साहित्य में निरन्तर प्रवहमान रही है, तथा अभी भी है, परन्तु प्रयोगवादोत्तर काव्य बनाम नयी कविता के कवि पेशेवर व्यंग्यकार

---

1. नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें - डॉ0 जगदीश गुप्त; पृ0 - 327

नहीं हैं । पेशेवर व्यंग्यकार की पहचान कवि के रूप में कम, व्यंग्यकार के रूप में अधिक होती है । ' नयी कविता ' में केवल व्यंग्य - लेखन ही नहीं है, वह काव्य विविध भावानुवर्तिनी धारा है । एक सर्वसमर्थ कवि के काव्य में व्यंग्य का अधिकाधिक समावेश होना या उसका व्यंग्यकार बन जाना, उसके मूल कारणों पर दृष्टि डालने के लिए प्रेरित करती है । पेशेवर व्यंग्यकार व्यंग्यकारक परिस्थितियों को खोजता रहता है और उन पर व्यंग्य करने को सदैव तत्पर रहता है, क्योंकि व्यंग्य लिखना ही उसका लक्ष्य होता है । इसीलिए उसके काव्य में प्रायः हास्य भी घुला - मिला रहता है । वह काव्यात्मक सौंदर्य की दृष्टि से नहीं लिखता परन्तु जब एक कवि व्यंग्य के लिए प्रवृत्त होता है, तो उसके पीछे बाध्य परिस्थितिगत तथा आन्तरिक द्वन्द्वगत कुछ ऐसे कारण होते हैं, जो उसे व्यंग्य करने के लिए विवश करते हैं, या जिनके कारण कविता में व्यंग्य अनिवार्यतः उत्पन्न हो जाता है । चूँकि यहाँ व्यंग्य के सामान्य कारणों से इतर प्रयोगवादोत्तर काव्य के अन्तर्गत व्यंग्य के कारणों देखना है, अतः ये कारण अपनी विशिष्टता रखते हैं ।

प्रयोगवादोत्तर काव्य (नयी कविता) में व्यंगात्मकता की प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए डॉ0 जगदीश गुप्त ने लिखा है कि ----- " नयी कविता आकर्षण को ही नहीं, विकर्षण को भी टटोलती है । व्यंग्य करना, चोट करना, झकझोर देना, ध्यान में डूबे हुए को जैसे टोक देना और कुछ सोचने पर मजबूर कर देना उसका स्वभाव है । वह रिझाती कम है, सताती अधिक है ।"[1]

जितेन्द्र नाथ पाठक ने नयी कविता को एक ऐतिहासिक अनिवार्यता कहा है, जो सत्य है ।[2] व्यंग्य को भी नयी कविता में एक अनिवार्यता के रूप में देखा जा सकता है । नयी कविता जिन बाह्य एवं आन्तरिक जगत के संक्रमित एवं विघटित घटना - क्रमों एवं मानवीय मूल्यों के परस्पर घात - प्रतिघात का प्रतिफलन है, उन्हीं बाह्य एवं आन्तरिक विसंगतियों से कवि का साक्षात्कार उसके व्यंग्यात्मक तेवर का कारण है । प्रयोगवादोत्तर काव्य

---

1. आलोचना - अंक - 3, अप्रैल 1953, लेख - ' नयी कविता में रस और बौद्धिकता डॉ0 जगदीश गुप्त; पृ0 - 57
2. नयी कविता - संयुक्तांक - 5-6; पृ0 - 58

अपने यथार्थ स्वरूप में सहज ढंग से व्यंग्य के निकट जा पड़ा है । नयी कविता जीवन के यथार्थ से जिस रूप में जुड़कर विकसित हो रही थी, उसमें यथार्थ परिवेश की विसंगतियाँ, विकृतियाँ, अन्तर्विरोध एवं विडम्बनायें व्यंग्य के तात्कालिक परिस्थितिगत कारण बने । परन्तु इसके साथ तो नयी कविता के कवियों में वे मानसिक विशिष्टतायें भी थी, जिनकी वजह से वह परिस्थितिगत व्यंगात्मकता को तीखे एवं मारक ढंग से व्यक्त करता है । इस मानसिक विशिष्टता के ही कारण नयी कविता का व्यंग्य परम्परागत व्यंग्य की सीमाओं एवं मुद्राओं का अतिक्रमण भी कर जाता है । इस प्रकार प्रयोगवादोत्तर काव्य के व्यंगात्मक तेवर के कारणों को मुख्य रूप से दो भागों में रख सकते हैं । पहला बाह्य परिस्थिगत कारण तथा दूसरा कवि - मानस की विशिश्ट स्थितिगत कारण । यद्यपि इन इन दोनों कारणों का परस्पर घनिष्ट एवं अनिवार्य सम्बंध है, पर सुविधा एवं स्पष्टता के लिए इनका अलग - अलग विवेचन करना ही ठीक होगा ।

क- परिवेशगत कारणः-

समाज में व्यक्तियों की परस्पर क्रिया - प्रतिक्रिया ही बाह्य परिस्थितियों की निर्मात्री होती है । आदिम काल से आज तक मनुष्य के विकास का इतिहास परिवेश के प्रत्यक्ष दृश्यमान, परिवर्तन तथा मनुष्य के प्रच्छन्न (आन्तरिक) परिवर्तन से सम्बद्ध रहा है । साहित्यकार इन परिवर्तनों को लाने में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इसके साथ ही इन परिवर्तनो की अनुगूँज उसकी कृतियों में अनेक रूपों में सुनाई पड़ती है । साहित्यकार का भाव - बोध बाह्य परिवेश में घटित घटनाओं से गहरे स्तर पर प्रभावित होता है, जिससे उसमें भी परिवर्तन घटित होता है । उसका परिवर्तित भाव - बोध नये दृष्टिकोण तथा परिवर्तन की नवीन कामना के साथ उसकी रचनाओं में व्यक्त होता है । एक तरफ सम्पूर्ण विस्तृत परिवेश की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा मान्यतायें होती हैं, दूसरी तरफ इन सबकी प्रखर चेतना के बीच जीता संवेदनशील साहित्यकार होता है । इन बाह्य परिस्थितियों के प्रति साहित्यकार की प्रतिक्रिया सामान्य मनुष्यों से भिन्न होती है । सुखकर तथा अभीष्ट स्थितियों के प्रति वह जितनी ही रागात्मक रूझान रखता है, विपरीत तथा अवांछित

परिस्थितियों के प्रति वह उतना ही सजग तथा विद्रोही होता है । साहित्यकार चूँकि भावुक तथा संवेदनशील होने के साथ ही साथ चिन्तनशील भी होता है, अतः बाह्य परिवेश से उसका लगाव तथा बिलगाव दोनों ही विशिष्ट रूप में उसके साहित्य में अभिव्यक्ति पाते हैं । विचारशीलता तथा प्रखर विवेचन - शक्ति द्वारा वह परिस्थितियों के औचित्य - अनौचित्य का सम्यक मूल्यांकन करता रहता है तथा अपने अनुभवों, विचारों तथा उद्देश्यों के आधार पर उनमें उचित परिवर्तन की इच्छा करता है ।

प्रयोगवादोत्तर काव्य का विकास स्वातंत्र्योत्तर भारत की विविध जटिल परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में हुआ है । इस धारा की कविताओं में समसामयिक यथार्थ, अपने विविधता के साथ नग्न रूप में व्यक्त हुआ है । सम्पूर्ण नयी कविता परिवेश के काव्य रूप से लगाव तथा उसकी स्वीकृति और अवांछित तथा विकृत रूप से विलगाव तथा उसके निषेध की कविता है । जागरूक नया कवि सत्य रूप में प्रतिष्ठापित किसी ऐसे मूल्य या मान्यता को सहन नहीं कर पाता, जो अपनी वर्तमान उपयोगिता, सन्दर्भ या अर्थवत्ता खो चुका हो । नयी कविता में ' नये मनुष्य ' की खोज भी मानव के युग सापेक्ष सत्य - स्वरूप की ही खोज है ।

नयी कविता के परिवेशगत कारण ही वे मूल कारण है, जिनसे इस धारा के कवियों में व्यंग्य की मानसिकता का निर्माण हुआ है । बाह्य परिस्थितियों में व्याप्त अन्तर्विरोध तथा विसंगतियाँ कवि - मानस को छूती ही नहीं झकझोरती चलती है । इस धारा के कवियों में व्यंग्यात्मकता के परिवेशगत कारणों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा घटनायें एवं उनमें निहित विसंगतियाँ प्रमुख कारण हैं । समसामयिक यथार्थ का चित्रण करते हुए कवियों ने राजनीतिक विसंगतियों का अधिकाधिक चित्रण कविता में किया, जिसके परिणाम स्वरूप व्यंग्य का समावेश काविता में स्वयमेव हो गया । नयी कविता का काल राजनीतिक स्तर पर क्रमशः होने वाले मोहभंगों का काल रहा है । इसी मोहभंग ने कविता में आक्रोश एवं विद्रोह की स्थिति उत्पन्न की । अब कवि राजनीतिक वायदों की अवसरवादी नीति के प्रति सचेत हो गया । समसामयिक राजनीतिज्ञों के दोगले चरित्र एवं भ्रष्ट आचरण ने कविता को राजनीति से सम्बद्धता व्यंग्यात्मकता का कारण बनी । राजनीतिक दलबदल, वोट की राजीनीति, भ्रष्टाचार, खोखले

आश्वासन एवं आयोजन दिखावटी तथा सत्ता के उपभोग की क्षुद्र मनोवृत्ति से किया गया सत्ता का दुरूपयोग , तरह - तरह के आकर्षक पर झूठे सिद्ध होने वाले नारे, नेताओं के उद्घाटन भाषण, इत्यादि वे राजनीतिक क्रियाकलाप हैं, जो नये कवि में आक्रोश की तीव्रता में तीखे मारक व्यंग्यों की सृष्टि करते हैं । स्वतंत्र - भारत में जिस लोकतंत्र की स्थापना की गयी थी, वह चुनावी हथकंडों के कारण विसंगतिपूर्ण हो गयी थी । संसद में नेता के रूप में चुनकर जो लोग पहुँच रहे थे, उनके क्रियाकलाप घटिया एवं स्वार्थवृत्ति से प्रेरित थे । नेतागण अपने दुहरे - तिहरे व्यक्तित्व के कारण विदूषक की शक्ल में बदल गये । नयी कविता के कवियों ने इन राजनीतिक विरूपताओं एवं विकृतियों का अनुभव बडे तीखे दंश के रूप में किया था । अतएव उनकी प्रतिक्रिया व्यंग्य के रूप में फूट पड़नी स्वाभाविक थी । नयी कविता में इसीलिए राजनीति से सम्बन्धित व्यंग्य सर्वाधिक है । जैसे - जैसे राजनीतिक जीवन में विसंगतियाँ एवं विकृतियाँ बढ़ी हैं, उसी क्रम में कविता में भी आक्रोश एवं व्यंग्य की प्रवृत्ति बढ़ी है । सन्'60 के बाद का काल राजनीतिक उथल पुथल की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है । इसीकाल से नयी कविता में भी व्यंग्य की, विशेषकर व्यवस्था पक्ष की विसंगतियों के उद्घाटन से सम्बंधित व्यंग्य की प्रवृत्ति तीव्रतर होती गयी है । डॉ0 बच्चन सिंह के अनुसार " वर्तमान लोकतंत्र अपनी विसंगतियों में प्रतिदिन धुंधलके की तरफ बढ़ता रहा । पूँजीवाद और लोकतंत्र की साँठ - गांठ के कारण मनुष्य की रही - सही आशा भी क्षीण हो गयी । ज्यों - ज्यों समय बीतता गया, वर्ग - भेद, जाति - भेद, भाई - भतीजावाद का बाजार गरमाता गया और राष्ट्रीय - चरित्र गिरावट की सीमा पार कर गया । ----- ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी के पास दो विकल्प थे ----- एक तो यह कि वह व्यवस्था में अपने को ढाल ले, दूसरा यह कि बदलाव के लिए संघर्षरत हो । व्यवस्था में अपने को ढाल लेने पर बुद्धिजीवी बुद्धिजीवी नहीं रह जाता । अतः बदलाव ही एकमात्र विकल्प बचता है ।"[1]

इस प्रकार राजनीति से सम्बद्ध कवितायें व्यवस्था में बदलाव के लिए कटिबद्ध होकर ही व्यंग्य के प्रहार से युक्त हुयी । सामाजिक जीवन में व्यक्ति के चरित्र मूल्यों में जो गिरावट आयी, उसका कारण भी राजनीतिक - मूल्यों की भ्रष्टता ही था । सामाजिक, आर्थिक,

---

1. आधुनिक हिन्दी - साहित्य का इतिहास - डॉ0 बच्चन सिंह; पृ0 - 34।

साहित्यिक एवं धार्मिक विडम्बनाओं की सृष्टि भी राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण ही होती है । इसी कारण नयी कविता में व्यंग्य का तात्कालिक कारण समसामयिक राजनीतिक स्थितियाँ ही हैं । इसी कारण नये कवियों की राजनीतिक व्यंग्य की कवितायें प्रायः तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं का एक साहित्यिक अभिलेख बन गयी है ।

नयी कविता के व्यंग्य के बाह्य कारणों में सामाजिक - आर्थिक विषमता की स्थिति भी महत्वपूर्ण रही है । यह सामाजिक एवं आर्थिक विषमता कवि को उसकी लोक - सम्पृक्ति के कारण अधिक उद्विग्न करती है । परिवेश चाहे ग्रामीण हो या नगरीय गरीब एवं अमीर की दो श्रेणियाँ तथा मध्यम वर्ग की तीसरी श्रेणी दोनों जगह उपस्थित होती हैं । कवि आम आदमी या साधारण गरीब मनुष्य की स्थिति को देखता - भोगता एवं उसकी विडम्बनाओं से साक्षात्कार करता है । नयी कविता के कवि - विशेषकर प्रगतिशील धारा के कवि - साधारण मनुष्य एवं उसकी दीन - हीन दशा की तह तक पहुँचते हैं । इस क्रम में वे शोषक वर्ग एवं पूँजीवादी व्यवस्था की विकृतियों एवं उसकी अमानवीयता से संतप्त होकर व्यंग्य करने के लिए प्रेरित होते हैं । प्रायः ऐसी परिस्थितियों पर व्यंग्य के लिए वे कवि अधिक उद्यत होते हैं, जो स्वयं इन्हीं वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं । वे इसके संघर्ष से गुज़र कर परिपक्व हुए होते हैं । अतः इनके दृष्टिकोण में शोषक के प्रति व्यंग्य एवं प्रहार की मानसिकता बनती है। मुक्तिबोध निम्न एवं मध्यम वर्ग की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं ----- आजीविका का संघर्ष उसे पछाड़ देता है । स्नेह की भूख उसे दबा देती है । ज्ञान की पिपासा जागृत होते हुए भी, उसके साधन उसके पास नहीं होते । इसलिए उसके स्थायी भाव क्षोभ, घृणा, अविश्वास, तिरस्कार (रहते हैं) और साथ ही स्नेह - सम्बंधों के निर्वाह का अनुरोध, अपने व्यक्तिगत संघर्ष को सामाजिक संघर्ष में बदलने की लालसा और तत्संबंधी जिज्ञासा पैदा हो जाती है । वह भावुक से अब बौद्धिक होने लगता है ।" [1]

मुक्तिबोध का उक्त उद्धरण यह भी स्पष्ट कर देता है कि सामाजिक ढाँचे की

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 5; पृ0 - 305

विषमता एवं आर्थिक अभावों की स्थिति बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण किस प्रकार करते हैं । वस्तुतः समाज की वर्गीय व्यवस्था में पिसकर पला - बढ़ा कवि स्वयं में उस मानसिकता को विकसित कर लेता है, जो व्यंग्य के लिए आवश्यक हैं । उसके स्वभाव में जिस क्षोभ, घृणा एवं तिरस्कार का प्रादुर्भाव होता है, वे साहित्यिक स्तर पर यथार्थ की विसंगतियों से टकराते ही आक्रोशपूर्ण व्यंग्य के रूप में सामने आ जाती हैं । इसके द्वारा वह एक प्रकार से उस निर्मम सामाजिक - व्यवस्था से बदला ले लेता है, जो उसके कष्टों तथा साथ ही साधारण मनुष्य के कष्टों के लिए जिम्मेदार होती है । इस प्रकार वह यथास्थिति की घुटन एवं बेचारगी के प्रति सामाजिक - संघर्ष के स्तर पर उबरता है । व्यंग्य इस संघर्ष का एक घातक अस्त्र बन जाता है ।

नयी कविता के व्यंगात्मक तेवर के कारणों में ज्ञान - विज्ञान की नवीन खोजों के फलस्वरूप उत्पन्न हुए मूल्यों के विघटन का भी महत्वपूर्ण स्थान है । स्वतंत्रता पूर्व से ही पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से भारतीय साहित्यकारों का सम्पर्क बढ़ चुका था । पाश्चात्य विचारधारायें एवं नये जीवन - मूल्यों ने साहित्य के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव डाला । विज्ञान और धर्म, नवीन विचारधारायें एवं परम्परागत मूल्य, पाश्चात्य विचार धारा एवं जीवन - दर्शन तथा भारतीय जीवन - दर्शन का अन्तर्विरोध, ये सभी स्थितियाँ कवि मानस में व्यंग्य की एक ऐसी परिस्थितिगत पृष्ठभूमि की निर्मात्री हैं, जो कवि को काव्य - क्षेत्र में परम्परागत प्रतिमानों से विद्रोह के रूप में प्रारम्भ करके जीवन - जगत की असंगतियाँ, अन्तर्विरोधों एवं विसंगतिपूर्ण पूर्व - मान्यताओं के प्रति भी विद्रोही बनाती हैं । विदेशी ज्ञान - विज्ञान ने कवि के दृष्टिकोण को विस्तृत किया, जिसके कारण अन्धविश्वासों, रूढ़ मान्यताओं एवं खोखले मूल्यों की व्यंग्यास्पद स्थिति प्रत्यक्ष हो उठी ।

वैज्ञानिक उन्नति ने पूँजीवाद को लाभ दिया । भौतिकवाद एवं निश्चयवाद की स्थापना हुयी । वैज्ञानिक मानववाद का सिद्धान्त भी आया, जिसमें मनुष्य के पूर्ण वैज्ञानिक स्वरूप के विकास की व्यवस्था थी, पर उसकी स्वतंत्रता का हनन था । पश्चिम में औद्योगिक पूँजीवाद ने भौतिकवाद के महत्व की प्रतिष्ठा की, पर पश्चिम के ही अनेक महान विचारकों तथा दार्शनिकों ने इसे निकृष्ट ठहराया क्योंकि इसमें बुद्धि तथा मानवीय प्रकृति के साथ तालमेल

नहीं था । इसी सन्दर्भ में आई0ए0 एक्स्ट्रास लिखते हैं " फलतः हमारी शताब्दी ने एक ऐसी सभ्यता के आश्चर्यजनक अन्तर्विरोधों को देखा, जिसकी मौलिक धारणायें भौतिकवादी थीं, परन्तु जिसकी कामनायें वस्तुतः आध्यात्मिक थीं और इसलिये भौतिकवाद के प्रसंग में निरर्थक एवं अप्राप्य बनी रहीं । अन्तर्विरोध की इस स्थिति में ही आधुनिक संकट का उदय होता है । "[1] इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यथा - संस्कृति एवं विचार धारा में व्याप्त अन्तर्विरोध की स्थितियाँ नये कवि के सम्मुख स्पष्ट थी । अतः पाश्चात्य - सभ्यता के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति एवं खोखले विचार शून्य आधुनिकता के ढोंग इत्यादि पर कवि की व्यंग्य - दृष्टि पड़ी ।

फ्रायड की मनोवैज्ञानिक खोजों का प्रभाव भौतिक मूल्यों के ध्वंस के रूप में पड़ा । वैज्ञानिक उन्नति एवं मनोवैज्ञानिक खोजों द्वारा ईश्वर में आस्था समाप्त हो गयी । ईश्वर का अस्तित्व भी व्यंग्य का विषय बना । पाप - पुण्य की प्रचलित मान्यताओं में उदारवादी दृष्टिकोण के कारण परिवर्तन हुआ । पहले जिस चंद्रमा को देवता का रूप समझा जाता था, वह कंकड़ - पत्थर से युक्त एक लोक निकला । मानव ने चाँद पर पहुँच कर ईश्वर की धारणा के सामनें मनुष्य की शक्ति की महत्ता को सिद्ध किया । फलतः धार्मिक - दृष्टिकोणों की प्रचलित पद्धतियों के प्रति व्यंग्य भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था । इससे कवियों के सौंदर्य - लोक में भी एक विस्फोट हुआ और सौंदर्य के प्राचीन प्रतिमान एवं उपमान अपना अर्थ खोने लगे । अब कवि मुख की तुलना चंद्रमा से करने से कतराने लगे । उनकी तत्संबंधी अभिव्यक्तियों में एक व्यंग्यात्मकता का समावेश होने लगा । चंद्रमा कवि को कभी ' रूपये सा दिखने लगा ' तो कभी ' कंजे मुख वाला ' । वैज्ञानिक उन्नति ने एटम बम जैसे भयानक उपकरण का निर्माण किया था । पृष्ठभूमि में दो विश्व युद्धों की भयानक त्रासदी भी थी । वैज्ञानिक उन्नति ने यह भी साबित कर दिया कि जीवन उत्पन्न करना मनुष्य के हाथ में है । इन सब स्थितियों ने एक ओर तो भय, आशंका, नैराश्य इत्यादि की सृष्टि की, दूसरी ओर ईश्वर विषयक धारणा विशेषकर उसके परम्परागत रूढ़ रूप पर प्रहार किये गयें । ईश्वर हास्य एवं व्यंग्य का विषय बन गया । वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप कवि में यथार्थ वादी दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा वे अनुभव को ही प्रामाणिक मानने लगे । किसी प्रकार की

---

1. वर्तमान संकट और मानवीय मूल्यों का विघटन - लेख - आई0ए0 एक्स्ट्रास; आलोचना - अंक - 2; जनवरी 1954; पृ0 - 6।

रूढ़ि - चाहे वह सामाजिक हो या धार्मिक - के प्रति तिरस्कार एवं उपेक्षा का भाव उत्पन्न हुआ । इससे व्यंग्य की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला ।

सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में जो जीवन - मूल्य थे, उनमें वैज्ञानिक उन्नति एवं नवीन विचारधाराओं के प्रभाव स्वरूप विघटन उत्पन्न हो चुका है । मूल्यों के विघटन की स्थिति ने भी व्यंग्य के लिये प्रेरित किया । वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राचीन मूल्य निरर्थक सिद्ध हो रहे थे । अस्तित्ववाद के प्रभावस्वरूप ईश्वर एवं भाग्य में विश्वास एवं आस्था कम या समाप्त होती जा रही थी । यह अनास्था नयी कविता में जन - जीवन में व्याप्त अनास्था से गहरी थी । मूल्यों का विघटन एवं नवीन - जीवन मूल्यों का अभाव नये कवियों में खीझ, विक्षोभ एवं आक्रोश पैदा कर रहे थे । जहाँ एक ओर निरर्थक मूल्यों के प्रति व्यंग्य उत्पन्न हुआ, वहीं मूल्यहीनता की स्थिति पर भी व्यंग्य किया गया । विघटित मूल्यों की सापेक्षता में जीवन - जगत में कवि ने अनेकों विसंगतिपूर्ण स्थितियों के दर्शन किये । मूल्यहीनता की स्थिति ने कवि की स्वयं की सत्ता को भी विवश, असहाय, निरर्थक एवं क्षणिक जीवन से युक्त बना दिया, जो सारे अन्तर्विरोधों एवं विसंगत - स्थितियों की जटिलताओं में जीने के लिए छोड़ दिया गया है । इस स्थिति ने भी कवि को जीवन के प्रति एक खीझ, एक व्यंग्य का दृष्टिकोण दिया । अपनी अनास्था, घुटन, नैराश्य एवं विवशता की स्थिति में किसी भी जीवन - मूल्य को न प्राप्त कर पाने की खीझ एवं आक्रोश नयी कविता में कुत्सित यौन - प्रतीकों, शब्दों एवं भावों के व्यंग्यपूर्ण प्रकटीकरण में मिलती है । परन्तु जहाँ मूल्यों के विघटन की चेतना निराशा या कुंठा के मनोभावों से अलग हटकर ही बाह्य परिस्थितियों में विघटन से उत्पन्न विडम्बना का दर्शन करती है, वहाँ उसका व्यंग्य सार्थक स्वरूप ग्रहण करता है । उसका तेवर उस नाराज़ आदमी का तेवर बन जाता है, जो जीवन एवं जगत की स्थिति से निराश नहीं, वरन् असंतुष्ट है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मूल्यहीनता की स्थिति एवं खोखले मूल्यों की निरर्थकता पर ही नया कवि व्यंग्य करता है । मूल्यहीनता की स्थिति जब कवि को ग्रसित कर लेती है, तब उसका व्यंग्य मात्र खीझ, आक्रोश या घृणा भाव के निरर्थक एवं निरूद्देश्य प्रकटीकरण के रूप

में होता है, जहाँ मात्र चौंकाने वाली शब्दावली या भावों के द्वारा व्यंगात्मकता की सृष्टि की जाती है । परन्तु मूल्यों एवं मूल्य - हीनता पर जब कवि व्यंग्य करता है, तो उसमें कवि की प्रतिबद्धता झलकती है । प्रयोगवादोत्तर कविता का विकृत अंश (अकविता) इसी मूल्यहीनता की दिशाहीन चेतना से युक्त है । मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया में व्यंग्य की सार्थकता एवं उसके प्रयोग को नयी कविता के सन्दर्भ में डॉ0 नगेन्द्र के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है ----- " कुछ मूल्य तो निश्चय ही सामयिक थे, जो आज सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही रूपों में व्यर्थ हो गये हैं, तथा कुछ मूल्य अपनी प्रकृति में मानव जीवन की चिरन्तन निधि - सिद्ध हैं । किन्तु वे व्यवहार में बड़े निकम्मे तरीके से प्रयुक्त किये गये हैं ----- वे केवल नीति - वाक्यों के रूप में उच्चरित किये जाते हैं । नयी कविता की प्रश्नाकुल दृष्टि इन मूल्यों को उनकी विकसित असंगतियों के बीच देखती है । इसलिये जहाँ ये मूल्य अपनी असंगतियों के कारण तीखे व्यंग्य का भाजन बनते हैं, वहीं नये संदर्भों में भी सिद्ध होने वाली उपयोगिता के कारण आस्था का आधार ।"[1]

ख- मनोवृत्तिगत कारण :-

नयी कविता में व्यंग्यात्मकता का अन्तर्निहित अमूर्त कारण कवि के उन विशिष्ट मानसिक गुणों में है, जो परिस्थितिगत कारण के उपस्थित होते ही कवि को व्यंग्य के लिए प्रेरित करते हैं । व्यंग्य की यह मनोभूमि नये कवियों में प्रायः व्यक्तिगत रूप में (स्वयं पर) व्यंग्य के रूप में भी प्रकट होती हैं । कहीं - कहीं कवि सामान्य प्रसंगों, प्रकृति, सौंदर्य आदि में भी अपनी विशिष्ट मानसिक - स्थिति के कारण ही व्यंग्यात्मकता की सृष्टि कर देता है । इन कारणों में बौद्धिकता का आग्रह, यर्थाथ से सम्पृक्ति, प्रगतिशील मनोवृत्ति, जटिल परिस्थितियों के बीच असहायता की स्थिति, आक्रोश, क्रोध एवं जटिल परिस्थितियों से जूझने की तेजस्विता नये कवियों के व्यंग्यात्मक तेवर के अन्तर्निहित मूल कारण हैं ।

1- बौद्धिकता का आग्रह :-

जीवन - मूल्यों की सार्थकता या निरर्थकता का विश्लेषण एवं परीक्षण बौद्धिक

---

1. हिन्दी - साहित्य का इतिहास - सं0 - डॉ0 नगेन्द्र; पृ0 - 64

दृष्टिकोण के कारण ही किया जाता है । भावुकता के स्थान पर बौद्धिक संवेदना नयी कविता की प्रमुख विशेषता है । इसी बौद्धिकता के कारण नयी कविता तार्किक है, काल्पनिक नहीं । डॉ० जगदीश गुप्त के शब्दों में " नयी कविता बौद्धिकता की छाया में विकस रही है, अतः उसमें एक अन्तर्निहित आलोचनात्मकता मिलती है, यथार्थ - चित्रण का आग्रह , सूक्ष्म व्यंग्य तथा शैलीगत वैचित्र्य एवं नये - नये अर्थो को ध्वनित करने वाला अभिनव प्रतीक - विधान आदि, जिन्हें नयी कविता की विशेषतायें कहा जा सकता है, सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है ।"[1]

प्रयोगवादोत्तर काव्य में बौद्धिक चेतना ही व्यंग्यास्पद स्थितियों की सूक्ष्म पकड़ एवं अभिव्यक्ति में सहायक बनी । बौद्धिकता के कारण ही जब कवि जीवन के विरोधी तत्वों से आक्रान्त होता है, तो इनसे मुक्ति के लिये वह तार्किक विश्लेषण की विधि अपनाता है । उसे प्रचलित परम्परित मांगों की अनुपयुक्तता , विभिन्न विचारों एवं आदर्शों की कमियाँ, उनका थोथापन अपने सभी पक्षों के साथ सपष्ट दीख जाता है । अतः वह विभिन्न स्थितियों या परिस्थितियों में निहित अपूर्णताओं, अन्तर्विरोधों, विरोधाभाषों को काव्य रचना के दौरान बड़ी सूक्ष्मता से अन्तर्ध्वनित करते हुए व्यक्त कर पाता है । इन असंगतियों व अन्तर्विरोधों का दर्शन कर वह उनके प्रति आस्था खो देता है, क्योंकि वह किसी स्थिति या घटना के प्रति भावुक दृष्टिकोण रखकर नहीं चलता । बौद्धिक सूक्ष्मता के कारण वह तर्कसंगत ढंग से विंसगतियों को व्यंग्य के साथ पकड़ता और कविता में उतारता है । इसीलिए नयी कविता के व्यंग्य में एक वैचारिक गरिमा का भी समावेश मिलता है । बौद्धिकता के आग्रह से उत्पन्न सजग एवं जागरूक दृष्टि उन्हें व्यंग्यात्मक स्थितियों की ओर ले जाती है । युग - दृष्टा कवि बौद्धिक होता है । इसी से वह न केवल अपने समकालीन यथार्थ की, वरन् भावी स्थितियों एवं परिणतियों का सही आकलन कर किसी भी स्थिति के व्यंग्यात्मक पहलू को दृष्टि से ओझल नहीं होने देता । अपनी बौद्धिकता के प्रखर आलोक में वह व्यंग्यात्मक स्थितियों की सही, सूक्ष्म एवं स्पष्ट पकड़ कर पाता है । उनके व्यंग्य को बहुआयामी स्तर पर भी अभिव्यक्त कर पाता

---

1. नयी कविता: स्वरूप और समस्यायें - डॉ० जगदीश गुप्त; लेख - ' नयी कविता में रस और बौद्धिकता'; पृ० - 83

है । बौद्धिकता नयी कविता में हताशा एवं निराशा से आक्रान्त होने पर उनसे निकलने का मार्ग ढूढने में प्रवृत्त होती है और यह मार्ग उसके व्यंग्यात्मक प्रहारों द्वारा बनाया जाता है । वह छायावादी कवियों की भाँति भावुक होकर कल्पना लोक में आश्रय लेता हुआ पलायनवादी नहीं बन पाता । वह कटु यथार्थ से वैचारिक एवं सुलझे हुए ढंग से जूझता है । ऐसे में उसके व्यंग्य में वक्रता अधिक होती है । वाग्वैदग्ध्यपूर्ण कथन, विडम्बना का उद्घाटन, वक्रोक्ति तथा सटीक व्यंग्यात्मक प्रतीकों का चयन, ये सब बौद्धिक संवेदना द्वारा ही संभव होता है । साथ ही बौद्धिक दृष्टिकोण कवि को, स्पष्ट ढंग से किसी भी विकृति को उद्घाटित करने की दो - टूक भाषा प्रदान करता है । उसे विसंगतियों के सही विश्लेषण के लिए निर्मम व्यंग्यदृष्टि प्रदान करता है । नयी कविता में जो आलोचनात्मक प्रवृत्ति पायी जाती है, वह उसकी बौद्धिकता का ही परिणाम है । नयी कविता के सभी कवि इसीलिये आलोचक भी हैं । काव्य की आलोचना के सन्दर्भ में भी उनकी व्यंग्य - दृष्टि बार - बार उभर कर सामने आती है ।

अतः स्पष्ट है कि व्यंग्य के लिये बौद्धिकता का योग आवश्यक है -- विशेषतः नयी कविता के कत्थ्य की दृष्टि से बौद्धिकता व्यंग्य का अनिवार्य तत्व बन जाता है । नयी कविता में बौद्धिक कौशल एवं काव्य - प्रतिभा का अनोखा संगम है, जो यथार्थ की विकृतियों या विसंगतियों का स्पर्श पाते ही व्यंग्य के लिये तत्पर कर देता है । काव्य - प्रतिभा तो कवि में होती ही है, इसलिये यह कहना अधिक ठीक होगा कि बौद्धिकता एवं विसंगतियों का मेल नयी कविता में व्यंग्य की सृष्टि कर देता है । बौद्धिक दृष्टि से परिपक्व कवि गूढ़ एवं गंभीर व्यंग्य करता है, तथा कभी - कभी वह व्यंग्य को बौद्धिक व्यायाम का रूप भी दे देता है, जिससे चमत्कारपूर्ण ढंग से मनोरंजक तत्व भी कविता में उत्पन्न हो जाते हैं ।

2- यथार्थ से सम्पृक्ति :-

नयी कविता ' अपने ऐतिहासिक विकास क्रम में क्रमशः अपनी रूमानी लिजलिजाहट छोड़ती वास्तविक जीवन - प्रसंगों से प्रतिकृत होने की शक्ति तथा साहस अर्जित करती है ।'[1]

---

1. आलोचना - जनवरी - मार्च - 72 ' नयी कविता भारतीय मनुष्य के सन्दर्भ में '; गोविन्द द्विवेदी; पृ0 - 74

नयी कविता में व्यंग्य है, क्योंकि जीवन की यथार्थ - स्थिति में व्यंग्य है । नया कवि यथार्थ आग्रही दृष्टि रखता है । वह कल्पना - लोक में भी यथार्थ के वैज्ञानिक पंखों से उड़ता है । तात्पर्य यह है कि उसके काव्य में भाषा, प्रतीक, उपमान तथा विषय - वस्तु सभी यथार्थ - दृष्टि रखकर ही लाये जाते हैं । नये कवियों की यथार्थ - सम्पृक्ति भी उनकी कविता के व्यंग्यात्मक तेवर का एक कारण है । आज कवि - सत्य यथार्थ - जीवन के साय से अलग नहीं रह गया है । जिस समय के कवि में भी यथार्थ - सम्पृक्ति हुयी है, वह व्यंग्य करने में कहीं न कहीं अवश्य प्रवृत्त हुआ है, क्योंकि यथार्थ - जीवन में ही व्यंगात्मक स्थितियाँ भी रहती हैं । कबीर, भारतेन्दु एवं निराला के काव्य का व्यंग्य इसका प्रमाण है । नयी कविता के दौर में यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि कविता, जीवन की छोटी - से - छोटी और जटिलतम स्थितियों के यथार्थ - चित्रण का पर्याय बनती गयी ।

यथार्थ के प्रति सम्पृक्ति के परिणामस्वरूप प्रयोगवादोत्तर काव्य में व्यंग्य का समावेश दो प्रकार से हुआ है । एक तो परिस्थिति में व्याप्त व्यंग्यात्मकता का उद्घाटन और दूसरा कवि द्वारा किसी भी असंगति, या व्यंग्यात्मक स्थिति को लक्ष्य करके किया गया व्यंग्य ।

प्रथम यथार्थपरक व्यंग्य नयी कविता में एक अनिवार्य भंगिमा एवं महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में आया है । यह स्वतः उद्घाटित व्यंग्य है, इसके लिए कवि अपनी तरफ से चैतन्य होकर प्रयास नहीं करता । यथार्थ - स्थिति में निहित अन्तर्विरोध, विरोधाभाष एवं विसंगति - बोध व्यंग्य के रूप में प्रकट हो उठता है । मुक्तिबोध ने काव्य की रचना - प्रक्रिया के दौरान एक ऐसी महत्वपूर्ण परन्तु अप्रत्याशित उपलब्धि का उल्लेख किया है, जो प्रारम्भ में कवि का कत्थ्य या अभिप्रेत नहीं रहता; पर रचना के पूर्ण होते ही उद्घाटित हो उठता है । "जब भाव - सम्पादन पूर्ण हो जाता है, तब उसमें एक नया तत्व आ जाता है - एक ऐसा तत्व जो कदाचित प्रारम्भ में कत्थ्य नहीं था, किन्तु जो भावों की प्रवहमान संगति की संस्थापना पूर्ण होते ही उसके भीतर उद्घाटित हो गया । असल में यह कहना कठिन है कि आभ्यंतर भाव संपादन की शैली - विशेष के कारण यह घटित हो उठा है, अथवा उस पूरी प्रक्रिया में से गुजरने के कारण लगे हाथों कुछ उद्घाटन हो गये हैं, जिनमें से एक वह भी

है । शायद ये दोनों ही बातें होती होंगी । किन्तु यह निश्चित है कि वह भाव सम्पादन की लगभग अनिवार्य उपलब्धि है । इसीलिए कविता पूरी होने पर कवि को यह प्रतीत होता है कि वह कविता में कुछ ऐसा विशेष कह गया है अथवा उद्घाटित कर गया है, जो प्रारम्भ में उसका कत्थ्य था ही नहीं ।"[1] ठीक उसी प्रकार से व्यंग्य भी नयी कविता में यथार्थ - चित्रण के क्रम में स्वतः उद्घाटित एक अनिवार्य अतिरिक्त उपलब्धि बन जाते हैं ।

दूसरे प्रकार के यथार्थपरक व्यंग्य में कवि व्यंग्यकारक परिस्थितियों के प्रति जागरूक होता है । उसका कथ्य प्रारम्भ से ही व्यंग्यात्मक स्थिति को लेकर चलता है । प्रायः प्रथम स्थिति में व्याप्त व्यंग्य की पहचान करके भी कवि कविता के अंतिम अंश में सप्रयास व्यंग्य करने लग जाता है । इस प्रकार प्रथम स्थिति के व्यंग्य का साक्षात्कार कवि की व्यंग्यशीलता को उभाड़ने का कार्य भी करता है । इस प्रकार यथार्थ सम्पृक्ति नये कवि को क्रमशः व्यंग्य की तरफ प्रवृत्त करती चलती है । जहाँ व्यंग्य पहले कवि का अभिप्रेत नहीं रहता, स्वयमेव व्यंग्य का उद्घाटन होता है, वहीं बाद में चलकर उसकी मनोवृत्ति में भी परिवर्तन होने लगता है और वह व्यंग्य करने में प्रवृत्त होता है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि यथार्थ जीवन में व्यंग्यात्मक परिस्थितियाँ है तथा नये कवि की यथार्थ आग्रही प्रवृत्तिवश उसके काव्य में व्यंग्य का समावेश हो जाता है । यह यथार्थ - सम्पृक्ति कवि की बौद्धिकता अपना विशिष्ट महत्व है ।

3- प्रगतिशील मनोवृत्ति :-

प्रयोगवादोत्तर काव्य के व्यंग्यशील होने का एक कारण नये कवियों की प्रगतिशीलता भी है । यह प्रगतिशीलता किसी वादमूलता की पर्याय नहीं, वरन् जीवन को जीने एवं परखने समझने की आधुनिक दृष्टि एवं पद्धति की द्योतक है । यह प्रगतिशीलता सामान्य अर्थों में वैचारिक स्तर पर आधुनिक जीवन - मूल्यों के सम्यक ग्रहण की परिचायक है । साहित्य में वादमूलक प्रगतिशीलता मार्क्सवादी दृष्टिकोण द्वारा वर्ग वैषम्य से उत्पन्न स्थितियों के प्रति आक्रोश एवं क्रान्ति - चेतना उत्पन्न करती है । परन्तु मार्क्सवाद से प्रभावित

---

1. नयी कविता - अंक - चार, मुक्तिबोध; पृ0 - 25, 26

प्रगतिशीलता एक विशिष्ट विचारधारा के रूप में होने से वैचारिक परिवेश से सम्बद्ध हो जाती है । परन्तु गहराई से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि नये कवियों में इसका प्रादुर्भाव मूल रूप में परिवर्तन की आधुनिक दृष्टि से ही सम्बद्ध है । कारण यह है कि समाज अपने मूल ढाँचे में द्वन्द्वात्मक तत्वों से निर्मित तथा वैषम्यपूर्ण है । इसमें परिवर्तन करके एक नवीन व्यवस्था कायम करने की प्रवृत्ति भी मूलतः आधुनिकता के परिवर्तनकामी मूल्य से सम्बद्ध है ।

प्रगतिशील मनोवृत्ति भी यथास्थिति को सहन नहीं कर पाती । वह युगानुरूप परिवर्तन की इच्छा से संचालित होती है । परिवर्तन की इच्छा भी नयी कविता की क्रान्ति चेतना , तट्जन्य आक्रोश एवं आक्रामक व्यंग्य का हेतु बन जाती है । प्रगतिशील मनोवृत्ति कवि को समाजोन्मुख भी बनाती है । वह जीवन के प्रति आस्था का दृष्टिकोण रखती है । इसलिये प्रगतिशील मनोवृत्ति भी कवि को हताशा एवं असहायता की स्थिति से उबारने में मदद करती हैं, तथा आत्मक्रन्दन के स्थान पर व्यंग्य के आवेश को जन्म देती हैं । प्रगतिशील कवि के व्यक्ति से समाज की ओर पर्दापण करने में जो आस्था लक्षित होती है, वही व्यंग्य को आमंत्रित करती है । व्यंग्य के लिए प्रगतिशीलता एवं आधुनिकता के महत्व को प्रतिपादित करते हुए श्रीकांत चौधरी ने लिखा है ----- " सक्रिय, तटस्थ और निरपेक्ष दृष्टि व्यंग्य के लिए आवश्यक है । इस मायने में व्यंग्यकार सर्वाधिक अधुनातन और प्रगतिशील होते हैं । उसके व्यंग्य गर्म शलाकों पर पड़ने वाले हथौड़े की चोटे हैं, जो पहले तो चिन्गारियाँ पैदा करती हैं और फिर ठंडा होकर एक इच्छित रूपाकार ग्रहण कर लेती है ।" [1] नयीं कविता में भी तटस्थ - दृष्टि कवियों की आधुनिकता एवं प्रगतिशीलता के फलस्वरूप विकसित हुयी है । इसके व्यंग्य में भी एक तटस्थ मुद्रा के दर्शन होते हैं ।

किसी भी काल के काव्य में व्यंगात्मकता उन्हीं कवियों में आयी है, जो विकासशील प्रगतिशील दृष्टि द्वारा युग की निरर्थक मान्यताओं को पहचान कर उनके परिष्कार के लिए अग्रसर हुए हैं । भारतेन्दु युग में भारतेन्दु जहाँ एक ओर नयी भाषा का निर्माण कर रहे थे,

---

1. ' व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों? ' - संपादक - डॉ0 श्याम सुन्दर घोष; पृ0 - 103

वहीं सामाजिक - राजनीतिक जीवन की विसंगतियों की तीखी चेतना से भी युक्त थे । इससे भी पूर्व कबीर की प्रगतिशील आधुनिक दृष्टि एवं चेतना काव्य में व्यंग्य बनकर फूटी थी । छायावाद युग में निराला उच्चकोटि की काव्य - प्रतिभा से युक्त होकर भी अपनी प्रगतिशील मनोवृत्तिवश ही व्यंग्य की तीखी कवितायें लिखते हैं । उनकी प्रगतिशीलता एवं जागरूकता ही व्यंग्य को आत्मसात करने की विवशता बनी । प्रयोगवादोत्तर काव्य में यह प्रगतिशीलता विचारधारा विशेष से सम्बद्ध रूप में तथा अधुनातन दृष्टिकोण के रूप में - दोनों ही प्रकारों में प्रायः कम - बेश सभी कवियों में है । इसीसे उनके तेवर व्यंग्यात्मक हो गये हैं ।

4- असहायता की अनुभूति :-

प्रयोगवादोत्तर कवियों की व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति का यह एक मनोवैज्ञानिक कारण है तथा उनकी मनोवैज्ञानिक विशिष्ट स्थिति से सम्बद्ध है । नया कवि जीवन की जटिल, त्रासद एवं भयानक स्थितियों से आक्रान्त होकर इतना असहाय महसूस करने लगता है कि इस असहायता की स्थिति से उबरने के लिए वह व्यंग्य का सहारा लेने लगता है । नयी कविता में स्वयं की असहाय स्थिति के चित्रण के बीच से उभरता व्यंग्य तो विशेषकर इसी कारण से उत्पन्न हुआ है । डॉ0 राजेन्द्र मिश्र के शब्दो में " ताकतों से सधे और बने रिश्तों के सामने असहाय आदमी या तो विलाप कर सकता है या व्यंग्य । "[1] प्रयोगवादोत्तर कविता के कवियों में विलाप करने की कोरी भावुकता का अभाव है । वस्तुतः नये कवियों का व्यक्तित्व परिस्थितियों के घात - प्रतिघात से, यथार्थ के धरातल से टकरा - टकरा कर निर्मित हुआ है, इसलिये विषम परिस्थितियों में मानव सुलभ विवशता तो आती है, पर यह असहायता एकान्त रूदन नहीं बन पाती । फलतः कवि की यह असहायता ही उसके व्यंग्य की प्रेरक शक्ति बन जाती है । विवशता एवं असहायता कवि की जटिलताओं के जाल में घिरी जागरूक प्रबुद्ध एवं सत्यदर्शी दृष्टि में एक तीखी हलचल पैदा करती है और वह उन सभी तत्वों पर व्यंग्य कस उठता है, जो उस विषम एवं जटिल परिस्थिति के लिये जिम्मेदार है ।

---

1. नयी कविता की पहचान - डॉ0 राजेन्द्र मिश्र ; पृ0 - 16

कवि का असहाय अकेलापन उसे व्यंग्य की शक्ति से युक्त कर पुनः समर्थ बना देता है । ' तीसरा - सप्तक ' के वक्तव्य में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना इसी बात को इन शब्दों में कहते हैं ----- " जब चारों ओर लोग इस बात पर कमर बाँधे हों कि वे आपकी बात नहीं समझेंगे, तब आपके सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं, या तो चुप रहें ----- अपनी बात न कहें, या फिर उसे इस ढंग से कहें कि सुनने वाले तिलमिला उठें, उनकी कलई उतर जाय । "[1] नया कवि परिस्थितियों से आक्रान्त होकर चुप बैठने वाला नहीं । क्योंकि नयी कविता अधिक बोलने वाली कविता है, साथ ही उसमें बौद्धिकता एवं तार्किकता भी है । अतः आत्म प्रलाप या किसी विवशता के प्रति चुप्पी उसकी प्रकृति में नहीं है । छायावाद युगीन कोरी भावुकता भी उसमें नहीं है, जो उसे कल्पना- लोक में ले जाकर जटिल यथार्थ परिस्थितियों को विस्मृत करा दे । इसलिये नया कवि जटिल परिस्थितियों से असहाय रूप में घिरा रहने पर भी एक बंदी की भाँति नहीं वरन् जीवन का युद्ध लड़ने वाले योद्धा की भाँति व्यंग्य का हथियार लेकर खड़ा होता है ।

असहाय स्थिति में उत्पन्न व्यंग्य खीझ एवं आक्रोश दोनों को ही व्यक्त करते हैं । व्यंग्य द्वारा एक तो वह जटिल परिस्थितियों में कुछ न कर पाने की विवशता के क्षोभ एवं विसाद से मुक्ति प्राप्त करता है, दूसरे वह इससे एक नवीन शक्ति एवं स्फूर्ति ग्रहण करके यथास्थिति से विद्रोह की दिशा में अग्रसर होता है ।

5- आक्रोश, विद्रोह एवं संघर्षशीलता :-

प्रयोगवादोत्तर काव्य के व्यंग्य के लिए तात्कालिक मानसिक संवेदन के रूप में आक्रोश, क्रोध, क्षोभ एवं घृणा को ही प्रमुख कारण माना जा सकता है । यद्यपि इस मानसिक स्थिति के कारणों में पृष्ठभूमि रूप में निर्मित वे दीर्घकालीन परिस्थितियाँ, घटनायें, विचार, विश्वास तथा उनमें परिवर्तन और विघटन इत्यादि हैं, जो अपने आप में विडम्बनापूर्ण हैं । साथ ही कवि की बौद्धिकता, यथार्थ - आग्रही दृष्टि इत्यादि भी सम्बद्ध रूप में प्रभाव डालते हैं ।

---

1. तीसरा - सप्तक - वक्तव्य - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 329

पर नयी कविता के व्यंग्य का मूलभूत मनोवैज्ञानिक कारण आक्रोश एवं क्रोध की विशिष्ट मानसिक भूमि हैं, जो कवि को न केवल व्यंग्यशील बनाती है, वरन् उसके व्यंग्य को घोर आक्रामक एवं प्रहारक भी बनाती है । पेशेवर व्यंग्यकार व्यंग्य को ही साध्य मानकर चलते हैं, अतः व्यंगात्मक स्थिति के प्रति उनके काव्य में एक तटस्थता एवं संयत भाव होता है । पर नयी कविता के प्रायः बाद के कवियों की मानसिक - भूमि आक्रोश एवं क्रोध की रही है । सन्' 60 के बाद की कविता के लिए इसीलिए ' विद्रोही ' ' गुस्सैल ', ' आक्रोशी ' इत्यादि विशेषणों का प्रयोग किया गया है । नयी कविता को व्यंग्य - काव्य तो नहीं माना जा सकता, पर काव्य का व्यंग्य से अधिकाधिक जुड़ते जाना या उसमें व्यंग्यशीलता का समावेश होते जाना, उसके आक्रोश एवं विद्रोह की मानसिक स्थिति के कारण ही संभव होता है ।

यद्यपि कवि के अन्दर आक्रोश एवं घृणा का उत्पन्न होना बाह्य परिस्थिति की विकृतियों इत्यादि पर निर्भर है, परन्तु नयी कविता की विद्रोही पीढ़ी की मानसिक भूमि ही आक्रोश एवं विद्रोह की रही है । वह अपनी इसी मानसिक अवस्था के साथ बाह्य परिस्थितियों का साक्षात्कार करता है । यह भी सत्य है कि ' युवा पीढी ' के नये कवियों की परिस्थितियों में ऐसी क्रूर, अमानवीय एवं विसंगतिपूर्ण स्थितियाँ रही हैं, जो उन्हें गुस्सैल एवं उनकी कविता को आक्रामक बनाती है। । पर उनके अन्दर जो क्रोध एवं आक्रोश की स्थिति उत्पन्न होती है, वह उनकी ' स्थायी मुद्रा बन गयी है । कवि का आक्रोश एवं क्रोध विकृत परिस्थिति के प्रति घृणा को भी जन्म देता है ।

आक्रोश एवं क्रोध के कारण ही नयी कविता परवर्ती काल में विशुद्ध व्यंग्य - कविताओं के प्रणयन का कारण, बनी है । जैसे - जैसे नये कवियों में गुस्सा बढ़ा है, वैसे - वैसे उनकी कविता में व्यंग्य की मात्रा बढ़ी है । उनका व्यंग्य न केवल मात्रा में बल्कि गुणवत्ता में भी पहले से अधिक तीखा, सचोट एवं प्रहारक हुआ है । नयी कविता के साठोत्तर दौर की कवितायें देखने पर उनकी व्यंगात्मकता का मानसिक कारण प्रत्यक्षतः आक्रोश, क्रोध एवं घृणा के रूप में स्पष्ट हो उठता है । आक्रोशी एवं विद्रोही पीढ़ी के रूप में नयी कविता नयी पहचान बनाती हुयी नयी - नयी व्यंग्यात्मक भंगिमाओं से युक्त हुयी है ।

आक्रोश एवं क्रोध के साथ ही कवि में परिस्थिति की जटिलताओं से जूझने की तेजस्विता भी है, इसी कारण उसका आक्रोश व्यंग्य की शक्ल में व्यक्त हुआ है । जहाँ कवि में जूझने की तेजस्विता अधिक है, वहाँ सार्थक व्यंग्य की सृष्टि हुयी है । जहाँ केवल आक्रोश एवं क्रोध है, वहाँ व्यंग्य का विकृत रूप भी दीख पड़ता है । अकविता में जो व्यंग्यात्मकता है, वह आक्रोश एवं क्रोध के जूझने की तेजस्विता से युक्त न होने के फलस्वरूप उत्पन्न हुयी है । अतः उसमें गाली - गलौज जैसा आक्रोश, क्रोध एवं घृणा दीख पड़ती है । परन्तु ऐसी कवितायें कम हैं, तथा जो हैं, उनमें व्यंग्य से अधिक घृणा एवं जुगुप्सा का प्राधान्य है । इसीलिए उनके द्वारा सार्थक व्यंग्य की सृष्टि नहीं हो सकी है ।

इस प्रकार प्रयोगवादोत्तर काव्य के व्यंग्य की अनिवार्यता एवं विवशता को समझने के लिए नयें कवियों की विशिष्ट मानसिक स्थिति में निहित कारणों को ध्यान में रखना आवश्यक है । परिस्थितिगत एवं कवि के मनोवृत्तिगत विशिष्ट कारणों से नयी कविता एवं व्यंग्यात्मकता एक दूसरे से घुलमिल गये हैं । कहीं विशुद्ध व्यंग्य तथा कहीं हल्के तेवर के रूप में व्यंग्यात्मकता प्रयोगवादोत्तर काव्य में अन्तर्ग्रथित है । इसलिए व्यंग्य नयी कविता की एक भंगिमा बन गया है ।

अध्याय - तृतीय

राजनीतिक व्यंग्य

कविता में राजनीति का प्रवेश नयी कविता के दौर में जितना हुआ है, उतना किसी काल की कविता में नहीं । नयी कविता से पूर्व आधुनिक काव्य में भारतेन्दु युग, छायावाद - युग एवं उसके परवर्ती युग में कविता राजनीतिक चेतना से विविध रूपों में सम्बद्ध रही है । कहीं वह विदेशी - शासन तथा उसमें देश की दशा के वर्णन के रूप में है तो कहीं राष्ट्रीय भावना के रूप में । प्रगतिवादी कविता में मार्क्सवादी विचारधारा से सम्बद्ध राजनीतिक दल से प्रतिबद्ध होकर कविता लिखी गयी, जिसमें सामाजिक - राजनीतिक शोषण के विरूद्ध आवाज उठाना ही कविता का एकमात्र लक्ष्य रहा । नयी कविता में भी राजनीतिक शोषण के प्रति आक्रोश तथा प्रहार की प्रवृत्ति है, क्रान्ति की चेतना है, परन्तु वह प्रगतिवादी राजनीतिक कविता से इस अर्थ में भिन्न है कि ' प्रगतिवादियों की तरह इन कवियों ने अपनी - अपनी विशिष्ट संवेदना से प्राप्त ठोस और सूक्ष्म ब्योरों की सम्पदा को एक हीरोइक सार्वजनिक रेटारिक के हित में तिलांजलि नहीं दे डाली है ।'[1] नयी कविता की राजनीतिक चेतना कवियों की यथार्थवादी प्रवृत्ति के कारण बाह्य परिवेश की विसंगतियों तथा विकृतियों का एक अनिवार्य, अटूट हिस्सा बनकर कहीं परोक्ष रूप में और कहीं प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होती है । समकालीन राजनीति ने जीवन के हर क्षेत्र पर अपना ऐसा त्रासद प्रभाव डाला है कि कवि की ईमानदार यथार्थ अभिव्यक्ति का उससे अछूता रह पाना लगभग असंभव सा हो गया है । अज्ञेय के शब्दों में ' समकालीन राजनीति में एक महत्व की बात यह है कि हमारे जीवन के हर क्षेत्र में सरकार का दखल बढ़ता जा रहा है और सरकार दिन - प्रतिदिन अधिक निर्वैयक्तिक होती जा रही है ।'[1]

स्वतंत्रता जिन अर्थों में मिलनी चाहिए थी, नहीं मिली, इसका बोध कवियों में राजनीतिक मोहभंग के रूप में हुआ । आज़ाद देश की लोकतांत्रिक पद्धति दिनोंदिन अपने विडम्बनामय रूप को प्रत्यक्ष करती गयी । नयी कविता में उत्तरोत्तर मोहभंग की राजनीतिक चेतना आज़ादी तथा लोकतांत्रिक पद्धति के सन्दर्भ में मिलती है । स्वतंत्रता केवल स्व शासन

---

1. ' कविता और राजनीति ' - अशोक बाजपेयी; आलोचना-जुलाई,सित0'68; पृ0-12
2. ' कविता और राजनीति - स0ही0वा0 अज्ञेय; आलोचना-जुलाई,सित0'68; पृ0-26

की स्वतंत्रता बनकर रह गयी है । लोकतंत्र भी वर्ग - व्यवस्था के चलते, केवल बुर्जुआ वर्ग का हित - साधक बन गया है । लोकतांत्रिक पद्धति में ' जनता का शासन जनता के लिए ' की जो धारणा निहित है, उस पर शोषक सत्ता - पक्ष ने निरन्तर कुठाराघात किया है । लोकतंत्र में आर्थिक समानता, शोषण का अभाव, अभिव्यक्ति - स्वातंत्र्य तथा सामजिक बराबरी का अनिवार्य स्थान है । सत्ता - पक्ष जतना द्वारा चुना जाकर जनता का ही शासन होता है । पर भारतीय लोकतंत्र में सत्ता पक्ष सर्वसुविधा सम्पन्न तथा आम जनता त्रसित, क्षुधित एवं भ्रमित है । सामाजिक वर्ग - वैषम्य, शासक वर्ग का शोषक रूप तथा उसके भ्रष्ट आचरण, पद - लिप्सा, पाखण्ड इत्यादि आज के भारत की स्वातंत्र्योत्तर उपलब्धियाँ बन कर सामने आयी है । अतः नये कवियों ने सत्ता - पक्ष के तमाम अमानवीय आचरणों को अनावतृत्त करने के साथ - साथ सत्ता हस्तगत करने के लिए चुनाव के अवसर पर उनकी ढोंगी गतिविधियों, अवसरवादिता, दल - बदल, झूठे आश्वासन, वोट की राजनीति के तहत नकली प्रगति - योजनायें, भ्रमित करने वाले आकर्षक नारे, लोकतंत्र की दुर्गति एवं विडम्बना, इन सभी को उनके तीखे व्यंग्य - बोध के साथ नग्न रूप में प्रस्तुत किया है और उन पर स - चोट प्रत्यक्ष व्यंग्य भी किया है नयी कविता में सामाजिक प्रतिबद्धता तथा जनवादी स्वर जहाँ तक, जिस तीव्रता के साथ है, वहाँ तक उसमें राजनीतिक - सामाजिक विकृतियों के उद्घाटन तथा उन पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति भी है । राजनीतिक यथार्थ के निरन्तर विकृत, विडम्बनामय तथा अन्तर्विरोधों से पूर्ण होते जानें की प्रक्रिया के समानान्तर ही नयी कविता के कवियों में क्रमशः राजनीतिक रूझान अपने तीखे व्यंग्यात्मक तेवर के साथ, बढ़ती ही गयी है । नये युवा कवियों में यह राजनीतिक चेतना तीव्र आक्रोश तथा विद्रोह के स्वर में विडम्बना - बोध एवं उसके चित्रण के रूप में व्यक्त हुयी है । समकालीन राजनीतिक घटनाओं की असंगतियों के प्रति तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में भी नयी कविता में आद्यान्त तीखा, आक्रामक तथा विनोदात्मक, विविध मुद्रायुक्त व्यंग्य दृष्टिगत होता है । अज्ञेय का काव्य प्रमुखतः व्यक्ति चेतना का काव्य है । नयी कविता के प्रारम्भिक दौर में इनमें व्यक्तिवादी प्रवृत्ति अधिक मिलती है । परन्तु क्रमशः उनमें भी समाज संपृक्ति विकसित होती गयी है । अज्ञेय के काव्य में राजनीतिक चेतना का विकास सातवें दशक

के उत्तरार्द्ध में हुआ है । इनकी दृष्टि अन्तर्मुखी एवं चिंतनशील अधिक है, अतः इनके काव्य में राजनीतिक व्यंग्य अपेक्षाकृत कम परिमाण में मिलते हैं ।

सातवे दशक का काल राजनीतिक दृष्टि से काफी उथल - पुथल का रहा है । इस दशक की नयी कविता में राजनीतिक हलचलों की गूँज सर्वाधिक सुनाई पड़ती है । नयी कविता में छठें दशक में भी सामाजिक - यथार्थ के चित्रण की प्रवृत्ति बढ़ती गयी है । अतः नयी कविता की आन्तरिक प्रवृत्ति में परिवर्तन तथा बाह्य राजनीतिक विसंगतियों के प्रभाव स्वरूप अज्ञेय की चेतना भी सामाजिक राजनीतिक यथार्थ से जुड़ी । परन्तु एक विशेष आभिजात्य - संस्कार, कवि को कविता के भीतर गरिमापूर्ण अभिव्यक्ति की ही अनुमति देता है । फलतः समसामयिक राजनीतिक गतिविधियों के चित्रण एवं उन पर व्यंग्य करने में कवि की दृष्टि कम रमी है । उनके राजनीतिक व्यंग्य भी सामाजिक - सांस्कृतिक संदर्भों से युक्त हैं । उनमें शिष्टता एवं संयम सदैव बना रहता है । इस सन्दर्भ में राम कमल राय का यह कथन सारयुक्त है कि ' वे किसी भी स्तर पर कभी भी ' वल्गर ' नहीं हो सकते । मानवीय चेतना के विकास के क्रम में वे अपनेको उस बिन्दु पर पहुँचाने में समर्थ हो सके हैं, जहाँ सारी अभिव्यक्तियाँ इतनी शालीन और गरिमामयी हो जायँ कि सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति भी उस शालीनता एवं गरिमा से अपने को ऊँचा उठाने में समर्थ हो सके । "[1] अज्ञेय ने अपने व्यंग्यों में भी इस शालीनता व संस्कार की छाप छोड़ी है ।

अज्ञेय ने सामाजिक - दृष्टि के व्यंग्य से प्रारम्भ करके बाद में उसे राजनीतिक रंग दे दिया है । ' अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम ' शीर्षक कविता इसी प्रकार की है । जातिवाद ने राष्ट्र की राजनीति को जातिगत स्वार्थों से किस प्रकार जकड़ रखा है, इसकी चेतना कवि को तीखे व्यंग्य के लिए प्रेरति करती है । प्रारम्भ में जातिवाद की खिल्ली उड़ाने के पश्चात कविता के अंतिम अंश में कवि के व्यंग्य की राजनीतिक भूमि स्पष्ट हो उठती है । कवि वितृष्णा एवं विक्षोभ के हल्के से स्वर में भाषा के सहज प्रवाह के साथ बड़ा तीखा तथा उद्बोधक व्यंग्य करता है, जिसमें विनोद का पुट भाषा के कारण आ गया है -----

---

1. अज्ञेयः सृजन और संघर्ष - रामकमल राय; पृ0 - 54, 55

देर रे देस / तेरे सिर पर कोल्हू / इसका भार तू कैसे ढोयेगा / जिसे पेरेंगे जाट, बाम्हन, बनिया, तेली, खत्री / मौलवी, कायथ, मसीही, जाटव, सरदार, भूमिहर, अहीर/ और वे सारे घेरे के बाहर के बेचारे / जो नहीं पहचानते अपनी तकदीरः / तू किस - किस को रोयेगा ? / कब बनेगा तो राष्ट्र / कब तू अपनी नियति को पकड़ तकिया लगाकर सोयेगा ? /[1]

एक अन्य कविता ' जियो मेरे ' में भी कवि सम्पूर्ण परिवेश की विसंगतियों को आजाद राष्ट्र के सन्दर्भ में अनावृत्त करता हुआ शासकों के ऐश्वर्यमय जीवन की असंगतियों पर अत्यंत चुभता हुआ व्यंग्य करता है । भाषा में लोक प्रचलित उर्दू शब्दों के प्रयोग द्वारा शासक वर्ग की रईसी पर व्यंग्य और भी प्रभावपूर्ण हो गया है -----

" जियो मेरे आजाद देश के शानदार शासकों
× × × ×
जिनके बाथरूम की संदली, अंगूरी, चंपई, फ़ाख्तई
रंग की बेसिनी नहानी चौकी तक की तहज़ीब
सबमें दिखता है अँग्रेजी रईसी ठाट
लेकिन सफाई का कागज रखने की कंजूस बनिये की तमीज़ ।"[2]

इसी कविता के अंतिम अंश में कवि का व्यंग्य बहुत कम शब्दों में सिमटकर राजनीतिक परिदृश्य की सारी विकृतियों एवं विसंगतियों के साथ बड़ी प्रगल्भता से प्रत्यक्ष हो उठा है । इसमें कवि ने संयत मुद्रा में ही बड़ा पैना व्यंग्य किया है -----

" चाय, जाम, दाम, ताम - झाम, काम, कितनी
धर्म निरपेक्ष तुकें बाकी हैं
जो सधे साध लो साधो
नहीं तो बने रहो मिट्टी के माधो ...।"[3]

आठवें दशक की एक कविता ' आये नचनिये ' में कवि ने अति नाटकीय मुद्रा में

---

1. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 205 (रचनाकाल 1968)
2. सदानीरा भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 322 (रचनाकाल 1975)
3. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 323 (रचनाकाल 1975)

राजनीति का नाच नाचने वाले के रूप में जातिगत भावना की खिल्ली उड़ाते हुए समकालीन राजनीति के सत्ता - लोभ से ग्रस्त नेताओं के विदूषकत्व को प्रत्यक्ष कर दिया है । इस कविता में कवि का तीखा आक्रोश तथा खीझ भी परिलक्षित होता है । कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -----

' कैसे बनठनिये
आये नचलिये
पाय लागी पाधा
राम - राम बनिये
हम आये नचनिये
× × × ×
नाचेंगे भोर से रात तक
फागुन से आषाढ़ तक
और सूखे से बाढ़ तक ।'[1]

यहाँ कवि ने ' बनठनिये ' तथा ' नचनिये ' शब्दों द्वारा नेताओं की चुनावी राजनीतिक गतिविधियों तथा अवसरवादी दलबंदी, दल - बदल सभी का वास्तविक चित्रण तीखे उपहास के साथ किया है । इसके साथ ही वार्तालाप शैली की नाटकीयता भी राजनीतिक चरित्र - हनन की बड़ी सटीक व्यंजना कर रही है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कि अज्ञेय के काव्य में राजनीति से सम्बन्धित व्यंग्य कम ही है । वस्तुतः विशुद्ध राजनीतिक दृष्टि से प्रेरित होकर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति अज्ञेय जैसे चिंतनशील तथा वैयक्तिक - चेतना से युक्त कवि में अस्वाभाविक - सा ही होता । फिर भी कवि की दृष्टि राजनीतिक स्थितियों से भी सरोकार रखती है । ये राजनीतिक स्थितियाँ घटना पर आधारित नहीं है, वरन् मनोवृत्ति पर आधारित है । राष्ट्र की चिंतनीय स्थिति शासक वर्गों की अय्याशी तथा अवसरवादी प्रवृत्ति इनके राजनीतिक व्यंग्य के प्रमुख मुद्दे बने हैं ।

मुक्तिबोध ' तार - सप्तक ' में संकलित वे एक मात्र कवि है, जिनमें आक्रोश एवं

---

1. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 376 (रचनाकाल 1980)

विद्रोहपूर्ण क्रान्ति - चेतना निरन्तर विकासमान रही है । मुक्तिबोध इसी मायने में नयी कविता के एक विशिष्ट कवि है, क्योंकि उनके आक्रोश एवं क्रान्ति की यह चेतना सन् ' 60 के बाद उभरे युवा कवियों की मूल - चेतना बनी । परन्तु मुक्तिबोध के विद्रोह एवं क्रान्ति के स्वर का व्यंग्य सामाजिक सन्दर्भों से अधिक युक्त है । व्यवस्था - पक्ष कवि के लिए पूँजीवादी व्यवस्था बनकर ही प्रकट हुआ है । इसी क्रम में समाज की विभिन्न विकृतियों तथा समाज में रहने वाले विभिन्न वर्गों, धर्म, व्यक्ति पर भी व्यंग्य किया गया है । मुक्तिबोध मार्क्सवाद से प्रभावित होकर लिखते हैं, इसीलिए प्रत्यक्षतः राजनीतिक दिखने वाले व्यंग्य इन्होंने बहुत कम किये हैं । यहाँ व्यंग्य का स्वर राजनीतिक है, वहाँ भी वह सामाजिक संघर्ष की चेतना से युक्त है । इस सन्दर्भ में श्रीकान्त वर्मा का यह कथन उद्धृत किया जा सकता है कि " मुक्तिबोध के लिए राजनीति एक तात्कालिक उत्तेजना है, लेकिन उनकी चिंता का विषय समाज के भीतर चल रहा वह द्वन्द्व है, जिसकी गड़गड़ाहट ' अंधेरे में ' या ' चाँद का मुंह टेढ़ा है ' में सुनाई पड़ती है ।"[1]

प्रयोगवादी दौर में रचित एक कविता ' तुम्हारी असलियत ' में कवि ने व्यवस्था - पक्ष के शोषण व जुल्म के प्रति क्रान्ति - चेतना से भरकर तीव्र आक्रोश के स्वर में व्यंग्य किया है । कवि सत्ता - पक्ष में आम गरीब लोगों का खून पीने वाले लोगों को खूँखार चीते, भालू एवं भयानक भेड़िये के प्रतीक के रूप में व्यक्त करता है । जहाँ ' सरमायादारी ' विषैले साँप की भाँति अत्याचार की फुँफकार मारती है तथा सत्ताधारी ' बूढ़े गिद्ध ' की तरह गरीब जनता का ' मांस ' खा रहे हैं, ऐसी व्यवस्था के प्रति कवि का व्यंग्य अत्यंत तीखा और प्रहारक है -----

> "तुम्हारी रात के जंगल (जहाँ खूँखार चीते हैं) / जहाँ खुदगर्जियों के जुल्म के भालू / जहाँ इन्सान के दुश्मन भयानक भेड़ियों की फौज फिरती है / हमारे खून की प्यासी शिकारी सिपहलासारी / जहाँ सरमाया दारी के विषैले साँप का फुँफकारता है फन / जहाँ आराम से खाते किसी का मांस बूढ़े गिद्ध / जैसे व्याज पर ही सिर्फ जीते हों / तुम्हारी रात का जंगल हमारी आग में जलकर / जहन्नुम खाक होगा ही / तुम्हारी मौत आयी है /"

---

1. आलोचना - जुलाई, सितम्बर, 'कविता और राजनीति' - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 18

यहाँ प्रतीकों द्वारा जुल्म एवं शोषण की भयानक प्रक्रिया के प्रति कवि का व्यंग्य उसकी क्रान्ति - चेतना का अंग बनकर प्रकट हुआ है । यहाँ व्यवस्था - पक्ष पूँजीवादी व्यवस्था का ही प्रतीक है ।

व्यवस्था - पक्ष और जनता, इन दोनों को कवि सबल एवं निर्बल के रूप में मार्क्सीय दृष्टिकोण से देखता है । इनकी बाद की कविताओं में लम्बी कविता ' अंधेरे में ' के एक अंश में नाटकीय - दृष्य संयोजन के बीच कवि सत्ता - पक्ष के प्रति अत्यंत तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करता हुआ जनता की शक्ति एवं गुणों में आस्था प्रकट करता है -----

" वे कह रहे हैं " -----

" दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दानों को चुगने, चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुर्गाः
यदि बाँग दे उठे जोरदार
बन जाये मसीहा
वे कह रहे हैं
× × × ×
जनता के गुणों से ही संभव
भावी का उद्भव ।"

स्वार्थपूर्ति हेतु सत्ता हथियाने वालों की खुद को मसीहा जैसा दिखाने की मनोवृत्ति पर कितना तीखा व सारगर्भित व्यंग्य है !----- ' बारह बजे रात के ' शीर्षक कविता में कवि का व्यंग्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की राजनीति के प्रति है । इस कविता में भी कवि की विचारधारा समाजवादी है । वह दुनिया के पूँजीवादी देशों के शोषण - तंत्र की पोल आक्रोशपूर्ण स्वर में खोलता हुआ उन पर बड़ा स्पष्ट, तीखा पर वैचारिक गरिमा से युक्त व्यंग्य करता है -----

" दुनिया की पूँजी के पैण्टों के कोटों के
जेबों में भरा हुआ पिस्तौल

आँखों में बर्फ की ज्वलंत सर्द आग
चेहरों पर चमकती है दमकती है चुपचाप
खूँखार दरिंदी के चेहरों की ताक - झाँक
लम्बे - चोड़े चूल्हों में बहुत बड़े आदमी का
ढस्सा है भहीडोल ।। नभोभेदी कहकहे, नभोभेदी वक्तव्य
विश्वभेदी युद्धों का किस्सा है महीडोल ।"[1]

यहाँ कवि ने ' खूँखार दरिदों के चेहरों की ताक - झाँक ' द्वारा गरीब देशों का शोषण करने के लिए युद्ध की राजनीति करने वाले बड़ें - बडे देशों के प्रति तीखे आक्रोश के साथ व्यंग्य किया है । मुक्तिबोध का आक्रोश उनके तीव्र अन्तर्द्वन्द्व का परिणाम है, न कि बाह्य परिवेश की तात्कालिक प्रतिक्रिया । ' मानसिक द्वन्द्व आत्मचेतस और साथ ही विश्व चेतस व्यक्ति की अनिवार्य नियति है । जो सिर्फ आत्मचेतस है, व्यक्ति - केन्द्रित है, उसे क्या द्वन्द्व और जो सिर्फ विश्वचेतस् है उसका भी क्या द्वन्द्व । दुखिया और द्वन्द्वमय तो वह है, जो जागता है और रोता है, जो भीतरी और बाहरी दो पाटों के बीच की ' नीच ट्रेजेडी ' को देखता - भोगता है ।"[2] मुक्तिबोध का व्यंग्य केवल मार्क्सीय भौतिकवादी धारणा पर आधारित नहीं है, वह एक स्वतंत्रकामी, आत्मचेतस व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्व को विश्व - मानवता के सुख - दुख से जोड़ने वाला व्यंग्य है ।

नयी कविता के कवियों में भारत भूषण अग्रवाल व्यंग्य की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । इनकी राजनीति व्यंग्य की कवितायें नयी कविता - दौर से लेकर साठोत्तर काल तक के उनके काव्य - संकलनों में अपनी एक विशिष्ट मुद्रा में मिलती हैं । यह विशिष्ट मुद्रा उनके व्यंग्य में हास्य एवं विनोद के पुट के रूप में दिखाई पड़ती है । राजनीति की गम्भीर विसंगतियों और विडम्बनाओं को हास्य एवं विनोद का विषय बनाकर हल्के - फुल्के ढंग से प्रस्तुत करना कवि की प्रवृत्ति, रही है । इनके व्यंग्य में आत्म - आलोचना की

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - दो; ' बारह बजे रात के ' - मुक्तिबोध; पृ0 - 26; रचनाकाल - 1957
2. समावेशी आधुनिकता - धनञ्जय वर्मा; पृ0 - 192

भी प्रवृत्ति है, इसीलिये राजनीतिक विसंगतियों को भी कवि व्यक्ति के सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है । कवि प्रायः सामान्य व्यक्ति की विवशता एवं उसकी करूण स्थिति को राजनीतिक - सन्दर्भो में उभारता चलता है । हास्य व विनोद की मुद्रा कवि की राजनीतिक से सम्बद्ध कविताओं में प्रायः प्रारम्भ से अन्त तक मिलती है । इसी कारण भाषा में भी सरलता एवं चटपटापन दृष्टिगोचर होता है । शैली में नाटकीयता का तेवर तथा संयोजन है । इनके राजनीति सम्बंधी व्यंग्य आक्रोश जनित नहीं हैं । उनमें कहीं - कहीं कवि की वितृष्णा एवं क्षोभ का स्वर मिलता है, पर सारे माहौल के बीच कवि हँसने हँसाने की प्रवृत्ति लेकर ही विचरण करता है । इनके प्रारम्भिक संग्रह ' कागज के फूल ' में (1959) तक लिखे गये तुक्तक (एक क्रान्तिकारी के जीवन के विरोधाभासपूर्ण पक्ष का चित्रण दर्शनीय है । व्यंग्य का तेवर हास्यपूर्ण है -----

" सारा देश छान मारा, मिले दूर पोर्ट में
बेड़ियाँ पिन्हाके लाया गया कोर्ट में
वीर क्रान्तिकारी थे
हिंसा के पुजारी थे
मुकद्मा चला तो हुए मूर्छित कोर्ट में ।"[1]

राजनीतिक गतिविधियों की विसंगति के दर्शन उनकी प्रारम्भिक रचनाओं (छठें दशक की) में होते हैं । उसमें व्यंग्य यथार्थ के प्रस्तुतीकरण के रूप में आया है । जहाँ कवि की व्यंग्य - चेतना तीखी है, उसमें भी विदूषकत्व का पुट विद्यमान रहता है । ' ओ अप्रस्तुत मन' कविता संग्रह (1943 - 58) की ' कार्टूनों का जुलूस ' तथा ' आने वालों से एक सवाल ' शीर्षक कवितायें राजनीतिक परिवेश के प्रति व्यंग्यात्मक संवेदना से युक्त कवितायें हैं । कवि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक - सन्दर्भो में नारों व जुलूसों के खोखले स्वरूप की वास्तविकता एवं उसकी परिणति को तीखी व्यंगात्मकता के साथ व्यक्त करता है । इसमें कवि के स्वर में वितृष्णा एवं विनोद - दोनों ही मिले हुए हैं -----

---

1. कागज के फूल - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 59

दूर सिंन्धु पार
अणु का विस्फोट हुआ
× × × ×
" वह देखो:
नारों की अर्थियाँ उठाये आ रहा है, वह जूलूस कार्टूनों का
बासी अखबारों में लपेटे हुए शव को
फूटे गुब्बारों से जिनके सिर
× × × ×
कैमरे के लैन्स से आँखे हैं बुझी हुयी
बिगड़े कमबख्त लाउडीस्पीकर - से
जिनके मुख निःशब्द खुले हैं ।"[1] (कार्टूनों का जुलूस)

अन्तर्राष्ट्रीय - स्तर पर राजनीतिक चेतना युक्त व्यंग्य कवि विरोधाभाष के रूप में सहज विनोद प्रियता के साथ ' आनेवालों से एक सवाल ' में प्रस्तुत करता है -----

" तुम्हें स्कूलों में पढ़ाया जोयगा
कि सौ वर्ष पहले
इन्सानी ताकतों के दो बड़े राज्य थे
जो दोनों शांति चाहते थे
और इसीलिए दोनों दिन - रात युद्ध की तैयारी में लगे रहते थे ।"[2]

' साथ हो जुलूस के ' में राजनीतिक नारों, जुलूसों तथा भीड़ का अंग बनते मनुष्य की व्यक्तित्वहीनता की स्थिति पर मार्मिक तथा पैना व्यंग्य है -----

' लैफ्ट राइट, लैफ्ट राइट
साथ हो जुलूस के
जहाँ भी समाये वहीं पैना सींग ठूंस के
भूलो अब जयको
जयकारों के हो जाओ
भावों को भूलों और नारों के हो जाओ ।'[3]

---

1. ओ अप्रस्तुत मन - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 95, 96
2. ओ अप्रस्तुत मन - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 108
3. अनुपस्थित लोग - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 29

यह कविता सातवें दशक के प्रारम्भ की है । साठोत्तर दौर में कवि का व्यंग्य - बोध परिवेश की समूची सामाजिक - आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थितियों से सम्पृक्त है । ' परिदृश्य : 1967 ' कविता की निम्न पंक्तियों में सत्ता - पक्ष की शोषण प्रक्रिया पर प्रतीकात्मक व्यंग्य है । पद एवं सत्ता के छत्ते से सुख - भोग तथा ऐश्वर्य का मधु एकत्रित करते लोग गरीब जनता के घावों से मधु चूसते हैं । कवि का तीखा व्यंग्यात्मक संकेत यहाँ तत्कालीन प्रधानमंत्री की उत्तरदायित्वहीन शासन - प्रणाली एवं उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार के अमानवीय पक्ष की तरफ है । यहाँ प्रतीकों के सटीक एवं प्रगल्भ प्रयोग द्वारा भारत भूषण अग्रवाल ने वर्तमान लोकतंत्र की वास्तविकता को बिल्कुल नंगा कर दिया है -----

' संसद - भवन में शहद का एक छत्ता लगा है
जिसकी मक्खियाँ फूलों से नहीं
घावों से मधु चूसती हैं
और रानी मक्खी कुछ नहीं करती
बस मिंक कोट पहनती है ।'[1]

यहाँ ' रानी मक्खी ' के प्रति कवि का व्यंग्य देखने में जितना सादा है, प्रभाव में उतना ही तीखा है ।

इसी कविता में आगे कवि राजनीति में गांधीवादी विचारधारा की, आज की राजनीतिक भ्रष्टता के स्नदर्भ में, खिल्ली उड़ाता है -----

एक जंग खायी कील निरंतर चुभती रहती है
जिसका नाम है अन्तःकरण
गांधी लगता है टूरिस्ट हो
लो यह माल्यचक्र उठाओ और राजघाट हो आओ
अभी चैन पड़ जायेगा
चाहो तो दो साल बाद चक्कर लगा जाना
शताब्दी मनायेंगे ।[2]

---

1. एक उठा हुआ हाथ - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 54
2. एक उठा हुआ हाथ - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 54,55

सातवें दशक की कविताओं में कवि का व्यंग्य राजनीतिक प्रसंगों में चुटकुला वाली मुद्रा ग्रहण करके स्थिति की विडम्बना को प्रत्यक्ष करता हुआ दिखता है । आज भारतीय गणतंत्र में जिस छलनामय ढंग से जनता का शोषण तथा उत्पीड़न हो रहा है, इसकी तरफ बड़ा गूढ़ संकेत निम्न पंक्तियों में है । प्रकट रूप में विनोद की मुद्रा में व्यंग्य किया गया है, पर प्रच्छन्न रूप में तीखापन विद्यमान है -----

' आप क्या करेंगे मेरा अगर मैं
यह जो सामने लैंप रखा हुआ है इसे कह दूँ
कि यह भारतीय गणतंत्र है
बिना यह बताये कि यह करैण्ट मारता है ?'[1]

स्वतंत्रता के पश्चात अब तक देश में नेताओं द्वारा किये जा रहे विविध उद्घाटनों एवं भाषणों के खोखले स्वरूप पर तीखा व्यंग्य बड़े ही कम शब्दों में दर्शनीय है -----

एक लम्बे उद्घाटन भाषण में
बैठा है मेरा देश
पूरे बीस साल से ।[2]

एक अन्य कविता में कवि सरकारी कार्य पद्धति के खोखलेपन एवं उसकी विडम्बना के यथार्थ को विरोधाभास के द्वारा प्रस्तुत कर सत्ता - पक्ष पर पैना व्यंग्य करता है -----

' हरी क्रान्ति के लिए हर खेत में टाइपराइटर और हर मोहल्ले में एस्प्रेसों प्लांट बैठा दिये गये हैं ।'[3]

भारत भूषण अग्रवाल के अन्य संग्रह ' उतना वह सूरज है ' में भी कवि की व्यंग्य-दृष्टि राजनीतिक विसंगतियों पर गयी है । सत्ता - पक्ष जनता को भ्रमित करने के लिए नारे,

---

1. एक उठा हुआ हाथ - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 71 (1969)
2. एक उठा हुआ हाथ - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 69 (1969)
3. एक उठा हुआ हाथ - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 74 (1970)

भाषण , योजना, सेमिनार, बहस तथा प्रदर्शन के जिस नकली उजाले को प्रयासपूर्वक उत्पन्न करती है, वह कितना क्षणिक तथा खोखला होता है, इस यथार्थ - बोध को व्यंग्य - बोध में बदलती निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -----

' इसने नारे की हवाई छोड़ी
उसने भाषण की चर्खी
तीसरे ने योजना की महताब
चौथे ने सेमिनार का अनार
पाँचवे ने बहस के पटाखों की लड़ी
छठें ने प्रदर्शन की फुलझड़ी
छनकर उजाले से आँखे चौंधिया गई
पर फिर
खेल खत्म होते ही
और भी अदबदा कर अंधेरे ने घेर लिया ।'[1]

कवि के व्यंग्य की यह विशिष्टता ही है कि वह तिलमिलाने के बदले व्यंगास्पद को भी, उसकी यथार्थ स्थिति की पहचान करा कर लज्जित होनें के लिए एक स्वस्थ हास्यपूर्ण मानसिक भूमि निर्मित करता है । ' चीखता सवाल ' में कवि राजनीतिक - सामाजिक गतिविधियों को देशवासियों के प्रति उद्‌बोधन के रूप में उसी हल्के - फुल्के विनोद के साथ प्रत्यक्ष करता है लेकिन व्यंग्य का तेवर स्पष्ट है -----

" विश्वास नहीं है तो क्या हुआ / पार्टी तो है / पर उसका भी अब कहाँ कोई कार्यक्रम / कार्यक्रम नहीं तो क्या हुआ, सेमिनार तो है / पर उसके लिए भी भाषा कोई कहाँ है ?/ x x x / किन्तु रोग, गरीबी, अविद्या में पड़े हुए / x x x / मेरे देशवासियों! क्या तुम भी नहीं हो ? /"[2]

' उतना वह सूरज है ' में कवि व्यक्तिगत स्तर के व्यंग्य भी करता दृष्टिगत होता है । ' मिल गया, मिल गया ' शीर्षक कविता में सत्ता - पक्ष की अपनी योजनाओं एवं नीतियों के लिए विदेशी निर्भरता की स्थिति के प्रति व्यंग्य है । इसमें वार्तालाप शैली द्वारा

---

1. उतना वह सूरज है - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 1 (1966)
2. उतना वह सूरज है - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 58 (1968)

नाटकीयता एवं विनोद - भाव की भी सृष्टि हुयी है । कुछ अंश दृष्टव्य हैं -----

' खट - खट - खट
'कौन ?' ' मैं '
' क्या चाहते हो ? '
' हमने प्रगति की बहुत - सी योजनायें बनायी हैं
और उनको पूरा करने के साधन नहीं '
' अच्छा तुम चलो,' मै कुछ उपाय करता हूँ ।'

और कविता के अंतिम अंश में कवि हिन्दी - भाषा के विकास के स्थान पर विदेशी भाषा के ऊपर निर्भर रहने की सरकारी नीति पर तीखा व्यंग्य करता हे ।

मिल गया ! मिल गया !!
हमें अपनी समस्या का हल मिल गया
जिसे हम भूल से विदेशी कहते थे
वही हमारी अपनी भाषा है ।[1]

' भारतत्व ' शीर्षक लघु कविता में कवि देश में ' वाद ' की स्थिति पर व्यंग्य करता है । इसमें कवि ने चुटकुले नुमा हास्य की सृष्टि किया है -----

" गाँवों में समाजवाद, शहरों में पूँजीवाद, दफ्तर में सामन्तवाद
घर में अधिनायकत्व है
कभी - कभी लगता है
यही भारतत्व है ।"[2]

इस प्रकार भारत भूषण अग्रवाल ने राजनीतिक विकृतियों एवं गम्भीर समस्याओं को भी बड़ी सरल मुद्रा में हल्के - फुल्के सरस व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया है ।

गिरिजा कुमार माथुर के काव्य में वर्ग वैषम्य से उत्पन्न मानवीय पीड़ा की विश्व - स्तर पर अभिव्यक्ति मिलती है । वैज्ञानिक प्रगति तथा यांत्रिक सभ्यता के दुष्परिणामों से कवि

---

1. उतना वह सूरज है - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 56, 57
2. उतना वह सूरज है - भारत भूषण अग्रवाल; पृ0 - 53 (1973)

की चेतना आक्रान्त है । ' माथुर जी की विचारधारा प्रगतिशील मानवतावादी तथा विश्व - बंधुत्व की भावना से सम्पन्न है, किन्तु उन्हें प्रगतिवाद के घेरे में बाँधकर नहीं देखा जा सकता, क्योंकि उनके काव्य में नाश नहीं निर्माण का प्राधान्य है ।'[1]

' भीतरी नदी की यात्रा ' (1975) में कवि आधुनिक जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थितियों तथा यांत्रिकता की तीखी चेतना की यथार्थ अभिव्यक्ति करता है । ' वाणिक संस्कृति का मृत्यु गीत ' कविता में कवि विश्व राजनीति के कुरूप यथार्थ को उसकी व्यंगात्मकता के साथ एक विवरण के रूप में प्रस्तुत करता है । साम्राज्यवादी ताकतों की समस्त कूटनीतिक राजनीतिक गतिविधियों की पहचान कवि बड़े स्पष्ट शब्दों में तीखे व्यंग्य के साथ करता है---

' द्वेष और कुटिलता
षड्यंत्र और मित्रघात
सत्ता का दर्शन है
सैबोटेज, गृहदाह
कर्जे की राजनीति
छापा, युद्ध, इन्तशार नया साम्राज्यी साधन है ।'

' साक्षी रहे वर्तमान (1966 - 1977) की कविताओं में कवि की दृष्टि अधिक बर्हिमुख है । राजनीति के प्रति उनका आक्रोश कहीं - कहीं अधिक स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त है ।' नेता - गाथा ' ऐसी ही राजनीतिक व्यंग्य की कविता है । इसमें नेता के क्रिया कलापों की कलई खोलता कवि उस पर बड़ा तीखा व्यंग्य करता है -----

" हर बात पर
जो हजारों झूठ बोले हैं
जरा सा ढक्कन चोरियों से हटते ही
खौफ खा जाता है
नेता
एक फूला गैस भरा गुब्बारा है.
जिसे पिन भर भी सच्चाई
होती न गवारा है ।"[2]

---

1. भीतरी नदी की यात्रा - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 51
2. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 37

इसमें नेता के खोखले व्यक्तित्व एवं झूठ तथा फरेब की बड़ी मोवैज्ञानिक पहचान की गयी है ।

सातवें आठवें दशक में लिखी गयी कविताओं में कवि की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक - चेतना मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को उद्घाटित करती हुई समूचे युग - बोध के रूप में प्रस्तुत हुयी है । बीच - बीच में राजनीति के प्रति कवि की व्यंगात्मक दृष्टि स्पष्ट होकर उभरी है । ' सड़क से देश दर्शन ' शीर्षक कविता में कवि सड़क पर आते जाते लोगों के समूह से उनके विभिन्न वर्गो एवं उनके क्रिया व्यापारों का व्यंग्यपरक यथार्थ - ब्योरा प्रस्तुत करता है । निम्न पंक्तियों में राजनीतिक - दृष्टि का व्यंग्य दृष्टव्य है ।

" काला धन - इन्क्वायरी
घिनौने उकसाये दंगे
गला फाड़ लड़ती बोलियाँ
नकली एकता अछूत
योजना आबादी
शरारती आत्म - निर्णय
घेराव
और दुश्मन की दलाली
निर्णय का क्षण है ।"[1]

' दफ्तर ' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियों में कवि सत्ता - पक्ष के ' नाटक ' पर तीखा व्यंग्य करता है, जिसमें वह खलनायकों, खुशामदी विदूषकों तथा तिकड़म से सत्ता - प्राप्त कर ऐश करने वाले नेताओं की असलियत को निर्भीक शब्दों में व्यक्त करता है ।

" यह कौन सी व्यवस्था है
नाटक के सारे पात्र जहाँ
खलनायक हैं
खुशामदी विदूषक

---

1. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 22

जिनके हर कुकर्म पर
तालियाँ बजाते हैं
जहाँ तिकड़मी लफंगे सत्ताधारी हैं
चूर हैं वातानुकूलित ऐय्याशी में ।"[1]

गिरिजा कुमार माथुर की संवेदना मूलरूप में सामाजिक - चेतना से युक्त है । राजनीतिक व्यंग्य स्थल प्रायः समूचे आधुनिक परिवेश के चित्रण का एक अंग बनकर ही प्रकट हुए हैं । शैली यथार्थपरक वर्णनात्मकता लिए हुए है तथा भाषा तीखी व तेज - तर्रार मुद्रा वाली है । कवि के व्यंग्यों में उसकी पीड़ा , विक्षोभ, वितृष्णा एवं कहीं - कहीं आक्रोश की अभिव्यक्ति भी हुयी है ।

' काल्पांतर ' इनका नीवनतम काव्य - संग्रह है, जिसमें विज्ञान - सभ्यता एवं यंत्र - सभ्यताके प्रति कवि का व्यंग्य नाट्य शैली में प्रकट हुआ है । यह एक प्रतीक - काव्य है, तथा इसमें विज्ञान के घातक दुष्प्रभावों को राजनीतिक संदर्भों में व्यक्त करता कवि विश्व - स्तर पर साम्राज्यवादी एवं अधिनायकवादी प्रवृत्तियों के प्रति व्यंग्यपूर्ण उद्‌गार व्यक्त करता है निम्न पंक्तियों में -----

" कोटि - कोटि जन के
भाग्य - सूत्र क्रूर मुट्ठी में
कुटिल मतादर्शों के घोर हथियार लिए
सैन्य शक्ति गुप्त पुलिस
भेंड़ हाँक अनुशासन
बंद किये अपने निरंकुश गोदामों में
जीने के सब साधन ।"[2]

यहाँ विश्व की महाशक्तियों की वैज्ञानिक साधनों की सम्पन्नता का निरंकुश उपभोग एवं छोटे देशों के शोषण की अमानवीय प्रवृत्ति के प्रति कवि का विक्षुब्ध व्यंग्य स्पष्ट है ।

महाशक्तियों की, निर्धन देशों को आपस में लड़वाने तथा अपनी वैज्ञानिक उन्नति का प्रयोग उनके खिलाफ करने की कुटिल नीयत का पर्दाफ़ाश कवि निम्न पंक्तियों में करता है-

---

1. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 34
2. कल्पान्तर - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 29

" और तीसरी दुनिया के भूखे - प्यासे नंगे लोगों को / अपने ही घर में लड़वाओ / कुछ की भरो थैलियाँ / लोगों में पक्के एजेन्ट बनाओ / स्वर्ण देश के वैज्ञानिक / जितने भी खोजें नये रसायन / अस्त्र - शस्त्र विनाश की विधियाँ / × × × / उनका प्रयोग इन निर्धन लोगों पर करवाओ / उन्हें परीक्षण का चूहा, खरगोश बनाओ /"[1]

इस प्रकार गिरिजा कुमार माथुर ने विश्व - स्तर पर वैषम्य मूलक प्रणाली एवं तद्जन्य शोषण की प्रवृत्ति पर भी व्यंग्य दृष्टि डाली है ।

नयी कविता में प्रगतिशील (मार्क्सवादी) विचारधारा से प्रेरित होकर लिखने वाले व्यंग्यशील कवियों में नागार्जुन केदार नाथ अग्रवाल तथा त्रिलोचन अपनी अलग पहचान रखते हैं । काव्य के क्षेत्र में व्यंग्य के लिए नागार्जुन को बेजोड़ माना जाता है । इसमें भी विशेषकर राजनीति सम्बंधी व्यंग्य में नागार्जुन अप्रतिम हैं । इनके काव्य में बाध्य परिवेश में घटित घटनाओं की विसंगतियों एवं विकृतियों की तात्कालिक तीखी प्रतिक्रिया मिलती है । नयी कविता का काल राजनीतिक परिवर्तनों, मोहभंग की स्थितियों तथा सत्ता - पक्ष में निरन्तर जन्म लेती विकृतियों का काल रहा है । इसीलिए नागार्जुन के काव्य में राजनीतिक व्यंग्य अधिक परिमाण में तथा अधिक तीखे रूप में मिलते हैं । नागार्जुन के व्यंग्य मुख्यतः नेताओं पर किये गये है । कवि ने राजनीतिक व्यक्तियों, चुनावी हलचलों, टिकटों की प्रतिस्पर्धा, हाईकमान की अवसरवादी एवं दमनकारी नीतियों, शोषण, सत्ता - मोह, पंचवर्षीय योजनाओं, अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भो, सभी को अपने व्यंग्य का विषय बनाया है । नागार्जुन साम्यवादी विचारधारा से प्रेतिर होकर व्यंग्य करते हैं । जनता के शोषण एवं उत्पीड़न के लिए उत्तरदायी जितने भी राजनीतिज्ञ या उनके क्रिया - कलाप हैं, वे उन सभी पर निर्मम प्रहार करते हैं । सत्ता - पक्ष के छलावों, स्वार्थलिप्सा एवं अवसरवादिता को कवि बड़ी सूक्ष्मता से राजनीतिक घटनाओं के बीच से पकड़ता है तथा एक जनकवि के रूप में, जनता का प्रतिनिधि बनकर उन्हें अपने व्यंग्य - बाणों से बेधकर दंड देता है । नागार्जुन की इस सम्बंध में स्वीकारोक्ति भी है कि -----

' नफरत की अपनी भट्ठी में / तुम्हें गलाने की कोशिश ही / मेरे अन्दर बार -

---

1. कल्पान्तर - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 73

बार ताक़त भरती है / प्रतिहिंसा ही स्थायिभाव है अपने ऋषि का / '[1]

इसी सन्दर्भ में डॉ0 नामवर सिंह भी लिखते हैं " यह प्रतिहिंसा ही नागार्जुन की शक्ति है, क्योंकि यह प्रतिहिंसा जितनी अपनी है, उससे ज्यादा उस जनता की है, जिसके वह प्रतिनिधि है ।"[2]

नयी कविता में राजनीतिक व्यंग्य का प्रारम्भ स्पष्ट रूप में नागार्जुन द्वारा किया गया है । इनका प्रहार सीधा व्यंगास्पद को लक्ष्य करके किया जाता है । इसे समसामयिक राजनीतिक गतिविधियों की तीखी एवं कटु आलोचना के रूप में देखा जा सकता है । धनञ्जय वर्मा के अनुसार " उनकी कविता में राजनीतिक पक्षधरता का निर्भ्रान्त स्वर है और उनका मकसद क्रान्तिकारी मानसिकता का निर्माण है ।"[3] नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्यों की कविताओं में उनकी मानवीय करूणा गहरे स्तर पर क्रियाशील रहती है । सामाजिक आर्थिक वैषम्य एवं आम आदमी की पीड़ा ही इनके रानजीतिक व्यंग्य का मूल उत्स है । प्रतीकात्मक रूप में इनके व्यंग्य आक्रोश की तीव्रतम अवस्था को व्यक्त करने वाले हैं ।

छठें दशक की कविताओं में समकालीन राजनीतिक घटनाओं पर कवि की तीखी प्रतिक्रिया व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुई है । ' नोच रहे दहलीज खीझकर ' नाजियों के बाप ' ' पंडित जी आने वाले हैं रानी के दरबार में '[4] कविताओं में अन्तर्राष्ट्रीय - सन्दर्भो से युक्त रानजीतिक - व्यंग्य है । तीखी, मारक व साथ ही चुलबुली अभिव्यक्ति इनमें है । व्यंग्यात्मक मुहावरेदार भाषा से व्यंग्य में अनूठी प्रभावात्मकता की वृद्धि नागार्जुन करते हैं । आक्रोश की तीव्रता कवि की भाषा को ठेठ ग्रामीण तीखा तेवर प्रदान करती है । इससे व्यंग्य कहीं - कहीं शालीनता का अतिक्रमण करता दीखता है । साम्राज्यवादी शक्तियों पर किया गया कवि का व्यंग्य इस सन्दर्भ में दृष्टव्य है -----

---

1. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 11
2. आलोचना - जनवरी, मार्च, अप्रैल, जून' 81; पृ0 - 1
3. समावेशी आधुनिकता - धनञ्जय वर्मा; पृ0 - 76
4. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ0 - 32, 41, 42

" हिन्द मुलुक के डाक्टर दौड़े करने मरहम - पट्टी
कर्नल कै करता, कर्नल को रह - रह आती टट्टी

× × × ×

जोश देख कोरिया मुलुक का मति इनकी, बौराई
नोच रहे दहलीज खीझकर बिल्ली के ये भाई ।"

('नोच रहे दहलीज खीझ कर')

नागार्जुन की सातवें दशक की कविताओं में भी देश की राजनीतिक हलचलों की सम्पूर्ण गूँज है । ' दिल्ली चलो ' ' खड़ाऊ की गद्दी पर ' ' अन्न पचीसी ' ' चलो चलो धरना दें चलकर ' ' उम्मीदवार ' ' आखिर इन्सान है भाई मोरार जी ' ' फेस टु फेस ' ' वाह भई मंडल ' ' कोरस चंद विधायकों का ' ' अब तक छिपे हुए थे उनके दाँत और नाखून ' ' क्रान्ति तुम्हारी तुम्हें मुबारक '[1] आदि कवितायें तत्कालीन घटनाओं के प्रति कवि के तीव्रतम एवं तीखे व्यंगात्मक उद्गार हैं, जो उपहास एवं खिल्ली उड़ाने की भंगिमा से भी युक्त है । इनमें कवि अपने देश के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भो को भी किसी - किसी कविता में ग्रहण करता है । कवि ने सीधे - सीधे रानजीतिक व्यक्तियों को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है । मोरार जी, इंदिरा गांधी, बापू , नेहरू किसी को कवि की आक्रोशी एवं निर्भीक वाणी ने नहीं छोड़ा है ।

प्यासी पथराई आँखें (59 - 60 - 61 की रचनायें) में कवि देश की गरीब जनता की पीड़ा से आहत होता हुआ राजनीतिक गतिविधियों की विडम्बना को तीखे व्यंग्य के माध्यम से मार्मिकता के साथ व्यक्त करता है । ' आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी ' में कवि का बड़ा प्रगल्भ, मार्मिक व्यंग्य विनोद की मुद्रा और संयत भाषा में द्रष्टव्य है -----

" बेबस - बेसुध, सूखे - रूखड़े,
हम ठहरे तिनकों के टुकड़े --
टहनी हो तुम भारी - भरकम डाल की
खोज खबर तो लो अपने भक्तो के खास महाल की
लो कपूर की लपट आरती लो सोने के थाल की
आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी "[2]

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ0 51,53,55,59,63,64,67,68,70,71,72,78
2. प्यासी पथराई आँखे - नागार्जुन; पृ0 - 57

' धाक्यो खोकोन ओई जे गांधी महात्ता ' में भी कवि का व्यंग्य - स्वर करूण -मार्मिकता से युक्त है । कवि राजनीति में प्रान्तीयता की भावना पर बड़ा करूण व्यंग्य चिंतापूर्ण वैचारिक मुद्रा में करता है -----

' स्थापित नहीं होगी क्या
नयी दिल्ली में चितरंजन दास की प्रतिमा
स्थापित नहीं होगी क्या
लाला लाजपतराय की प्रतिमा मद्रास में ?
दिखाई नहीं पड़ेंगे लखनऊ में सत्यमूर्ति ?
सुभाष और जे0एम0 सेन गुप्त क्या सीमित रहेंगे
भवानीपुर और शाम - बाजार की दुकानों तक ? '[1]

बापू के नाम को बेचकर प्रभुता व प्रतिष्ठा अर्जित करने की राजनीतिक चालों के प्रति भी कवि का तीखा विक्षोभ व्यंग्य के स्वर में व्यक्त हुआ है -----

" मैं नाम तुम्हारा बुचूँगा
मारूँगा तुमको रोज - रोज
× × × ×
तुम रजत रूप में कैद रहो
जी, नित्य करूँगा मैं प्रणाम
फिर तो अपनी कोठी होगी
चमकीली होगी नयी कार ।'[2]

सर्वोदय की पोल खोलता कवि बापू के सिद्धान्तों की राजनीतिक लूट पर विनोदपूर्ण शैली में तीखा व करारा व्यंग्य करता है - ' तीनों बंदर बापू के ' में -----

" सेठों का हित साध रहे हैं तीनों बंदर बापू के
युग पर प्रवचन लाद रहे हैं तीनों बंदर बापू के
सत्य, अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के

---

1. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन; पृ0 - 12

2. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 17

पूँछों से छवि आँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के
छील रहे गीता की खाल
उपनिषदें हैं इनका ढाल
उधर सजे मोती के थाल
इधर जमे सतजुगी दलाल ।"[1]

' तुमने कहा था ' संग्रह में सातवें दशक की रचनायें हैं । इसकी अधिकांश व्यंग्य प्रधान कवितायें हल्के - फुल्के अन्दाज में ग्रामीण मुहावरेदार भाषा, विदूषकत्व के पुट तथा चुलबुलेपन के साथ प्रभाव में अत्यंत तीखा वार करने वाली हैं । इसमें प्रयुक्त कटु शब्द भी एक जागरूक जनकवि की उत्तरदायित्वपूर्ण फटकार के रूप में खलते नहीं, बल्कि अपना औचित्य दर्शाते हुए ग्राह्य हो जाते हैं । इसमें ' महाप्रभु जान्सन (क) ' तथा ' महाप्रभु जान्सन (ख) ' में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किये गये व्यंग्य हैं ।[2] ' बाढ़ : ' 67 ' पटना ' कविता में व्यवस्था पक्ष की दुर्व्यव्यस्था एवं बाढ़ग्रस्त लोगों के प्रति उनकी संवेदनहीनता को नाटकीयता के साथ चित्रित किया गया है । अफसरशाही के भ्रष्ट आचरण को प्रस्तुत करते हुए कवि ने बाढ़ - पीड़ितों की सहायता के बहाने सैर का आनन्द लेने वाले अधिकारियों तथा नेताओं की पोल खोली है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

' खायी थी बाढ़ के पानी में पैर न भिगोने की कसम
प्रण पूरा हुआ दिखलाई है खुदा ने रहम
× × ×
फेमिली यहीं थी, भरा - पूरा था राशन
डल की झील में शिकारे पर सलामत था इन्द्रासन ।'[3]

' रूठ के चली गयी बुआ ', ' आये दिन बहार के ', ' दिन लदे सिंहासन राय के '[4] कविताओं में कवि का व्यंग्य चुटीला तथा विनोदपूर्ण है । इनमें संक्षिप्त कलेवर में हास्य की

---

1. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 19
2. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 36, 37
3. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 42
4. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 45, 47, 44

मुद्रा में प्रहार है । एक उदाहरण प्रस्तुत है -----

' सिंडीकेटी प्रभुओं की पग - घूर झार के
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के
खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के
आये दिन बहार के ।'[1]

भारतीय राजनीति का कोई भी व्यंग्यास्पद पक्ष कवि से छूटने नहीं पाया है । ' घटकवाद की उठापटक है ' कविता में जनता पार्टी के शासन - काल में देश के अन्दर हिंसा, मँहगाई, पुलिस का जुल्म आदि के प्रति व्यंग्य है । पाँच पार्टियों के योग से बनी इस पार्टी के क्रियाकलापों की पोल कवि ने तीखे आक्रोश के साथ किन्तु हास्यपूर्ण भाषा का प्रयोग करते हुए खोली है । ' घटकवाद की उठा पटक ' कहने से ही तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य अपनी विडम्बना एवं व्यंग्य के साथ प्रत्यक्ष हो उठा है । पार्टी के अन्दर विघटन की प्रवृत्तियाँ, आपसी खींचतान, शासन - व्यवस्था की खामियाँ, आम आदमी की हालत, इन सबको एक साथ समेटता हुआ कवि तत्कालीन राजनीति की हास्यास्पद स्थिति को उजागर कर तीक्ष्ण व्यंग्य करता है । कुछ अंश द्रष्टव्य है -----

' घुटन - घुटन है हवा नहीं / चूल्हा है पर तवा नहीं है
राशन सीताराम सटक है / घटकवाद की उठापटक है
धन कुबेर का महामंत्र है / लोकनीति है पुलिस तंत्र है ।'[2]

' फैल गया है दिव्य मूत्र का लवण सरोवर ' में तत्कालीन प्रधानमंत्री को लक्ष्य कर उसके व्यक्तिगत जीवन तथा राजनीति को सम्बद्ध करते हुए व्यंग्य किया गया है । इसमें कवि ने सत्ता को खेल समझकर उसे हस्तगत करने के लिए जोड़ - तोड़ एवं तिकड़म में जुटे जनता पार्टी के नेताओं की असलियत को बड़े तीखे व्यंग्य के साथ सामने रख दिया है -----

---

1. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 47
2. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 71

' कुर्सी - कुर्सी गद्दी - गद्दी खेल रहे हैं
घटकतंत्र का भ्रूणपात ही झेल रहे हैं
जोड़ - तोड़ के सौ - सौ पापड़ बेल रहे हैं
भारत माता को खाड़ी में ठेल रहे हैं
इसीलिए तो मिलता है सरकारी भत्ता
तिकड़म पर हो गयी निछावर शासन - सत्ता ।'[1]

यहाँ मंत्रियों पर कवि का व्यंग्य निर्भीक, आक्रामक एवं पैना है । उपहास की मुद्रा ने विरूपता को और भी प्रत्यक्ष कर दिया है ।

इंदिरा - शासन काल में नागार्जुन का प्रहार महिला नेत्री पर सीधा हुआ है । कवि ने प्रायः सभी प्रमुख सत्तासीन नेताओं पर बिना किसी दुराव - छिपाव के, प्रत्यक्ष सम्बोधन द्वारा तीखा व्यंग्य किया है । निम्न पंक्तियों में कवि का स्पष्ट व्यंग्य इंदिरा गांधी के प्रति है, जो उनके शासन - काल की घटनाओं की गूँज से भी युक्त है -----

' जगत - तारिणी प्रकट हुयी है, नेहरू के परिवार में
उसके कई मुखौटे देखो छपते हैं अखबार में
जान्सन - विल्सन सभी जुटे हैं पूजा में आचार में ।'[2]

नागार्जुन के राजनीतिक सम्बंधी व्यंग्यों में तीखी, पैनी भाषा, चुभते प्रतीक, उपहास की मुद्रा तथा मर्म पर स - चोट प्रहार की प्रवृत्ति आद्यांत बनी रही है । कवि ने तत्कालीन राजनीतिक विभीषिका जनता की दीन - हीन , त्रस्त एवं विवश स्थिति के सन्दर्भ में सत्ता - पक्ष के शोषण को उसकी सम्पूर्ण विकृतियों एवं आडम्बर पूर्ण सभी भंगिमाओं की नग्न पहचान के साथ साहसिक ढंग से अपने व्यंग्य के तिलमिला देने वाले शरों का लक्ष्य बनाया है। आठवें दशक की राजनीतिक स्थिति का दर्शन कवि के आक्रोश तथा घृणा की पराकाष्ठा से पूर्ण कटु - व्यंग्य के रूप में अनेकों कविताओं में होता है । ' देवी तुम तो काले धन की बैसाखी पर टिकी हुयी हो ' में कवि का क्रोधाविष्ट व्यंग्य अपनी तीव्रतम अभिव्यक्ति में द्रष्टव्य है ।

---

1. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 82
2. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 60

इसमें सत्ता - पक्ष का पूँजीवादी शोषक रूप स्पष्ट है -----

' ठगों उचक्कों की मलिकाइन
प्रतातंत्र की ओ हत्यारी
अबके हमको पता चल गया
है तू किन वर्गों की प्यारी
× × × ×
सौ कंसों की खीझ भरी है
इस सुरसा के दिल के अन्दर
कंधों पर बैठे हैं इसके
धन - पिशाच के मस्त कलंदर ।'[1]

' पैने दाँतों वाली '[2] ' पता नहीं दिल्ली की देवी गोरी है या काली है '[3] ' भारत पुत्री का मुखमंडल हुआ किस कदर पीला '[4] ' जाने तुम कैसी डायन हो '[5] इत्यादि कवितायें प्रमुख महिला नेत्री को लक्ष्य कर तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों की विकृतियों पर कटु, तिक्त एवं धारदार व्यंग्य के रूप में हैं । आठवें दशक में रचित ये सभी कवितायें यही दर्शाती हैं कि राजनीतिक धूर्तता, चालबाजी, स्वार्थ, लोलुपता और शोषण की प्रवृत्तियों के प्रति कवि की तात्कालिक प्रतिक्रिया तीखी एवं धारदार होती गयी है । कवि में सत्ता पक्ष से सम्बन्धित व्यक्तियों पर सीधा वार करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ से अन्त तक बनी हुयी है । इनमें कवि का प्रतिहिंसा भाव अपनी चरम सीमा पर है । कवि प्रतीकों का चयन ऐसा करता है, जिनमें गाली जैसी तीखी घृणा तथा प्रहारकता निहित रहती है । ' बाघिन ' शीर्षक कविता में ' बाघिन ' के प्रतीक द्वारा तत्कालीन क्रूर एवं अमानवीय शासन तथा सत्ता - मद के लिये इंदिरा गांधी पर तीखा व्यंग्य किया गया है तथा साथ ही खिल्ली भी उड़ायी गयी है -----

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ० - 126
2. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ० - 130
3. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ० - 131
4. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; पृ० - 85
5. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; पृ० - 25

चबा चुकी है, ताजे शिशु - मुण्डों को गिर - गिन
गुर्राती है टीले पर बैठी है बाघिन
पकड़ो , पकड़ो अपनाही मुँह आप न नोचे
पगलाई है जाने अगले क्षण क्या सोचे
इस बाघिन को रक्खेगें हम चिड़ियाघर में
ऐसा जन्तु मिलेगा भी क्या त्रिभुवन भर में ।'[1]

' खिचड़ी विप्लव देखा हमने ' में विनोदपूर्ण चुलबुली भाषा में प्रतीकात्मकता एवं तुकों के छंदबद्ध चमत्कारिक प्रभाव में तीखा व्यंग्य राजनीति के ' खिचड़ी विप्लव ' पर है --

" टूटे सींगों वाले सांडों का यह कैसा टक्कर था।
उधर दुधारू गाय अड़ी थी,
इधर सरकसी बक्कर था ।
समझ न पाओगे बरसों तक,
जाने कैसा चक्कर था । ।'[2]

इंदिरा शासन में इमर्जैंसी काल की गतिविधियों पर कवि की मर्माहत मन की प्रतिक्रिया तीखे व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुयी है । ' जय प्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की ' नामक कविता में कवि लोकतंत्र की विडम्बनामय स्थिति पर व्यंग्य करता हुआ प्रधानमंत्री पर प्रहार करता है -----

देवी प्रतिमा चण्ड - मुण्ड को लिए साथ में
हुयी अवतरित बंदूकें हैं दसों हाथ में
लगे बैठने गद्दों पर हिटलर मुसोलिनी
हुयी मूर्छिता भारत माता ग्राम - वासिनी'[3]
एक और गांधी की हत्या होगी अब क्या ?
बर्बरता के भोग चढ़ेगा योगी अब क्या ?
× × × ×

---

1. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; पृ0 - 16
2. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; पृ0 - 29
3. खिचड़ी विप्लव देखा हमनें - नागार्जुन; पृ0 - 15

नौकरशाही की भ्रष्ट अवस्था पर तीखा व्यंग्य है - ' हूकूमत की नर्सरी ' शीर्षक कविता में । इसमें मुक्त छंद का प्रयोग है, तथा कवि की भंगिमा तात्कालिक प्रतिक्रिया के आवेश से युक्त न होकर कुछ वैचारिक धरातल पर अवस्थित दिखती है -----

" आलस्य और बेरूखी के मारे केन्द्रीय नौकरशाही / चलती है कछुए की चाल से / व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति में लेकिन / बेतहाशा भागती है खटमल के बच्चों की तरह / उसे न तमिलों से मतलब है, न बंगालियों से / × × × / उसे तो सिर्फ अपनी मोटी तनख्वाह से मतलब है / उसका तो खानदान ही ' हूकूमत की नर्सरी ' होता है /"[1]

समग्र क्रान्ति के नारे के पीछे असलियत में सत्ता - पक्ष की स्थिति क्या है, इस पर पैना व्यंग्य निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -----

" समग्र लाभ - लोभ के अविकल अधिकारी
मुक्त हस्त दान दें
टैक्स चोर तस्कर व्यापारी ----
मस्त रहें धृतराष्ट्र, चढ़ी रहे समग्र क्रान्ति की खुमारी ।"[2]

(अगले पचास वर्ष और)

यहाँ पौराणिक प्रतीक ' धृतराष्ट्र ' का प्रयोग सत्ता की अन्धता के उद्घाटन के लिए अत्यन्त सटीक है ।

' तुनक मिजाजी नहीं चलेगी ' में कवि मोरार जी को लक्ष्य कर तत्कालीन राजनीति पर अपनी व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया को फटकार के तीखे शब्दों में व्यक्त करता है- [3]

' हाँ-हाँ तुम बूढ़ी मशीन हो,
जनता तुमको ठीक करेगी
बद्तमीज हो बदजुबान हो
इन बच्चों से कुछ तो सीखो ।'[4]

---

1. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; पृ० - 72
2. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; पृ० - 22
3. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; पृ० - 89 ,
4. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ० - 139

राजनीति के अवसरवादी गठबंधन एवं पद - लिप्सा पर व्यंग्य है ' नौ दिन चले अढ़ाई कोस ' में तत्कालीन राजनीतिक दस्तावेज के रूप में -----

" चरणसिंह की अंतिम चाह
कैसे भी पूरी हो वाह
लम्बे डग हैं, सँकरी राह
बड़ी जलन है बेहद दाह ।"[1]

भारतीय राजनीति में दलों की अवसरवादी बदल की प्रक्रिया उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी है । नौवें दशक के प्रारम्भ की एक कविता ' दलबदलू बुजुर्ग ' में कवि ने इसी प्रवृत्ति पर बड़ी विनोदपूर्ण मुद्रा में व्यंग्य किया है । इसमें कवि की भाषा तथा तेवर संयत है -----

" दरअसल
अपन वही है
वही रहेंगे, हाँ वही
न बदले हैं न बदलेंगे
बदलते हुए दीखेंगे, फिर भी कुछ नहीं सीखेंगे ।"[2]

राजीव गांधी के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में चाटुकारों व धूर्त राजनीतिज्ञों के विफल मनोरथ होने की तत्कालीन स्थितियों का व्यंग्य - चित्र दर्शनीय है - ' विकल हैं, व्याकुल हैं ' शीर्षक कविता में -----

" हजार - हजार चाटुकार भ्रमरों को चाहिए
नेहरू - खानदान का प्रफुल्ल कमल
राजीव
तुम क्या सचमुच
उन्हें अन्त तक निराश ही रखोगे ।"[3]

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ0 - 42
2. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ0 - 47
3. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ0 - 148

ईरान - ईराक युद्ध के सन्दर्भ में कवि का करूण - व्यंग्य ' बार - बार हुए हैं लहूलुहान ' शीर्षक कविता में प्रकट हुआ है । यह भी नौवें दशक के प्रारम्भ की रचना है । निम्न पंक्तियों में कवि का विक्षोभ तीखी भाषा में व्यक्त है -----

" परस्पर कलहक्रांत धन - पिशाच तेल - वाणिक
गिनेंगे स्वगत - लाभांश, औरों को लड़ायेंगे
बढ़ाही लेंगे अपने - अपने प्रताप क्षेत्र
छिनाल महाशक्तियाँ, घिनौनी महाशक्तियाँ ।"

इस प्रकार नागार्जुन की राजनीतिक - व्यंग्य - दृष्टि प्रारम्भ से अन्त तक निर्भीक मुद्रा में, विकृतियों पर प्रहार करने की रही है । नयी कविता के प्रारम्भिक वर्षो में इनकी कविताओं में छंदबद्धता एवं तुकों द्वारा विनोद एवं चुलबुलेपन का समावेश अधिक हुआ है । परवर्ती काल में गंभीर तथा संयत मुद्रा और संक्षिप्त कलेवर वाली कवितायें भी मिलती हैं, परन्तु कुल मिलाकर इनके राजनीतिक व्यंग्य में तीखा उपहास, उत्तेजक प्रतीक तथा मर्मस्थल पर सीधी चोट करने की प्रवृत्ति बराबर रही है ।

केदारनाथ अग्रवाल मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिशील कवि हैं । इनकी कवितायें जनवादी स्वर से युक्त है । इनमें जन - जीवन की शोषित अवस्था के प्रति करूण संवेदना है । इनकी प्रारम्भिक कविताओं में सामाजिक असमानता के संदर्भ में व्यंगात्मकता उभरी है, उसमें राजनीतिक संस्पर्श निरन्तर विकसित होता गया है । कवि की मुद्रा अधिकाधिक आक्रोशपूर्ण एवं व्यंग्य तीखा होता गया है । नौवें दशक में यह आक्रोश अधिक तटस्थता से कविता में व्यंग्य के रूप में प्रकट हुआ है । कवि उत्तरोत्तर वस्तुनिष्ठ ढंग से व्यंग्य करने की ओर अग्रसर हुआ है । इनकी व्यंगात्मक कविताओं में कलात्मक सौंदर्य का निर्वाह भी किया गया है ।

' कहे केदार खरी - खरी ' काव्य - संग्रह में संकलित इनकी प्रारम्भिक दौर की राजनीतिक संस्पर्श युक्त रचनायें भी हैं, जिनमें तीखे एवं सचोट व्यंग्य की प्रवृत्ति मिलती है । नयी - कविता - दौर (छठे दशक) की कुछ व्यंगात्मक कवितायें हैं 'नौजवान नेता से ', ' सुनो ', पाकिस्तान से ', ' सवाल - जवाब ', ' रोते मँहगू गफलू शेख ', ' धिक्कार है ', ' यह

देखो कुदरत का खेल ', ' बात करो केदार खरी ' इत्यादि । इन कविताओं में कवि का तेवर नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्यों के निकट है । ग्रामीण भदेस शब्दावली, हास्यपूर्ण तुकों द्वारा खिल्ली उड़ाने का भाव, तीखे प्रतीक एवं छंदबद्ध लयात्मकता में ये व्यंग्य कवि की तीव्र प्रतिक्रिया, एवं उसकी बेचैनी का व्यक्त करते हैं ।

' सवाल - जवाब ' शीर्षक कविता में नेता की खिल्ली उड़ाते हुए लोकधुन की तर्ज पर बड़ा तीखा व्यंग्य ग्रामीण भदेसपन के साथ किया गया है । इसमें पुलिस - तंत्र की भी कलई खोली गई है -----

" नेता है देसी - समैया सुदेसी / करनी करैया है - गोबर - गनेसी
कैसे करैं हम राज जी ? / पीड़ा हरैं हम आज जी ?
नेता को टारो - समैया सुधारो / गोबर - गनेसी की कलई उतारो
ऐसे करौ तुम राज जी / × × /
थाना है देसी - सिपाही सुदेसी / रच्छा करैया है जुलकी महेसीं
कैसे बचै धन - धाम जी ?"[1]

भ्रष्ट अफसरशाही की पोल भी कवि बड़ी विनोदी भाषा में खोलता है ' रोते मंहगू गफलू शेख ' में -----

' अफसर अमला रहे टटोल
पैसा रूप्या गोलम - गोल
खाली जेबें भरते चोर
डंडा और दमन के जोर
× × × ×
ठग्गू पहने हैं सिरताज
घुघ्घू हैं मंत्री महराज ।'[2]

यहाँ ' ठग्गू ' के सिर पर ताज तथा ' घघ्घू ' के मंत्री होने के कथन द्वारा लोकतंत्र

---

1. कहें केदार खरी - खरी - केदार नाथ अग्रवाल; पृ० - 108 (1954)
2. कहें केदार खरी - खरी - केदार नाथ अग्रवाल; पृ० - 115, 118

के खोखले ढाँचे पर भरपूर वार करता तीखा व्यंग्य है । इसी प्रकार ' यह देखो कुदरत का खेल' कविता में बड़े सटीक प्रतीकों का प्रयोग कर सत्ता - पक्ष के झूठे, फरेबी स्वरूप का पर्दाफ़ाश किया गया है -----

' गिरटि बैठे सिंहासन पर,
गधे लगाते तेल
बीन बजाते बाज महोदय,
मगर चलाते रेल
यह देखो कुदरत का खेल
जनगन मन अधिनायक पैदल,
बड़े बजाते गाल
टेढ़े - मेढ़े तिरछै चलते,
गिरे पड़े कंकाल ।'[1]

यहाँ उच्च सत्ताधारी वर्ग की अवसरवादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कवि ने उन्हें ' गिरगिट ' तथा उनकी चाटुकारिता करते मूर्ख लोगों को ' गधे ' कह कर उन पर पैना व्यंग्य करने के साथ राजनीतिक विडम्बना को भी प्रत्यक्ष कर दिया है । इसी प्रकार ' मगर ' तथा ' बाज ' के प्रतीकों द्वारा शोषक - वर्ग के सत्ता में होने पर तीक्ष्ण व्यंग्य उपहास के स्वर में है । अंतिम पंक्तियों में लोकतंत्रात्रिक प्रणाली की विडम्बना पर व्यंग्य है, जिसमें राष्ट्रगान का प्रस्तुतीकरण ही अपने आप में गूढ़ व्यंग्य है । प्रायः कवि नेताओं का उपहास करते समय ग्रामीण भदेसपन के साथ चुलबुला व्यंग्य कर यथार्थ को प्रस्तुत कर देता है -----

' नेता की मति गई हरी
दोनों आखें है अंधरी
बातें करते हैं जहरी
जनता को कहते बकरी
× × ×
अंग्रेजों की वही दरी
आज बिछाये खून भरी
बैठे हैं ताने छतरी
मंत्री गन परसे पतरी ।'[2]

---

1. कहें केदार खरी - खरी - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 125, 226
2. कहें केदार खरी - खरी - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 127

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हालात में कोई परिवर्तन न होनें की स्थिति पर व्यंग्य यहाँ तीखे प्रभाव से युक्त है । ये कवितायें छठें दशक की हैं । आठवें दशक की ' नेता ' कविता संक्षिप्त कलेवर में कवि की फटकार के रूप में तीखी व्यंग्यात्मकता से युक्त है । राजनीति में गरिमा के हनन, चारित्रिक मूल्यों में गिरावट तथा समाजवाद के नाम पर घटियापन लाने के प्रति कवि का व्यंग्य आक्रोशपूर्ण है -----

' कुछ नहीं कर पा रहे तुम,
सरेआम एक - दूसरे को लतिया रहे तुम;
पार्टी की फटफटिया
फटफटा रहे तुम;
देश को समाजवादी नहीं
घटिया बना रहे तुम ।'[1]

आठवें दशक में कवि का आक्रोश भदेस भाषा में व्यक्त होकर एक साथ ही तीखा, चटपटा तथा प्रहारक हो उठा है । धीरे - धीरे कवि की अभिव्यक्ति अधिक तटस्थ मुद्रा ग्रहण करती गयी है । इन कविताओं में समकालीन राजनीति की गूँज सुनाई देती है । ' अफसर ' कविता में अफसरों की रिश्वतखोरी तथा सत्ता से उनकी साँठ - गाँठ की चाल पर कवि बड़े ही कम शब्दों में व्यंग्य करता है -----

' ये बड़कवे
पुराने गब्बर
पेटू अफसर
चाल - फेर से
चला रहे हैं
राजतंत्र का चक्कर मक्कर ।'[2]

यहाँ कवि ने ' राजतंत्र का चक्कर मक्कर ' चलाते खाऊ अफसरों की असलियत उजागर करने के साथ ही लोकतंत्र की खोखली प्रणाली के प्रति भी तीक्ष्ण व्यंग्य - शर छोड़ा

---

1. मार प्यार की थापे - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 14 (1974)
2. कहें केदार खरी - खरी - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 185 (1976)

है । राजनीतिक धूर्ततापूर्ण चालों के यथार्थ स्वरूप की पहचान करता हुआ कवि ' हम समझे ' कविता में फटकार तथा तीखी आक्रोशपूर्ण शब्दावली में व्यंग्य करता है -----

' जब - जब तुमने अपना चक्कर
मक्कर चलाया
और पूँजी के पैंतरे से हमें भरमाया
× × ×
तब हम समझे
तुम आदमी नहीं उल्लू हो ।'[1]

यहाँ कवि ने व्यंग्य की प्रत्यक्ष प्रहारक मुद्रा में ' तुम आदमी नहीं उल्लू हो ' कहकर प्रतीकात्मक व्यंग्य के साथ ही सीधी गाली का तीखापन भी उत्पन्न कर दिया है ।

कवि की व्यंग्यात्मक मुद्रा क्रमशः संयत वस्तुनिष्ठता में ढलती गयी है, जिससे उसके व्यंग्य का वार और भी गहरा होता गया है । राजनीतिक गतिविधियों पर व्यंग्य करता कवि स्वयं खीझ, आक्रोश या घृणा से युक्त नहीं दिखता, क्योंकि वह जानता है कि यह सब कुछ पिछली घटनाओं की पुनरावृत्ति मात्र है । निम्न पंक्तियों में कवि का व्यंग्य चुनाव के दौरान होने वाले क्रियाकलापों के प्रति एक उपेक्षा - भाव तथा उदासीनता से भरा हुआ है -----

' नाच रहे पहले के वही - वही मोर
नाच रहे पहले के वही - वही भालू
गूँज रहा पहले का वही - वही हाड़ तोड़
कान - फोड़ हल्ला ।'[2]

यहाँ ' वही - वही ' शब्दों द्वारा चुनाव की सारी सरगर्मियों के पीछे छिपी वास्तविकता को कवि ने सामने रख दिया है । जो नेता ' मोर ' और ' भालू ' बने जनता को लुभाने के लिए चुनावी हथकंडों का प्रयोग करते क्रियाशील हैं, वे वही हैं, जो अबतक थे । अब इस तमाशे में कवि को विशेष रूचि नहीं, इस भाव के प्रदर्शन द्वारा बड़ा अर्थपूर्ण व्यंग्य किया गया है ।

---

1. कहें केदार खरी - खरी - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 187, 188 (1976)
2. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 21 (1977)

व्यंग्य के लिए प्रतीकों का सटीक तथा कलात्मक प्रयोग कवि की परवर्ती कविताओं में अधिक दृष्टिगत होता है । सरकार द्वारा गठित विभिन्न आयोगों द्वारा भ्रष्टाचार तथा अत्याचार की प्रक्रिया किस प्रकार चलती है इसे निम्न पंक्तियों में ' चलनी चलाने ' के प्रतीकात्मक बिम्बों द्वारा व्यक्त करता कवि उसकी विडम्बना को प्रत्यक्ष कर देता है -----

' चलनी चलाते हैं छोटे - बड़े आयोग
छेद - छेद से झराझर झरता है
तथाकथित यशस्वियों का भ्रष्टाचार ।'[1]

सरकार द्वारा आयोगों के गठन के प्रति एक और व्यंग्य कवि की यथार्थ की पकी हुयी संवेदना में ढलकर - तटस्थ - चित्रण के रूप में व्यक्त हुआ है । कवि ने जैसे एक चित्र प्रस्तुत कर दिया है -----

अंडे पर अंडा
और
अंडे पर अंडा
देती है
जैसे मुर्गी
रोज़ - ब - रोज़ सरकार भी
देती है उसी तरह
आयोग पर आयोग ।[2]

निम्न पंक्तियों में नेताओं की कुर्सी की लड़ाई का बड़ा मनोरंजक चित्र प्रस्तुत कर उन पर तीखा उपहासपूर्ण व्यंग्य किया गया है -----

' लड़ गये बड़े - बूढ़े जवान गिरगिटान
दूसरी क्रान्ति के प्रवर्तक कापालिक महान
कुर्सी के लिए
कुर्सियों के दण्डकारण्य में ।'[3]

---

1. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 29 (1978)
2. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 31 (1978)
3. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 46 (1978)

इसमें ' गिरगिटान ' तथा ' कापालिक महान ' के प्रतीकों द्वारा कवि का बड़ा तीक्ष्ण तथा सटीक व्यंग्य अवसरवादी, दलबदलू प्रवृत्तियों तथा झूठी क्रान्ति - चेतना के प्रति व्यक्त हुआ है । लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति पर कवि का विक्षोभपूर्ण पूर्ण व्यंग्य निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -----

' बढ़ गया लोकतंत्री जीवन में
आसुरी उत्पात
× × ×
आदमी अब हो गया है कॉव - कॉव करते कौवों के मुंह का कौर ।'[1]

यहाँ बड़ी संयमित तथा विचारशील मुद्रा में किया गया व्यंग्य आज की राजनीति तथा उसमें आम आदमी की दयनीय स्थिति के मूल मर्म की पहचान के साथ व्यक्त हुआ है । बाद की कविताओं में कवि का व्यंग्य तीखी प्रतीक - योजना के बावजूद शालीनता से युक्त है । आठवें दशक में कवि की क्रान्ति - चेतना भी दृष्टिगत होती है -----

' न बच पाओगे तुम
न बच पायेगा
तुम्हारा जंगली जनतंत्र ।'[2]

यहाँ जनतंत्र को जंगली कहता कवि उसके शोषक तथा क्रूर स्वरूप पर व्यंग्य भी करता है और वह आगामी क्रान्ति के प्रति आस्थावान भी है । वितृष्णा , विनोद तथा तीखे व्यंग्य की मिली - जुली अभिव्यक्ति एक अन्य कविता में हुयी है । इसमें कवि लोकतांत्रिक पद्धति की विडम्बनामय परिणति को मंत्री के निरंकुश अहंवादी प्रवृत्ति के अतिरंजित रूप में उद्घाटन द्वारा बड़े मनोरंजक तेवर में तीक्ष्ण व्यंग्य के साथ व्यक्त करता है -----

' अब क्या नहीं कर सकता वह ? यानी
घोड़े में सूरज को बंद कर सकता है
आग को आँसू कर सकता है
× × ×
औरत को बकरी और मर्द को कानखंजूरा बना सकता है ।'[3]

---

1. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 54 ⦅1979⦆
2. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 78 ⦅1979⦆
3. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 -

एक अन्य स्थल पर कवि राजनीतिक परिवेश के भयानक स्वरूप और उसमें आम आदमी की विवश भूमिका को एक गहरी समझ तथा निष्कर्ष के साथ उद्घाटित कर देता है । इसमें लोकतंत्र अपनी चरम विडम्बना के साथ प्रत्यक्ष हो उठा है । कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं---

' हत्याओं के औचित्य में
भरपेट खाये अघाये
हिंसक पशु डकारते हैं
जानलेवा जंगल से
बचने के लिए आदमी
मंत्रियों की काँख में
शरण तलाशते हैं ।'[1]

' हे मेरी तुम ' संग्रह में कवि की आठवें दशक की कुछ कवितायें राजनीतिक - यथार्थ की बुराइयों पर तटस्थ वैचारिक मुद्रा में हैं । ' हे मेरी तुम ' सम्बोधन राजनीतिक प्रसंग को आत्मीय सन्दर्भ में व्यक्त कर उसमें मार्मिक तीखापन भर देता है -----

' हे मेरी तुम
कागज के गज् गजब बढ़े
धम - धम धमके भीड़ रौंदते
इनके पाँव कढ़े
ऊपर अफसर चंट चढ़े ।'[2]

यहाँ कवि मुद्रा स्फीति तथा धन लोलुपता दोनों के प्रति ' कागज के गज ' के बढ़ने द्वारा व्यंग्य करता है । यहाँ कवि बड़ी निर्लिम्तता से यथार्थ - स्थिति का वर्णन करता है, जो स्वयं में व्यंग्यपूर्ण हैं ।

नौवें दशक के प्रारम्भ में कवि ने राजनीतिक यथार्थ का अधिक संयत मुद्रा में तटस्थ चित्रण किया है । कविता का कलेवर भी पहले से संक्षिप्त हो गया है तथा प्रतीक एवं श्लेष के सारगर्भित प्रयोग द्वारा काव्य - सौंदर्य का भी निर्वाह हुआ है । सत्ता में आने के बाद

---

1. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 98, 99 (1979)
2. हे मेरी तुम - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 33

व्यक्ति के बदल जाने की प्रक्रिया का यथार्थ - चित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि ' चौपाया ' शब्द में निहित द्वि अर्थकता का बड़ा सटीक प्रयोग तीखे व्यंग्य के साथ निम्न कविता में करता है --

> ' चुनाव के बाद / जीत की कुरसी हुआ वह / आम आदमी के बजाय चौपाया हुआ वह/ लोग / अब / आदमी को नहीं / चौपाये को / जीत की कुर्सी को सादर सलाम करते हैं /[1]

यहाँ सत्ता प्राप्त कर आदमी के चार पैरों वाला जानवर बन जाने तथा उसके आदमी के बजाय मात्र चार पैरों वाली कुर्सी - (सत्ता की प्रतीक) बनकर लोगों से सम्मान लूटने एवं मनमाना व्यवहार करने की तरफ कवि का व्यंग्य वैचारिक गरिमा से युक्त और साथ ही पैना भी है । इसमें कवि के व्यंग्य में संयत वस्तुनिष्ठता लक्षित की जा सकती है ।

एक अन्य स्थल पर कवि देश की वास्तविक भयानक स्थिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उसकी ख्याति के विरोधाभास को बड़े कम शब्दों में प्रकट करता हुआ व्यंग्य करता है । यहाँ यथार्थ - चित्रण द्वारा ही व्यंग्य प्रकट है -----

> ' देश के भीतर दहन है दाह है
> अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वाह वाह है ।'[2]

आठवें दशक की राजनीति सम्बंधी अन्य कविताओं में भी कवि ने तटस्थ, संयत मुद्रा में यथार्थ की विकृतियों को अनावृत्त किया है । [3] इनमें कवि ने समूची राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियों, विकृतियों के यथार्थ को मानवीय करूणा और एक दार्शनिक तटस्थता के साथ व्यक्त किया है ।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन का स्थान सबसे अलग है । " जीवन के प्रकट अन्तर्विरोधों, असंगतियों के प्रति त्रिलोचन की अभिव्यक्ति में एक

---

1. अपूर्वा - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 42 (1981)
2. बोले बोल अबोल - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 38 (1984)
3. अपूर्वा - केदार नाथ अग्रवाल; पृ0 - 64,71,73 (1981)

विलक्षण संयम है । आक्रामक किन्तु उथली तीव्रता से बिल्कुल अलग प्रकार की भरपूर असरदार कवितायें इन सन्दर्भ में कवि ने लिखी हैं । त्रिलोचन उस कठिन जिन्दगी के स्वाद से परिचित है, जिसमें चोट पड़ने पर तिलमिलाने की प्रतिक्रिया नहीं होती, बल्कि चोटों को तोलने - जानने का साहस पैदा होता है ।"[1]

त्रिलोचन ने सानेट लिखे हैं, जिसमें राजनीतिक विसंगतियों के यथार्थ पर कवि की मर्माहत दृष्टि बड़ी सादगी से व्यंग्य करती दिखती है । इनके व्यंग्य कथन की ऐसी भंगिमा से युक्त हैं, जिसमें आक्रोश नहीं उलाहना अधिक है । कवि का व्यंग्य जनता की दीन - हीन अवस्था के प्रति उसकी करूणा से सिक्त है । स्वर में भावुकता का पुट भी रहता है और विक्षोभ भी । निम्न पंक्तियों में कवि ने चुनावों के दौरान अपनी - अपनी टोपियों का गुणगान करने तथा झूठे वादे करने वाले नेताओं एवं पार्टियों की वास्तविकता को सहज ढंग से परन्तु गंभीर समझ के साथ सामने रख दिया है -----

धौली काली, लाल टोपियों की मर्यादा
का गुणागान वायुमंडल को चीर रहा है
× × × ×
है अपनी अपनी उड़ान है, जो भी बकता
हो उसकी चुप सुनते जाओ, जिसने भोगा
है, वह तो गूँजी जनता है, जिसे जवाहर
जय प्रकाश गोलवरकर फुसलाया करते हैं -
स्वर्ग तुम्हें दिखलायेंगे हम, पर डरते हैं ।'[2]

यथार्थ की विकृत - स्थितियों के सन्दर्भ में कवि ने बड़ी प्रगल्भता से ' राम राज्य ' की तथाकथित धारणा एवं स्वप्न पर व्यंग्य किया है, जिसमें कवि की करूणा भी लक्षित की जा सकती है, और उसकी जनता के प्रति प्रतिबद्धता भी -----

" भीषण कमी अन्न की, बलात्कार की अनुदिन
बढ़ने वाली गाथायें, हत्यायें, डाके
चोरी, निश्वत खोरी; कोई बुरा न ताके
रामराज्य है रामराज्य ही बढ़ती के दिन
आ जाने पर रावण - राज्य कहा जाता है

---

1. समकालीन कविता का संघर्ष - डॉ0 चन्द्रकला त्रिपाठी; पृ0 - 60

× × × ×

ये खद्दरधारी प्रतिनिधि हैं, दीन - हीन हैं
जरा और इनका घर भर दो, क्योंकि तुम्हारा
दुख - दर्द तो नया नहीं है, बनो सहारा ।"[1]

निम्न पंक्तियों में जनता के प्रतिनिधि के रूप में कवि ने नेहरू पर वार्तालाप शैली में, सहज भाषा तथा नाटकीयता के साथ पैना व्यंग्य किया है -----

' रोटी कपड़ा सबको किसी तरह देना है
नाव पड़ी है लहरों में उसको खेना है

× × × ×

वह नेहरू जो अपनों को भरते हैं गिन - गिन
पंख लगाकर कौआ फिर - फिर मोर न होगा
एक बार हम लोगों ने भोगा सो भोगा ।'[2]

चुनाव के समय नेता कैसे रंग बदल लेता है, गरीबों का हितैषी बननेका ढोंग करता है और वोट की राजनीति उसे कितना विनम्र बना देती है, इसका यथार्थ - चित्रण कवि ने ' चुनाव के दिन ' कविता में किया है । इसमें नेताओं के ऊपर कवि का तीखा व्यंग्य है, जिसमें उसकी वैचारिक समझ की परिपक्वता भी झलकती है -----

' नाम किसान मजूर का लिया और साथ ही
नया दिखाया नेता ने स्वर नया जगाया
उसी पुराने गले से चकित थे सब श्रोता
कैसे शेर बन गया बिल्ली , कौन बात थी

× × × ×

आज चिरौरी करता है घोड़ा अड़ने पर
ये चुनाव के दिन हैं नाटक और तमाशे
नए - नए होगें खनकेंगे ढोलक ताशे ।'[3]

---

1. अनकही भी कुछ कहनी है - त्रिलोचन; पृ0 - 37 (1951)
2. अनकही भी कुछ कहनी है - त्रिलोचन; पृ0 - 66 (1951)
3. ताप के ताए हुए दिन - त्रिलोचन; पृ0 - 52

एक अन्य स्थल पर कवि ने राजनीति में व्याप्त होड़ तथा जोड़ - तोड़ की प्रवृत्ति पर विक्षोभ के स्वर में व्यंग्य किया है -----

कब तक जीवन में समाज में होड़ा होड़ी
चला करेगी और राष्ट्र भी उसी बाट से
चला करेगें ; रोज नये से नये ठाट से,
छीना छपटी और करेगी तोड़ा-तोडी
फिर अपने दल - बल के हित में जोड़ा - जोड़ी
× × ×
.... शांति सभी की हो, शासन की
शांति - शांति की विडम्बना है और व्यवस्था
कहीं अव्यवस्था भी है ....।[1]

नेताओं के बड़बोलेपन तथा जनता को बहकाने की प्रवृत्ति को कवि खूब समझता है निम्न पंक्तियों में कवि सत्तासीन नेता के कथन को ज्यों का त्यों देकर ही उसमें निहित व्यंग्यात्मकता को प्रत्यक्ष कर देता है -----

' लोग समझते नहीं सवारी कहाँ अड़ी है
बड़े - बड़े मसले हैं यह करना वह करना
सुप्त समुद्री चट्टानों से नाव लड़ी है
गाँधी टोपी राजकाज को सिर पर धरना
सरल नहीं है । सुनता हूँ कहता हूँ हँसकर
बहकी बाते करो दूसरों को बहकाकर ।'[2]

यहाँ कवि की टिप्पड़ी में कवि का विक्षोभ व्यक्त है, जो समूचे व्यंग्यात्मक प्रभाव में तीखी कचोट पैदा कर देता है । एक अन्य स्थल पर ----- सरकार के गेहूँ का व्यापार छोड़ने की नीति की विकृतियों के प्रति संकेत करते हुए तथा तत्कालीन नेता की खिल्ली उड़ाते हुए कवि का सहज विनोदपूर्ण व्यंग्य द्रष्टव्य है -----

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 45
2. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 61

' छोड़ा है सरकार ने गेहूँ का व्यापार
हुआ मंडियों में शुरू व्यापारी - त्योहार
व्यापारी त्योहार लगा है तुलने गल्ला
दर्शक डॉडी देख चकित है अल्ला - अल्ला
फखरूद्दीन अली अहमद को यह थोड़ा है
बातों के घोड़े को संसद में छोड़ा है ।'[1]

संक्षेप में, त्रिलोचन के व्यंग्य सहज, सरल एवं वैचारिक मुद्रा से युक्त है । इनमें कवि की करूणा एवं विक्षोभ का भाव प्रच्छन्न रूप में विद्यमान है । इनका प्रभाव मार्मिक एवं कचोटने वाला है ।

विजयदेव नारायण साही ने भी राजनीतिक - सामाजिक चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में की है । इनके प्रथम काव्य - संग्रह ' मछलीघर ' (1966) की कविताओं में भी राजनीतिक दृष्टि के व्यंग्य हैं, परन्तु उनमें प्रमुख रूप से मानव - जीवन के सार्वभौम प्रश्नों एवं मूल्यों के प्रति कवि की चिन्तनशील प्रवृत्ति व्यक्त हुयी है । ' साखी ' (1983) की कविताओं में उनकी राजनीतिक चेतना अधिक स्पष्ट व्यंग्यात्मक तेवर के साथ उभरी है । विजयदेव नारायण साही की कविताओं में एकालाप शैली का उत्कृष्ट प्रयोग मिलता है । 'मछलीघर' में संग्रहीत एक कविता ' आखिरी सामना ' में कवि फटकार भरी मुद्रा में एकालाप शैली का प्रयोग कर सत्ता - पक्ष के उन लोगों पर तीखा व्यंग्य करता है, जो आम आदमी का शोषण उसका हितैषी बनकर बड़ी चालाकी से करते हैं -----

जिस दिन तुमने नशे में उन्मक्त
लाल - लाल आखें लिये
करख्त उद्घोषणा की
कि तुम्हारे चारों ओर श्मशान है
उसी दिन मुझे डर लगा था
कि कहीं तुम्हें अघोरियों की तरह
शव खाने की आदत न पड़ जाय

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 99

× × × ×
और अब जीवित व्यक्तियों को गले लगाते समय
पैनी लालच के साथ तुम्हारे खूबसूरत दाँत
हल्के - हल्के चलने लगते हैं ।'[1]

विनोद दास के शब्दों में ' आखिरी सामना ' कविता उत्तेजना भरी बातचीत से शुरू होती है, जिसमें अघोरियों से सम्बंधित मिथक का सार्थक उपयोग किया गया ।[2] साही जी ने राजनीतिक यथार्थ पर व्यंग्य करते समय मिथकों का सफल सर्जनात्मक उपयोग किया है । 'साखी' की कविताओं में भी मिथकीय प्रयोग करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । इसका तेवर ' मछलीघर ' की कविताओं से भिन्न है । ' साखी ' की कविताओं का यथार्थ आज के समय का घटित यथार्थ है । वह थिराई हुयी अनुभूति का यथार्थ है ।'[3]

साही के राजनीति - सम्बंधी व्यंग्य घटनाओं की तात्कालिक प्रतिक्रिया नहीं है । वे समाजवादी विचारधारा से सम्बद्ध थे । कविता के क्षेत्र में उन्हें इससे यथार्थ को देखने - परखने की दृष्टि मिलती थी । वे समूचे राजनीतिक - सामाजिक माहौल पर एक जिज्ञासु विचारक की दृष्टि डालते हैं और उसमें से छानकर कुछ तत्थ्यों को सार रूप में कविता में प्रस्तुत करते हैं । ' साखी ' की कविताओं में साही जी कबीर की तरह मुद्रा अपनाकर तथा टेक का प्रयोग कर उसमें एक पैरोडी जैसी विनोदात्मकता एवं हास्य का समावेश कर देते हैं । इसके माध्यम से वे सहज स्तर पर समूची कविता के बोध तथा निष्कर्ष को ग्राह्य बनाते हैं । उनकी राजनीतिक और सामाजिक व्यंग्य - दृष्टि परस्पर सम्बद्ध है, क्योंकि वे विसंगतियों को मानवीय - सामाजिक सन्दर्भों में रखकर ही प्रस्तुत करते हैं । इसके लिए प्रायः कवि ने रूपक - कथाओं, मिथकों एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों का प्रयोग किया है ।

' साखी ' की एक कविता ' हवा महल ' में कवि सरकारी - तंत्र की कार्य - पद्धति की विसंगतियों; झूठे विकास - कार्य और इन सबसे भ्रमित तथा पिसती हुयी जनता की

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 83, 84
2. साही का काव्य लोक - विनोद दास, आलोचना जन0,मार्च, 84; पृ0 59
3. ' साही का काव्य लोक ' विनोददास; आलोचना - जन0,मार्च,'84; पृ0 - 60

विवश - स्थिति का चित्रण व्यंग्यात्मक दृष्टि से करता है । इसमें सारे खोखले एवं फरेबी सरकारी विकास - कार्यों को ' हवा महल ' के रूपक द्वारा व्यंग्यात्मक अर्थवत्ता से युक्त करके प्रस्तुत किया गया है -----

" फिर वे आते हैं, जो छड़ी से दूर तक संकेत करते हैं
हवा में जीने, दरवाजे, बगीचे, कटघरे बनाते हैं
× × × ×
धीरे - धीरे एक ठस पत्थर
उसके सर पर रख दिया जाता है
और वह बेवकूफ की तरह
उस पत्थर को दोनों हाथों से पकड़े हुए
नीचे से ऊपर की ओर चढ़ने लगता है ।"[1]

इस कविता में कवि ने विकास एवं निर्माण के नाम पर जनता को भ्रमित कर उसे ही आर्थिक बोझ तले दबाने तथा शोषण करने की सत्ता - पक्ष की शालीन चालों को बड़ी सहजता से वैचारिक स्तर पर ग्रहण कर उन्हें काव्य - रूपक में ढालकर अभिव्यक्त किया है ।

' क्या करूँ ' शीर्षक कविता में बड़े - बड़े आदर्श बघारने वाले राज नेताओं की असलियत को उजागर कर उन पर व्यंग्य करता कवि पौराणिक प्रतीकों का बड़ा सटीक प्रयोग करता है । ' वीर्यवान, उत्तमोजा , सात्यकि, भीष्म कर्ण, पौराणिक प्रतीक हैं, जो अपनी सत्यनिष्ठा एवं राजनीतिक प्रतिबद्धता के लिए विख्यात थे । आज के नेताओं के भाई भतीजा वाद की प्रवृत्ति के सन्दर्भ में इन प्रतीकों का प्रयोग कर कवि बड़ा ही अर्थगर्भित व्यंग्य करता है । वेद व्यास को सम्बोधित करता हुआ कवि आज के विकृत राजनीतिक माहौल में स्वयं के कवि - कर्म की विवशता पर भी विनोदपूर्ण व्यंग्य करता है । कुल मिलाकर प्रस्तुत व्यंग्य बड़ा सारगर्भित एवं सटीक है -----

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 88 - 90

" वह जो दूर से
विशालकाय प्रवाह में
जन्म लेते, लय होते
वीर्यवान, उत्तमोजा, उत्तमोजा, सात्यकि, भीष्म
कर्ण तथा अन्यान्य वैसे ही, योधवीर दिखते थे
पास पहुँचने पर
भाई , भतीजे, लड़के, दामाद निकले
लात खाया सन्त कहता है
वेद - व्यास भाई
अब मैं क्या करूँ ।"[1]

कुछ अन्य कविताओं में सामाजिक - राजनीतिक - स्थितियों की झलक, कानून - व्यवस्था, राजनैतिक - क्रियाकलापों के खोखलेपन आदि को प्रकट किया गया है, जिसमें व्यंग्य को अन्तर्ध्वनित होते हुए पकड़ा जा सकता है । इन कविताओं में कवि की गम्भीर मुद्रा, उसकी करूणा एवं सोच की छटपटाहट को महसूस किया जा सकता है । ' एक दुर्घटना की याद ', 'उपर्युक्त', ' अब' इत्यादि कवितायें ऐसे ही सामाजिक - राजनीतिक - यथार्थ से युक्त हैं । 'अब' शीर्षक कविता में कबीर के एक दोहे के भाव को ही आधुनिक युग की विसंगति एवं विडम्बना बोध के लिए प्रयुक्त करके नितांत गंभीर परिस्थितियों को एक ' पैरोडी ' जैसी विनोद प्रियता के साथ प्रत्यक्ष किया गया है । कवितांत में कवि का प्रश्न है ' अब ?' । इससे कवि जैसे कबीर कालीन युग एवं उनकी आध्यात्मिक मुद्रा के प्रति भी आधुनिक - सन्दर्भो में एक प्रश्न चिह्न खड़ा करता है । इससे कविता में नितांत सहज एवं हल्के - फुल्के ढंग से व्यक्त किया गया भयानक एवं अमानवीय परिवेश एक विशिष्ट व्यंगात्मक अर्थवत्ता से युक्त हो उठा है -----

" वे बाजार में लुकाठी लिए खड़े है / मेरा घर भी लजाते हैं / और मुझे साथ भी पकड़ ले जाते हैं / अब ? / वे बाजार लूटते हैं / और रमैया के जोरू की इज्जत भी / नर भी / नारी भी / देवता भी / राक्षस भी / उन्होंने हाहाकार मचा दिया है / अब ? /"

× × × ×

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 139

' क्या सचमुच सबसे भली यह चक्की है
जिसके दो पाटों के बीच में कोई साबुत नहीं बचता ?
अब ? ।'[1]

उपरोक्त पंक्तियों में व्यवस्था - पक्ष की दुर्बलता, कानून एवं पुलिस - व्यवस्था की क्रूरता के प्रति कवि का कटाक्ष स्पष्ट है ।

लक्ष्मीकांत वर्मा के राजनीतिक व्यंग्य जहाँ समकालीन राजनीतिक गतिविधियों पर है वहाँ भी वे केवल उसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में नहीं वरन् कवि की भावुक संवेदना, मानवीय मूल्यों के सार्वभौमिक चिन्तन से जुड़कर गंभीर एवं विचारशील मुद्रा में प्रकट होते हैं । इनके प्रारम्भिक काव्य - संग्रह अतुकांत (1968) में इनका राजनीतिक व्यंग्य पौराणिक कथा प्रसंगों से जुड़कर एक विशिष्ट प्रभाव के रूप में व्यक्त हुआ है ।' प्यार मैंने भी किये थे ' में ऐसा ही व्यंग्य है ।

प्राचीन कथा प्रसंगों तथा चरित्रों को प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त करके कवि ने आधुनिक राजनीतिक सामाजिक जीवन की विसंगतियों को अभिव्यक्ति दी है । प्राचीन मिथकों का यह संदर्भ उनके व्यंग्य के प्रभाव को बहुआयामी बना देता है । वस्तुतः दो विपरीत स्थितियों को आमने - सामने कर देने के कारण व्यंगात्मकता और गहरी हो जाती है । दूसरे, प्राचीन स्थितियों की तुलना में आधुनिक मानव की विवश स्थिति का करूण व्यंग्य भी ध्वनित होता है । उक्त कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जिसकी स्वगत कथन शैली अधिक विश्वसनीय ढंग से कविता के प्रभाव में एक करूण मार्मिकता उत्पन्न कर देती है -----

" पक्ष से विपक्ष तक सभी मानते हैं / जिस तेल के कनस्तर में चूहे मरते हैं / उसी तेल को गंधी बन / इनके फाहों के साथ बेच दिया जाता है / x x x x / यह तो महज बात है / सरकार यदि न मानती / तो विद्रोही मैं भी था / ---- / मैं चूहे को चूहा ही कह पाता हूँ / यदि मैं कहता गणपति वाहन / तो शायद मिनिस्टर होता / ओ गुरूजन / ओ प्रियंवद / ओ सदानंद / तपस्वी तो मैं भी था / यज्ञ मैंने भी किये थे / या याज्ञिक / दीक्षित भी था / किन्तु यज्ञ के पुरोहित / सब बनगये कबाड़ी ।"[2]

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 147
2. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 43

इसी संग्रह में दूसरा राजनीतिक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यंग्य है । ' शांति यह किसकी है ' कविता में । इसमें विश्व राजनीति पर द्रृष्टि डालते हुए कवि ने शांति के झूठे दिखावे एवं संधि पत्रों द्वारा शांति के प्रचार का आडम्बर करने वाली महाशक्तियों पर व्यंग्यात्मक कटाक्ष आक्रोश की मुद्रा में किया है, पर उसमें कवि की भाषा वैचारिक गरिमा से संयमित है । कवि शांति की विडम्बना को निम्न पंक्तियों में व्यक्त करता उन पर व्यंग्य करता है -----

" लेकिन वह शांति नहीं
जिसमें दोस्ती और दुश्मनी का
महज एक खेल हो
तुम बन्दूकों को बुरा और तलवारों को अच्छा कहो
बम को गाली दो
और बारूद जेब में लिए घूमों ।"[1]

कवि सम्पूर्ण विश्व के सन्दर्भ में शांति के आडम्बर की पोल खोलता उसकी विसंगति एवं विडम्बना पर मार्मिक व्यंग्य करता है -----

' शांति मर गयी ठीक उसी क्षण
जब नागासाकी की विभीषिका में तुम दोनों
अपनी केतली की भरी चाय को आँच लगाकर पका रहे थे
और शांति के शव को शिव करने जाते थे
× × × ×
यह लाशों की पूजा अभिनव शेष रहेगी कब तक आखिर !'[2]

कवि की राजनीतिक द्रृष्टि के व्यंग्य प्रारम्भ में आक्रोश एवं करूणा प्रेरित हैं । इनके दूसरे काव्य - संग्रह ' तीसरा पक्ष ' (1975) में जो राजनीति से सम्बद्ध व्यंगात्मकता मिलती है वह अन्तर्राष्ट्रीय घटना - संदर्भो पर आधारित है । ' वे जो आजादी का रिश्ता ' नामक कविता में अफ्रीका की संघर्षशील जनता के नाम कवि का उद्गार है । इसमें कवि की

---

1. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 132
2. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 134

अन्तर्करूणा युद्धजनित भयंकरता से उद्वेलित हो तीखे व्यंग्य के रूप में व्यंजित होती है -----

' दूध पीते बच्चों के अन्तर में ..... संगीत की जगह
भर जाती है संत्रास, भय, अभिशप्त स्वरों का जंगल
आँखों में कानों में गला सीसा
ऐंठी जबानों पर लिखा हुआ विएतनाम ।'[1]

एक अन्य कविता में युद्ध की विडम्बनामय स्थिति के प्रति करूणा से प्रेरित व्यंग्य है, जो कवि ने चीन और पाकिस्तान के युद्ध में शहीद सैनिकों के नाम लिखी है -----

' रक्त जो मिला है, मुझे परम्परा से
वह कायरता का नहीं
किन्तु उन उन्नायकों को क्या कहूँ
जिन्होंने इतिहास में लिया है शुद्ध रक्त
किन्तु दिया है, अँधेरा, अकुलाहट, असम्पृक्त ।'[2]

' यह भी एक खेल है कविता में भी कवि का विक्षुब्ध व्यंग्यात्मक स्वर सामाजिक - राजनीतिक सन्दर्भों में व्यक्ति - जीवन की पीड़ा को प्रत्यक्ष करता हुआ व्यक्त हुआ है ।'[3] ' तीसरा पक्ष ' संग्रह की व्यंग्यात्मक कवितायें स्वगत - उद्‌गारों के ही रूप में हैं । इनमें कवि के स्वर की भावुकता एवं व्यंग्य में निहित करूणा स्पष्ट लक्षित की जा सकती है ।

कवि के तीसरे काव्य - संग्रह ' कँचन - मृग ' (1981) की व्यंग्यात्मक कविताओं में कवि की भंगिमा एवं स्वर परिवर्तन का संकेत देते हैं । इसमें प्राचीन एवं पौराणिक कथा - प्रसंगों को प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त कर आधुनिक राजनीति के व्यंग्य को उद्‌घाटित किया गया है । इसकी एक कविता ' आपातकालिक ' तत्कालीन राजनीति का काव्यात्मक संस्करण है, पर इसमें पौराणिक कथा - प्रसंग के प्रयोग द्वारा उसे तात्कालिक प्रतिक्रिया से अलग एक वैचारिक अर्थ - सन्दर्भ भी प्रदान किया गया है । इस कविता का तेवर पूर्व की कविताओं

---

1. तीसरा पक्ष - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 27
2. तीसरा पक्ष - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 52
3. तीसरा पक्ष - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 8

से पर्याप्त भिन्न है । आपातकाल की क्रूर, भयानक एवं हिंस स्थितियों का नग्न - चित्र अपनी सम्पूर्ण विभीषिका के साथ इसमें उपस्थित है । यह कविता कवि के आक्रोश की तीव्रता, घृणा - भाव की पराकाष्ठा एवं व्यंग्य की मारकता की तीव्रतम स्थिति की परिचायक है । व्यंग्य कठोर प्रहार एवं आक्रमण की मुद्रा से युक्त है । इसका कारण तत्कालीन राजनीतिक स्थितियाँ ही हैं, जिनमें मानवीय - करूणा का वाहक भावुक कवि आक्रोश एवं घृणा की तीव्रतम व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए विवश हो उठता है । इसमें तत्कालीन महिला - मंत्री पर प्रत्यक्ष प्रहार है यहाँ कवि में नागार्जुन की साहसिक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । आपात काल की भयानक एवं त्रासद - स्थियों के सन्दर्भ में इंदिरागांधी पर तीखे आक्रोश से भरकर व्यंग्य किया गया है ----

" पूरे शहर के जिस्म में / अपंग कोढ़ियों जैसे / ठूँठनुमा हाथ - पैर / उगने शुरू होंगे / फिर उन ठूँठ हाथों में टेढ़े - मेढ़े घिनौने पंजे / × × × × / स्वयं अपना ही जिस्म फाड़ता - नोचता / पूरा शहर लहू - लुहान / × × × / इसी माहौल में जब वह / हज से लौटी हुयी बिल्ली की तरह / अपनी कंजी आँखे लिए हुए निकलती है / तो - / शहर के सारे चूहे उसे अभिनन्दन करते हैं / अपनी - अपनी दुमें उठाकर एक साथ अभिवादन करते हैं /"[1]

इसी कविता के एक अंश में कवि कंचन - मृग का आपात कालीन - सन्दर्भ में प्रतीकात्मक प्रयोग कर आज के राजनीतिक - परिवेश की विडम्बनामय स्थिति को एक तुलनात्मक विस्तृत आयाम प्रदान करता है -----

' लेकिन फिर भी हजारों राम हैं
जो हर बकरी को कंचन - मृग समझ
उस जिद्दी औरत के लिए मृगछाला लाने के लिए प्रस्तुत हैं
शहर के सारे तस्कर - व्यापारी जो अभी तक भड़भूजों का काम कर रहे थे
धनुष बाण लेकर बकरों की तलाश में निकल पड़े हैं ।'[2]

इस पूरी कविता में कवि के विद्रोह का विस्फोटक स्वर उसकी तीखी भाषा, निर्मम प्रतीक एवं आक्रामक मुद्रा में देखा जा सकता है ।

---

1. कंचन - मृग - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 99
2. कंचन - मृग - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 103, 104

' आज भी नदी वही है शीर्षक कविता में भी प्राचीन कथा - प्रसंग को रूपक के रूप में प्रयुक्त करके आज के मनुष्य की गरीबी को राजनीतिक - सन्दर्भ में चित्रित कर व्यंग्य को प्रत्यक्ष किया गया है । निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -----

" गरीब परदेसी जो सदा से नदी के इस पार रहा है
गरीब ही रहता आया है
उसकी नियति है: शेर की परमहंसी मुद्रा पर विश्वास कर
उसके पास जायें
और अपने अस्थिपंजर को उसकी माँद में डाल कर
अपनी गरीबी दूर करें ।"[1]

यहाँ शेर की परमहंसी मुद्रा के कथन द्वारा सर्वोच्च सत्ता के शोषक एवं क्रूर रूप का छलावों द्वारा ढंके रहने तथा उसके जनता का हितैषी दिखने की सम्पूर्ण प्रक्रिया नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाती है ।

स्पष्ट है कि लक्ष्मीकांत वर्मा की दृष्टि राजनीतिक व्यंग्यात्मक सन्दर्भों में विचारशीलता, संचयित मुद्रा एवं मानवीय करूणा की संवेदना से युक्त रही है । इनकी व्यंग्य - चेतना - अधिकांशतः सामाजिक - सन्दर्भो के प्रति जागरूक रही है । राजनीतिक व्यंग्यों के पीछे भी व्यक्ति - जीवन के सामाजिक - पक्ष का आधार है । इनके राजनीति से सम्बद्ध कविताओं में अधिकांशतः राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय समकालीन राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित व्यंग्य हैं । इनमें प्रारम्भिक संग्रहों में भावुकता है, आक्रोश की संयमित अभिव्यक्ति है । बाद के संग्रह में आक्रोश की तीव्रतम, प्रत्यक्ष प्रहारात्मक मुद्रा एवं भाषा का तीखा, कटु तेवर मिलता है । इनके व्यंग्य प्रायः स्वगत - कथन एवं स्वगत - उद्‌गार के रूप में हैं । पौराणिक प्रतीक, रूपक - कथाओं एवं पौराणिक प्रसंगों के प्रयोग द्वारा लक्ष्मीकांत वर्मा के काव्य का व्यंग्य नयी अर्थवत्ता से युक्त हुआ है ।

---

1. कंचन - मृग - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 3।

प्रभाकर माचवें के काव्य में राजनीति के प्रति व्यंग्य कम ही हैं, परन्तु जो हैं, वे चटपटे तथा तीखे हैं । व्यंग्य की दृष्टि से ' तेल की पकौड़ियाँ ' संग्रह उल्लेख्य है । इसमें कवि ने हास्य और व्यंग्य को मिश्रित रूप में प्रस्तुत किया है । अपनी व्यंग्य - दृष्टि को कवि भूमिका में स्पष्ट कर देता है " मैं सिर्फ नकारातम्क निषेधात्मक, कड़ुआहट या चरपराहट में विश्वास नहीं करता ।" कवि केवल चोट पहुँचाने वाली अभिव्यक्ति के बजाय हास्य में लपेटे हुए पैने व्यंग्य को महत्वपूर्ण मानता है । ' पावर करप्ट्स ' कविता में सत्ता एवं पद प्राप्त करते ही नेता के बड़े आदमी बनकर स्वजनों को भूल जाने पर कवि का व्यंग्य चुटीला है ---

' सुनता हूँ प्रतिदिन हैं होते / सत्ता - प्राप्त गुटों में झगड़े
बीज बबूल - फूटका बोते / कैसे अमन - आम हों तगड़े
× × × ×
अब जब से तुम हो (सह) मंत्री / नहीं तुम्हें मिलता - सब झीखें
कुर्सी जब तुमको दे बुत्ता / तब मिलने आना अलबत्ता /'[1]

यहाँ ' कुर्सी जब तुमको दे बुत्ता ' में विनोद के साथ सत्ता की अस्थिरता की तरफ इंगित किया गया है । ' नये पहरेदार ' में राजनेताओं की झूठी सांस्कृतिक अभिरूचि के प्रति चुलबुला पर पैना व्यंग्य है । नेता वर्ग सुविधावादी दृष्टिकोण अपनाकर स्वयं को प्रचारित करने के लिए विभिन्न सांस्कृतिक - समारोहों में उद्घाटन - भाषण झाड़ते हैं, भले ही उन्हें विषय का बिल्कुल ज्ञान न हो । वह पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -----

' साहित्य के, संस्कृति - कला के हम नये सरदार
चौकीदार - ठेकेदार
यह जरूरी कब कि हम ठुमरी - ध्रुपद जाने
कि कत्थक और कथकलि भेद पहचानें
× × ×
मगर संगीत उत्सव हो कि उद्घाटन बने त्योहार
हम सदा तैयार ।'[2]

---

1. तेल की पकौड़ियाँ - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 25
2. तेल की पकौड़ियाँ - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 60

एक अन्य स्थल पर प्रभाकर माचवे ने भूतपूर्व क्रान्तिकारियों की वर्तमान दशा तथा उनकी दासत्व की मानसिकता को पैने व्यंग्य के साथ व्यक्त किया है -----

आप एक भूतपूर्व क्रान्तिकारी हैं
आजकल क्या करते हैं ?
जानते हैं देश में घोर बेकारी है
उपमंत्री जी का हुक्का भरते हैं ।'[1]

नरेश मेहता ने यद्यपि ' बन पाँखी सुनों ' से लेकर ' मेरा समर्पित एकांत ' तक प्रेम, सौंदर्य एवं संस्कृति की कवितायें ही अधिक लिखी हैं, परन्तु आज की राजनीतिक विसंगतियों, उसकी अमानवीय एवं भयंकर स्थितियों को उद्घाटित करता हुआ ऐतिहासिक - दृष्टि तथा बोध से युक्त व्यंग्यात्मक तेवर इनके संग्रह ' पिछले दिनों नंगे पैरों ' में पूरी मार्मिकता के साथ प्रकट है । इसमें कवि प्राचीन ऐतिहासिक सन्दर्भों के माध्यम से वर्तमान शासन तंत्र तथा लोकतंत्र की अमानवीय स्थितियों का निरीक्षण - परीक्षण करता हुआ उनके प्रति व्यंग्यशील हो उठा है । इस प्रकार कवि की गहरी संवेदना विगत के प्रश्नों को वर्तमान सन्दर्भों से जोड़ती है, जिनमें व्यंग्यात्मक बेधकता स्पष्ट है । संग्रह की भूमिका में ही कवि ऐतिहासिक विषय को वर्तमान यथार्थ से जोड़ने की स्वीकृति का संकेत देता है - " क्या मध्यकालीन अमानवीयता और आधुनिक लोकतंत्र की अमानवीयता में कोई गुणात्मक या तात्विक अन्तर आया है ? तंत्र - पद्धतियों के स्वरूप बदल जाने से इतिहास चरित्र नहीं बदल जाया करता । "[2] इसमें कवि ने विगत काल में पद - प्रतिष्ठा के लिए किये गये अमानवीय कृत्यों तथा इतिहास - दृष्टि में उनके यशस्वी तथा विजयी रूप की विडम्बना को आधुनिक सन्दर्भ एवं उसके प्रश्नों से जोड़कर प्रस्तुत किया है। निम्न पंक्तियों में अतीत के अमानवीय रूप के प्रति कवि की तीखी घृणा तथा वितृष्णा व्यंग्य के स्वर में व्यक्त है -----

---

1. तेल की पकौड़ियाँ - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 49
2. पिछले दिनों नंगे पैरों - भूमिका - नरेश मेहता; पृ0 - 12

' इतिहास या इतिहास का अतीत
--- वक्त और उसकी स्मृतियों में भी
अपने बाघनख
अपने पंजे गाड़
संख्यातीत चमगादड़ों सा
इन सल्तनती तामीरों में ही नहीं
हमारे अन्दर के भी ऐतिहासिक अंधेरों में
उसी तरह लटका रहता है
जिस तहर जानवरों के थनों में खून पीते कीड़े
चिपके होते हैं ।'[1]

कवि निम्न पंक्तियों में इतिहास - दृष्टि पर व्यंग्य करता हुआ, उसके झूठे एवं अधूरे विवरण के प्रति वितृष्णा - से भर उठता है -----

' गुलाम के खून से
इतिहास के गालीचे कहीं खराब न हो जायें
इसीलिए एक खच्चरगाड़ी पर
लहू टपकाते इस शब्द की लोथ को हटा दिया जाता है
ताकि कुलीनतायें और सम्भ्रान्तताएँ
लहू और मांस हो गये
इस शब्द को देखकर गश न खाने लगें ।'[2]

राजनीतिक घटनायें इतिहास में किस विडम्बना पूर्ण रूप में प्रदर्शित की जाती है- इसका व्यंग्य निम्न पंक्तियों में बड़े गूढ़ एवं गम्भीर स्वर में व्यक्त है -----

" इतिहास / या उसके अतीत के पन्नो पर / उस सर से टपकते खून का / यह सिलसिला / जब पूरी तरह खत्म हो जाता है / तब वहाँ का वह / फर्श पर जमा खून / खुद एक शक्ल अख्तियार कर लेता है / x x x / मगर / तब तक न उस पर / न उस काल के इतिहास / किसी की भी रगों में / न खून रह जाता है / और न बयान पर आमादा जुबान / रह जाती है / तो सिर्फ / म्यान में वापस लौट गयी / रत्न जटित / वह बेश कीमती तलवार / x x / और तब उसे / इतिहास का स्वर्ण - युग कहा जाता है /[3]

---

1. पिछले दिनों नंगे पैरों - नरेश मेहता; पृ0 - 62
2. पिछले दिनों नंगे पैरों - नरेश मेहता; पृ0 - 71

इतिहास की खूनी - यात्रा से गुजरने के बाद कवि का हल्का - सा व्यंग्य आधुनिक मानव के उद्‌बोधन के स्वर में द्रष्टव्य है -----

' घरों, किलों, इमारतों को दीवारों वाला होने दो
मगर दीवारों वाला आदमी तो मत बनाओ ।'[1]

एक स्थल पर कवि बादशाह के माध्यम से सत्ता - पक्ष पर प्रश्नाकुल व्यंग्य मार्मिक स्वरों में करता है -----

" अपने जमीर में ऐसा सवाल उठने पर
क्या जवाब दोगे कि
मनुष्य
और सत्ता के प्रतीक
इन लाल किलों के बीच के
ये खाई - जल
कब तक ऐसे ही लाल होते रहेंगे ? ।'[2]

जहाँ लक्ष्मीकान्त वर्मा ऐतिहासिक - प्रसंगों को पौराणिक - प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त कर आज के मानव की बदली हुयी परिस्थितियों एवं उसके व्यंग्य को एक तुलनात्मक प्रभाव के साथ प्रत्यक्ष करते हैं, वहीं नरेश मेहता ऐतिहासिक खूनी पन्नों के छिपे यथार्थ को प्रकट कर आधुनिक सन्दर्भ में उनकी सर्वकालिकता की ओर व्यंगात्मक संकेत करते हैं ।

दुष्यंत कुमार के काव्य में भी राजनीतिक व्यंग्य हैं; पर वे कम ही हैं । इनकी द्रष्टि व्यक्तिगत सामाजिक एवं साहित्यिक - अधिक रही हैं । राजनीतिक व्यंग्य इनके काव्य संग्रह ' जलदते हुए वन का बसंत ' (1962) में ही मिलते हैं । ' सूर्य का स्वागत ' (1957) तथा ' आवाजों के घर (1963) संग्रहों में इनके व्यंग्य व्यक्तिगत - सामाजिक एवं साहित्यिक सन्दर्भों में हैं ।

---

1. पिछले दिनों नंगे पैरों - नरेश मेहता; पृ0 - ( )
2. पिदले दिनों नंगे पैरों - नरेश मेहता; पृ0 - 134

दुष्यंत कुमार के राजनीतिक व्यंग्य स्वगत - कथन की शैली में हैं । कवि स्वयं को व्यक्तस्थितियों से सम्बद्ध कर अपनी प्रतिक्रिया प्रगट करता है ।

' देश - प्रेम ' में कवि ने स्वयं के माध्यम से व्याज - निंदा - शैली में नेताओं तथा लोगों के खोखले देश - प्रेम एवं उसके प्रचार की अवसरवादी प्रवृत्ति पर बड़ा प्रगल्भ व्यंग्य किया है -----

" भाषणों भरी सभाओं और प्रदर्शन की भारी भीड़ों में
लगता कि मैं ही हूँ एक मूर्ख...
कायर, गद्दार !!
मुझे ही सुनाई नहीं पड़ता है
देश प्रेम
जो संकट आते ही
समाचार - पत्रों में डोंडी पिटवाकर
कहलवाया जाता है ।"[1]

बस्तर गोली कांड की प्रतिक्रिया स्वरूप ईश्वर को सूली ' में ' कवि का करूणा की भावना से प्रेरित व्यंग्य सत्ता - पक्ष की क्रूरता, अमानवीयता तथा निरंकुशता के प्रति वैचारिक गम्भीरता के साथ तीखी भाषा में अभिव्यक्त है -----

" समाचार पत्रों की भाषा बदल दी / न्याय को राजनीति की शकल दी / और हर विरोधी के हाथों में / एक - एक खाली बन्दूकें पकड़ा दी - / कि वह - / लगातार घोड़े दबाता रहे / जनता की नहीं, सिर्फ राजा की / मुर्दे पैगम्बर की मौत पर सभाये बुलाता रहे / ' दिवस ' मनाता हुआ / सार्वजनिक आँसू बहाता हुआ / नींद को जगाता हुआ / अर्द्ध - सत्य थामें / चिल्लाता रहे /"[2]

कवि का व्यंग्य समकालीन राजनीति का प्रतिबिम्ब तो है , पर वह कवि की भावुक

---

1. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यंत कुमार; पृ0 - 35

2. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यंत कुमार; पृ0 - 37, 38

मुद्रा एवं करूणा की मार्मिकता से ओत - प्रोत है । सारे राजनीतिक परिदृश्य के प्रति कवि का दृष्टिकोण एक विचारशील भावुक - मन का है । " गाते - गाते ' कविता का व्यंग्य भी कवि की स्वगत - कथन शैली में भावुकतापूर्ण है । इसमें सत्ता के प्रति जनता की अंध - श्रद्धा एवं जागरूकता के अभाव के प्रति बड़ा असरदार व्यंग्य है -----

' और क्या किया है इन लोगों ने, जो जीवन - भर सभाओं में तालियाँ बजाते रहे
भूख की शिकायत नहीं की
बड़ी श्रद्धा से -
थालों में सजे हुए भाषण
और प्रेस की कतरने खाते रहे
मेरा दिमाग भन्ना गया है ।'[1]

मंत्रियों की सत्ता - लोलुपता, देश एवं विदेश की ज्वलंत समस्याओं के प्रति उदासीनता एवं उत्तरदायित्वहीनता पर ' मंत्री की मैना ' में वार्तालाप के रूप में बड़ा तीखा व्यंग्य किया गया है । इसमें वार्तालाप - शैली द्वारा विनोद का पुट भी आ गया है -----

' तू भी गा, राग - वंश फलने दे
भारत यदि भूखा है होने दे
विएतनाम जलता है, जलने दे
× × ×
मुझसे बतला तेरी राहों में बाधक
हर विघ्न को कुचल दूँगा
सत्ता के साथ दल - बदल दूँगा ।'[2]

' तुलना ' शीर्षक कविता में भी कवि बड़ी उल्लासपूर्ण मुद्रा में राजनीतिक दलों की गड़रिये से तुलना करता हुआ उनकी विकृतियों पर व्यंग्य करता है -----

" जनता की सेवा करने के भूखे / सारे दल भेड़ियों से टूटते हैं / × × × / जबकि / सारे दल / पानी की तरह धन बहाते हैं / गड़रिये मेड़ों पर बैठे मुस्कुराते हैं /

---

1. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यंत कुमार; पृ0 - 58
2. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यंत कुमार; पृ0 - 51,52

/ × × / भेड़ों को बाड़े में करने के लिए / न सभाएँ आयोजित करते हैं / न रैलियाँ / × × × × / स्वेच्छा से / जिधर चाहते हैं उधर / भेड़ों को हाँके लिए जाते हैं / गड़रियें कितने सुखी हैं /"[1]

यहाँ कवि ने बड़ी प्रगल्भता से नेताओं द्वारा जनता पर भेड़ियों की तरह - टूटने तथा उन्हें भेड़ों की तरह हाँकने के लिये सभायें तथा रैलियाँ आयोजित करने पर गहरी चोट की है । यहाँ कवि का व्यंग्य अनूठा बन पड़ा है । उपरोक्त सभी कवितायें छठें दशक की हैं ।

व्यंगात्मक स्थितियों के प्रति सहज विनोद की मुद्रा विपिन कुमार अग्रवाल की विशिष्टता है । अपने काव्य - संग्रह ' नंगे पैर ' (1970) की अनेक कविताओं में कवि में अनुभव - खण्डों को सहज - बोध के स्तर पर हल्के - फुल्के ढंग से रखते हुए उनकी विसंगतियों को बड़ी लापरवाही के साथ व्यक्त किया है, जिसमें राजनीतिक - व्यंग्य दृष्टि का भी कहीं - कहीं आभाष मिलता है । ' हमारा देश ' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ व्यवस्था की कमियों की ओर बड़े हास्यकारक ढंग से इंगित करती हैं -----

" नाली मेरे नगर की, जित देखों तित नाला
नाली देखन प्रमुख गये, पड़ गया मुंह पर ताला । "[2]

एक स्थल पर कवि देश की विसंगतिपूर्ण स्थितियों पर विनोद - दृष्टि डालता हुआ आगे चलकर कुछ विक्षुब्ध - स्वर में उसके व्यंग्य को स्पष्ट करता है -----

" यह कैसा देश है
और मैं कैसा इसका वासी हूँ
अपनी ही जमीन पर खड़ा हुआ
लगता है मैं निर्वासित हूँ ।"[3]

---

1. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यंत कुमार; पृ0 - 44, 45
2. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 78
3. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 84

' यात्रा ' शीर्षक कविता में कवि आजादी के बाद की देश की विसंगतियों को ' स्वगत - कथन ' शैली में उभारता है । इसमें राजनीतिक छलावों का पर्दाफाश एवं जनता के मोहभंग का विनोदात्मक व्यंग्य निहित है । कवि राजनीतिक व्यक्तियों का उपहास बड़ी ही सहज मुद्रा में प्रफुल्ल भाव से करता प्रतीत होता है । कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय है -----

> ' क्यों झुठलाया गया है / मुझे इस तरह / अभी आयेंगे / हाल में स्वतंत्र हुए / राम - राज्य की राजा / श्रीराम गाल फुलाये / पेट पर हाथ टिकाये / तब खुल जायेंगे ये पाट / लेने आयेंगें उन्हें द्वार तक / स्वयं पक्षपाती इन्द्र / मैं और नहीं बैठूँगा यहाँ / ऊँट - सा /'[1]

धार्मिक एवं पौराणिक चरित्रों का व्यंग्यात्मक प्रयोग विपिन की कविताओं में भी दृष्टिगत होते हैं । ' इस धरती पर ' (1981) में विपिन की कविताओं में व्यंग्य - दृष्टि अधिकतर राजनीतिक - स्थितियों की विसंगतियों के प्रति ही मिलती हैं । परन्तु राजनीतिक व्यंग्य दृष्टि की कवितायें कम ही हैं । ' आम आदमी ' ' बैठा हूँ ' ' कवि का अन्त ' ' प्रजा का गान ' शीर्षक कविताओं में कवि का राजनीति के प्रति व्यंगय स्वयं को केन्द्र में रखकर नाटकीयता एवं विनोद की मुद्रायें सहज - बोध के स्तर पर अभिव्यक्त हुआ है । प्रजा का गान ' में कवि राजनीतिक गतिविधियों, चुनावी वादों एवं अवसरवादी मनोवृत्ति के प्रति व्यंगात्मक संकेत करता है । इसमें भारतीय लोकतंत्र की विडम्बना व्यंग्य के साथ बड़ी सहजता से उभरी है -----

> " कभी - कभी लोग मेरा मन बहलाने को
> मुझे मतदाता की पदवी से विभूषित करते हैं
> लगने लगता है मेरे पास भी कुछ है - मैं हूँ
> आते हैं मेरे द्वारे जो कभी नहीं आये ।"[2]

' आम आदमी ' में राजनीति और आम आदमी के सम्बन्धों की विडम्बना पर व्यंग्य ' मैं ' शैली में हैं । आत्म - कथन के रूप में कविता कवि के भोगे हुए यथार्थ से जुड़कर

---

1. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 91
2. इस धरती पर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 10

अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है ।

" मेरा चेहरा नहीं देखा गया
और तस्वीर खींच ली गयी
× × ×
मुझे किसी ने हिलाकर बजाया तक नहीं
और एक गूँगे नारे का प्रतीक बना दिया गया
मुझे अखबार की तरह पढ़ने की कोशिश की गयी
× × ×
तमगे लगाये, क्रोध से काँपते लोगों से घिरा
अन्त में लगता है मैं ही सहज में हँसता रहा ।"[1]

विपिन यथार्थ स्थितियों में निहित व्यंगात्मकता को उसकी विडम्बना एवं विसंगति बोध के साथ बड़े साफ व सहज रूप में व्यक्त करते हैं । कवि की ' सहज ही हँसते रहने ' की यह प्रवृत्ति उनकी कविताओं में बराबर झलकती रहती है । ' कवि का अंत ' में भी कवि ने राजनीतिक - परिदृश्य की व्यंगात्मक व्याख्या के साथ ही स्वयं की विवश स्थिति के प्रति भी ' विदूषकत्व के भाव से युक्त होकर हल्का - फुल्का व्यंग्य किया है -----

" राजा वेन की भुजा मरोड़ी
निकला एक नेता
सुनो सौम्य सूत
भाइयों तथा बहनों करता
नेता में से नेता निकला
पट गया संसार
जिसमें मैं कवि हूँ बेकार ।"

नेताओं की बहुतायत एवं उनकी कूटनीतिक चालों के समक्ष भावुक सत्य - द्रष्टा कवि की स्थिति बेकार सी ही है, यहाँ इसी विडम्बना को संकेतित करता व्यंग्य है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विपिन के राजनीतिक व्यंग्य यद्यपि बहुत अधिक नहीं है पर

---

1. इस धरती पर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 76

उनकी व्याप्ति उनकी बाद तक की कविताओं में है । बाह्य राजनीतिक स्थितियों को अपने अनुभव से जोड़ता हुआ और सहज में हँसता हुआ कवि का व्यंग्य प्रारम्भ से अन्त तक के विकास क्रम में देखा जा सकता है । ' स्वगत - कथन ' की शैली में होने से उनमें कहीं - कहीं मार्मिकता के भी दर्शन होते हैं - यथा ' प्रजातंत्र का गान ' और ' आम आदमी ' में । परन्तु हास्य , विनोद का मिश्रण और सहजानुभूति के रूप में विसंगतियों का नाटकीय मुद्रा में चित्रण कवि की विशिष्टता रही है ।

कुँवर नारायण की व्यंग्य - दृष्टि राजनीतिक - प्रसंगों में अधिक नहीं रमी है । इनके व्यंग्य सामाजिक - आर्थिक असमानता, अमानवीय - परिवेश की भयानकता, धर्म एवं राजनीति सभी विषयों से सम्बद्ध रूप में मिलते हैं, परन्तु राजनीतिक - व्यंग्य व्यवस्था - पक्ष की कमियों, गरीबी या शोषण - तंत्र की तरफ इंगित करते हुए पूरी कविता में परिवेश के प्रति कवि की सहज - दृष्टि बनकर प्रकट हुए हैं । इन कविताओं का विश्लेषण सामाजिक - व्यंग्य के अन्तर्गत ही करना उचित होगा । कुँवर नारायण के काव्य - संग्रह ' चक्रव्यूह ' (1956) ' परिवेश : हम तुम ' (1961) तथा ' अपने - सामने ' (1979) में व्यंग्यशीलता किसी न किसी रूप में मिलती है, जिसमें बड़ी सहजता के साथ तीखी मार करने वाली भाषा - शैली का प्रयोग है । इनके राजनीतिक व्यंग्य में भी मानवीयता, वैचारिक गरिमा एवं सहज मार्मिकता के दर्शन होते हैं । ' काले लोग ' कविता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यंग्य करती हुयी ' रंग - भेद ' की आमनवीय नीति के प्रति प्रश्न उठाती है -----

" सुना है वे भी इन्सान हैं मगर काले हैं
जिन्हें कुछ गोरे जानवरों ने पाले हैं
आदमी की किताब में इनकी भी
एक जात होती है - एक प्रकार होता है
और इनकी असभ्यता से भी ज्यादा खतरनाक सभ्यता में
इनका शिकार होता है ।"[1]

---

1. अपने - सामने - कुँवर नारायण; पृ0 - 95

सातवें दशक के प्रारम्भ में अपनी विशिष्ट पहचान के साथ समकालीन परिदृश्य की असंगतियों, विद्रूपताओं, विरोधाभाषों और विडम्बनाओं को कविता में व्यंगात्मक - तेवर के साथ उद्‌घाटित करने वाले नयी - कविता - दौर के कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय एवं श्रीकांत वर्मा प्रमुख हैं । ये कवि सातवें दशक के प्रारम्भ में एक विशिष्ट भाव - बोध एवं अभिव्यक्ति शैली के साथ काव्य - जगत में अधिक सक्रिय एवं सजग दिखते हैं ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में व्यंग्य की भावना प्रारम्भ से अन्त तक के संग्रहों में अपने विविध रूपों एवं तेवरों में मिलती है । सर्वेश्वर मध्यवर्गीय चेतना के भावुक एवं रूमानी संवेदना से युक्त कवि हैं । प्रथम काव्य - संग्रह ' काठ की घंटियाँ ' से लेकर नवीनतम संग्रह ' 'कोई मेरे साथ चले तक ' कवि के काव्य में विविधता के दर्शन होते हैं । कवि कभी अन्तर्मुखी हो जाता है और कभी बाह्य जगत से अधिक सम्बद्ध होने की चेष्टा करता है या ऐसा करने में सफल भी होता है । ' काठ की घंटिया ' कवि के अन्तर्मन की पीड़ा, निराशा, अवसाद आदि की अभिव्यक्ति है, जिसमें कवि की वेदना कहीं - कहीं सामाजिक - वेदना का भी स्पर्श करती हुयी मिलती है । कवि का भावुक मन जब सामाजिक - दृष्टि अपनाता है, तो बाध्य यथार्थ की असंगतियाँ एवं कटु स्थितियाँ उसे चोट पहुँचाकर व्यंग्य करने के लिए प्रेरित करती है । कवि की पीड़ा उसके व्यंग्यों का भी स्रोत रही है । ' काठ की घंटियाँ ' में कवि की व्यंग्य - दृष्टि सामाजिक - आर्थिक व्यवस्था की विडम्बनाओं एवं अमानवीयता की विभिन्न स्थितियों पर गयी है ।

' बाँस का पुल ' में भी कवि आन्तरिक संवेदना की अभिव्यक्ति देता हुआ सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं के प्रति अपने उद्‌गारों को व्यक्त करता है, जिसमें करूणा का स्वर और कवि की रूमानियत स्पष्ट दिखती है । पर जब वह राजनीतिक परिवेश पर दृष्टि डालता है, तो वह समसामयिक गतिविधियों के प्रति सजग दिखता है और चुलबुली एवं विनोदी भाषा में पैना तथा सटीक व्यंग्य करता है । प्रगति का गीत इस संग्रह की राजनीतिक व्यंग्य - कविता है । इसमें कवि आज़ादी के बाद की राजनीतिक - व्यवस्था के खोखलेपन एवं विकास के आडम्बर तथा दिखावे के प्रति, उपहासात्मक लेकिन तीखा व्यंग्य करता है ----

" चल भाई घोड़े ! अरे निगोड़े / बिना खाये कोड़े / टिक, टिक, टिक / टिक टिक टिक / चल आराम हराम है / राह कठिन है / और कमाना नाम है / बना योजना / दिखा काम ही काम है / × × × × / चल कह गधों से कि वे घोड़े हो जायें / सरपट चलें / × × × × / चल कह बंधु है सभी / शांति और सहयोग दें / हमीं घास क्यों खायें / हमको भी मोहन भोग दें /"[1]

' एक सूनी नाव ' में यद्यपि कवि की दृष्टि निजी वेदनाओं की अभिव्यक्ति करती हुयी अन्तर्मुखी ही रही है, परन्तु राजनीतिक परिवेश के प्रति उसकी दृष्टि तीखे व्यंग्य से युक्त हो उठी है । राजनीतिक गतिविधियों या व्यक्तियों के प्रति व्यंग्य में कवि की भाषा में एक भदेसपन का दर्शन होता है । यद्यपि इस संग्रह की कविताओं में कवि के व्यक्तिगत दर्द की अभिव्यक्ति अधिक है, फिर भी राजनीति के प्रति उसकी जागरूकता एवं आक्रोश का बीज किसी न किसी रूप में प्रकट होकर अपने आगामी विकास की संभावनाओं का संकेत कर देता है । प्रस्तुत संग्रह में ' धन्त मन्त ' कविता राजनीतिक व्यंग्य कविता है, जिसमें नेताओं के साथ ही मध्यवर्गीय मानसिकता के प्रति भी व्यंग्य है । कवि नेता बनने के पहले की स्थिति का उद्घाटन कर नेता के वर्तमान दम्भ, पाखंड, एवं अहंभाव पर पैना व्यंग्य करता है । कवि की भाषा में ग्रामीणता का पुट उसके व्यंग्य की तीखे विनोद तथा उपहास की मुद्रा से युक्त कर देता है । साथ ही इससे लोक - जीवन से कवि की सम्पृक्ति एवं आत्मीयता भी प्रदर्शित होती है । निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

" धन्त मन्त दुई कौड़ी पावा
कौड़ी लै के दिल्ली आवा
दिल्ली हमका चाकर कीन्ह
दिल - दिमाग भूसा भर दीन्ह
× × × ×
नेता बनने कमाएन नाम
नाम दिहिस. संसद में सीट
ओह पर बैठ के कीन्हा बीट
बीट देख छायी खुशियाली
जनता हँसेसि बजाइस ताली ।"[2]

---

1. कवितायें - । (बाँस का पुल) - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 113, 114
2. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 60

इस प्रकार एक सूनी नाव में कवि की दृष्टि बर्हिमुखी न होने से राजनीतिक परिवेश को अभिव्यक्त करने वाली कवितायें नहीं मिलती है । राजनीतिक व्यंग्य की उक्त कविता ही कवि - मानस की राजनीतिक चेतना के बीज रूप में लक्षित की जा सकती है, जिसमें कवि का राजनीति के प्रति व्यंग्य, स्पष्ट, तीखा एवं उपहासपूर्ण है । कवि की व्यंग्य - चेतना इस संग्रह में भी स्वयं के माध्यम से ही बाह्य संसार एवं उसके लोगों को देखती हुयी सामाजिक - दृष्टि से जुड़ी है ।

' गर्म हवायें ' में राजनीतिक चेतना का स्वर अधिक स्पष्ट एवं विस्तृत हुआ है । राजनीतिक - परिवेश की असंगतियों के बोध का अभिव्यक्तिकरण, वेदना, निराशा एवं अवसाद के स्वर में हुआ है । परन्तु कहीं - कहीं राजनीति के प्रति उपहासात्मक तीखा व्यंग्य है जो ग्रामीण भदेस मुद्रा वाली भाषा में कवि के चोट खाये अन्तर्मन की प्रतिहिंसा की अभिव्यक्ति है । ' राग डींग कल्याण ' ऐसी ही व्यंग्य - कविता है । ऐसी कविताओं में हम कवि को नागार्जुन की काव्य भूमि के निकट पाते हैं । जब कवि अपनी कविता में राजनीतिक गतिविधियों से सीधा साक्षात्कार करता है, तो उसका व्यंग्य अधिक, तीखा एवं साहसिक होता है ' धीरे - धीरे ' ' यह खिड़की ' तथा कुछ हद तक ' स्थिति यही है ' में भी कवि का व्यंग्य अवसाद, विवशता एवं निराशा के स्वर को ध्वनित करता है । परन्तु ' छीनने आये हैं वे ' और ' पंचधातु ' में कवि का स्वर साहसिक , निर्भीक एवं व्यंग्य की तीखी धार से युक्त है । इनके विषय में डॉ0 जगदीश गुप्त का मत है कि - " सर्वेश्वर के व्यंग्य में एक कबीरी मुद्रा मिलती है, जो कवि को हर मूल्य पर उद्यत बनाये रखती है । इतना ही नहीं ' छीनने आये हैं वे ' में यह मुद्रा उलटवासियों तक के निकट जा पहुँचती है ।"[1]

' धीरे - धीरे ' शीर्षक कविता में कवि विसंगतियों के बीच स्वयं को रखता हुआ उनपर अवसाद भरी दृष्टि डालता है । इसमें कहीं - कहीं व्यंग्यात्मक एक निष्कर्ष के रूप में, निराशा एवं विवशता के भाव के साथ प्रकट होती है । निम्न पंक्तियाँ देखिये -----

---

1. सर्वेश्वर का रचना - संसार - लेख - ' हवाओं को गरमाता आत्मा का तेजाब ', लेखक - डॉ0 जगदीश गुप्त; पृ0 - 27

विसंगतियों को एक रूपाकार में पकड़ता है और कविता में बिम्बो, प्रतीकों के माध्यम से व्यंग्यात्मक रूप में प्रत्यक्ष कर देता है । ' स्थिति यही है ' कविता में भी कवि ने राजनीतिक चालों को पहचान कर उन्हें निष्कर्ष रूप में व्यंग्य के साथ व्यक्त किया है । कहीं किसी पंक्ति में ग्रामीण मुहावरेदार भाषा की धार भी है । कविता में व्यंग्य किसी - किसी अंश में अधिक प्रभावपूर्ण व्यंग्य है, पर पूरी कविता में व्यंग्यात्मक स्थितियों की एकरूपता एवं व्याख्या से उनका तीव्र प्रभाव कम हुआ है । निम्न पंक्तियों का व्यंग्य तीखा, चुटीला व सटीक है -----

' स्थिति यही है
जो भी आयेगा चला जायेगा
मटकाकर कूल्हा
खाय लिया खिचड़ी
सलाम भैया चूल्हा ।'[1]

' लोहिया के न रहने पर ' कविता में कवि ने लोहिया के विचारों के माध्यम से राजनीतिक विकृतियों को प्रत्यक्ष कर उन पर व्यंग्य किया है ।[2] ' छीनने आये हैं वे ' में कवि के स्वर में निर्भीकता एवं दृढ़ता है । इसमें उद्‌बोधन के स्वर में कवि के व्यंग्यात्मक उद्‌गार हैं । निम्न कवितांश में डॉ0 जगदीश गुप्त कबीर की उलटबासियों का साम्य देखते हैं -----

बहुत बड़ा जंगल था यह
जिसमें हम होकर आये हैं
जहाँ शेर चूहे की
और चूहे शेर की बोली बोलते थे
× × ×
चिड़ियाँ चहकती नहीं गीदड़ों की तरह रोती थीं ।'[3]

---

1. गर्म हवायें - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 18
2. गर्म हवायें - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 23, 26
3. गर्म हवायें - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 26, 27

" धीरे - धीरे क्रान्ति - यात्रा
शव - यात्रा में बदल रही है
सडाँध फैल रही है
नक्शे पर देश के
और आँखों में प्यार के
सीमान्त धुँधले पड़ते जा रहे हैं
और हम चूहों से देख रह हैं ।"[1]

' यह खिड़की ' कविता में भी व्यंग्य कहीं - कहीं उभर कर प्रकट हुआ है । इसमें भी कवि का व्यंग्य कवि के संवेगों की प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति के रूप में है । कवि व्यंग्यात्मक राजनीतिक - स्थितियों को बिम्बों में व्यक्त करता है -----

' पचास करोड़ आदमी
खाली पेट बजाते
ठठरियाँ खड़काते
हर क्षण मेरे सामने से गुज़र जाते हैं
झाँकियाँ निकलती हैं
ढोंग और विश्वासघात की
× × ×
लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाये
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाये ।'[2]

उपरोक्त कवितांश का व्यंग्य निर्वैयक्तिक मुद्रा ग्रहण करता दीखता है, परन्तु पूरी कविता से जोड़कर देखने पर यह कवि की भावुक संवेदना की निजता से जुड़ी हुयी है । इस कविता के व्यंग्य से राजनीतिक परिवेश की विडम्बना को कवि बड़ी तीखी धार के साथ प्रकट करता है । वह राजनीतिक परिदृश्य की विसंगतियों के ब्यौरे में नहीं जाता है, उसकी

---

1. गर्म हवाएँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 12
2. गर्म हवाएँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 15

इसमें सत्ता प्राप्त कर लेने से अयोग्य एवं कायर के भी समर्थ तथा आक्रामक (शेर) बन जाने और शक्तिमान व्यक्ति के चूहे जैसा दयनीय बन जाने की स्थिति का विरोधाभाष प्रतीकों द्वारा व्यक्त है । चिड़ियों के चहकने के बजाय गीदड़ों की तरह रोने द्वारा जनता की दयनीय स्थिति की सटीक व्यंजना की गयी है । ' पंचधातु ' कविता में कवि गाँधी की दुहाई देकर अपना उल्लू सीधा करने वाले जन नायकों के प्रति बड़ा पैना व्यंग्य करता है । कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -----

" और तुम्हारी लाठी ? / उसी को टेक कर चल रही है / एक बिगड़ी दिमाग डगमगाने वाली सत्ता / और तुम्हारा चश्मा ? / इतने दिनों हर - कोई / उसे ही लगाकर / दिखाता रहा है अंधों को करिश्मा / × × × × / अच्छा हुआ / तुम चले गये / अन्यथा तुम्हारे तन का / ये जन नायक क्या करते / पता नहीं /"[1]

' राग डींग कल्याण ' में कवि की मुद्रा विनोदपूर्ण है, परन्तु व्यंग्य अत्यंत तीखा उपहास करता हुआ, ब्याज - स्तुति की मुद्रा में है । इसमें भी कवि के व्यंग्य में भदेसपन को लक्षित किया जा सकता है । इसमें भैंस को नेता का प्रतीक बनाकर उसके शोषण तथा भ्रष्ट आचरण पर व्यंग्य है ।

' तेरी भैंस है प्रज्ञा पारमिता
उसने मेरी खेती खाई थी
तेरी भैंस है जनता का प्रतिनिधि
उसने मेरी छान गिराई थी
× × ×
तेरी भैंस के आगे बीन बजी
तेरी भैंस के आगे शहनाई
तेरी भैंस घुस गयी संसद में
सब संविधान चटकर आीय ।'[2]

---

1. गर्म हवाएँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 30, 31
2. गर्म हवाएँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 40, 41

उपरोक्त विश्लेषण से इतना स्पष्ट हो जाता है कि कवि की राजनीतिक - चेतना का बीज ' गर्म हवायें ' संग्रह में आकर कहीं कवि के आहत और विवश मन के अवसाद के स्वर में व्यंग्य के मिले - जुले रूप में तथा कहीं निर्मम , तीखे और उपहास युक्त व्यंगात्मक अभिव्यक्ति के रूप में व्यक्त हुआ है ।

' कुआनो नदी ' (1973) में कवि की अभिव्यक्ति में कुछ तटस्थता के दर्शन तो होते हैं , पर कवि की रूमानी संवेदना इसमें भी जहाँ - तहाँ झलकती रहती है । इसमें कवि का भावुकता से मुक्ति का प्रयास है और प्रतीकात्मक ढंग से राजनीतिक विसंगतियों को सामाजिक आर्थिक - सन्दर्भों में ' उभारने की कवि की चेष्टा उसकी अपनी विशिष्टताओं एवं सीमाओं के साथ दृष्टिगत होती है । कवि की ' व्यंगात्मक कवितायें ' वस्तुपरक ढंग से प्रतीकों के माध्यम से राजनीतिक - सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियों के रूप में व्यक्त हुई हैं ।'कुआनो नदी ' खंडों में विभक्त है और तीनों में इसके प्रतीकार्थ अलग - अलग स्थितियों को व्याख्यापित करते हैं । ' कुआनो नदी ' प्रथम खण्ड में ग्राम्य - संस्कृति की अपरिवर्तनीय त्रासद स्थिति का प्रतीक बनकर आती है । दूसरे खण्ड में वह नगर - संस्कृति की राजनीतिक गतिविधियों से त्रस्त शोषित, पीड़ित मानवता की प्रतीक है । तीसरे खण्ड में कवि ने ' कुआनो नदी ' के प्रतीकार्थ में क्रान्ति का स्वर भरा है । इस प्रकार कुआनों नदी की कविताओं में कवि की राजनीतिक - सामाजिक चेतना का विस्तार दृष्टिगत होता है । कवि ने ग्राम्य एवं नगरीय जीवन - दोनों में व्यवस्था - पक्ष की कमियों एवं विकृतियों के शिकार शोषित, गरीब, मध्यवर्ग्रीय लोगों के प्रति एक मार्मिक - दृष्टि एवं सुधार का आशावाद लेकर इस संग्रह की कवितायें लिखी हैं । ' कुआनों नदी ' के प्रथम खंड में निम्न अंश में कवि की व्यंग्य - दृष्टि सामाजिक - आर्थिक चेतना से सम्बद्ध होकर राजनीतिक परिपार्श्व पर गई है, जिसमें कवि की व्यक्तिगत मुद्रा में स्थिति का वस्तुगत विश्लेषण है -----

' नाखून दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं
और जमीन उसी अनुपात में बंजर होती जा रही है
× × ×
अभी एक आदमी बहता हुआ चला जायेगा

जिसकी लाश पर कौवे बैठे होंगे
जिन्हें मैं अक्सर दिल्ली की इन सड़कों पर उड़ता हुआ देखता हूँ
शायद ये हंस हों '[1]

द्वितीय खण्ड में कवि लोगों के गुस्से की विडम्बनामय परिणति को व्यक्त करता हुआ क्रान्ति - चेतना की असफलता की ओर व्यंग्यात्मक इंगित किया है ।[2] इन खण्डों में कवि का भावुक स्वर भी स्पष्ट है । राजनीतिक असंगतियों को आर्थिक - संदर्भ में कवि ने ' गरीबी हटाओ ' कविता में बिम्बो एवं प्रतीकों में व्यक्त कर उनके व्यंग्य एवं विडम्बना को प्रत्यक्ष किया है । इस लम्बी कविता में अलग - अलग प्रतीकों में कवि ने एक ही स्थिति - गरीबी हटाने की राजनीतिक - प्रक्रिया के स्वाँग - को कई प्रकार से व्यक्त किया है । इसमें कवि ने चमत्कृत करने वाले प्रतीक एवं बिम्बों की सहायता से राजनीतिक प्रयासों की असंगतियों, विरोधाभाषों एवं विसंगतियों को सक्षमता से उभारा है । गरीबी हटाने के लिए सरकार का प्रयत्न मात्र एक नारा बनकर रह गया है । गरीबी दूर करने के लिए सरकार द्वारा उठाये गये कदम कितने खोखले और भुलावे में डालने वाले हैं, इसका चित्रण व्यंगात्मक रूप में कवि ने कई प्रकार से किया है । एक उदाहरण दृष्टव्य है -----

" गरीबी हटाओ सुनते ही
वे एक बहुत बड़ी रोटी बेलने लगे
काफी बेल लेने के बाद
उन्हें पता चला तवे छोटे हैं
और चूल्हे नदारद
फिर वे हाथ पर हाथ रख कर बैठ गये
जब आटे में फफूँद लग गयी
तब वे उस फंफूद से दवाइयाँ तैयार करने लगे
जिनसे भूख का इलाज हो सके ।"

यहाँ कवि ने रोटी बेलने क प्रतीक से सरकार द्वारा गरीबी दूर करने के नाम पर बनायी जाने वाली बड़ी - बड़ी योजनाओं की असलियत को उजागर किया है । सरकार दिखाने

---

1. कुआनो नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 20
2. कुआनो नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 34

के लिए बड़ी - बड़ी योजनायें तो बनाती है, पर उन्हें समुचित तरीके से क्रियान्वित नहीं कर पाती, इस तत्थ्य की तरफ सटीक एवं तीखा व्यंगात्मक संकेत है । ' हम ले चलेंगे ' कविता में कवि राजनीतिक स्थिति के प्रति अपने एक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है, जिसमें तुलनात्मकता को व्यंग्य का माध्यम बनाया गया है ।[1] ' बाँस - गाँव ' में कवि ने गाँव की गरीबी के समानान्तर राजनीतिक दावपेंचों एवं लोकतंत्र की विडम्बना पर बड़ी मार्मिकता से व्यंग्य किया है । इसमें भी प्रतीकों एवं बिम्बों में बाँधकर ही राजनीतिक - परिवेश को और उसकी व्यंग्यात्मक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है -----

" बाँसगाँव एक पत्थर है
दानवीर सेठ लोकतंत्र का
जो बंद प्याऊ पर लगा है
जिससे पीठ टिकाये,
इस जलती धूप में
आज भी खड़ी है मेरे साथ हाँफती गरीबी ।"[2]

स्पष्ट है कि ' कुआनों नदी ' में कवि की राजनीतिक चेतना सामयिक हलचलों तथा अमानवीय स्थितियों की पीड़ा से भी युक्त है । इसमें कवि की व्यंग्य - मुद्रा तटस्थ है ।

' जंगल का दर्द ' (1976) में कवि का व्यंग्य उद्‌बोधन के स्वर में प्रतीकार्थ द्वारा व्यंजित हुआ है । ' भेड़िया ' , ' कुत्ता ', ' काला तेंदुआ ', ' सर्प : चार स्थितियाँ ' इत्यादि कविताओं में कवि के व्यंग्य के आक्रोश एवं उपहासात्मक - प्रवृत्ति को संयमित होकर प्रतीकात्मक रूप में ढलते देखा जा सकता है । ये कवितायें बल्कि वे कवि के मानस में निर्मित एक बिम्बात्मक एवं प्रतीकात्मक जगत को समकालीन राजनीति से सम्बद्ध करने की चेष्टा जान पड़ती है । इस संग्रह की कविताओं की भाषा - मुद्रा एवं कवि की मुद्रा दोनों में सहसा परिवर्तन आया है । पीड़ा एवं विषाद के स्वर उद्‌बोधन एवं साहसिकता में परिवर्तित हो गये हैं । परन्तु यह क्रान्ति एवं उद्‌बोधन परिवेश की विसंगतियों के जटिल बोध से उत्पन्न तनाव से युक्त नहीं हैं । इनका संसार कवि का मानस - संसार अधिक लगता है,प्रत्यक्ष संसार कम ।

---

1. कुआनो नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 53, 54 (1970)
2. कुआनों नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 59

सरलतम ढंग से शोषक - सत्ता के प्रति जन - मानस को उद्बोधित करना कवि का अभिप्राय जान पड़ता है । इन कविताओं का व्यंग्य क्रान्ति का स्वर लिये हुए तो हैं, पर उसमें क्रान्तिकारी स्थितियों के प्रति कवि की निहित बेचैनी, क्षोभ एवं आक्रोश का ताप नहीं दिखाई पड़ता । कवि जैसे एक प्रतीक को चुनकर उसके अनुकूल स्थितियों का वर्णन करता प्रतीत होता है । जंगल से ही चुने गये - काला तेंदुआ, भेड़िया , साँप या कुत्ता के उपलब्ध प्रतीकों को सामने रखकर कवि तदनुरूप उद्बोधनपूर्ण कविता की रचना बिम्बों में करता है । उद्बोधन के स्वर में कवि का अहंभाव मुखरित है जिसमें वह अपनी उपस्थिति का बराबर अहसास दिलाता प्रतीत होता है । डॉ० रमाकांत शर्मा की निम्न पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में उद्धरित की जा सकती है कि - " हालाँकि खतरनाक जानवरों के नामों की भरमार इस संग्रह में मिल जायेगी । काला तेंदुआ, भेड़िया , सांप, कुत्ता आदि खिलौने से लगते हैं । शोषक वर्ग के भयानक उत्पीड़न को कितने लचर ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।"[1]

उक्त कविताओं के सन्दर्भ में विजय कुमार का मत भी महत्वपूर्ण है कि ' सत्य क्योंकि कविता के भीतर से नहीं उभरता इसलिए कविता का ढाँचा भी एकदम सपाट है । यहाँ कवि वस्तु - सत्य की जटिलता में जाने की बजाय एक बने हुए मानसिक सत्य को मात्र आकर्षक उपमाओं , बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से सजाना भर चाहता है ।'[2] फिर भी इस संग्रह में कवि एक नये भाव - संसार की रचना में प्रयासरत दिखता है । इसके व्यंग्य का प्रभाव भी, तीखे प्रतीकों एवं बिम्बों के बावजूद, तिलमिलाहट से अधिक चमत्कृति उत्पन्न करता है । कहीं - कहीं कवि राजनीतिक दाँव - पेंच की स्थिति को प्रत्यक्ष कर उस पर प्रच्छन्न व्यंग्य करता है । निम्न कवितांश में कवि सत्ता - पक्ष की नीतियों तथा कार्य प्रणालियों को इस ढंग से सामने रख देता है कि उसकी विडम्बनामय स्थिति की व्यंग्यात्मकता स्पष्ट हो जाती है -----

---

1. ' वीणा ' - सितम्बर 1980, अंक - 9 - लेख : शब्दों की युद्ध - भूमि : जंगल का दर्द की कवितायें' लेखक - डॉ० रमाकांत - पृ० - (21,22)
2. साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशायें - विजय कुमार; पृ० - 21।

' भूखा रखना, टुकड़ा फेंकना
ताकतवर में दर्द जगाना
और कमजोर में संतोष
और जब वे
इसके इतने आदी हो गये
कि कुछ और सोच पाना
उनके लिए असंभव हो गया
तब मैं उन्हें पिजड़े से निकाल दिया ।'[1]

' कुत्ता ' कविता में व्यवस्था - पक्ष की टुकड़खोरी एवं चाटुकारिता की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है । ' काला तेंदुआ ' में सत्ता - पक्ष की शोषक - वृत्ति को प्रतीकात्मक बिम्बों द्वारा बड़े सपाट ढंग से व्यक्त किया गया है । इसमें यथार्थ बोध द्वारा व्यंग्य - बोध कराया गया है कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

चट्टानों पर सो रहा है काला तेंदुआ
× × ×
चट्टानों पर झिंझोड़ रहा है अपना शिकार
काला तेंदुआ
चट्टाने - चट्टाने नहीं रहीं
तेंदुओं में बदल गयी हैं ।

इन सभी कविताओं में प्रतीकों के चुनाव में ही कवि का व्यंग्यात्मक आक्रोश लक्षित किया जा सकता है । कुल मिलाकर ' जंगल का दर्द ' संग्रह में कवि की अभिव्यक्ति क्रान्ति - चेतना से युक्त दिखती है, पर उसमें यथार्थ की त्रासद, क्रूर एवं अमानवीय स्थितियों के प्रति कवि का आक्रोश तथा घृणा मात्र प्रतीकों के चयन तथा उनके सफल निर्वाह तक सीमित जान पड़ता है।

कवि के अगले दो संग्रहों ' खूँटियों पर टँगे लोग ' (1982) तथा ' कोई मेरे साथ चले ' (1985) की कवितायें क्रान्ति धर्मी तथा अधिक सपाट हैं । अब कवि की चेतना

---

1. जंगल का दर्द - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना;

राजनीतिक परिवेश के प्रति अधिक जागरूक होकर आक्रोश प्रेरित तीखी भाषा के प्रयोग में प्रवृत्त दिखती है । व्यंग्यपूर्ण कविताओं में लोक धुनों का प्रयोग भी किया गया है । ये कवितायें समसामयिक राजनीतिक गतिविधियों के प्रति कवि की गहरी संवेदनशीलता का परिचय देती हैं । ' पेड़ - प्रेम ' कविता में प्रतीकात्मक शैली में व्यंग्य है, पर इसमें कवि की निजी संवेदना की उष्मा मौजूद है । इसमें कवि की मुद्रा व्यंग्यकार की ही है, शब्द - शिल्पी की नहीं । यहाँ भारी - भरकम प्रतीकों के भार से कवि मुक्त दिखता है । देश की गरीबी की अवस्था में सरकार के वृक्ष - प्रेम की खिल्ली उड़ाता कवि उसकी विडम्बना को भी प्रत्यक्ष कर देता है-

> ' पक्षियों , गाओ ! / उदास क्यों होते हो कि जबान काट ली गयी है / पंख तोड़ दिये गये हैं / यह तो देखो कि तुम्हारा और तुम्हारे घर का रंग कितना निखरा है/ × × × / फल का रोना वह नहीं रोता है / जो पेड़ को प्यार करता है / फल से छाया बड़ी है / इतना तो समझ / यह पेड़ - प्रेम की घड़ी है /"[1]

' रंग तरबूजे का ' तथा ' देश - गान ' में कवि का व्यंग्य और भी चुटीला, तीखा तथा उपहासात्मक हो गया है । लोक - धुन का प्रयोग पहली कविता में उसे एक अलग नाटकीय मुद्रा प्रदान करती है, तो दूसरी में ग़जल जैसी शैली का प्रयोग कवि के व्यंग्य को एक विनोदात्मकरूप दे देता है । कुछ कवितांश उद्धृत किये जा रहे हैं -----

> " रो - गाकर आज़ादी लाये
> पहन लँगोटी खादी,
> चार कदम भी चल नहीं पाये,
> इतनी चढ़ गयी बादी
> × × ×
> अमरीका में डांस करें
> और रूस में मारें कुश्ती
> देखों अपने नेताओं की यारों धींगामुश्ती
> रंग खरबूजे
> का महक तरबूजे की ।"[2]

(रंग तरबूजे का)

---

1. खूँटियों पर टैगेलोग - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 42, 43
2. खूँटियों पर टैगेलोग - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 71, 72

इसी प्रकार देशगान शीर्षक कविता में स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थितियों तथा भारत वासियों की मानासिकता पर व्यंग्य किया गया है । इसमें विरोधाभासपूर्ण कथन तथा देश की विसंगतियों के गान को देशगान के रूप में व्यक्त करने से व्यंग्यात्मक प्रभाव अत्यन्त तीखा हो गया है -----

हैं सभी माहिर / उगाने में हथेली पर फसल
और हथेली डोलती दर - दर बनी दरवेश है
खूँटियों पर ही ढँगा / रह जायेगा क्या आदमी ?
सोचता उसका नहीं, यह खूँटियों का दोष है ।[1]

(देश - गान)

ऊपर निर्दिष्ट कवितायें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सन्दर्भों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार की कविताएँ हैं ।

' कोई मेरे साथ चले ' संग्रह की कविता में कवि के अन्य संग्रहों की कविताओं की तुलना में राजनीतिक सामाजिक चेतना एवं व्यंग्यात्मक तेवर के कारण अधिक सार्थक एवं सशक्त कवितायें हैं । इस संग्रह की कुछ कविताओं में भी प्रतीकों के सपाट प्रयोग द्वारा राजनीति के यथार्थ का व्यंग्यात्मक चित्रण है, परन्तु इनमें कवि की क्रान्ति - भावना भी मिली हुयी है । लोकतंत्र के दुश्मनों से आम जनता को सावधान करते हुए कवि की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति उद्बोधन के साथ निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है -----

' लोकतंत्र अभी पालने में है
और लकड़बग्घे अंधेरे जंगलों
और बर्फीली घाटियों से
गर्म खून की तलाश में निकल आये हैं
× × ×
इन लोगों से सावधान रहो
ये लकड़बग्घे से
मिले हुए झूठे लोग हैं ।'[2]

---

1. खूँटियों पर टैंगेलोग - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ० - 73
2. कोई मेरे साथ चले - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ० - 69, 70

' कल और आज ' तथा ' लोकतंत्र का गाना ' कविताओं में समकालीन राजनीतिक यथार्थ को उसकी समस्त विरूपताओं तथा अन्तर्विरोधों के साथ प्रकट कर दिया गया है । ' कल और आज ' में आज की राजनीतिक विकृतियों को कल की तुलना में प्रस्तुत कर कवि ने उसके चरम सीमा पर पहुँचे हुए रूप को अत्यन्त तीखे व्यंग्यात्मक प्रभाव के साथ सामने रख दिया है इस कविता में कवि की ' कबीरी मुद्रा ' स्पष्ट है -----

' पहले दाल में काला था कुछ
अब काले में दाल है
फिर भी दुनिया जीम रही है
हमको यही मलाल है
पहले राज की पुलिस थी भैया
आज पुलिस का राज है
जितना खुजाओ उतना बाढ़े
यह कुकुर की खाज है ।'[1]

यहाँ व्यवस्था की विकृतियों की भयंकरता एवं अतिशयता को बड़ी प्रभावपूर्ण शैली में उजागर कर उन पर चुभता हुआ व्यंग्य भी किया गया है । अंत की पंक्तियों में ' कुकुर की खाज ' के प्रयोग द्वारा कवि ने समसामयिक शासन - व्यवस्था की विरूपता को ही नहीं उभारा है, बल्कि अपने मन की वितृष्णा को भी अभिव्यक्त किया है ।

' लोकतंत्र का गाना ' में कवि ने सत्ता - पक्ष पर बड़ा तीव्र प्रहार करते हुए भारतीय लोकतंत्र की वास्तविकता को प्रत्यक्ष कर दिया है । कवि ने समकालीन शासन - व्यवस्था के मर्मस्थल पर चोट, उनका उपहास करते हुए, की है । यह कविता भी कबीर की अटपनी बानी जैसी चमत्कृति उत्पन्न करती है । इसे कबीर की उलटवासियों के करीब रखा जा सकता है -----

' ऊपर पटरी नीचे पहिया / फिर भी सत्ता मद में चूर
उल्टी गाड़ी चले जा रहे / काले मुंह वाले लंगूर

---

1. कोई मेरे साथ चले - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 86

बिन पेंदी की नाव में बैठे / थामे स्वारथ की पतवार
सबके पेट में पानी भर गया / देश का बेड़ा हो गया पार
लूटपाट का बाग लगाया / बेल निचोड़े समझकर आम
दिल के पेंच पड़ गये ढीले / अक्ल का चक्का हो गया जाम
दुर्योधन सब शान से बैठे / हाथ में लबनी मुंह में पान /"[1]

इन पंक्तियों में भाषा सरल, अभिव्यक्ति सहज किन्तु व्यंग्य की मार बहुत गहरी है। उल्टी गाड़ी चलाना, बिन पेंदी की नाव में बैठना , बेल को आम समझ कर निचोड़ना, अक्ल का चक्का जाम होना जैसी उपमाओं के प्रयोग द्वारा कवि शासन - व्यवस्था में व्याप्त बेइमानी, दुर्बुद्धि, दुर्नीति, बुद्धिहीनता, स्वार्थपरता को प्रत्यक्ष करता है । काला मुंह वाला लंगूर अधिक खतरनाक होता है, अतः इसका प्रयोग राजनेताओं व शासकों के लिए न केवल उपहासपूर्ण है, वरन् अत्यन्त तीक्ष्ण तथा सटीक भी है । अंतिम पंक्तियों में पौराणिक प्रतीकों का भी बड़ा सार्थक प्रयोग है ।

सर्वेश्वर के काव्य में उतार चढ़ाव की जो स्थिति है उसका प्रभाव उनकी व्यंग्यात्मक कविताओं पर भी प्रायः पड़ा है । परन्तु राजनीतिक यथार्थ - स्थितियों पर कवि की कुछ कवितायें प्रारम्भिक दौर में भी तीखे, साहसिक तथा चुटीले व्यंग्य से युक्त हैं । इनकी भाषा लोक जीवन के निकट हैं । उसमें व्यंग्य की ठेठ ग्रामीण मुद्रा में विनोद का पुट भी है । ऐसी कविताओं का विकास उनकी बाद की रचनाओं में अत्यंत तीखे, चटपटे, सटीक तथा अर्थपूर्ण व्यंग्य के रूप में हुआ है । कवि राजनीतिक यथार्थ को नये - नये भाव - बोध तथा रचना - कौशल के साथ व्यक्त करने में भी प्रयासरत रहा है, पर वह उसकी सहज स्वाभाविक मुद्रा नहीं है । क्रान्ति - चेतना तथा प्रतीक - योजना का कहीं - कहीं आरोपण किया गया है, जिसमें कवि की रागात्मकता तथा संवेदनशीला के आवेग और स्वतः स्फूर्त ' प्रवाह ' का अभाव है । परन्तु जहाँ कवि राजनीतिक यथार्थ से आत्मीय साक्षात्कार कर उसकी त्रासद, असंगत तथा विकृत व्यवस्था को व्यक्त करता है, वहाँ उसका व्यंग्य अत्यंत प्रभावपूर्ण तथा उत्कृष्ट है । जहाँ भी यथार्थ - बोध वास्तविक एवं गहरा तथा अभिव्यक्ति सहज है, वहाँ कवि बेजोड़ व्यंग्यकार के रूप में सामने आया है ।

---

1. कोई मेरे साथ चले - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 88

रघुवीर सहाय ने नयी कविता के भाव - बोध एवं अभिव्यक्ति शैली को एक सर्वथा नयी दिशा दी है । कविता को भाषा की सहजता के साथ समसामयिक यथार्थ से जोड़कर उसमें निहित विडम्बना के व्यंग्य को सूक्ष्म स्तरों पर उद्‌घाटित कर देना रघुवीर सहाय की विशेषता है । कवि की चेतना मूलतः सामाजिक स्थितियों से सम्बद्ध रही है, इसीलिए उसके राजनीति सम्बंधी व्यंग्य का आधार प्रायः सामाजिक असमानता ही रहा है । राजनीति को कविता से सम्बद्ध करने के विषय में स्वयं कवि की टिप्पड़ी है कि - " मैं जो कुछ भी लिखता हूँ, वह समाज को बदलने के लिए पहले से प्रतिश्रुत होकर नहीं लिखता, अपने से प्रतिश्रुत होकर लिखता हूँ, इसलिए मैं किसी भी आलोचक को यह अधिकार नहीं दे सकता कि वह मेरी कविता की आलोचना राजनीतिक दृष्टि से करे ।"[1]

रघुवीर सहाय की कविता में सत्ता - पक्ष का शोषक रूप, अमानवीय स्थितियाँ, नेताओं की ढोंगी गतिविधियाँ, इन सभी को कवि के अपने निजी अनुभव - खण्डों के रूप में व्यक्त किया गया है । सुविधा के लिए ही उन्हें राजनीतिक खाने में वर्गीकृत किया गया है, पर वे मात्र राजनीतिक चेतना की कवितायें नहीं हैं । उनमें पीड़ित शोषित मानवता से बहुत गहरे स्तर पर तादात्म्य स्थापित किया गया है । रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना परवर्ती काल की कविताओं में अधिकाधिक मानवीय सन्दर्भों से युक्त होती गई है । सहजता एवं सरलता कवि की अभिव्यक्ति की विशिष्टता है, जिसमें कवि की परिपक्व समझ व्यंग्यात्मक स्थितियों को उनके सभी कोणों से पकड़ कर बड़ी प्रभावशाली बेधकता के साथ प्रत्यक्ष कर देती है ।

' आत्महत्या के विरूद्ध ' संग्रह में कवि की राजनीतिक चेतना एवं तद्‌जन्य व्यंग्य अपने समृद्ध एवं अधिक प्रत्यक्ष रूप में वर्तमान है । इसमें कवि ने नेताओं के विदूषकत्व को उभारते हुए तथा उनकी शारीरिक मुद्राओं और क्रियाओं के पीछे छिपे मन्तव्यों की पहचान करते हुए व्यंग्य किया है । ' नयी हँसी ' कविता में व्यवस्था - पक्ष की जातीयता की प्रवृत्ति पर व्यंग्य है, जिसमें सहजता से विडम्बना को प्रत्यक्ष किया गया है -----

---

1. 'कविता और राजनीति' - रघुवीर सहाय; आलोचना - जुलाई,सित0' 68; पृ0 - 24

' जब मिलो तिवारी से हँसो - क्योंकि तुम भी तिवारी हो
जब मिलो शर्मा से हँसो - क्योंकि वह भी तिवारी है
जब मिलो मुसद्दी से खिसियाओ, जातपाँत से परे
रिश्ता अटूट है
राष्ट्रीय झेंप का ।'[1]

' मेरा प्रतिनिधि ', ' कोई एक और मतदाता ', ' अधिनायक ' जैसी कवितायें राजनीतिक विडम्बना को सामाजिक - आर्थिक शोषण की पृष्ठभूमि पर या उसके समानान्तर उभारती हैं । ' कोई एक और मतदाता ' कविता का निम्न अंश द्रष्टव्य है -----

' एक दिन आखिरकार दुपहर में छुरे से मारा गया खुशीराम
वह अशुभ दिन था
कोई राजनीति का मसला
देश में उस वक्त पेश नहीं था
खुशीराम बन नहीं
सका कत्ल का मसला, बदचलनी का बना ।'[2]

राजनीतिक दृश्यों में सत्ता - पक्ष को विदूषक रूप में प्रस्तुत करता कवि उपहासमूलक भाषा के प्रयोग द्वारा ही व्यंग्यात्मक रूख को स्पष्ट कर देता है । निम्न कवितांश में कवि ने सत्ता - पक्ष के तमाम लोगों की धूर्त व चालाक हरकतों की सूक्ष्म पकड़ के द्वारा उन पर तीखे प्रभावयुक्त व्यंग्य किया है -----

' सुनो वहाँ कहता है
मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करूण - कथा
हँसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिंचियाकर
कहती है
आर्शव है, अशोभन है, मित्थ्या है ।'[3]

---

1. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 13
2. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 69
3. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 17

यहाँ ' अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर ' सभा का ' तोंद मटका ठठाकर हँसना सत्तापक्ष की अमानवीयता पर सटीक एवं तीखा व्यंग्य है । पुनः अपने राजनीतिक लाभ के लिए रंग बदल लेने का चित्रण सत्ता पक्ष की धूर्तता पर बड़े प्रच्छन्न किन्तु पैने वार के रूप में है । ' आत्महत्या के विरूद्ध ' कविता के निम्न अंश में भी कवि मंत्री को मटकते हुए मंच पर चढ़ता देख उसे जनता की छाती पर चढ़ने के रूप में व्यक्त कर उसकी सारी असलियत को सामने रख देता है -----

' नगर निगम ने त्योहार जो मनाया तो जनसभा की
मंथर मटकता मंत्री मुसद्दीलाल महंत मंच पर चढ़ा
छाती पर जनता की ।'[1]

आज राजनीति ने मनुष्यत्व को कितना पदाक्रांत कर रखा है, इसका यथार्थ - बोध कवि के कातर स्वर में मार्मिक व्यंग्य के तेवर में उभरा है । निम्न पंक्तियों में कवि का व्यंग्य शिक्षा - क्षेत्र में भी राजनीतिक दलबंदी की वास्तविकता को नग्न करते हुए मर्मस्पर्शी बन पड़ा है -----

' अध्यापक याद करो किसके आदमी हो तुम
याद करो विद्यार्थी तुम्हें आदमी से
एक दर्जा नीचे
किसका आदमी बनना है ।'[2]

कवि राजनीतिक लोगों के केवल भावों, शारीरिक मुद्राओं तथा क्रियाओं द्वारा सांकेतिक व्यंग्य करता है । इससे समूचा राजनीतिक परिदृश्य नाटकीय ढंग से व्यंग्यास्पद रूप में आँखों के सामने आ जाता है । निम्न कविता द्रष्टव्य है -----

---

1. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 19, 20
2. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 23

' घर के भीतर एक थुलथुल राजनीतिक देह में
जो भी गतिशील है अपनी ओर से जीने के लिए लड़ता है
अपराधी से आते हैं राज्यपाल, मुख्यमंत्री, विधायक
बख्शे हुए से जाते हैं ।'[1] (लोकतंत्रीय मृत्यु)

यहाँ कवि ने ' राजनीतिक देह ' की पहचान ' थुलथुल ' रूप में कर उसके ऐश्वर्य एवं सुख - भोग की तरफ व्यंग्यात्मक संकेत किया है । इसी प्रकार उस देह में ' जो भी गतिशील है ' वह ' जीने के लिए लड़ता ' में भी कवि का व्यंगय मात्र सत्ता - मोह तथा सत्ता - प्राप्ति के लिए लड़ने की प्रवृत्ति को उद्घाटित करते हुए बड़ा अर्थपूर्ण तथा गहरा हो गया है । ' फिल्म के बाद चीख ' कविता में भी शारीरिक मुद्राओं तथा चेष्टाओं के वीभत्स बिम्बों द्वारा कवि नें वितृष्णा के स्वर में व्यंग्य किया है -----

' पाँच दल आपस में समझौता किये हुए
बड़े - बड़े लटके हुए स्तन हिलाते हुए
जाँघ ठोककर बहुत दूर देश की विदेश - नीति - पर
हाँकते - डौंकतें मुंह नोच लेते हैं
अपने मतदाता का ।'[2]

यहाँ भी शारीरिक मुद्राओं तथा चेष्टाओं से दल के लोगों का विदूषकत्व उभारा गया है । पाँच दलों का आपस में समझौता किये होना तथा ' दूर देश विदेश - नीति ' पर इतना हाँकना - डौंकना आज के राजनीतिक - परिदृश्य की विडम्बना एवं विसंगति के प्रति बड़ा गहरा , सूक्ष्म तथा तीखा व्यंग्न बन गया है । एक अन्य कविता में राजनीतिक विडम्बना के प्रति व्यंग्यात्मक वितृष्णा व्यक्त करता हुआ कवि संकट की स्थिति को प्रतीकात्मक बिम्बों द्वारा प्रस्तुत करता है । इसमें प्रतीक व बिम्ब ही व्यंग्यात्मक हैं -----

' हर संकट भारत में एक गाय
होता है
ठीक समय ठीकबहस नहीं कर सकती है

----

1. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 23
2. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 77

राजनीति
बाद में जहाँ कहीं भी शुरू करो
बीच सड़क पर गोबर कर देता है विचार ।'[1]

कई कविताओं में राजनीतिक विडम्बना आम आदमी की करूण - स्थिति से सम्बद्ध होकर व्यक्त हुई है । लोकतंत्र की विडम्बना पर तीखा एवं मर्मस्पर्शी व्यंग्य निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -----

' पूरब पश्चिम से आते हैं
नंगे बूचे नर - कंकाल
सिंहासन पर बैठा उनके
तमगे कौन लगाता है
कौन - कौन वह जन - गण - मन
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन जिसका
बाजा रोज बजाता है ।'[2]

विडम्बना यह है कि जो जनता सिंहासन पर बैठाती है वह विपन्न हैं और सत्ता - पक्ष ' महाबली ' बन जाता है । कवि ने उसके आतंक से डरे हुए बेमन से बाजा बजाते आम आदमी की दयनीय विवश स्थिति द्वारा लोकतांत्रिक व्यवस्था की विसंगतियों को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त कर उस पर गहरा वार किया है । ' आत्महत्या के विरूद्ध ' संग्रह में कवि ने व्यवस्था - पक्ष से सम्बद्ध लोगों के शोषण, अवसरवादिता, षडयंत्र आदि को अनावृत्त करने के साथ ही उनके कांइयाँपन को उन्हीं की मुद्राओं तथा चेष्टाओं द्वारा उजागर कर दिया है । इससे व्यंग्य में एक तरफ जहाँ नाटकीयता के समावेश से मनोरंजक मुद्रा आयी है, वहीं वह अत्यंत धारदार होकर गहराई में उतरकर वार भी करता है । शोषण तंत्र में पिसता मानव भी प्रच्छन्न रूप में इन कविताओं में विद्यमान है ।

---

1. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 84, 85
2. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 49

' हँसों - हँसो जल्दी हँसो ' इनका तीसरा काव्य - संग्रह है, जिसमें राजनीतक - विसंगतियों के प्रति कवि की मुद्रा में पिछली कविताओं जैसी आक्रामकता या भाषा का अटपटा एवं विदूषकत्व पूर्ण प्रयोग - प्रायः दृष्टिगत नहीं होता । इसमें आम आदमी के जीवन के यथार्थ को किसी खास घटना या दृश्य में उभारने एवं उसे मार्मिक ढंग से व्यंजित करने में कवि की दृष्टि अधिक रमी है । परन्तु जिन कविताओं का सम्बंध राजनीतिक गतिविधियों या सत्ता - पक्ष से है, उनमें ' व्यंग्यात्मकता बड़े व्यंजक - रूप में उपस्थित है । ' आपकी हँसी ' में तो कवि के पिछले संग्रह की ' नयी हंसी ' वाली मुद्रा का आभास होता है । प्रायः कवि हास्य के पीछे छिपे विविध सूक्ष्म मानवीय - भावनाओं को उनकी सम्पूर्ण सजीवता के साथ प्रस्तुत करने में रूचि लेता है । ' आपकी हंसी ' और ' हँसों हँसों जल्दी हँसों ' शीर्षक कविताओं में कवि हास्य की प्रक्रिया की हंसी सूक्ष्म पहचान द्वारा विडम्बना एवं व्यंग्य को पकड़ता है और उन्हें कविता में ज्यों का त्यों रखकर पाठक को भी स्वयमेव उसके व्यंग्य को ग्रहण करने के लिए तत्पर एवं समर्थ बना देता है । कवि सत्ता - पक्ष की नकली सहानुभूति की पोल, उसकी खायी, अघायी और बात - बात पर खिल पड़ने वाली हंसी के ऊपर विशेष बल देकर खोलता है-' आपकी हँसी ' में । इसमें हँसने की क्रिया अपनी असलियत को छिपाने के लिए भी है और अपनी चालाकी के लिए भी । अतः इसमें ' हँसे ' शब्द में ही व्यंगात्मकता निहित है -----

' निर्धन जनता का शोषण है
कह कर आप हँसे
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है
कह कर आप हँसे
सबके सब हैं भ्रष्टाचारी
कह कर आप हँसे
चारों ओर बड़ी लाचारी कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हँसे ।'[1]

---

1. हँसो - हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय; पृ0 - 16

यहाँ कवि ने बड़े कम शब्दों में, सहजता से विडम्बना बोध को प्रत्यक्ष किया है । परन्तु पिछली कविताओं की विदूषकत्व पूर्ण चेष्टाओं को उभारने की प्रवृत्ति अब मानवीय क्रिया व्यापारों के पीछे छिपे सूक्ष्म भावों एवं उद्देश्यों की मनोवैज्ञानिक पहचान तथा उनके द्वारा यथार्थ - स्थिति की समस्त विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को प्रतिध्वनित करने की प्रवृत्ति में बदल गयी दिखती है । भाषा का संयत प्रयोग एवं उसका कसा हुआ रूप इसमें दृष्टिगत होता है । ' 'हँसो - हँसों जल्दी हँसो ' शीर्षक कविता में कवि का स्वर सम्बोधन की मुद्रा में है, जिसमें कवि समसामायिक राजनीतिक - परिवेश की दहशत, एवं खौफ को विरोधाभास तथा विडम्बना - बोध के साथ प्रत्यक्ष करता हुआ अपने बचाव के लिए प्रयुक्त हंसी की एक मनोवैज्ञानिक पड़ताल तथा विवशता, जुल्म और क्रूर स्थितियों की व्यंजना करता है । इस कविता का व्यंग्य समग्र प्रभाव में करूणा एवं मार्मिकता का स्पर्ष करता है । दूसरी ओर हास्य की चेष्टाओं के विविध विवेचन में हल्की सी विनोदात्मकता भी है जो एक अलग तरह की नाटकीयता की सृष्टि करती है । कुछ अंश निम्न है -----

" हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हँसों अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
× × ×
हँसते - हँसते किसी को जानने मत दो कि किस पर हँसते हो
सबको मानने दो कि तुम सबकी तरह परास्त होकर
एक अपनापे की हँसी हँसते हो ।"[1]

यहाँ कवि दहशत - भरे माहौल के प्रति जागरूक एवं सतर्क है । सत - पक्ष की दमन एवं हिंसा की प्रवृत्ति को इसमें साधारण उद्बोधनात्मक पंक्तियों में बड़े सूक्ष्मता, मार्मिकता एवं व्यंगात्मक प्रभाव के साथ व्यक्त किया गया है । इसमें कवि सामान्य - जन - जीवन के साथ अधिक जुड़ा है, सत्ता - पक्ष के प्रतिनिधियों के साथ कम । इस संग्रह में राजनीतिक - व्यंग्य अन्य मुद्राओं में भी हैं । वार्तालाप शैली में विवरणात्मक ढंग से तत्थ्य को सामने रख कर कवि जनता की राजनीतिक सोच एवं समझ की एक बानगी सी प्रस्तुत कर देता है । 'बाराबंकी' शीर्षक कविता दृष्टव्य है, जिसमें व्यंग्य व्यंजित है -----

---

1. हँसों हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर ; पृ0 - 38

' मैने कहा : जिन्दाबाद
दल के दल लोग बोले - जिन्दाबाद
बोले : कार्यक्रम क्या है ?
मैंने कहा : डर और हिम्मत
बोले : नीति क्या है ?
मैने कहा : खोज ?
बोले : नीति किसकी है ?
मैने कहा : क्या ?
बोले : नहीं किस विचारक की
मैंने कहा : क्या ?
बोले : यदि तुम्हें नहीं पता कि तुम विश्व के राष्ट्रों में किसके समर्थक हो
तो तुम पर बाराबंकी की जनता विश्वास ही क्यों करे ? '[1]

' संस्कृत ' शीर्षक कविता में भी कवि युद्धजनित भयानकता एवं क्रूरता को समग्रता में देखता हुआ सामान्य - जन जीवन के विसंगतियों को बड़े संश्लिष्ट रूप में व्यक्त करता है । कवि वर्तमान में घटित घटना - सन्दर्भ को राजनीतिक क्रूरता , एवं हिंसा की विडम्बनामय गतियों से जोड़ता उन्हें बड़े ' डायरेक्ट ' ढंग से तत्थ्यों के विवरण के रूप में प्रकट करता हुआ जिस जगह कविता समाप्त करता है, समूचे प्रसंग का व्यंग्य एक कचोट एवं पीड़ा उत्पन्न वाले प्रभाव एवं बोध के रूप में जागृत हो उठता है । इसका व्यंग्य प्रचलित व्यंग्य - कविताओं की स्पष्टता एवं आक्रामकता से युक्त नहीं है । वस्तुतः वह वैचारिक स्तर पर उद्वेलित करने वाला अन्तर्ध्वनित व्यंग्य है -----

' उसी आम के नीचे बाँधकर मारा था
उन्होंने अठारह बरस के उन लड़कों को
हिन्दी बोलने वाले गाँव के लड़कों को
जो सेना को नहीं माने थे
उसी आम के नीचे आम के वृक्ष - का
शास्त्रीय गुणगान करने आये हैं
वयोवृद्ध संस्कृतज्ञ ।'[2]

---

1. हँसो - हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय; पृ0 - 38
2. हँसो - हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय; पृ0 - 17

यहाँ ' उसी आम के नीचे ' निर्लिप्त ढंग से आम के वृक्ष का गुणगान करने वाले संस्कृतज्ञ की संवेदनहीनता एवं अमानवीय रूख की विडम्बना पर भी कवि का व्यंग्य स्पष्ट हो उठता है । प्रस्तुत संग्रह के विषय में यह कथन महत्वपूर्ण है कि " यहाँ आकर राजनीतिक सच्चाइयाँ सामान्य मनुष्य के जीवन के दैनिक यथार्थ में इतनी घुलमिल गयी हैं कि कविता में व्यक्त यथार्थ राजनीति और समाजशास्त्र के भीतर व्याख्यायित होने वाले यथार्थ के इकहरे बोध का अतिक्रमण करता है या एक प्रकार से यथार्थ बोध के विभिन्न स्वरूपों की पड़ताल करता नज़र आता है ।[1]

' लोग भूल गये हैं ' काव्य - संग्रह में कवि अपनी पिछली कविताओं से अलग भाषा एवं शिल्प का प्रयोग करता दिखता है । इसमें एक सहज गद्यात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें कवि किसी घटना या तत्थ्य की तह में जाकर उसकी बड़ी बारीक व्यंग्यात्मकता को - विश्लेषित करते हुए नहीं, स्थितियों को उनके सभी कोणों से पकड़ते हुए - मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रत्यक्ष कर देता है । यही प्रवृत्ति कवि के नवीनतम संग्रह ' कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ ' में भी दृष्टिगत होती है । ' लोग भूल गये हैं ' संग्रह में ' मुआवजा ' कविता में कवि सत्ता - पक्ष की अमानवीयता एवं आतंक की ओर संकेत करता हुआ उसको शोषण - प्रक्रिया पर बड़ा सूक्ष्म व्यंग्य करता है । इसमें कवि का व्यंग्य हत्यारे एवं उनका पक्ष लेने वालों के सुरक्षित रह जाने पर प्रश्नाकुल मुद्रा में व्यक्त हुआ है तथा इसमें आम जनता के प्रति एक उद्बोधन भी प्रच्छन्न रूप में निहित है -----

> " कौन आदमी है जो बचा रह जाता है / हर बार जब ताकतवर लोग अपने मन का / संसार रचने को सामूहिक हत्यायें करते हैं / कौन है जो बचा रहकर फिर पहचाना जाता है / और बचा रहता है / कौन है वह कि जो बचा तो रहता है / पर उसकी पहचान नहीं हो पाती है / और कौन है वह जो जैसे ही पहचाना जाता है / मार दिया जाता है /"[2]

---

1. साठोत्तरी हिन्दी कविता: परिवर्तित दिशायें - लेखक - विजय कुमार; पृ0 - 198
2. लोग भूल गये हैं - रघुवीर सहाय; पृ0 - 65

यहाँ केवल पहचाने जाने और बचे रहने की स्थितियों की पहचान कराते हुए कवि ने सत्ता - पक्ष की तमाम दमनकारी, क्रूर , तथा स्वार्थलिप्त अमानवीयता को व्यंग्य - बोध के कड़वेपन के साथ प्रत्यक्ष कर दिया है । कवि सत्ता - पक्ष के इन हत्यारों के प्रति सचेत करने के लिए ही उनकी पहचान कराता है । इसी कविता की आगे की कुछ पंक्तियों में कवि ने सुविधावादी दृष्टि से सत्ता पक्ष में मिल गये शोषित पक्ष के लोगों की चालाकी की बड़ी सहज पहचान की है । कवि ने उनकी वास्तविकता को सामने रखकर बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यंग्य को पैना बनाया है -----

' और आज जो बचपन में उस गुलामी में पिसते हैं
जिसमें पिसते थे हम इस शोषक सभ्यता में शासक पक्ष में
मिल जाने के पहले
उनसे हम कहते हैं देखो हमको देखो हमको देखो हम पर विश्वास करो
हमने भी बचपन में दुःख उठाये हैं ।'[1]

यहाँ कवि ने मानवीय व्यवहार एवं सोच की विडम्बना को बड़ी बारीकी से पकड़ा है और कविता में रख दिया है । इससे जो व्यंग्य उत्पन्न हुआ है, वह कवि के किसी आक्रोश का परिणाम न होकर स्थिति की सही पहचान का परिणाम है । इसी प्रकार की व्यंग्यात्मकता का विकास कवि में आगे चल कर भी राजनीतिक - शोषण, अत्याचार क्रूरता एवं आतंक की स्थितियों के प्रति हुआ है ।

' कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ ' इनका अंतिम कविता - संग्रह है । इसकी कविताओं में राजनीतिक - यथार्थ के व्यंग्य को कवि सपाट ढंग से व्यक्त करता तो दिखता है , पर उसमें कवि की सूक्ष्म अन्तर्ध्वनित सत्यों को पकड़ने और उन्हें बिना कहे यथार्थ रूप में रेखांकित सा करते हुए व्यंजित कर देनें की एक सादगी भरी विशिष्टता मिलती है । इसमें राजनीतिक - दृष्टि की जो कवितायें हैं, उसमें प्रचलित ढंग का सरलीकृत अर्थ वाला व्यंग्य नहीं है । इसमें सत्ता - पक्ष के दमन, अन्याय एवं अमानवीयता के प्रति कवि की संवेदना अधिक जागृत दिखती

---

1. लोग भूल गये हैं - रघुवीर सहाय; पृ0 - 66

है । इन कविताओं में राजनीतिक विडम्बनापूर्ण एवं अमानवीय स्थितियों के प्रति कवि में एक छटपटाहट एवं बेचैनी का आभाष बराबर होता रहता है । इस संग्रह में राजनीतिक यथार्थ को मानवीय प्रश्नों एवं सन्दर्भो से जुड़ी वैचारिक चिन्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है । कवि की दृष्टि सामाजिक जीवन में व्यक्ति के सहज व्यवहारों एवं दैनिक जीवन की विसंगतियों को उनकी पूरी मार्मिकता में पकड़ने की अधिक रही है । इस संग्रह में राजनीतिक - चेतना भी व्यक्ति के उत्पीड़न की अमानवीय प्रक्रिया से गहरे स्तर पर जुड़ी हुई हैं । ' सच क्या है ? ' शीर्षक कविता में सत्ता - पक्ष की क्रूरता को उभारते हुए शोषण तंत्र द्वारा क्रूर सच्चाईयों पर पर्दा डालने की प्रक्रिया को हल्की सी व्यंगात्मकता के साथ उभारा गया है -----

' तब हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
वास्तविक यथार्थ में क्यों हुआ था, समझ
क्यों गला बच्चे का घोंटा गया था,
यह उसकी घुटन से अधिक अर्थवान है
वह बता ।'[1]

उक्त कविता में पूर्वाद्ध की पंक्तियाँ ही दी गयी हैं, जिसमें राजनीतिक परिवेश की अमानवीयता को अपने पक्ष में मानवीय करार देने की चाल को बड़ी मार्मिकता एवं सहजता के साथ ध्वनित किया गया है ।

' कविता के नक्शे में एक चाल ' कविता में कवियों की राजनीतिक लाभ लेने हेतु भ्रष्ट - पक्ष का समर्थन करने की प्रवृत्ति एवं कवि-धर्म के भी राजनीतिक चालों द्वारा प्रभावित होने पर बड़े सहज तथा स्पष्ट रूप में तीखा व्यंग्य है । कवियों की राजनीतिक अमानवीय स्थितियों के प्रति स्वार्थ प्रेरित प्रतिक्रिया के यथार्थ को कवि एक विश्लेषण के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि उसके व्यंग्य का प्रभाव बहुत गहरा हो जाता है -----

----

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 21

" हर एक हत्या में पक्ष किसका लेंगे
तय किया करते हैं उस समय
जबकि हत्यारे को पहचान लेते हैं
वे हर जमाने में सफल व्यक्ति होते हैं
जो कि पक्ष लेने से पहले तय करते हैं किसको
हत्यारा बताने में लाभ है ।"[1]

' इंतजार ' शीर्षक कविता में सत्ता - पक्ष के शोषण की चालाकी भरी मुद्रा की सूक्ष्म पड़ताल करते हुए उसके यथार्थ को व्यक्त करता कवि उसकी विडम्बना एवं व्यंग्य को भी प्रत्यक्ष कर देता है । इसमें भी सत्ता - पक्ष के आडम्बरपूर्ण व्यवहार की सही पकड़ में व्यंग्य को बिना किसी शाब्दिक खिलवाड़ या चमत्कार के, सहज ढंग से उजागर किया गया है ।

" एक बड़े होटल के कमरे में बैठकर
सभी खानसामों से ऐसै मुस्कुराता है
जैसे वह शोषित के प्रति करूणाशील है ।"[2]

इस संग्रह की राजनीतिक द्रृष्टि की कविताओं में कवि ने राजनीतिक गतिविधियों में लोगों की हरकतों, उनकी प्रतिक्रियाओं का बड़ा मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया है । कवि दूर खड़ा तटस्थ भाव से विभिन्न स्थितियों, प्रसंगों या घटनाओं को उनकी पूरी समग्रता में देखता हुआ और उसको ज्यों का त्यों रखता हुआ, उसके प्रति अपनी वैचारिक गंभीरता एवं जागरूक संवेदना को व्यंजित करता है । इससे कविता में निहित व्यंग्य यथार्थ में निहित व्यंग्य का एक अटूट हिस्सा बनकर प्रकट हुआ है । ' इमरजेंसी ' शीर्षक कविता का कुछ अंश द्रृष्टव्य है -----

' एकाएक सन्नाटा छा गया / जिसके कि भय से वे बोले जा रहे थे / फिर हँसे चश्में उतारकर / पोंछकर रख लिये / कलम बंद कर ली / आज की बहस खत्म / × × × / एक विराट दफ्तर के नीचे उतर कर चल दिये / बाकी अफसरों के विषय में अपने विचार / बीवी को बतलाने /'[3]

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 45
2. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 52
3. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 57

इस कविता में यथार्थ - स्थिति में व्याप्त सहज नाटकीयता ही व्यंगात्मकता की सृष्टि करती है, न कि व्यंग्योद्रेक के लिए सप्रयास नाटकीयता का संयोजन किया गया है । ऐसी कुछेक कवितायें इस संग्रह में और भी हैं, जो इस सहज यथार्थ की नाटकीयता को प्रत्यक्ष करती हैं । कवि स्वयं कुछ नहीं कहता, कविता की मुद्रा एवं उसमें प्रस्तुत दृश्य एवं उनकी हरकतें ही कवि के गंभीर आशय एवं सूक्ष्म भाव बोध के स्तरों को उद्घाटित कर देते हैं । ' नवनिर्माण ' में कवि की सामाजिक न्याय के लिए संघर्षरत चेतना सत्ता - पक्ष के निर्माण एवं विकास कार्यों की पर्तें उधाड़ते देखी जा सकती है । असमानता एवं अन्याय की प्रक्रिया कितने छद्म रूप में, सभ्य ढंग से भावनात्मक शोषण में लीन है और वे मानव - मानव में आर्थिक आधार पर कितना सांस्कृतिक भेद - भाव पनपाते हैं - इसका मार्मिक व्यंग्य करूण स्वर में इस कविता में उभरा है । कुछ अंश दृष्टव्य है -----

" सब नयी बस्तियाँ खाले में बसाओ और सब बस्तियाँ खदेड़े हुओं की हों

× × ×

यही है संस्कृतियों का स्थानान्तरण ।"[1]

' विजय जयंती ' शीर्षक कविता में राजनीति के विस्तृत फलक को लेता हुआ कवि युद्ध की मनोवृत्ति एवं स्थिति के प्रति व्यंग्य को उभारता है । इसमें भी राजनीतिक घटना सन्दर्भों की झलक के रूप में कवि उसकी विडम्बनाओं में निहित व्यंग्य को ही प्रत्यक्ष करता है । कवि सहज अभिव्यक्ति में राजनीतिक जटिल पर्तों को खोलता हुआ विचारों का व्यंग्यात्मक दृश्य उपस्थित कर देता है -----

' मिनटों में कुछ और साफ सोच आता है और भी तटस्थ हो जाते हैं
विध्वंस होगा तो यह महल, जिसमें प्रधान सचिवालय है
और खुफिया विभाग,
बाकी रह जायेगा
क्योंकि यहीं से हमें त्रस्त मानवता को संदेश देना है ।'[2]

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 80
2. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 81

' खोज खबर ' शीर्षक कविता में दमन एवं शोषण की मिली जुली प्रक्रिया को घटना के रूप में सामने रखते हुए कवि ने उसके विडम्बना - पक्ष को उजागर किया है -----

' अपराध संगठित, राजनीति संगठित, दमनतंत्र संगठित
केवल अपराध के विरूद्ध जो कि बोला था अकेला है
उससे कहा है कि हमसे सम्पर्क करे, गुप्त रहे
हमें उसे पुरस्कार देना है और पुरस्कार को गुप्त नहीं रखेंगे ।' 1

उक्त कविता में सत्ता - पक्ष के शोषण चक्र एवं अपराधियों से साँठ - गाँठ की छद्म प्रक्रिया को यथातत्थ्य रूप में विवरणात्मक ढंग से प्रस्तुत करता कवि उसके विरोधाभाष को भी बड़ी सहजता से प्रत्यक्ष कर देता है ।

इस प्रकार सत्ता - पक्ष पर रघुवीर सहाय की जो आक्रामक - व्यंग्य की मुद्रा ' आत्महत्या के विरूद्ध ' में एक चुलबुले एवं विनोदपूर्ण तेवर से युक्त होकर मिलती है, उसमें क्रमिक परिवर्तन होता गया है । उसमें स्थूल शारीरिक मुद्राओं के बदले मनोभावों की सूक्ष्म पहचान द्वारा व्यंग्य उत्पन्न करने की प्रवृत्ति विकसित हुई है । क्रमशः कवि तटस्थ विवेचन द्वारा व्यंग्यात्मकता को प्रत्यक्ष करने में प्रवृत्त हुआ है । भाषा शैली में सरलता, सहजता तथा नाटकीयता का अद्भुत मिश्रण किया गया है ।

श्रीकांत वर्मा साठोत्तर नयी कविता के विशिष्ट कवि हैं । श्रीकांत वर्मा की कविताओं में स्वतंत्रता बाद की देश की अराजकता तथा व्यवस्थाहीनता, समाज, व्यक्ति तथा राजनीति के मिले - जुले असम्बद्ध रूप में व्यक्त हुई हैं । श्रीकांत वर्मा ने अपनी कविताओं में बाह्य यथार्थ के विविध चित्रों को असम्बद्ध रूप में त्वरित गति से सामने लाते हुए बाह्य परिवेश की विसंगतियों तथा विकृतियों को सम्पूर्ण रूप में एक आकार देने की चेष्टा की है । इस चेष्टा में कवि आनन्द लेता, चोट करता तथा मनोरंजन सा करता हुआ स्वयं भी उपस्थित रहता है ।

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 82

कवि के आक्रोश का तीखापन, अभिव्यक्ति की चमत्कारिक, तुकपूर्ण, खिलवाड़ी तथा विनोदी मुद्रा में ढलकर चुलबुले व्यंग्य के रूप में प्रभाव डालता है । ' दिनारम्भ ', ' माया - दर्पण ', तथा ' जलसाधर ' कविता संग्रहों में श्रीकांत वर्मा की राजनीतिक - सामाजिक चेतना क्रमशः अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर विसंगतियों का अवलोकन करती है । ' दिनारम्भ ' संग्रह में ' युद्ध और क्लिप ' शीर्षक कविता राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । इसमें कवि युद्ध की स्थिति की विभीषिका के समक्ष निरीह, निर्लिप्त तथा बेखबर लोगों की उदासीन मनोवृत्ति के प्रति कटाक्ष करता है -----

' युद्ध अगर होगा तो होगा
जाहिर है एक काकरोच को
लेकर नहीं होगा
जिसे हो उसे हो, काकरोच को युद्ध का डर नहीं
टैंकों के लिए एक काकरोच बहुत छोटा है
बहुत हैं
दुनिया में मरने वालों का
नहीं टोटा है ।'[1]

यहाँ युद्ध जैसी भयंकर स्थिति के प्रति भी कवि का दृष्टिकोण खिलवाड़ एवं विनोद का है, लेकिन व्यंग्य की मार गहरी है । कवि का अगला संग्रह ' माया - दर्पण ' है । इसकी कवितायें भी समाज, व्यक्ति, राजनीति, के मिले जुले दृश्यों तथा उनके प्रति कवि के प्रतिक्रियात्मक ' मूड ' को व्यक्त करती हैं । ' माया - दर्पण ' की कवितायें अपने समग्र प्रभाव में एक अनूठे व्यंग्य - बोध को ध्वनित करती हैं, जिनमें प्रत्यक्षतः कहीं भी कवि की वृत्ति व्यंग्यात्मक स्थिति को गम्भीरतापूर्वक व्यक्त करने की आकुलता तथा मार्मिकता से युक्त नहीं दिखती । वस्तुतः यथार्थ संसार के विकृत, कुरूप तथा अटपटे यथार्थ को जिस लापरवाह - भाव से अप्रत्याशित रूप में कवि व्यक्त करता है, वह उसकी गहरी वितृष्णा की सूचक है । इस संग्रह में कवि एक प्रकार से आत्म प्रलाप की मुद्रा में स्वयं कविता के केन्द्रबिन्दु में रखता है

---

1. दिनहारम्भ - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 51

और बाह्य जगत के तमाम दृश्य कवि के ' मैं ' से होकर कविता में एक मायावी संसार जैसा रूप लेकर प्रगट होते हैं । इसमें कवि की दृष्टि व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्यों पर अधिक रही है, बीच - बीच में राजनीतिक दृष्टिकोण भी उभरा है । राजनीति के किसी खास मुद्दे या ठोस सन्दर्भ की कोई स्वतंत्र कविता प्रस्तुत संग्रह में नहीं मिलती । ' जीवन - बीमा ' कविता में कवि परिवेश की गतिविधियों का त्वरित व्योरा देते हुए आगे चलकर राजनीतिक माहौल के प्रति अपनी उपेक्षा तथा विरक्ति के स्वर में वोट की प्रक्रिया का उपहास करता है । इसमें कवि की मुद्रा आक्रोशपूर्ण न होकर हँसने - हँसाने की ही है । कुछ अंश दर्शनीय हैं -----

' वित्तमंत्री का वक्तव्य
पानी की व्यवस्था में सुधार
ध्यान दे रही है सरकार
× × × ×
मैं किसी पार्टी को नहीं
केवल इस
नंगे पुतले को दूँगा
अपना वोट
नगरपालिका के चौराहे जो
हौज में मजे से
पेशाब कर रहा है ।'[1]

' अंतिम वक्तव्य ' की निम्न पंक्तियों में कवि की विवशता का स्वर, ' राजनीतिज्ञों की मरी हुई आत्माओं के सड़ांध भरे माहौल में, आक्रोश की भाषा में, राजनीतिक माहौल की मूल्यहीनता तथा क्रूर प्रवृत्तियों को व्यंग्यात्मक व्यंजना प्रदान करता है -----

' आत्मायें
राजनीतिज्ञों की
बिल्लियों की तरह

---

1. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 23, 24

मरी पड़ी हैं
सारी पृथ्वी से
उठती है
सड़ांध ।
कोई भी जगह नहीं रही
रहने के लायक
न मैं आत्महत्या कर सकता हूँ
न औरों का
खून ।'[1]

यहाँ राजनीतिज्ञों के प्रति कवि की तीखी घृणा ही व्यंग्य बन गई है । ' माया - दर्पण ' संग्रह के सन्दर्भ में श्रीकांत वर्मा पर अशोक बाजपेयी की यह टिप्पड़ी सर्वथा उपयुक्त है कि ' मुक्तिबोध और रघुवीर सहाय के बाद राजनीति के प्रति बिना उसके ब्यारों से जूझे श्रीकांत की दृष्टि कुछ सरलीकृत लगती है और उनके द्वारा चित्रित समकालीन नरक से कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण और नियामक तत्व गायब कर देती है ।'[2]

श्रीकांत वर्मा के अगले संग्रह ' जलसाधर ' (1973) में मिश्रित प्रकार के दृश्यों अर्थात राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश तथा व्यक्ति जीवन की विडम्बनाओं पर व्यंग्य है, परन्तु इसमें कवि की राजनीतिक जागरूकता अधिक व्यापक है । इस संग्रह में कवि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सन्दर्भों के प्रति भी संवेदनशील दिखता है । ' विजेता ' कविता की निम्न पंक्तियों में कवि की भंगिमा में हल्की सी व्यंग्यात्मकता का आभाष है । इसमें वह स्वयं को बाह्य स्थितियों से जोड़कर विनोदपूर्ण भंगिमा में राजनीतिक संसार की क्रूर सच्चाइयों की तरफ तीखे व्यंग्य के साथ संकेत करता है । कुछ व्यंग्यात्मक अंश दृष्टव्य हैं -----

' जीते हुओं का जुलूस गुजर रहा है
किस शान से
बीसवीं शताब्दी के बीच से
× × ×

---

1. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 126
2. आधुनिक हिन्दी कविता - संपादक - जदगीश चतुर्वेदी; पृ0 - 117

अगली शताब्दी के अधिनायक
कहाँ छिपे थे अब तक गांधी की हत्या की आड़ में ? ।'[1]

अन्तर्राष्ट्रीय घटना - सन्दर्भो तथा राजनीतिक गतिविधियों की गूँज से युक्त कविताओं में कहीं - कहीं कवि का व्यंग्य करूण एवं मार्मिक स्वरों में व्यक्त हुआ है । गोरे लोगों की रंगभेद की नीति को कवि ने ' जोसेफ अब्रूकुआ ' कविता में नाटकीय मुद्रा में व्यक्त किया है, जिसमें व्यंग्य स्वयमेव उभरा है । ' जो ' कविता में भी गोरों द्वारा नीग्रो जाति के लोगों पर किये गये अत्याचारों का तटस्थ चित्रण करके कवि रंगभेद की नीति पर पैना व्यंग्य ध्वनित करता है -----

' न्यूयार्क के सब - वे में नीग्रो पिट रहा है ।
उसे पिटना ही था,
वह नीग्रो था ।
× × ×
लॉस वेगास में नीग्रो पिट रहा है
उसे पिटना ही था
वह जुए में जीता था ।'[2]

यहाँ कवि ने राजनीतिक शोषण के साथ ही विश्व - स्तर पर हो रहे सामाजिक अन्याय को भी ध्वनित कर उस पर प्रच्छन्न चोट की है । ' जोसेफ अब्रूकुआ ' कविता में भी वार्तालाप शैली में ऐतिहासिक घटना - सन्दर्भ के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रंगभेद की नीति के प्रति व्यंग्य - बोध जागृत किया गया है । कवि ने स्वयं कोइ व्यंग्यात्मक टिप्पड़ी न करते हुए केवल यथार्थ - स्थिति को नाटकीयता के साथ प्रस्तुत करके मार्मिक व्यंग्य की सृष्टि कर दिया है -----

' बीसवीं शताब्दी का नीग्रो कवि जोसेफ अब्रूकुआ / अठारहवीं शबाब्दी के नीग्रो कवि जोसेफ अब्रूकुआ से पूछता है / ' तुम्हें गोरों से नफ़रत है ? ' / ' नहीं ' / '

---

1. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 46, 47
2. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 89

काले से प्रेम ? ' / ' नहीं ' / तुम्हें काले और गोरे में फर्क नहीं दिखता ? ' / ' नहीं ' / ' मेरी हत्या के पहले ' / उन्होंने मेरी आँखे निकाल ली थीं / मैं अंधा हो चुका हूँ / गोरे और काले का भेद समाप्त हो चुका है /'[1]

× × ×

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किये गये व्यंग्यों में एक तो कवि किसी खास ऐतिहासिक सन्दर्भ को कविता में उभारकर उसे अपनी खास मुद्रा में व्यक्त करता है, जैसा कि ऊपर की कविता में है । दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भो में कवि की दृष्टि विविध दृश्यों, घटनाओं, प्रसंगों तथा चरित्रों पर तीव्रता से फिसलती हुई सारे विश्व की राजनीतिक - सामाजिक विडम्बनाओं को कविता में उतारती चलती है । श्रीकांत वर्मा की उन कविताओं में जो अपने देश की स्थितियों से सम्बद्ध हैं, विषयगत एकरूपता नहीं दिखती, परन्तु जहाँ कवि की चेतना अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर विचरती है, वहाँ प्रायः कुछ दूर तक या कहीं - कहीं पूरी कविता में उसकी दृष्टि राजनीतिक ही रहती है । ' युद्ध नायक ' तथा ' प्रजापति ' कविताओं में कवि विश्व - फलक पर दृष्टि डालते हुए उनके यथार्थ की विसंगतियों को नग्न करता है तथा उनके प्रति व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया करता है । ' प्रजापति ' कविता का कुछ अंश निम्न है, जिसमें कवि ने विश्व की त्रासद स्थितियों के प्रति कडुआहट तथा विक्षोभ से भरकर मार्मिक व्यंग्य किया है -----

' मुबारक हो गोएबेल्स, मुबारक हो
खाकी वर्दी पहने
तुम किसका पता पूछ रहे हो
मुबारक हो हेनरी मुबारक हो
लौटते हुए विएतनाम से.
तुम किसे ढूँढ रहे हो
अपने अतीत को ?
भविष्य को ?
हिरोशिमा की अन्तर्रात्मा को ?
कोरिया की दबी हुई सिसकी को । ।'[2]

---

1. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 94
2. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 77

यहाँ ' मुबारक हो ' सम्बोधन में ही कवि का वक्रोक्तिपूर्ण व्यंग्य निहित है, जो त्रासद स्थितियों के प्रति विरोधाभासपूर्ण होने से विडम्बना को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त कर देता है । इनके अतिरिक्त ' माया - दर्पण ' संग्रह की कविताओं वाली शैली में भी कवि ने अपने देश की वर्तमान अव्यवस्था तथा अराजक स्थितियों के प्रति मनोरंजक मुद्रा में व्यंग्य किया है । ' जलसाघर ' शीर्षक कविता में कवि ने विविध दृश्यों को तुर्कों के प्रयोग द्वारा अप्रत्याशित रूप से बदलते हुए बाह्य यथार्थ को बेतरतीब ढंग से व्यक्त किया है । इसमें कहीं - कहीं राजनीतिक दृश्य भी उभरे हैं; यथा -----

> ' यही सोचते हुए गुजर रहा हूँ मैं कि गुजर गयी / बगल से / गोली दनाक से / राहजनी है या क्रान्ति ? जो भी हो मुझको / गुजरना ही रहा है / शेष / देश / नक्शे में / देखता रहा हूँ हर साल नक्शा बदलता है / कच्छ हो या चीन / तब तक / दूसरी गोली दनाक से / '[1]

' परिगणित ' कविता के एक अंश में राजनीतिक यथार्थ के क्रूर एवं अमानवीय पक्ष को तीखे व्यंग्य के रूप में व्यक्त किया गया है । इसमें भी कवि की मुद्रा में नाटकीयता तथा विनोद का हल्का - सा तेवर स्पष्ट है, लेकिन व्यंग्य में निहित तीखी घृणा तथा आक्रोश भी मुखर है -----

> ' छीन झपट, दमन , युद्ध, चूसकर / मारी गयी जनता के / रक्त को / बबर उधर देखो वह चला जा रहा / है / उस मांद में छेड़ो मत मांद को गले से लगाता / है / सड़ांध को इसी तरह चलता है तंत्र चलता / है / गूँगा करता है / गवाह को /'[2]

इस प्रकार श्रीकांत वर्मा में भयानक एवं जटिल राजनीतिक यथार्थ को मनोरंजक ढंग से व्यक्त करने की प्रवृत्ति अन्त तक बनी रही है ।

---

1. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 9
2. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 26, 27

नयी कविता के युवा कवियों में आज़ादी के प्रति एक प्रकार का असंतोष है, जो कभी उसके प्रति एक उपेक्षापूर्ण नकारात्मक रवैये के रूप में व्यक्त होता हुआ, उसकी विडंबना को नग्न करके दिखाता है और कभी आक्रोश एवं विद्रोह के स्वर में उसमें बदलाव के लिए प्रतिबद्ध नजर आता है । वर्तमान लोकतंत्रात्रिक व्यवस्था स्वातंत्र्योत्तर भारत की बहुत बड़ी विडम्बना बनकर रह गयी है । लोकतंत्र के प्रति भी युवा कवियों की दृष्टि व्यंग्यशील रही है। इसके अतिरिक्त समूचे परिवेश के यथार्थ की विकृतियों, विरोधाभाषों तथा असंगतियों इत्यादि को व्यक्त करते हुए इनकी दृष्टि व्यवस्था - पक्ष की खामियों पर गयी है । इन युवा कवियों में अकविता के भी कुछ कवि हैं, जिनकी प्रारम्भिक कृतियों में अकविता के कुंठागत रूप को स्पष्ट परिलक्षित किया जा सकता है । पर बाद में ये कवि भी क्रमशः सामाजिक प्रतिबद्धता से जुड़ते गये हैं तथा इनके काव्य में राजनीतिक विसंगतियों को सार्थक रूप में व्यंग्यात्मक तीखेपन के साथ व्यक्त करने की प्रवृत्ति विकसित हुई है । इन युवा कवियों में कुछ प्रमुख कवियों की रचनाओं का विवेचन सन् ' 60 के बाद नयी कविता में आये विषयगत एवं शिल्पगत परिवर्तन के स्वरूप एवं दिशा को समझने के लिए आवश्यक होगा । युवा कवियों की राजनीतिक दृष्टि मूलतः आज़ादी के सन्दर्भ में समस्त विकृतियों , विसंगतियों एवं उपलब्धियों को जाँचने परखने और उसकी भयंकरता के प्रति आक्रोश एवं क्षोभ से भर उठने की रही है । अकवितावादी युवा कवियों में भी इन विसंगतियों का बोध है, पर उसमें प्रतिबद्धता के दर्शन नहीं होते; वह मात्र व्यक्तिगत कुंठा, आक्रोश एवं घृणा की अभिव्यक्ति बन कर रह गई है । युवा कवियों की मनोभूमि की तरफ संकेत करते हुए डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं ---- ' आश्चर्य नहीं कि युवा कवियों के लिए पहली बेचैनी इस देश की आज़ादी को लेकर है, जिसके पच्चीस - तीस साल भ्रष्टाचार, सत्तालोलुपता, तात्कालिक स्वार्थ, क्षेत्रीयता, जातिवाद, पूँजीवादी - सामन्तवादी रूझान, हिंसा आदि असंगत तालमेल से घिरे रहे हैं और इस प्रकार समकालीन राजनीति के परिचय - प्रसंग को केवल व्यर्थता - बोध में बदलते आये हैं । '[1]

सन् '60 के बाद अकविता के नाम से नया काव्यान्दोलन चलाने वाले जगदीश

---

1. 'कविता केवल कविता नहीं ' - डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव; आलोचना - जुला0,सित0 -78; पृ0 - 40

चतुर्वेदी नयी कविता में यौन - प्रतीकों, शब्दों व कुंठाओं की अभिव्यक्ति के लिए सर्वाधिक चर्चित कवियों में से एक हैं । ' अकविता ' भी कोई स्वतंत्र काव्यान्दोलन का रूप नहीं ले सका था । आकविता से सम्बद्ध अन्य कवि भी आगे चलकर जनवादी स्वर की कवितायें लिखने लगे थे । जगदीश चतुर्वेदी के काव्य में व्यक्तिवादी स्वर है । राजनीतिक व्यंग्य दृष्टि इनमें भी है, पर वह व्यक्तिगत स्वर में घृणा, आक्रोश व क्रोध की अभिव्यक्ति है । उसमें सामाजिक प्रतिबद्धता के दर्शन कम होते हैं । इनका व्यंग्य समूचे परिवेश की भयानक, कुत्सित तथा अनिश्चित स्थिति के बीच फँसे मानव की व्यक्तिगत कुंठाओं की अभिव्यक्ति के रूप में ही है, जो तीखी घृणा के स्वर में व्यक्त हुआ है । आत्म पीड़ा तथा पर पीड़ा में सुख, यौन, भावना की खुली अभिव्यक्ति, इन सबका प्रभाव राजनीति सम्बन्धी कविताओं पर भी है ।

' इतिहासहंता ' में कवि का आक्रोश तथा घृणा अधिक विस्फोटक रूप में व्यक्त हुआ है । यद्यपि कवि का आक्रमण सीधे - सीधे किसी बाह्य व्यवस्था पर नहीं है, फिर भी कहीं - कहीं कवि ठोस राजनीतिक दृष्टि अपनाता हुआ अपना क्रोध तथा घृणा व्यक्त करता है । ' अपने देश के लिए ' कविता में कवि देश की वर्तमान दशा को ऐतिहासिक परम्परा में देखता हुआ राजनीतिकों के चरित्र - मूल्यों की गिरावट पर हिन्दुस्तान को तीव्र विरक्ति एवं घृणा के साथ फटकारता है -----

' हिन्दुस्तान तुम उस कनपटी की संतान हो जिसने हमेशा
विभीषण और जयचन्द पैदा किए हैं
हिन्दुस्तान तुम्हारा शरीर रूढ़ियों के कोढ़ से बिंधा हुआ है
हट जाओ मेरे सामने से पिचके कपाल
मैं तुम्हें देखकर शर्म से झुक जाता हूँ ।'[1]

' जनतंत्र एक संक्षिप्त कविता है, जिसमें सत्ता के अप्रत्याशित एवं आकस्मिक परिवर्तन की विडम्बना को संयत ढंग से व्यक्त कर लोकतांत्रिक पद्धति की खामियों को भी व्यक्त किया गया है । आज व्यवस्था - पक्ष में विभिन्न दलों की अवसरवादी साँठ - गाँठ

---

1. इतिहासहंता - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 89

तथा स्वार्थी एवं सत्ता - लोलुप राजनीति के तहत सरकार अचानक बदल जाती है, इसी यथार्थ स्थिति को निम्न पंक्तियों में व्यक्त कर कवि ने उसकी व्यंग्यात्मकता को सामने ला दिया है -

' सुबह अखबार में सुर्खियों से पता चलता है
कल रात एक बड़ी मीटिंग हुई थी
और सरकार बदल गई है ।'[1]

राजनीति से सम्बद्ध व्यंगात्मकता जगदीश चतुर्वेदी के ' डूबते इतिहास का गवाह ' कविता संग्रह की कुछ कविताओं में भी अपनी अकवितावादी शब्दावली, अराजक तेवर, उपेक्षा - भाव तथा घृणामूलक तटस्थता के साथ प्रकट हुई है । निम्न कविता में शहर में हड़ताल करने और नारे लगाने वालों के प्रति तीक्ष्य व्यंग्य है, जिसका उद्देश्य कवि द्वारा स्थिति का विरोध करना उतना नहीं है, जितना अपनी घृणा तथा उपेक्षा का प्रकटन करना है -----

' कुत्तों का अभिसार गाँवों में एक दिलचस्प घटना है
मेरे शहर में कुत्ते हड़ताल करते हैं या नारे लगाते हैं
पर किसी की रीढ़ की हड्डी में दर्द नहीं होता
केवल चीख - चीख कर कुत्तों का गला भर आता है ।'[2]

यहाँ कवि का आक्रोश ध्वनित नहीं होता । कवि घृणास्पद स्थिति का भी बड़े निर्विकार भाव से वर्णन करता है । वस्तुतः यथार्थ की विरूपताओं के प्रति कवि की घृणा यहाँ पराकाष्ठा को पहुँचकर निर्लिप्त मुद्रा ग्रहण करती हुयी दिखती है । कवि जैसे इस सबको बड़ी सहजता से लेता है तथा भयंकर एवं वीभत्स बात को बड़े उदासीन भाव से कहता है । कवि की यह उदासीन, उपेक्षापूर्ण निर्लिप्त स्थिति भी स्वयं में एक व्यंग्य है । आज राजनीतिक एवं सामाजिक कोई भी घटना, अपने तमाम विसंगतियों एवं अन्तर्विरोधों के बावजूद, कवि को प्रभावित नहीं कर पाती, कोई भी वर्ष कवि को झकझोरता नहीं, यह विडम्बनामय स्थितियों की चरम परिणति है । परिवेश की भयंकतरता का इतना आम हो जाना कि वह उद्वेलित न करे,

---

1. इतिहासहंता - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 96
2. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 23

सहज लगने लगे; निम्न पंक्तियों में इसी मानसिक भूमि से राजनीतिक - सामाजिक विसंगतियों के प्रति व्यंग्य ध्वनित है -----

जिन्दगी का कोई वर्ष खतरनाक बनकर
छुरे - सा मेरे जिस्म में नहीं चुभा
घटनायें होती रहीं और बचकानी हरकत की तरह
वह मेरे पास की हवा में खोती रहीं ।[1]

व्यर्थता - बोध, अनास्था, कुंठा, मृत्यु - बोध, ये सभी अकवितावादी स्वर कवि के व्यंगात्मक तेवर युक्त कविताओं में भी लक्षित किये जा सकते हैं । ' कानखजूरा ' शीर्षक कविता में कवि समूचे देश तथा उसके लोगों के अप्रतिबद्ध, निर्लिप्त मुद्रा के प्रति व्यंग्य को मुखर करता हुआ उन्हें मात्र एक पत्थर पर चिपके हुए लाश - पिंड के रूप में देखता है -----

' मुझे लगता है कि तमाम देश एक पत्थर है
और तमाम लोग उस पर खिंची बेतरतीब लकीरें
न उनमें कोई हरकत है, न कोई एहसास
वह सब चट्टान पर चिपके हुए लाश - पिंड हैं ।'[2]

यद्यपि इसमें लोगों में जागरूकता क अभाव व यथास्थिति में जीने की प्रवृत्ति के प्रति व्यंग्य व्यंजित है, पर कवि के कथन की भंगिमा द्वारा उसका घोर अवसाद तथा अनास्था ध्वनित होती है । यह बाध्य परिवेश के प्रति एक ठंडी टिप्पड़ी की तरह है । एक अन्य स्थल पर कवि देश तथा देश प्रेम के प्रति अपनी तीखी व्यंग्यात्मक अनास्था व्यक्त करता हुआ अपनी ' सिनिकल ' मनः स्थिति का परिचय देता है । कवि का आक्रोश इस सीमा तक पहुँच जाता है कि वह व्यंग्य करने के साथ ही अपनी विक्षिप्त एवं कुंठित मन:स्थिति का उद्घाटन करने लगता है । राजनीतिक व्यक्तियों के लिए कवि की तीखी घृणा गाली जैसे शब्दों के द्वारा व्यक्त होती है -----

---

1. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 23
2. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 36

' देश एक लँगड़ाता हुआ वृद्ध मरीज़ ...
देश - प्रेम एक अय्याशी का
दिया हुआ महामंत्र
दु:खती है कोई कनपटी की नस और बाजुओं में रक्तपात की इच्छा पनपने लगती है
एक पाखण्ड
का सिर फट जाता है और पैदा होते हैं असंख्य रीछ पालतू
कुत्ते, चिमगादड़ और बनबिलाव
× × ×
सिपहलासार --- सब हो गये हैं जनखे या तमाशबीन या मक्कार ।'[1]

' घृणा ' कविता में कवि का आक्रोश घृणा की कोख से जन्म लेता है और कविता में कवि इस प्रक्रिया की पहचान करते हुए ' टुकड़खोरों ' ' दोजख के कीड़े ' कहकर व्यवस्था पक्ष की चाटुकारिता करने वाली कच्ची नस्ल के प्रति अपना आक्रामक रूख स्पष्ट करता है । यहाँ व्यंग्य में घृणा एवं आक्रोश का प्रदर्शन है -----

' एक ज़ख्मी भेड़िया कितना खूँखार होता है
कच्ची नस्ल के टुकड़खोरों तुमको इसका अहसास नहीं है
× × ×
दोजख के कीड़े !
तुम मेरी आँखों में मत झाँकों
तुम मेरी आस्तीन पर हाथ फेरते - फेरते साँप में बदल सकते हो ।'[2]

' शांतिदूत ' कविता में भी राजनीति की भयंकरता का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साक्षात्कार करता कवि उसके प्रति अपनी तीखी घृणा एवं आक्रोश को मार्मिक व्यंग्यात्मकता से व्यक्त करता है ।

' ओ शांति - !
हवा में कौन सा प्रपंच रचूँ कि तुम्हें पा जाऊँ
केवल सिरफिरों के दिये हुए वक्तव्यों पर कैसे विश्वास करूँ ?

---

1. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 38, 39
2. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 -

सुलग रहा है विएतनाम
तुर्की का आधा धड़
कौन से मानवीय संदेश को उच्चारित करता जा रहा है
यह लम्बा जुलूस ? ।'[1]

इस कविता में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति की चर्चायें तथा आणविक युद्ध के संभावित खतरे के प्रति व्यंग्यात्मक तीखी अभिव्यक्ति के बाद आगे चलकर कवि की विक्षुब्ध दृष्टि समूचे व्यंग्य को एक आत्मप्रलाप का रूप दे देती है । प्रस्तुत अंश में शांति की प्रवंचना के प्रति कवि का व्यंग्य अत्यंत धारदार तथा प्रभावपूर्ण है । ' अंधेरे से निकल कर ' कविता में भी कवि का व्यंग्य कटु, प्रहारक तथा तीखी घृणा से युक्त है और सत्ता - पक्ष के प्रति सीधी फटकार के रूप में है -----

' तुमने जनतंत्र को खंजर मारने की नापाक हरकत की
तुमने हवाओं में जहर फैलाया
और देश में उगले सर्प, और बिच्छू
और गुबरैले ।'[2]

' कीचड़ से लथपथ विदूषक ' कविता में कवि राजनीतिक यथार्थ को उसके घृणित, कुत्सित रूप की पराकाष्ठा में व्यक्त करता है । यहाँ घृणा - भाव इतना प्रबल है कि व्यंग्य का स्वर दबकर वीभत्स - रस की प्रतीति कराता है । यहाँ व्यंग्य, कवि की घृणा - भाव की पराकाष्ठा में होने से जुगुप्सा - भाव की तीव्रता से युक्त हैं । इसमें कवि ने देश की परिस्थितियों का कोई स्पष्ट ब्योरा न देकर घृणाभिव्यक्ति पर अधिक जोर दिया है । निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -----

' मस्तिष्क एक खंजर है और तमाम देश एक पिंजड़ा
जिसमें गिलबिला रहे हैं असंख्य पिस्सू ..... नालियों
में हो रहे हैं जश्न
..... लाल, पीली टोपियों पर टँगे हैं चित्र नेताओं के ।'[2]

---

1. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 59, 60
2. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 54
3. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 17

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं का व्यक्तिवादी स्वर राजनीतिक व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तियों में कहीं न कहीं उनके समाज - सम्पृक्ति की व्यंजना अवश्य करता है ।

कैलाश बाजपेयी भी ' सन् 60 के बाद उभरने वाले महत्वपूर्ण कवियों में हैं, जिनकी दृष्टि यथार्थवादी है । इनकी कविताओं में आधुनिकता - बोध के कारण परिवेश की उन समस्त विकृतियों तथा विसंगतियों की अभिव्यक्ति की गयी है, जो आधुनिक सन्दर्भो में अपना अर्थ खो चुकी हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश का विस्तृत परिप्रेक्ष्य अपनी विरूपताओं के साथ कैलाश बाजपेयी की कविताओं में मिलता है । राजनीति सम्बंधी व्यंग्यात्मक कवितायें इसी विस्तृत परिप्रेक्ष्य के यथार्थ - चित्रण से सम्बद्ध हैं । संक्रांत, देहान्त से हटकर, तीसरा अंधेरा तथा डूबते इतिहास का गवाह इनके क्रमशः प्रकाशित काव्य - संग्रह हैं, जिनमें कवि की राजनीतिक व्यंग्य - दृष्टि क्रमशः विकसित एवं परिवर्तित हुयी है ।

' संक्रान्त ' में कवि की दृष्टि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के भारतीय समाज की दीन - हीन - दशा, अव्यवस्था, नैतिक गिरावट इत्यादि के पीछे सरकारी - तंत्र की असफलता से क्षुब्ध दिखती है । देश की वर्तमान अव्यवस्था तथा लोगों के कष्टों को देखते हुए कवि यह कहने को विवश हो उठता है कि -----

' सुनो, सुनो । दूर देश के लोगों
मुझे शर्म आती है कहते
कि मैं भारतीय हूँ ।'[1]

साठोत्तर कालीन नये कवियों ने समूची राजनीतिक विसंगतियों तथा विरूपताओं के सन्दर्भ में स्वतंत्रता प्राप्ति की विडम्बना पर तीखा व्यंग्य किया है । कैलाश बाजपेयी ने 'राजधानी ' शीर्षक कविता में आज़ादी की विडम्बना को निम्न पंक्तियों में व्यक्त करते हुए यथार्थ के कड़वे रूप को नग्न कर दिया है -----

---

1. संक्रांत - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 61

' एक सिल की तरह जैसे गिरी है स्वतंत्रता
और पिचक गया है पूरा देश ।'[1]

और सत्ताधारियों की वास्तविकता यह है कि वे राजनीति को साँप सीढ़ी के खेल की तरह खेलते हैं, जिसमें विडम्बना यह है कि सीढ़ियाँ सब उनकी हैं -----

' थोड़े से पेशेवर जुआरी
नहीं नहीं .....
सत्ताधारी
खेलते हैं खेल साँपें सीढ़ी का
सीढ़ियाँ सब उनकी हैं ।'[2]

एक अन्य कविता ' एक हल ' में कवि हास्य एवं विनोद की मुद्रा में व्यवस्था पक्ष पर चोट करता है -----

' जनता में चढ़कर
कहो रेल मंत्री से
प्लेटफॉर्म दिल्ली पर
बीवी बच्चों समेत
पूरा जिन्दा मिले
मेरा विश्वास है उस दिन से
या तो जनता न होगी
या फिर मंत्री सन्यासी हो जायेगा ।'[3]

' देहान्त से हटकर ' में कवि राजनीतिक विडम्बना को और अधिक तीक्ष्णता से उभारता है । इसमें भाषा का बदला हुआ तेवर कवि की निहित घृणा एवं आक्रोश की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के साथ दृष्टिगत होता है । ' मित्थ्याचार ' कविता में राजनीतिक

---

1. संक्रांत - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 31
2. संक्रांत - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 31
3. संक्रांत - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 20

विडम्बना विस्तृत सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्विरोधों तथा विसंगतियों के उद्घाटन के रूप में प्रकट हुई है । निम्न पंक्तियों में सत्ता - पक्ष के लगातार झूठे आश्वासन तथा जनता के पक्ष से लगातार ' फुसफुसी गाली ' में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति तथा सामाजिक प्रतिक्रिया के विडम्बनामय रूप को बड़े सपाट ढंग से, परन्तु तीखे व्यंगय - बोध के साथ उजागर किया गया है -----

' एक ओर लगातार झूठे आश्वासन
दूसरी ओर लगातार
फुसफुसी गाली ।'[1]

' रस वचन ' में कवि सत्तापक्ष के मूर्खो के बीच स्वयं को ही विदूषक के रूप में देखता है । वह ' साँप ' जैसे घातक लोगों को गाली न देकर उदार, शिष्ट आदि कहता हुआ ऐसी विडम्बना का बोध जागृत करता है, जिसमें व्यंग्य अपने तीखे प्रभाव के साथ ही मार्मिक बन पड़ा है -----

' सत्तारत मूर्खो के आगे झुका हुआ
अब मैं विदूषक लगता हूँ
अपने आपको
उदार, पक्षपात रिक्त , शिष्ट आदि कहता हूँ
गाली नहीं देता हूँ
साँप को ।'[2]

' एक नया राष्ट्रीय गीत ' में कवि ने आजाद भारत के विविध क्षेत्रों की विसंगतियों का उद्घाटन किया है । निम्न पंक्तियों में कवि का तीखा व्यंग्य स्वतंत्रता के पश्चात देश में व्याप्त अनुशासनहीनता तथा भष्टाचार की मनोवृत्ति के प्रति हैं -----

---

1. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 28
2. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 11

' गांधी का शिष्य मैं
कोई अनुशासन, कानून नहीं मानता
दरअसल
मैं बुरी तरह स्वतंत्र हूँ ।'[1]

' संडास ' कविता में कवि ऊपर पहुँचने के लिए घिनौने एवं कुत्सित तरीके अपनाने की प्रवृत्ति पर बड़ा कड़वा व्यंग्य करता है । इसमें राजनीतिक - सामाजिक दोनों ही दृष्टि से उन्नति करने में व्यक्ति के चारित्रिक हनन तथा मूल्य भ्रष्टता की ओर बड़ा प्रगल्भ तथा प्रतीकात्मक व्यंग्य है । इस प्रकार ' देहान्त से हटकर ' में कवि का व्यंग्य विडम्बनामय स्थिति के उद्घाटन में अधिक तीखा और पैना है । ' वी0आई0पी0 ' कविता में नेताओं के ढोंग एवं पाखंड पर करारा व्यंग्य वक्रोक्ति के माध्यम से किया गया है -----

' दुनिया भर में जितना शोर है
उससे कहीं अधिक
वे कुछ घंटों में कर सकते हैं
एक खास वक्त पर वे तुम्हारे लिए मौखिक रूप से दनादन मर सकते हैं ।'[2]

कैलाश बाजपेयी के तीसरे काव्य - संग्रह ' तीसरा अंधेरा ' में राजनीतिक स्थितियों के प्रति इनका व्यंग्य अधिक प्रत्यक्ष तथा प्रखर हो गया है । इस संग्रह में कवि अधिक सजग दिखता है और व्यंग्यात्मक स्थिति को बड़े हल्के - फुल्के ढंग से व्यक्त करता हुआ विनोद का पुट भी दे देता है । ' रजत - जयंती ' कविता में कवि का इतिहास बोध भी व्यक्त हुआ है, जिसमें वह अतीत की तुलना में वर्तमान राजनीतिक विसंगतियों को व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है -----

' पार्टिया छील रहीं कद्दू
अखण्ड भारत का
भारत कैसा भारत

---

1. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 133
2. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 199

भारत तो मर गया था सोमनाथ में
रही कसर पूरी कर गया फिरंगी
जो अंग्रेजी न जाने वह भंगी .... ।'[1]

अंतिम पंक्तियों में सरकार की, राजभाषा की उपेक्षा तथा अँग्रेजी को अधिक महत्व देने की, नीति के प्रति बड़ा पैना व्यंग्य है ।

' सरकारी सलाहकार ' कविता में वक्रोक्ति का सहारा लेकर बड़ा नुकीला व्यंग्य किया गया है । राजनीति में व्याप्त ढोंग एवं पाखण्ड को तार - तार कर कवि ने ढोंगी तथा दिखावटी राजनीतिज्ञों पर बड़ा तीव्र प्रहार किया है -----

' किस कदर मुश्किल है
कितना जोखिम भरा
ढोंग को उमर भर बरतना
गदहे की देह में
कई - कई साल शेर दिखना ।'[2]

इस प्रकार जहाँ प्रारम्भिक संग्रहों में कवि ने विडम्बना बोध को उभारते हुए व्यंग्य किया है, वहीं आगे जाकर उसका व्यंग्य सीधे व्यंग्यास्पद स्थिति पर प्रहार के रूप में व्यक्त हुआ है । ' महास्वप्न का मध्यान्तर ' (1980) संग्रह में कवि सामाजिक राजनीतिक परिवेश के बीच स्वयं को रखता हुआ अपने व्यंगात्मक उद्‌गार प्रकट करता है । इसमें भी हल्के - फुल्के ढंग से , तुकबंदी का प्रयोग करते हुए, तीक्ष्ण व्यंग्य - बोध उत्पन्न किया गया है । कहीं - कहीं मानसिक स्मृति बिम्बों के बीच - बीच में व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तियाँ की गयी है । प्रायः कवि एक ही कविता में समाज, राजनीति, धर्म तथा व्यक्ति, इन सबकी विडम्बनामय स्थितियों तथा विकृतियों को उजागर करता है और स्वयं भी इन स्थितियों के बीच पकता हुआ विद्यमान रहता है । इस संग्रह में कवि जहाँ कहीं व्यंग्य करता है, वहाँ उसका

---

1. तीसरा अंधेरा - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 105, 106
2. तीसरा अंधेरा - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 64, 65

मूड बड़ा सहज दिखता है । वह तीखे - व्यंग्य को सहज कथन एवं भंगिमा के साथ व्यक्त करता है, यथा ' सफाई ' कविता में -----

' किसी ने गोली मार ली
किसी ने गोली मार दी
मुझे बताया गया
हिटलर और गोडसे
दोनों को देश - प्रेम था
मैने फिर लिक्खा किताब में
पिस्तौल - प्रेम का ईजाद है ।'[1]

यहाँ राजनीतिक विडम्बना को ऐतिहासिक - सन्दर्भ में व्यक्त करते हुए कवि का क्रूर स्थितियों के प्रति बड़ा प्रगल्भ व्यंग्य है ।

एक अन्य लघु कविता ' विद्रूप गायन यानी विषकंथक ' में प्रतीक योजना तथा व्याज स्तुति का साथ - साथ प्रयोग कर कैलाश बाजपेयी ने चुनाव लड़ने वाले नेता के पाखण्ड एवं जनता के अधिकारो के लिए दिखावटी चिन्ता का पर्दाफाश कर बड़ा तीखा तथा सटीक व्यंगय किया है । नेता को ' बाज ' तथा जनता को ' चिड़ियाँ ' कहने तथा फिर ' चिड़ियों के अधिकारों के लिए परेशान बाज जी ' के ' चुनाव ' लड़ने के कथन द्वारा नेता की चालाकी, धूर्तता, अत्याचार, शोषक वृत्ति, ढोंग, स्वार्थपरता तथा अवसरवादिता पर बड़ी करारी चोट वक्रोक्तिपूर्ण शालीनता के साथ की गयी है -----

' बाज जी समाज की
सेवा का व्रत लिये
चिड़ियों को गाना
बच्चों को दाना
दिलवायेंगे बाज जी
बाज जी महान है
चिड़ियों के अधिकारों के लिए
परेशान बाज जी
लड़ रहे चुनाव जी ।'[2]

---

1. महास्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 24
2. महास्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 45

गणतंत्र का स्वतंत्र भारत में क्या हाल है, इसी सन्दर्भ में मंत्री की स्वार्थपरता तथा उसके अवसरवादी विचारों पर व्यंग्य करता कवि राजनीति के दोगले चरित्र को प्रत्यक्ष करता है निम्न पंक्तियों में -----

' लकीरों में बाँधकर
सुअरीले विचार
महामंत्री के
जो खुद पेट की खंदक में
पड़ा बहुत साल से
गूँगा गवाह है
गणतंत्री स्वाँग का ।'

यहाँ सुऊरीले विचारों वाले मंत्री का - पेट की खंदक में पड़े रहना तथा गणतंत्र के स्वाँग का गूँगा गवाह होना, अत्यंत कटु, तिक्त तथा प्रहारक व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं । इनके द्वारा स्वतंत्र भारत की राजनीति अपनी विडम्बनाओं के साथ साकार हो उठी है तथा गणतंत्र की वास्तविकता पर से पर्दा उठा दिया गया है । ' उसका समाधान ' कविता भी सम्पूर्ण परिवेश के विद्रूप भरे यथार्थ को व्यक्त करती है । कहीं - कहीं राजनीतिक दृष्टि का व्यंग्य अधिक स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होता है । कवि अन्योक्ति पद्धति का प्रयोग करता हुआ समुद्र के बहाने राजनीति एवं राजनेताओं पर तीखा कटाक्ष करता है निम्न पंक्तियों में -----

' कायदे से उठें लहरें
शार्क नामांकित
जोंक, केकड़ों को
सदस्य होना चाहिए
पार्टी का ।'[1]

कुल मिलाकर कैलाश बाजपेयी के काव्य में राजनीतिक चेतना स्वतंत्र भारत में नेताओं के पाखण्ड, गणतंत्र का खोखला स्वरूप, स्वतंत्रता का खोखला रूप, राजनीतिक भ्रष्टाचार

---

1. महास्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 67, 68

एवं अव्यवस्था, अवसरवादित्ता इत्यादि व्यंग्य के विषय बने हैं । कवि ने विडम्बनाओं के मर्मस्थल पर प्रहार किये है । प्रारम्भ में विसंगतियों तथा विडम्बनाओं के उद्‌घाटन के द्वारा उन पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति प्रमुख रही है, जो अन्त तक बनी रही है, परन्तु बाद की रचनाओं में कवि की स्वयं की व्यंग्यशीलता चुटीलेपन तथा तीव्रतर प्रभाव से भरकर विसंगतियों एवं विरूपताओं पर चोट करती दीख पड़ती है ।

साठोत्तर दौर के कवियों में धूमिल एक ऐसे कवि हैं, जिनकी काव्य चेतना में अकवितावादी तत्वों के प्रभाव के साथ ही राजनीतिक - सामाजिक विसंगतियों का उद्‌घाटन करने की प्रवृत्ति एवं अमानवीय स्थितियों के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश का जनवादी स्वर मिलता है । धूमिल के प्रथम काव्य - संग्रह ' संसद से सड़क तक ' में कवि की राजनीतिक - चेतना संसद के लोगों से लेकर सड़क की आम जनता की स्थितियों के प्रति जागरूक एवं तीखे व्यंग्य से युक्त है । इसमें सातवें दशक के उत्तरार्द्ध की कवितायें हैं । इनकी कविताओं में आज का राजनीतिक - सामाजिक यथार्थ कवि के तीव्र आक्रोश एवं घृणा के एक संयत काव्यात्मक - चमत्कारिक व्यंग्य - बोध के साथ अभिव्यक्ति पाता है । कवि का आक्रोश कविता की गढ़न में ढल कर एक ठोस सन्दर्भ - युक्त गंभीर मुद्रा ग्रहण कर लेता है, इसलिए वह समसामयिक राजनीतिक हलचलों की गूँज से युक्त होते हुए भी उसकी तात्कालिक क्रुद्ध प्रतिक्रिया मात्र नहीं रह जाता है । उसमें कवि की गहन चिन्तक एवं सर्वज्ञाता होने की दंभ एवं दर्प भरी मुद्रा आत्मविश्वास का आभाष देती हुयी प्रकट होती है । प्रायः उनकी कविता वक्तव्यों की शक्ल अख्तियार करती चलती है, पर उसमें समकालीन यथार्थ की सार्थक अभिव्यक्ति भी है । उनका व्यंग्य इन वक्तव्यों में घुला - मिला रहता है । कहीं - कहीं राजनीतिक नारे का रूप लेती हुयी भी कविता की कुछ पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं - जो राजनीतिक - वक्तव्यों के रूप में होती हैं । इन व्क्तव्य - नुमा पंक्तियों में कवि का व्यंग्य एक वैचारिक प्रश्नाकुलता एवं अनिश्चय की स्थिति के बीच से उभरता है । ' बीस साल बाद ' शीर्षक कविता में विसंगति - एवं विडम्बना बोध के यथार्थ प्रश्नों से जूझता हुआ कवि का व्यंग्य ध्वनित एवं संकेतित होता हुआ प्रकट होता है -----

' बीस साल बाद
मैं अपने आप से सवाल करता हूँ
जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है ? '[1]

इसी प्रकार की व्यंगात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है निम्न प्रश्नात्मक मुद्रायें -----

" कि संत और सिपाही में
देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन है ?"
× × ×
" क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है ?"[2]

यहाँ देश की आजादी के बीस वर्षों बाद की यथार्थ स्थितियों की विडम्बना के प्रति कवि का व्यंग्य प्रश्नाकुलता एवं अविश्चय की वैचारिक मुद्रा के साथ व्यक्त हुआ है । कवि की प्रश्नाकुल मुद्रा उसके विक्षोभ को भी ध्वनित करती है । इनका व्यंग्य प्रच्छन्न रहकर बोध के स्तर पर छूता है, प्रहार करता है । वह उद्वेलित करता है विचार के लिए उकसाता है । यथार्थ की विसंगतियों को कवि अपनी कविता में एक विशेष आकार में गढ़कर प्रस्तुत करता है, इसीलिए कविता में तराश रहती है । उसका व्यंग्य बोध भी अपने अत्यंत तीखे प्रभाव के साथ ही काव्य - सौंदर्य बनकर प्रकट होता है । जहाँ कवि सम्बोधन के स्वर में लिखता है, यहाँ गुस्सा एवं आक्रोश का तीखापन तथा उसकी तीव्रता का बोध कवि के अन्तर्निहित संकल्पात्मक दृढ़ता के स्वर में घुलमिल कर व्यंग्य को एक सार्थक उद्बोधन की गरिमा से युक्त करता है -----

" सिरकटे मुर्गे की तरह फड़कते हुए जनतंत्र में
सुबह -
सिर्फ चमकते हुए रंगों की चालबाजी है.
और यह जानकर भी तुम चुप रहोगे ।'[3]

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 9
2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 10
3. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 13

' अकाल - दर्शन ' में कवि का व्यंग्य यथार्थ की विसंगतियों के उद्घाटन में प्रकट हुआ है, जिसमें भावुकता या करूणा का कोई स्वर नहीं, कठोर तटस्थतापूर्ण व्यंगात्मक विवेचन है । इसमें तुकों के प्रयोग से एक चमत्कारिक काव्य - सौंदर्य की भी सृष्टि हुई है । इनके तुकों के प्रयोग में कोई खिलवाड़ की प्रवृत्ति लक्षित नहीं होती । वह विसंगतिबोध के सहज प्रवाह के रूप में प्रकट होकर एक अटपटेपन की सृष्टि करती है और कविता के व्यंग्य को अधिक चमका देती है । कुछ अंश निम्न है -----

" लोग बिलबिला रहे हैं (पेड़ों को नंगा करते हुए)
पत्ते और छाल
खा रह हैं
मर रहे हैं, दान
कर रहे हैं
जलसों, जुलूसों की भीड़ में पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं ।"[1]

उपरोक्त उद्धरणों में कवि का व्यंग्य, विसंगतियों एवं विरोधाभासों के तटस्थ काव्यात्मक विवेचन के बीच से कवि के स्वर की तल्खीं एवं उसके निहित आक्रोश - जनित कठोर - दृढ़ एवं वैचारिक रूख को स्पष्ट करता है ।

धूमिल की कविता को राजनीतिक सन्दर्भो में प्रतिपक्ष की कविता कहा जाता है । इनके राजनीतिक व्यंग्य प्रतिपक्ष की राजनीतिक चेतना एवं आक्रोश जनित व्यंग्य हैं । परन्तु इनमें, बौद्धिकता एवं राजनीतिक जागरूकता के कोरे तात्कालिक एवं नीरस विवरण या शुष्क वक्तव्यों से अलग; तीव्र आवेश एवं जन - जीवन से सम्बद्धता भी है । उनके राजनीतिक - व्यंग्य अन्तर्राष्ट्रीय - सम्बन्धों की कड़वाहट को भी अनावृत्त करते हैं, उसकी विडम्बना को उभारकर । ' शांति - पाठ ' में कविता का शीर्षक ही कविता में वर्णित विसंगतियों को

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 15, 16, 17

व्यंग्यात्मकता के साथ उभार रहा है । देश की विभिन्न राजनीतिक सामाजिक स्थितियों एवं उनकी विसंगतियों के बीच अपने 'मैं' के माध्यम से कवि विडम्बना एवं व्यंग्य को एक कटे - छँटे तराशे हुए वाक्य खण्डों के रूप में रखता हुआ स्वयं तटस्थ एवं कठोर मुद्रा धारण किये रहता है । वह उनका सत्य - दृष्टा होते हुए भी उनसे एक समझदारीपूर्ण तटस्थता एवं निर्लिप्तता बरतता है । यहाँ उनमें कबीर जैसी कठोर तटस्थ व्यंगात्मकता, दर्प एवं दृढ़ता का आभाष मिलता है । धूमिल की कविताओं में जो अशोभन शब्द आते हैं, वे ठेठ ग्रामीण फटकार के रूप में आक्रोश की तीव्रता के साथ व्यंग्य बोध को तीखा एवं मारक बनाते हैं, इसीलिए सहज ग्राह्य भी हो जाते हैं । परन्तु जहाँ केवल चौंकाने की प्रवृत्तिवश इनका प्रयोग होता है, वही ऐसे शब्द खटकते भी हैं । कवि को व्यंग्याभिव्यक्तियों में एक विशिष्ट प्रकार की सहजता के दर्शन होते हैं । यह सहजता उसे बौद्धिक जागरूक दृष्टि एवं राजनीतिक सामाजिक यथार्थ की गहरी समझ एवं तटस्थ दृष्टि से मिलती है । इस सन्दर्भ में रामवक्ष का यह कथन उद्घृत किया जा सकता है कि -----' उसे लगता है कि आस - पास जो कुछ है उसको बनाने देने में या बनने देने में उसकी कोई भूमिका नहीं है; इसकी जिम्मेदारी तो पुरानी पीढ़ी पर है । ऐसी स्थिति में वह अपने को गौरवान्वित करके उन सारी परिस्थितियों से ऊपर उठा लेता है और एक ऐसे विराट व्यक्तित्व का निर्माण करता है, जो इन सब स्थितियों पर हँस सके । यही वह जमीन है, जहाँ से धूमिल सारे सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हैं । उनका कवि - व्यक्तित्व कबीर की तरह सबसे श्रेष्ठ है ....।"[1]

' शांति - पाठ ' में कवि विदेशी साजिशों, मित्रता एवं भाईचारे की आड़ में वार करने वाले पड़ोसी देशों के साथ निभाने की विवशता,अणुबम के मजौदे तथा शांति की कामना; देश के भीतर बेरोजगारी जैसे गंभीर मसले तथा पंचवर्षीय योजनाओं जैसी बड़ी योजनायें, इन सबको एक साथ चमत्कारिक तथा वैदग्ध्यपूर्ण शैली में सामने रख कर तीखे व्यंग्य - बोध को उभारता है । कवि स्वयं को आधार में रखकर ही अभिव्यक्ति करता है, जिससे अभिव्यक्ति अधिक सजीव तथा व्यंग्य अधिक तीक्ष्ण से जाता है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

---

1. आलोचना - अप्रैल, जून,'75; पृ0 - 83

मैं देख रहा हूँ कि एशिया में दायें हाथों की मक्कारी ने / विस्फोटक सुरंगे बिछा दी है / × × × / मगर मैं अपनी भूखी अँतड़ियाँ हवा में फैलाकर / पूरी नैतिकता के साथ अपने सड़े हुए अंगों को सह रहा हूँ / भेड़िये को भाई कह रहा हूँ / × × × × × / मेरा गुस्सा / जनमत की चढी हुयी नदी में / एक सड़ा हुआ काठ है /'[1]

आजादी के बीस सालों में देश की गरीबी, नेताओं की कर्तव्यविहीनता तथा देश के वर्तमान एवं भविष्य की दिशाहीन विवशता को कवि ने ' राजकमल चौधरी के लिए ' कविता में बड़े कड़वे व्यंग्य के स्वर में व्यक्त किया है । इसमें भाषा का तल्ख एवं वीभत्स रूप देखा जा सकता है -----

' वर्तमान की बजबजाती हुयी सतह पर
हिंजड़ों की एक पूरी पीढ़ी लूप और अंधा कूप मसले पर
बहस कर ही है
आजादी - इस दरिद्र परिवार की बीस साला बिटिया
मासिक धर्म में डूबे हुए क्वारेपन की आग से
अंधे अतीत और लँगड़े भविष्य की
चिलम भर रही है ।'[2]

यहाँ वीभत्स बिम्बों में आजादी के बाद के भारत का चित्र उसके विसंगतियों की कुरूपता को दर्शाता हुआ कवि की तीखी घृणा एवं तीव्र आक्रोशपूर्ण व्यंग्य की तेज धार बनकर आया है । ' धूमिल की कविता सूक्तिधर्मी कविता है ।[3] अतः उनका व्यंग्य भी सूक्ति या वक्तव्यों की शक्ल में सामने आता है । ' शहर में सूर्यास्त ' नामक कविता की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' लाल हरी झण्डियाँ
जो कल तक शिखरों पर फहरा रही थीं
× × ×
स्याह हो गयी हैं और चरित्रहीनता
मंत्रियों की कुर्सी में तब्दील हो चुकी है ।'[4]

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 24, 25
2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 30
3. आलोचना - अप्रैल,जून'; रामवक्ष; पृ0 - 85
4. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 42

यहाँ मंत्रियों की कुर्सी ही चरित्रहीनता का पर्याय बन गयी है । कवि राजनीतिक यथार्थ के विकृत पक्ष को बड़े साहस, स्पष्टता एवं दृट निश्चयात्मकता के साथ व्यंग्य की तेज धार से युक्त करते हुए व्यक्त करता है । इसमें कवि के आक्रोश का आवेग काव्य - तत्वों (प्रतीक, वाक्रवैचित्र, वैदग्ध्य) में रूप ग्रहण करता हुआ ठोस और वजनदार बन गया है । यथार्थ का सच्चा तीखा बोध ही उसके व्यंग्य को भाषा के अशोभन प्रयोग के बावजूद छिछला नहीं होने देता । आज भारत में ' जनतंत्र ' का जो स्वरूप है, उसकी पहचान कवि इस प्रकार करता है -----

' उन्होंने जनता और जरायन पेशा
औरतों के बीच की
सरल रेखा को काटकर
स्वास्तिक चिह्न बना लिया है
और हवा में एक चमकदार गोल शब्द
फेंक दिया है - ' जनतंत्र '
जिसकी रोज़ सैकड़ो बार हत्या होती है
और हरबार बार वह भेड़ियों की जुबान पर ज़िंदा है ।'[1]

आज जनतंत्र वस्तुतः जनता को बेवकूफ बनाकर उसका शोषण करने वाले क्रूर सत्ताधारियों की एक चाल बनकर रह गया है, इसी सच्चाई को कवि ने तीखे तथा कड़वे व्यंग्य के साथ उजागर किया है । ' प्रौढ़ - शिक्षा ' कविता में सत्ता - पक्ष के शोषण की प्रक्रिया की बड़ी सूक्ष्म पकड़, व्यंग्य के तीखे बोध के साथ की गयी है । निम्न अंश दृष्टव्य है ----

' सबसे पहले उन्होंने एक भाषा तैयार की
जो तुम्हें न्यायालय से लेकर नींद से पहले
की -
प्रार्थना तक गलत रास्तों पर डालती थी
' वह सच्चा पृथ्वी - पुत्र है '
' वह संसार का अन्नदाता है ।'[2]

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 43
2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 46

यहाँ कवि ने प्रौढ़ - शिक्षा द्वारा गरीब अपढ़ जनता को अपने जाल में फँसाने की सत्ता की चाल को बेनकाब कर दिया है । इसमें कवि का उद्बोधक स्वर भी स्पष्ट है । धूमिल आम जनता के प्रतिनिधि हैं, जो कविताओं में उसीकी तरफ से जिरह करते हैं, तीखी व तेज तर्रार भाषा का प्रयोग कर भ्रष्ट व्यवस्था पर प्रहार करते हैं तथा यथार्थ को नग्न रूप में सबूत के तौर पर सामने रख देते हैं । साक्ष्य रूप में यथार्थ की तर्क संगत व्याख्या भी करते हैं और तत्थ्यों को कविता में पूरी ईमानदारी से बड़ी तटस्थ दृढ़ता के साथ एकत्रित करते हैं । तथ्यों के प्रति निश्चयात्मकता तथा कथन की दृढ़ता से कवि व्यंग्य - बोध को अत्याधिक असरदार और गंभीर बना देता है । यथार्थ की तिलमिलाने वाली विकृतियों के प्रति कवि बौखलाहट को संतुलित करता है - उन स्थितियों पर घृणापूर्णक प्रहार करके । शब्दो के अशोभन प्रयोग कवि के व्यंग्य की मार को घातक बनाकर प्रतिशोध लेते प्रतीत होते हैं । कवि विकृतियों को नग्न रूप में प्रस्तुत कर उन पर घृणा से थूकता - सा प्रतीत होता है ।

धूमिल में जहाँ एक ओर यथार्थ की प्रखर जागरूक चेतना है, वहीं वह अपनी अभिव्यक्ति शैली एवं भाषा के प्रति भी बड़े सजग व सतर्क दिखते हैं । कवि की भाषा व्यंगास्पद स्थितियों को उनकी समस्त कुरूपता के बीच पकड़कर यथार्थ स्तर पर दिखने वाली शालीनता के बीच ला खड़ा करती है । यर्थाथ का तीखा बोध श्रीकांत में भी है, पर उनके प्रस्तुतीकरण का ढंग खिलवाड़ एवं विनोद से भरा है । धूमिल की मुद्रा कठोर व गंभीर है । ' पटकथा ' में कवि जनतंत्र की विडम्बना को व्यक्त कर अपनी कविता की कठोर व तीखी भाषा का पक्ष स्पष्ट करता है -----

' मतलब की इबारत से होकर
सबके सब व्यवस्था के पक्ष में चले
गये हैं
× × ×
और विपक्ष में सिर्फ कविता है ।'[1]

----

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 67, 68

अतः व्यवस्था पक्ष की सारी मतलबी एकजुटता के खिलाफ वे कविता को बड़े मजबूत इरादों से गढ़ते हैं तथा उसे व्यवस्था की सारी विकृतियों के मुंह पर करारे तमाचे की तरह मारते हैं । ' नक्सलबाड़ी ' तथा ' पटकथा ' में समकालीन राजनीतिक यथार्थ व्यक्त हुआ है । स्वतंत्रता के पश्चात देश की राजनीतिक सामाजिक असंगतियों की व्यंग्यात्मक पहचान की गयी है । इस लम्बी कविता में कवि अपनी सूक्तिधर्मी पंक्तियों में बीच - बीच में व्यंग्यात्मक संकेत जिस तीक्ष्णता एवं पैनेपन के साथ देता है, वह कवि की अपनी निजी विशिष्टता है । कविता का व्यंग्य बोध ही उसके पूरे गठन को एक सार्थक अर्थवत्ता तथा संगति प्रदान करता है । व्यवस्था, प्रजातंत्र , नेता, जनता इत्यादि पर स्वगत कथन के रूप में व्यंग्य - कवि आम आदमी का प्रतिनिधि बनकर करता है । सत्ता - लोलुपता ने आज राजनीति को इतना घिनौना बना दिया है कि उसके प्रति कवि की राय निम्न प्रकार से तीखे व्यंग्य के साथ व्यक्त हुयी है --

' भूख से मरा हुआ आदमी
इस मौसम का
सबसे दिलचस्प विद्यापन और गाय
सबसे सटीक नारा ।'

यहाँ गरीबी एवं धर्मान्धता को राजनीति में किस प्रकार भुनाया जाता है इसकी तरफ बड़ा सारगर्भित व्यंग्य है । आज चुनाव एक विवशता बन गया है । निम्न पंक्तियों में जनतांत्रिक चुनाव पद्धति की विडम्बना पर तीक्ष्ण व्यंग्य लक्षित किया जा सकता है -----

' आपस में नफरत करते हुए वे लोग
इस बात पर सहमत हैं कि
' चुनाव ' ही सही इलाज है
क्योंकि बुरे और बुरे के बीच से किसी हद तक ' कम से कम बुरे को ' चुनते हुए
न उन्हें मलाल है, न भय है
न लाज है ।'[1]

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 118, 119

तीक्ष्ण व्यंग्यात्मकता ' अपनी सुविधाओं में लहूलुहान ' होने तथा टांगो में धमाका दबाकर बैठने की स्थिति द्वारा प्रकट है ।

प्रजातंत्र तथा संसद के प्रति कवि का व्यंग्यात्मक तेवर प्रारम्भ से अन्त तक की उनकी कविताओं में मिलता है । ' स ' और ' त ' का खेल ' कविता में संसद और तलवार को एक साथ व्यंग्यपूर्ण अर्थ में प्रयुक्त किया गया है -----

' 'स' और 'त' का खेल ' दिखाना है
ए बजे ताली
जो न बजाये उसके नाड़े को गाली
'स' से संसद
'त' से तलवार
क्यों जमूरे हाँ यार ।'[1]

' हत्यारे (एक) ' तथा ' हत्यारे (दो) ' में भी कवि के स्वर में उद्बोधन निहित हैं । इनमें कवि आम जनता को सत्ता - पक्ष की महीन चालाकियों की वास्तविकता से अवगत कराता हुआ सावधान करता है -----

' वे तुम्हारे सामने एक आइना रखते हैं और
तुम गुर्राने लगते हो
अपने खिलाफि एक बेगानी आवाज बनकर
और अब तो चुनाव हो रहा है
वे तुम्हारी कटी हुयी जेबों के नाम पर
अपना पर्चा दाखिल करने वाले हैं ।'[2]

' हत्यारे (एक) '

सभ्य, सुसंस्कृत तथा निरापद दिखने वाले राजनीतिक हत्यारों के प्रति कवि आम जनता को आगाह करता है । व्यंग्यात्मक तेवर के साथ -----

---

1. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 63
2. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 69

चुनाव के दौरान नेताओं की गतिविधियों के चित्रण द्वारा उनकी अवसरवादी सद्भावना तथा बड़े - बड़े वायदों पर कवि का पैना व्यंग्य निम्न कवितांश में दर्शनीय है -----

' हाँ यह सही है कि इन दिनों मंत्री जब प्रजा के सामने आता है
तो पहले से
कुछ ज्यादा मुस्कुराता है
नये - नयै वादे करता है
और यह सब सिर्फ घास के सामने होने की मजबूरी है ।'[1]

कवि राजनीतिक - यथार्थ के जिस रूप से परिचित है, उसके प्रति उसका व्यंग्य निर्णयात्मक स्वर में ढलकर आता है । भ्रष्ट - व्यवस्था पक्ष से सभी वर्गो के लोग मिले हुए हैं, इसके प्रति कवि तीखी वितृष्णा के स्वर में व्यंग्य करता है -----

' मैंने हरेक को आवाज दी है
हर एक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार .....
मैंने जिसकी पूँछ
उठायी है उसको मादा
पाया है
वे सबके सब तिजोरियों के दुभाषिये हैं ।'[2]

आठवें दशक के प्रारम्भ से लेकर बाद तक की कविताओं (सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र' संग्रह में) के कलेवर में संक्षिप्तता तथा तेवर में विनोदात्मकता भी दिखाई पड़ती है । इस दौर की कविताओं में भी राजनीति तथा आम आदमी दोनों ही उपस्थित हैं ।

' सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - (दो)' कविता में प्रजातंत्र के प्रति कवि का व्यंग्य एक घोषणा के रूप में है -----

' न कोई प्रजा है न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुला - सा षड्यंत्र है ।'[3]

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 124
2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 127
3. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 18

संसद तथा संविधान सभी व्यवस्था पक्ष द्वारा अपने हित में जनता का शोषण करने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले शब्द - मात्र होकर रह गये हैं; इस विडम्बनामय स्थिति के प्रति ' कोडवर्ड ' शीर्षक कविता में विनोदपूर्ण भंगिमा में व्यंग्य है, जो संक्षिप्त कलेवर में ही तीखे व्यंग्यात्मक प्रभाव से युक्त है -----

' मैं तीन बार संसद कहूँगा
और चार बार संविधानः
हिन्दुस्तानी लुकमे की आदी जुबान
दाँतों की दलबंदी तोड़कर बाहर आ जायेगी
फिर हम तितलियों के नगर की ओर चलेंगे
देशवासियों की पसली से अपनी यात्रा बजाते हुए ।'[1]

आठवें दशक की कविताओं में धूमिल का व्यंग्य - उनकी क्रान्ति - भावना एवं उद्‌बोधन के स्वर में भी व्यक्त हुआ है । ' संयुक्त मोर्चा ' कविता की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -----

' और तुम कहाँ रहते हो / संसद के पीछे / दँतचियार रिश्वती हथेली पर / या काम रोको प्रस्ताव की सूची में / × × × / हम दोनों अपने जानने और नकराने का / एक संयुक्त मोर्चा बनाये / × × × / और इस तरह / धुन्ना कविताओं / चुन्ना राजनीति / और मुन्ना विद्रोह को / ठेंगा दिखलायें /'[2]

यहाँ ' घुन्ना ' ' चुन्ना ' तथा ' मुन्ना ' शब्दों का व्यंग्यात्मक प्रयोग बड़ा विनोदपूर्ण साथ ही सारगर्भित भी है । जनता के ' दँतविचार रिश्वती हथेली ' पर होने की स्थिति के प्रति कवि का व्यंग्य दुहरा है । यहाँ भ्रष्ट - व्यवस्था तथा उसके प्रति जनता के उदासीन समझौतावादी रूख एवं विवशता, दोनों के प्रति तीखा व्यंग्य उद्‌बोधन के स्वर में है । तीखा पर साथ ही चुटकुले जैसी चुलबुली मुद्रा से युक्त व्यंग्य का एक अन्य उदाहरण है

---

1. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 28
2. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 33, 34

' लोकतंत्र ' शीर्षक कविता है । इसमें राजनीतिक अवसरवादी मनोवृत्ति के तहत समाजवादी विचार ग्रहण करने पर बड़ी गहरी मार, विदूषक की नाटकीय मुद्रा में की गयी है । कुछ अंश दृष्टव्य है -----

' मैने उसे सहलाया
मेरा पेट
समाजवाद की भेंट है
और अपने विरोधियों से कहला भेजा
वे आयें - और साहस है तो लिखें
मैं तैयार हूँ
न मैं पेट हूँ
न दीवार हूँ
अब मैं विचार हूँ ।'[1]

यहाँ कवि ने " मेरा पेट समाजवाद की भेंट है ' कहकर समाजवाद के नारे के पीछे छिपी निजी स्वार्थ भावना की तरफ बड़ा अर्थपूर्ण व्यंग्य किया है । क्रान्ति चेतना से युक्त एक अन्य कविता ' नौजवान ' में यथार्थ की विरूपता के प्रति व्यंग्य का आक्रोशपूर्ण स्वर महिला नेता के प्रतिनिम्न पंक्तियों में है -----

' अपनी सुविधाओं में
लहूलुहान एक गद्दीनशीन औरत
टाँगो में
धमाका दबाये बैठी है
और सारा हिन्दुस्तान
जबड़े में भिची हुयी
कलेजी की तरह बमक रहा है
क्या तुम निहत्थे हो ? '[2]

यहाँ सत्ता के क्रूर, अमानवीय स्वरूप के प्रति तीखी घृणा एवं आक्रोश के स्वर में

---

1. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 42, 43

2. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 51

' उनके पास हैं कई - कई चेहरे
कितने ही अनुचर और बोलियाँ
एक से एक आधुनिक, सभ्य और निरापद तरीके
ज्यादातर वे हथियार से अधिक तुम्हें विचार से मारते हैं
× × ×
वे जंजीरों को फूलों में छिपाकर लाते हैं ।'[1]

' हत्यारे (दो) '

' हरित क्रान्ति ' में सरकार की आर्थिक - विकास की भ्रमात्मक योजनाओं तथा नारों पर कवि की व्यंग्य - दृष्टि गयी है । इस प्रकार धूमिल की राजनीतिक यथार्थ की विद्रूपताओं को व्यक्त करती कविताओं में तीखा, आक्रोश भरा व्यंग्यात्मक तेवर प्रारम्भ से अंत तक बना हुआ है । बाद की कविताओं में इनकी व्यंग्य चेतना में यथार्थ - बोध के साथ क्रान्ति चेतना भी शामिल हो गयी है ।

लीलाधर जगूड़ी नयी कविता के युवा कवियों में महत्वपूर्ण हैं । इनके काव्य में राजनीतिक यथार्थ को पकड़ने की अपनी अलग विशिष्ट शैली है । इनके पहले काव्य - संग्रह ' नाटक जारी है ' में अन्य कवियों की अनुकृति की प्रवृत्ति, चमत्कारिक काव्य - कौशल, बड़बोलापन, तथा अतर्क्य, असम्बद्ध बिम्ब, फैन्टेसी का अस्वाभाविक प्रयोग, की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं । इसमें कवि की राजनीतिक दृष्टि इन तमाम प्रवृत्तियों के निरूपण के बीच - बीच में व्यंग्यात्मक तेवर के साथ प्रकट होती है । वस्तुतः कवि ने यथार्थ की विरूपताओं एवं असंगतियों को एक नाटक का रूपक देकर अभिव्यक्त किया है ।

आजाद भारत में विडम्बनाओं को व्यक्त करता हुआ कवि आजादी के प्रति अपनी तीखी प्रतिक्रिया आक्रोशपूर्ण उद्गार के रूप में ' इस तरह होना है ' कविता की कुछ पंक्तियों में व्यक्त करता है । कवि स्वातंत्र्योत्तर भारत में अभावों एवं भूख की जिन्दगी के सन्दर्भ में बड़ा कड़वा व्यंग्य करता है - ' मेरी और बाजार के कुत्तों की आजादी का फर्क ' कहकर तथा व्यवस्था - पक्ष की खामियों के मूल मर्म पर चोट उसके द्वारा ' जरूरतों के सही चेहरे पर पड़े हुये लाठी चार्ज ' की तरफ संकेत करते हुए करता है '-----

---

1. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 70, 71

' जिसकी जरूरतों के सही चेहरे पर
पड़े हुए लाठी चार्ज
मेरी और बाजार के कुत्तों की आजादी का फर्क है ।'[1]

आज जनतंत्र का स्वरूप क्या है, इसकी तरफ कवि का व्यंग्य इस तत्थ्य के उद्घाटन में निहित है कि वह (जनता)

' ..... सुविधाओं के जब्त होने के खतरों से
किसी हत्यारे को क्षमा करने के पक्ष में है ([2]

आज का व्यक्ति सुविधावादी दृष्टिकोण अपनाकर राजनीति सम्बंधी निर्णय लेता है, इसके प्रति कवि का व्यंग्य यहाँ अत्यंत वजनदार है । निम्न अंश में कवि सरकार के खुशहाली के दावों तथा देश की जनता की वास्तविक स्थिति के अन्तर्विरोध को व्यक्त करता हुआ सत्ता - पक्ष पर प्रहार करता है -----

' सूचना विभाग के हर पोस्टर पर
खुशहाली है चारों ओर
कंगाली के पास आटा नहीं गाली है ।'[3]

यहाँ व्यवस्था की विडम्बनामय स्थिति का उद्घाटन स्वयं एक व्यंग्य बन गया है । आज भारतीय लोकतंत्र में आम नागरिक की हैसियत से कवि की बौखलाहट स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक विसंगतियों की तरफ व्यंग्य पूर्ण संकेत के रूप में व्यक्त हुयी है । निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' चौथे मोर्चे पर बौखलाया हुआ
मत देकर लात खाया हुआ
अपने युग के विराट पुरूषों के चूतिया - चक्कर से
शब्दों के पास आकर पछताया हुआ
आप कह सकते हैं कि नागरकि हूँ ।' (नाटक जारी है)

---

1. नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 42 (1967)
2. नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 45
3. नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 61

यहाँ जगूड़ी की कविता पर अकविता का प्राभाव अभद्र शाब्दिक प्रयोग में लक्षित किया जा सकता है । निम्न पंक्तियों में कवि धूमिल की - सी मुद्रा में आज़ादी को लघु कार्यक्रम के बहाने डकैती, कहकर उस पर तीव्र प्रहार करता है ।

' आज़ादी जब अंधेरे के लेन - देन में आकार लेती है
तो वह व्यक्तिगत फायदों के बाबत
सार्वजनिक सेवा में
लघु कार्यक्रम के बहाने एक डकैती है ।'[1]

ǁ नाटक जारी है ǁ

कवि के दूसरे काव्य - संग्रह ' इस यात्रा में ' की कविताओं में सहज संवेदना की अभिव्यक्ति है । इसी सहज अभिव्यक्ति में व्यंग्यात्मक प्रसंग चुलबुलेपन के साथ विनोद को जन्म देते हैं । इसमें कहीं - कहीं व्यंग्य अपनी सहज मार्मिकता के साथ आये हैं । ' वहाँ जरूर कोई दिशा है ' मार्मिक संवेदना से युक्त ऐसी ही कविता है, जिसमें सत्ता - पक्ष के खोखले आश्वासनों, भ्रमों एवं शब्द - जालों तथा मतदाता की विडम्बनामय स्थिति का संकेत करता हुआ व्यंग्य विनोदपूर्ण नाटकीय तेवर में प्रगल्भता एवं पैनेपन के साथ व्यक्त हुआ है -----

' देख लेना वे एक दिन / कानून की सर्वोच्च पवित्रता लेकर / हमारे पास आयेंगे / ' ऐसी प्रधानमंत्री की इच्छा है ' - वे कहेंगे / तुम हमें चुनो / हम सब कुछ बदलकर रख देगें / इसके बाद भी अगर कोई भूख की बात करे / तो यह प्रधानमंत्री को सहन नहीं होगा / सबकुछ बिल्कुल तैयार है / सड़के / घर / कपड़े / पौष्टिक आहार / देखने के लिए कई मधुर सपने / × × × / प्रधानमंत्री कह दें / और मजाल है कि सूर्य इधर न आये /'[2]

यहाँ कवि का व्यंग्य वक्रोक्ति से युक्त होने के कारण अधिक तिलमिलाने वाला है। ' दुर्घटना स्थल ' कविता में कवि विनोदी लहजें में प्रकृति के माध्यम से राजनीतिक यथार्थ के प्रति व्यंग्य करता है । दल - बदल की नीति तथा नेता बनने की प्रवृत्ति के प्रति बड़ा सांकेतिक व्यंग्य निम्न पंक्तियों में है -----

---

1. नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 110
2. इस यात्रा में - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 78, 79

' सामने का टीबा
जो ढेर सारी उदासी के नीचे डूब गया था
उसने एक टोपी पहन ली
और पेड़ों ने दल - बदल लिए हैं
(ताकि लोग समझ लें
कि समय के मुताबिक सबकुछ ठीक हो रहा)[1]

यहाँ ' टीबा का टोपी पहन लेना, पेड़ों का दल बदल लेना तथा इसके द्वारा ' समय के मुताबिक सब कुछ ठीक हो रहा है ' दर्शाता समसामयिक चुनावी दाँव - पेंच तथा अवसरवादी प्रवृत्तियों की तरफ हल्के - फुल्के ढंग से असरदार व्यंग्य है ।

लीलाधर जगूड़ी के तीसरे काव्य - संग्रह ' रात अब भी मौजूद है ' में भी राजनीतिक - विसंगतियों के प्रति तीखी व्यंग्य - चेतना अपने विनोदात्मक लहजे तथा नाटकीय मुद्रा के साथ व्यक्त हुयी है । कविता के विस्तार में व्यंग्यात्मक स्थितियाँ प्रायः घुली - मिली रहती हैं । ' स्वतंत्र जुबान ' कविता में कवि की सामाजिक राजनीति दृष्टि यथार्थ के व्यंग्य को छूती चलती है । यथार्थ की विसंगति तथा विकृति को कामेडी का रूप देकर कवि बड़े मनोरंजक ढंग से व्यंग्य करता है । वस्तुतः जगूड़ी के व्यंग्य करने की यह विशिष्ट शैली है । रामवक्ष कवि की इसी विशिष्ट शैली की पहचान इन शब्दों में करते हैं ' जगूड़ी इस व्यवस्था की विभीषिका को ऐसे हल्के रूप में प्रस्तुत कर देते हैं कि वह चुटकुला बनकर रह जाती है । वे कोई ऐसी भीषण बात कहते हैं, जिसका अर्थ बड़ा भयावह होता है - लेकिन अन्दाज - ए - बयाँ यह है कि ऐसा तो चलता ही रहता है । '[2] ' स्वतंत्र - जुबान ' में कवि बड़ी नाटकीय विनोदमयता के साथ तथा फैंटेसी का प्रयोग करते हुए यथार्थ के व्यंग्य को उजागर करता है । कविता की बुनावट में कवि की सूक्ष्म व्यंग्यात्मक संवेदनायें गुंथी रहती हैं, जो कहीं - कहीं स्पष्ट रूप से उभर आती है । कवि गंभीर विषयों पर बड़ी लापरवाह मुद्रा में हँसता हुआ व्यंग्य करता है । यहाँ कवि स्वतंत्र जुबान की असलियत को राजनीतिक चालाकी तथा स्वार्थपरता के सन्दर्भ में सम्मुख रख उसका उपहास करता प्रतीत होता है -----

---

1. इस यात्रा में - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 67
2. आलोचना - अप्रैल, जून' 75; पृ0 - 85

' उठते ही उसने ये तय किया
ताकि कल उसकी जुबान कहीं पकड़ी न जाय
जो पहले ही कई मामलों में दबी हुयी है
इसलिए हरेक आदमी के पास
एक स्वतंत्र - जुबान होनी जाहिए
जिससे वह एक स्वतंत्र बात कह सके ।'[1]

सत्ता - पक्ष पर प्रहार बड़ी सहजता से तथा आनन्द लेते हुए करना जगूड़ी के व्यंग्य को बड़ा सरस बना देता है, पर व्यंग्यास्पद स्थिति के प्रति उसका प्रच्छन्न वार बहुत गहरा होता है । ' कार्यकर्ता से ' कविता में वन मंत्री महोदय के कष्टों का बखान करता कवि उसके विदूषकत्व को उभारते हुए बड़ी गहराई से चोट करता है । कुछ अंश निम्न है-----

' आँकड़े वाली जनता, समस्या वाली जनता
और स्थानीय जनता तो क्या चीज् है
अब तो और भी महान हो गयी है
भरतीय जनता
किस जनता से किस जनता तक जाने में
किस जनता को किस जनता तक लाने में
कितनी कठिनाई होती है इस जाड़े में ।'[2]

' आम आदमी 1973 ' में कवि उद्बोधन के स्वर में आम आदमी को सम्बोधित करता हुआ सत्ता - पक्ष की चालाकियों पर से पर्दा उठाता है । वह सरकारी - तंत्र के मर्मस्थल पर चोट करते हुए जनता को भ्रमित करने की पद्धतियों को स्पष्ट करता हुआ आम जनता की विवशता एवं मूर्खता पर भी पैना व्यंग्य करता है -----

' तुम भयानक भूख से भौंकने लग गये हो
सहानुभूति की जंजीर से
असल में
वे तुम्हें बांधना चाहते हैं
× × ×

---

1. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 20
2. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 30

तुम अब कहीं भाग नहीं सकते हो
तुम सिर्फ काट सकते हो
तुम सिर्फ एक जीवित दुर्घटना हो ।'[1]

' उच्चैश्रवा ' एक लम्बी कविता है, जिसमें राजनीतिक यथार्थ पर व्यंग्य अनेकों मुद्राओं में है । इसमें चमत्कारपूर्ण शाब्दिक - प्रयोग और तुकों का खिलवाड़ करते हुए कवि ने राजनीतिक यथार्थ के व्यंग्यास्पद रूप को चुलबुलेपन के साथ और जहाँ - तहाँ तल्खी के साथ प्रकट किया है । ऊपर से सहज, विनोदपूर्ण तथा नाटकीय होते हुए भी इनका व्यंग्य अपने मार्मिक प्रभाव एवं तीखी व्यंजना के कारण अनूठा बन गया है । इसमें राजनीति तथा साहित्यिक कर्म को परस्पर सम्बद्ध करते हुए व्यंग्य किया गया है, परन्तु कहीं - कहीं राजनीतिक व्यंग्य प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हैं । चुनाव के दाँव - पेंच तथा लोकतंत्र के विडम्बनामय स्वरूप पर कवि का बड़ा मार्मिक एवं तीक्ष्ण व्यंग्य निम्न पंक्तियों में है -----

' पर हम जानते हैं कि लड़ेगा कौन
किस जनता से किस जनता को लड़ाना है
× × ×
जब हम सुनाते हैं परिणाम
तो वे ' पस्त पड़ जाते हैं, यह सोचकर '
कि हर तरह की लड़ाई आखिर बेकार होती है
वे सहमत हो जाते हैं
यह हुआ सच्चा सह - मत - दान
हर पाँचवें साल जीतेगा बलराम
हारेगी जनता ।'[2]

यहाँ कवि रघुवीर सहाय की सी अभिव्यक्ति - शैली अपनाता है तथा बड़े सहज, सरल ढंग से राजनीतिक पार्टियों द्वारा जनता को ही आपस में लड़वाने की साजिश को बेनकाब करता है । बलराम के जीतने तथा जनता के हारने का यह दुष्चक्र हर पाँचवें साल चलेगा । लोकतंत्र की इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है ।

---

1. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 44
2. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 78

जगूड़ी का अगला काव्य - संग्रह ' बची हुयी पृथ्वी ' में उनकी अभिव्यक्ति शैली तथा कत्थ्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत मिलता है । अब कवि की दृष्टि अधिक मानवीय एवं यथार्थ धरातल पर प्रतिष्ठित होती दिखती है । कवि राजनीति को आम आदमी की करूण स्थिति से सम्बद्ध करता है । इसके पूर्व की कविताओं में भी यह प्रवृत्ति है, परन्तु इस संग्रह की ' बलदेव खटिक ' कविता में इसका पूर्ण विकास दृष्टिगत होता है । व्यवस्था की अमानवीयता को उभारता हुआ व्यंग्य पुलिस - तंत्र तथा कानून पर पैना प्रहार है -----

' मरना कहीं भी अपराध नहीं है
और तुम्हारी माँ का
हमारे पास कोई वारण्ट नहीं जो हम गाड़ी भेज दें
आखिर मरने वाले को कौन पकड़ सकता है
अक्सर हमारे पकड़े हुए भी मर जाते हैं ।'[1]

जगूड़ी का नवीनतम काव्य - संग्रह ' घबराये हुए शब्द ' है, जिसमें आठवें दशक के उत्तरार्द्ध की कवितायें हैं । इस अवधि तक आते - आते कवि की संवेदना राजनीति से अधिक, समाज व व्यक्ति की स्थिति से जुड़ी है । यहाँ कवि का व्यक्ति के साथ आत्मीय साक्षात्कार है तथा कवि की सूक्ष्म संवेदनशील दृष्टि काव्य - चमत्कार तथा कविता को गढ़ने की होड़ से मुक्त है । यहाँ कवि में अनुकृति की प्रवृत्ति भी नहीं दिखती । वस्तुतः कवि की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति अपने संग्रहों में उत्तरोत्तर ठोस धरातल को प्राप्त करने की चेष्टा से युक्त रही है ।

' बच्चा और राजनीति ' में कवि का व्यंग्य सहज आत्मीय क्षणों के बीच राजनीतिक विद्रूप एवं विसंगति से साक्षात्कार करता है । राजनीतिक यथार्थ में व्याप्त आतंक एवं भयानकता की व्यंजना करते हुए बड़े प्रच्छन्न व्यंग्य की सृष्टि निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है--

---

1. बची हुयी पृथ्वी - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 106, 107

' वे सपने में किसी दूसरे की ओर से प्यार कर रहे थे
वे सपनों में बच्चों को प्यार करके बहला नहीं रहे थे
दहला रहे थे
(इस तरह सन् 1979 में भी बच्चों को
बड़े खराब सपने आ रहे थे
जो उनके बचपन में एक नया डर फैला रहे थे ।)'[1]

यहाँ व्यंग्य बड़ी मनोवैज्ञानिक पड़ताल के साथ मानवीयता से सम्बद्ध होकर मार्मिक रूप में उभरा है । उसका बोध तथा अभिव्यक्ति अत्यंत बारीक है । ' अब उसकी बारी है ' कविता में भी व्यंग्य सहज एवं मानवीय सन्दर्भों से युक्त है । यथार्थ की विसंगति का उद्घाटन करते हुए कवि ने उसके प्रति कचोट पैदा करने वाला व्यंग्य किया है । ' सच बोलने की परिणति तानाशाही व्यवस्था में क्या होती है - उसकी विडम्बना पर कवि का मर्मस्पर्शी व्यंग्य निम्न पंक्तियों में है -----

' अगली सुबह भी खामोश लोग खामोश थे
जबकि उसकी खाल रात को ही खींची जा चुकी थी
× × ×
अब उसकी बारी है जो दूसरा बाल बच्चेदार आदमी है
और सच बोलने वाला है ।'[2]

इस प्रकार जगूड़ी की काव्य - चेतना में राजनीतिक चेतना क्रमशः मानवीय सन्दर्भों से युक्त होती गयी है । उसमें सहजता तथा सादगी का अपेक्षाकृत समावेश होता गया है, और चमत्कृत करने की प्रबल प्रवृत्ति क्रमशः मंद पड़ती गयी है । कुल मिलाकर जगूड़ी की नवीनतम कवितायें इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कवि अपनी व्यंग्यात्मक क्षमता की सार्थक अभिव्यक्ति बिम्बों और प्रतीकों के अम्बार लगाये बिना तथा शब्दों व तुकों का कौशल दिखाये बिना भी करने में पूर्णतः समर्थ है ।

---

1. घबराये हुए शब्द - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 15
2. घबराये हुए शब्द - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 70

छठें दशक के कवियों में व्यंग्य की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ त्यागी उल्लेखनीय हैं । इनके प्रारम्भिक काव्य संग्रह ' सूखे हरे पत्ते ' (1962) तथा ' कल्पवृक्ष ' (1965) में व्यंग्यात्मक कवितायें कम हैं । इनमें कवि की रूझान प्रकृति, सौंदर्य तथा प्रेम की स्थितियों के प्रति अधिक रही है । बाद के काल में व्यंगात्मक कवितायें लिखने की प्रवृत्ति अधिक मिलते. है । इनके व्यंग्य राजनीतिक स्थितियों पर कम. मिलते है । इनके व्यंग्य राजनीतिक स्थितियों पर कम, समाज एवं व्यक्ति पर अधिक हैं । राजनीतिक व्यंग्य भी राजनेताओं को सामाजिक स्थिति से सम्बद्ध हैं ।

कवि के प्रारम्भिक संग्रह ' सूखे और हरे पत्ते ' में संकलित ' बिग गन ' तथा ' स्टाप - प्रेस ' शीर्षक कविताओं में राजनीतिक व्यक्ति के जीवन एवं उसकी मृत्यु की विडम्बना पर कवि की व्यंग्य - दृष्टि गयी है । बड़ी सहजता से सरल भाषा में, ' एक बड़े आदमी ' के रूप में नेता के स्वागत तथा जयजयकार के बीच कवि उसके जीवन के खोखले स्वरूप को बिम्बों द्वारा प्रकट कर देता है । यहाँ कवि के व्यंग्य में कोई आक्रोश या घृणा परिलक्षित नहीं होती, बल्कि वह एक प्रकार की दया एवं सहानुभूति से भरा हुआ नेता के जीवन के यर्थाथ - पक्ष को उद्घाटित करता है तथा उस पर व्यंग्य करता है । इसका व्यंग्य ऊपर से तो सादा - सा दिखता है, पर वह बड़े गहरे में तिलमिला देने वाले प्रभाव से युक्त है । ' बिग गन ' शीर्षक कविता द्रष्टव्य है -----

> ' कल स्टेशन पर एक बड़ा आदमी देखा / लगता था मुर्दा. जैसा / एकदम मुर्दा. / भीड़ से घिरा / फूलमालाओं से. लदाः / और भीड़ ? भीड़ बेकल थी / छुट्टी पाने को / उसे गाड़ी में लाद / जयजयकार बोल / वापस जाने को / x x x / और ठीक मुर्दे की तरह / सब लोग उसकी प्रशंसा ही करते थे / और सारे लोग / उसी की तरफ आँख गड़ाये दिखते थे / और जो छोटे - छोटे जिंदे आदमी / रेंग रहे थे इधर उधर / मेरे जैसे / उन्हें कोई देखता ही न था /'[1]

' स्टाप - प्रेस ' कविता में भी कवि सत्ता - पक्ष से सम्बन्धित ' बड़े आदमी '

---

1. सूखे और हरे पत्ते - रवीन्द्र नाथ त्यागी; पृ0 - 7।

की मौत पर बड़े वैचारिक स्तर पर व्यंग्य करता है । मृत्यु एक ऐसा सत्य है, जो बड़े और छोटे के भेद को नहीं मानती । जीवन भर कानून, फौज एवं सरकार की सुरक्षा में रहने वाला व्यक्ति भी अन्ततः एक साधारण इन्सान की तरह ही मर गया, इसी दार्शनिक विचार को राजनीतिक प्रभाव युक्त व्यक्ति के सन्दर्भ में कवि ने बड़े प्रच्छन्न व्यंग्य के साथ व्यक्त किया है । ' इंसान मर गया ' कहकर ही कवि तमाम राजनीतिक सुविधाओं की व्यर्थता के प्रति बड़े गूढ़ रूप में व्यंग्य करता है । कुछ अंश निम्न है -----

' सुबह की ताज़ा खबर
इंसान मर गया
× × × ×
बड़ा सुरक्षित था वह -
बड़ी - बड़ी फौजें, कानून और सरकार
उसकी रक्षा करती थीं
पर फिर भी बेचारे नें
आज प्राण छोड़ ही दिए ।'[1]

कवि के ' कल्पवृक्ष ' तथा आखिरकार ' (1978) संग्रहों में समाज में व्यक्ति की जीवन चर्या से सम्बद्ध व्यंग्य दृष्टि मिलती है । ' अंतिम बसंत ' (1988) में संकलित 'ढंग' शीर्षक कविता का व्यंग्य राजनीतिक यथार्थ को तुकों के द्वारा विनोदपूर्ण सहजता से व्यक्त करता हुआ निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है । कवि नगर में होने वाले ' दंगे ' से ' लफंगे ' एवं नेता के ' नंगे ' पन को जोड़ता हुआ दंगों के पीछे नेताओं की मिली भगत की तरफ सहज प्रफुल्ल मुद्रा में पैना व्यंग्य करता है -----

' नगर में हो गये दंगे
क्रियाशील हो उठे लफंगे
नेता लोग थे सदा के नंगे ।'[2]

---

1. सूखे और हरे पत्ते - रवीन्द्र नाथ त्यागी; पृ0 - 73
2. अंतिम वसंत - रवीन्द्र नाथ त्यागी; पृ0 - 32

सुरेन्द्र तिवारी की राजनीति के प्रति व्यंग्य - दृष्टि बड़ी सहज मुद्रा एवं सरल भाषा में व्यक्त हुयी है । कवि के व्यंग्यात्मक तेवर में, राजनीतिक विसंगतियों को व्यक्त करते समय, हल्के से विनोद का भी पुट प्रायः रहता है । वक्रोक्ति के द्वारा व्यंग्य करना इनकी विशिष्ट मुद्रा है । एक सुलझी हुयी समझ से उत्पन्न व्यंग्य उनकी कविताओं में देखा जा सकता है । इनके प्रारम्भिक संग्रह ' जूझते हुए ' की कुछ कविताओं में कवि की राजनीतिक - चेतना व्यक्त हुयी है, जो व्यंग्यात्मक है । ' पार्टी ' कविता में नेताओं के दल - बदल की नीति पर कवि का प्रहार वक्रोक्तिपूर्ण ढंग से बड़ा तीव्र है -----

' समझदार
खा - पीकर चले गये
नासमझ
कर न सके जल्दी
नासमझ पार्टी में बने रहे
समझदारों ने पार्टी बदल दी ।'[1]

' आह्वान ' शीर्षक के अन्तर्गत सत्ता - पक्ष की चमचागीरी करने वालों के प्रति भी कवि का व्यंग्य वक्रोक्तिपूर्ण है -----

' सरकार किसी पार्टी की बने
चमचे वही हैं
जो हर सरकार के गुन गाते - गाते
प्रभावशाली हो जाते हैं
ये
सारी दुनिया खरीद सकते हैं
बेचकर सिर्फ अपना ईमान ।'[2]

आगे चलकर कवि की मुद्रा विनोदपूर्ण होती गयी है । ' आठवें दशक की एक शाम ' में संकलित कविता ' दिक्कते ' में कवि पक्ष एवं प्रतिपक्ष की मानसिकता पर संक्षिप्त

---

1. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 26
2. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 46

व्यंग्य चुटकुला शैली में करता है यथा -----

> ' क्या हुआ जो
> बलिया पा सनावर के है
> पता नहीं हम पार्टी - इन - पावर के हैं ।'[1]

' कुछ नही होता ' कविता में कवि की मुद्रा बड़ी संयत दिखती है, भाषा सरल तथा व्यंग्य में विनोद का पुट मिला हुआ है ।

> ' कुर्सी पर बैठा हुआ आदमी / अपने आप समझदार हो जाता है / और / धन किसी भी तरह हथियाकर / आदमी इज्जतदार हो सकता है / × × × / अपने आप कुछ हो जाये / तो जीत हमारी है / कुछ न हो / तो / हमारे विरोधियों की जिम्मेदारी है /'[2]

यहाँ राजनीतिक सत्ता प्राप्त करके समझदार तथा ' इज्जतदार ' बनने की विडम्बना पर तीखा व्यंग्य है ।

' खरीद फरोख्त ' कविता में विकृत एवं भ्रष्ट सरकारी - तंत्र पर कवि का प्रहार नाटकीय शैली में है । इसमें लोकतंत्र के विडम्बनामय स्वरूप को ' बहुमत के तेज से कोई देवता जगायेंगे ' कह कर व्यक्त किया गया है । बेइमान के पक्ष में नारे लगाती भीड़, तथा उसमें एकाध शुद्ध आदमी का बेइमान दिखना ' - आज की राजनीति में व्याप्त बेइमानी, लोकतंत्र की स्थिति तथा जनता की कूपमंडूकता, इन सभी के प्रति तीखा व्यंग्य है -----

> ' बेइमानी के पक्ष में / भविष्य के विद्वान / कोई सिद्धान्त बनायेगें / और बहुमत के तेज से / एक देवता जगायेंगे / भीतर से वह जो भी हो / ऊपर से / पूरा ईमानदार लगेगा / और उसके पक्ष में / नारे लगाती भीड़ के बीच / एकाध शुद्ध आदमी / खुद गुनहगार लगेगा /'[3]

---

1. आठवें दशक की एक शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 40
2. आठवें दशक की एक शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 57
3. आठवें दशक की एक शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 66, 67

' चोर - रास्ता ' कविता में कवि ने व्यथा के स्वर में राजनीतिक - सामाजिक विडम्बना को निजी सन्दर्भ में व्यक्त अफसरशाही के भ्रष्टाचार के बीच ईमानदार होना जान - बूझकर अभावों का जीवन स्वीकार करना है । कवि अपनी इसी विवश अभावपूर्ण जिन्दगी के कोण से भ्रष्ट - तंत्र की भ्रष्ट कार्य - प्रणाली को उजागर करता है -----

' मुनिसपलिटी में क्लर्क लगने के लिए
मैं अपनी योग्यताओं पर भरोसा करता रहा
बजाय बड़े बाबू को दस रूपया देने के
या बिना बिक्री और आयकर बचाये
सोचना रहा कि धन्धे में मुनाफा होगा ।'[1]

' दिनचर्या ' कविता में कवि ने ' मैं ' शैली में राजनीतिक व्यक्ति की दिनचर्या के वर्णन में उसके अवसरानुकूल विविध प्रकार के परस्पर विरोधी भाषण देने की प्रवृत्ति को उद्घाटित कर उसके प्रति विनोदपूर्ण व्यंग्य किया है । इसमें कवि उसके वास्तविक एवं प्रकट रूप के अन्तर को स्पष्ट करता हुआ उसके मुखौटों की मीठी चुटकी लेता है । कुछ अंश निम्न हैं -----

' मुझे उद्घाटन करना था
एक अखाड़े का
× × ×
मैंने कहा देश जा रहा है
रसातल को
हमें जगाना है आज
× × × ×
हर घर को अखाड़ा बनाओ
दरवाजे - दरवाजे कुश्तियाँ करवाओं
एक आदमी से दूसरे को लड़ाओ
जितना बन पड़े पहलवानों की जनसंख्या बढ़ाओ ।'[2]

---

1. आठवें दशक की एक शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 72, 73
2. आठवें दशक की एक शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 82

इसी कविता की आगे की पंक्तियों में नेता का कथन पूर्वोक्त भाषण से विरोधाभासपूर्ण है -----

' नसबंदी सप्ताह का समापन मेरा अगला प्रोग्राम था ।'

इस सम्पूर्ण कविता में अलग - अलग उद्‌घाटन समारोहों में दिये गये परस्पर - विरोधी वक्तव्यों द्वारा व्यंग्य बड़े मनोरंजक एवं विनोदपूर्ण ढंग से उभरा है । ' किस्सा एक बहरे तथा बहुत से अंधों का ' कविता में कवि ने ' बहरे ' तथा ' अंधों ' के प्रतीक द्वारा नेता तथा जनता की स्थिति पर नाटकीय शैली में सारगर्भित तथा तीखा व्यंग्य किया है । चुनाव की प्रक्रिया में जनता द्वारा अंधेपन का परिचय देकर अयोग्य व्यक्ति का चयन किया जाना तथा सत्ता में आने के पश्चात नेता का जनता के दु:ख - दर्द की तरफ से बहरा बन जाना, इसी का यथार्थ - व्यंग्य - चित्र कवि ने प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । निम्न अंश दृष्टव्य हैं -----

> ' अंधों नें / बहरे के गले में जयमाला डाल दी / × × × / धीरे - धीरे सभी अंधे/ बहरे के बैठाये बैठने / और उसी के चलाये चलने लगे / × × × / बहरे नें बड़ें - बड़े करतब दिखाये / तब अंधे अपनी आदत के खिलाफ घबराये / बहरे / बतादे क्या हुए तेरे वाले ? / × × / अंधों का शोर अब जमीन हिलाये दे रहा था / बहरा निश्चिंत था / शोर उसे सुनाई ही नहीं दे रहा था / '[1]

इस प्रकार सुरेन्द्र तिवारी के व्यंग्य राजनीति के प्रति तात्कालिक प्रतिक्रिया एवं आक्रोश से युक्त नहीं है । उनमें एक समझ के साथ राजनीति विसंगतियों को पकड़ने तथा उन्हें नाटकीय मुद्रा तथा हास्य - विनोद के तेवर के साथ प्रस्तुत करते हुए उन पर तीखा और गहरा प्रभाव छोड़ने वाला व्यंग्य करने की क्षमता मौजूद है ।

---

1. आठवें दशक की एक शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 93, 94

वेणु गोपाल की कविताओं में राजनीतिक यथार्थ का तीखा व्यंग्य प्रतीकात्मक एवं नाटकीय ढंग से व्यक्त हुआ है । इनके प्रारम्भिक संग्रह ' वे हाथ होते हैं ' की ' मुरदे ' कविता में सत्ता की कुर्सी पर बैठते ही किस प्रकार व्यक्ति मनुष्यत्व की सारी विशेषतायें भूलकर मात्र कुर्सी के लिए जीता है; और मात्र उसीका होकर रह जाता है, उन्हें न प्राकृतिक रंग अच्छे लगते हैं न अन्य कोई इतर वस्तु ; इसी स्थिति पर नाटकीय ढंग से, विनोद की सृष्टि करते हुए अत्यन्त पैना व्यंग्य है । कुछ अंश दृष्टव्य है -----

' एक समिति बैठी
फैसला हुआ कि मुरदे इसलिए मुरदे थे कि वे कुर्सियों की सीमा में सीमित थे
अगर किसी दुर्घटनावश उनकी पहुँच में
कुछ खतरनाक चीजें पहुँच गयी हो तो उन्हें
हटाकर फिरसे सही चीजें रख देनी चाहिए
इस निष्कर्ष को जल्दी ही व्यवहार में लाया गया और
उन भटकते हुए मुर्दों के आगे
कुछ कुर्सियाँ रख दी गयीं ।'[1]

' जनता कविता और चुम्बन ' कविता में जनता की विवशता एवं मूर्खता तथा लोकतंत्रीय प्रणाली की विडम्बना के प्रति बड़ा तीक्ष्ण व्यंग्य है । इसमें कवि की दृष्टि केवल राजनीतिक नहीं है । वह आम व्यक्ति के पूरे व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के दुष्चक्रों को रेखांकित करता हुआ लोगों की राजनीतिक समझ पर प्रहार करता है । इन सभी स्थितियों के बीच कवि अपने कवि कर्म की विवशता के बीच उन सबका विश्लेषण करता हुआ उनके प्रति वितृष्णा एवं उपेक्षा - भाव से भरा हुआ स्वयं भी विद्यमान है । यौन - शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है, पर वह मात्र चमत्कार - प्रदर्शन या कुंठा की अभिव्यक्ति नहीं है । वह यथार्थ के कड़वे - तीखे बोध को सच्चा आकार देनें हेतु प्रयुक्त हुयी है । निम्न पंक्तियाँ जनता के 'होने' एवं वोट डालने की स्थिति के पीछे विचारहीनता एवं भ्रम का उद्घाटन कर उसके विवश भाव से यथास्थिति से संतुष्ट जीवन - यापन पर करारा व्यंग्य है -----

---

1. वे हाथ होते हैं - वेणु गोपाल; पृ0 - 49

' लोगे कह नहीं पाते - सहते रहते हैं / चुपचाप / जनता नाम ओढ़कर / फटे कपड़े से पिचके पेट को छुपाते हुए / आखिरकार पहुँच ही जाते हैं मतपेटी में मत डालने / ' भविष्य ' और ' आशा ' जैसे दोगले शब्दों / के हाथ अपनी अस्मत बेचते हुए / अपने को कृतार्थ अनुभव करते हैं / '[1]

यहाँ कवि जनता नाम ओढ़ कर जाने, फटे कपड़े तथा पिचके पेट छुपाने; दोगले शब्दों के हाथों अस्मत बेचने और कृतार्थ अनुभव करने तथा दड़बों में लौटने, इन सभी स्थितियों में, चुनाव एवं वोट की प्रक्रिया के सन्दर्भ, में लोकतंत्र की विडम्बना तथा जनता की मूढ़ता, अज्ञानता तथा विवशता को प्रत्यक्ष कर देता है । ' जंगल - गाथा ' शीर्षक लम्बी कविता में कवि ने एक तिलिस्मी - लोक का निर्माण करते हुए उसके दृश्यों में राजनीतिक यथार्थ तथा उसकी विरूपता के प्रति लेखकीय समझौतावादी दृष्टि पर बड़ा सटीक व पैना व्यंग्य किया है । इसीके अन्तर्गत राजनीतिक लाभ लेकर अपनी छवि बनाते नेताओं, भूखी जनता, उन्नति का भ्रमजाल इन सभी का दृश्य प्रस्तुत करते हुए कवि उसकी व्यंग्यात्मकता को उजागर करता है । निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' मैने देखा
चौराहे पर लाठियाँ खाती हुयी भीड़ की भगदड़
('शान्ति - व्यवस्था' उसने कहा)
भूख और बीमारियों से तिल - तिल मरते लोगों का
वोट डालने के लिए मीलों लम्बी कतारें बाँधना
('जनतंत्र की महिमा' उसने कहा) ।'[2]

वेणु गोपाल के ' चट्टानों का जल गीत ' (1980) संग्रह की एक कविता में भारतीय प्रजातंत्र तथा उसके मंत्रियों के प्रति उपहास भाव से भरा हुआ व्यंग्य है, जिसमें रघुवीर

---

1. वे हाथ होते हैं - वेणु गोपाल; पृ0 - 49
2. वे हाथ होते हैं - वेणु गोपाल; पृ0 - 92, 93

सहाय के राजनीतिक व्यंग्यों की प्रारम्भिक मुद्रा की स्पष्ट छाप है -----

> मैं उसे देखता हूँ -----
> भारतीय प्रजातंत्र का हें हें करता
> भारवान, तोंदवान मंत्री
> कब कौन सी बेतुकी बात
> .कहाँ बोल देगा
> कोई नहीं जानता ।[1]

ऋतुराज की कविताओं में राजनीतिक विसंगतियों तथा अन्तर्विरोधों के प्रति व्यंग्य बड़ी शालीन तथा संयत मुद्रा में मिलता है । इन्होंने प्रायः राजनीतिक यथार्थ की विद्रूपता पर आयरनी द्वारा बड़ा सांकेतिक व्यंग्य किया है । आक्रोश की तात्कालिक उत्तेजना - रहित इनका व्यंगय प्रभाव में बड़ा नुकीला है, जो गहराई में उतर जाने वाला है । नयी कविता को समृद्ध करने वाले युवा कवियों में ऋतुराज का महत्वपूर्ण स्थान उनकी राजनीतिक - यथार्थ की जागरूक प्रखर चेतना के कारण है ।

राजनीतिक परिदृश्य को शालीनता से प्रस्तुत करता कवि, वक्रोक्तिपूर्ण ढंग से सत्ता - पक्ष के अवसरवादी झूठे एवं खोखले दावों तथा उनकी वास्तविक नीयत पर ' कौन ' शीर्षक कविता में अत्यन्त चुभता व्यंग्य करता है -----

> ' लान पर बैठे हैं सारे अखबारनवीस / बतकई चल रही है कॉफी की गर्मी में / कल देश जान जायेगा / कि गरीब चमड़ी के लिये / कौन सा दल सही नाप के कपड़े पहनायेगा / कौन देगा उसके मुंह में निवाला / बाढ़ और अकाल से / मुक्ति दिलाने वाला देवता कौन होगा ??/ और अगर देवी कुपित हुई / तो / कौन इसका दोष जनता के मत्थे मढ़ेगा ??? /'[2]

---

1. चट्टानों का जलगीत - वेणु गोपाल; पृ0 - 103
2. पुल पर पानी - ऋतुराज; पृ0 - 21

' व्यस्त हैं ' कविता में कवि बड़ी सहजता से उद्बोधन की मुद्रा में देश की गरीबी एवं अशिक्षा के बीच ' उबाऊ लोकतंत्र ' के प्रति तीखा व्यंग्य यथार्थ के विरोधाभास के साथ प्रकट है । रोटी देने के बदले स्वयं उसे खा जानें की प्रक्रिया लोकतंत्र के विडम्बनामय रूप तथा सत्ता - पक्ष के भ्रष्टाचार पर तीक्ष्ण व्यंग्य है -----

' मनचाहे और उबाऊ लोकतंत्र ने
तुम्हारा परिवार घोट दिया
बच्चों की शिक्षा को एक गैर जरूरी तुच्छता से
मढ़ दिया

× × ×

लोकतंत्र ने रोटी के साथ वही किया
जो एक बिल्ली चूहे के साथ करती है खेल - खेल में ।'[1]

सहजता एवं सरलता के साथ ही राजनीतिक विसंगतियों के प्रति तीखा व्यंग्य - बोध ऋतुराज की कविताओं में देखा जा सकता है । ' एक आदमी अल्पनाओं के पीछे चिना हुआ ' कविता में -----, शासन से चिपके रहने के लिए कितने झूठ तथा फरेब का सहारा लिया जाता है, सत्ता लोभी होकर भी जो साधु बना फिरता है तथा आम ईमानदार आदमी को साधारण समझा जाता है, इन सभी स्थितियों को बड़े सहज ढंग से परन्तु गहरी चोट पहुँचाते हुए व्यंग्य के माध्यम से प्रत्यक्ष किया गया है -----

' वे लोग झगड़ते हैं
और कहते हैं कि कोई झगड़ा नहीं हुआ
पूछोगे तो कहेंगे कि कभी नहीं रूठे
दूर नहीं हुए
शासन में चिपके रहकर भी
वे साधु भये
और हम साधारण ।'[2]

---

1. पुल पर पानी - ऋतुराज; पृ0 - 30
2. पुल पर पानी - ऋतुराज; पृ0 - 81

नयी कविता के युवा कवियों में आज़ादी के बाद की राजनीतिक स्थितियों के प्रति मोहभंग व्यंग्यात्मक तीखेपन से व्यक्त हुआ है । चंद्रकांत देवताले को आज़ादी के पूर्व महान दिखने वाले राजनीतिक लोगों के चेहरे अब घिनौने दिखते हैं । कवि की घृणा एवं आक्रोश तीखा व्यंग्य बन कर निम्न कवितांश में व्यक्त हुई है -----

> ' आग लगे दिनों में / कितने पवित्र और महान / हो गये थे वे / और आज आग बुझने पर / लोकप्रियता और वफादारी के / झमेले के बीच उनका घिनौना चेहरा / भीतर के कष्ट को / दुगुना बढ़ाते हुए / हमसे कह रहा है - " मृत चेहरे की / कोई शिनाख्त नहीं होती / '[1]
>
> (हड्डियों में छिपा ज्वर)

चंद्रकांत देवताले की कविताओं में राजनीतिक स्थितियों के प्रति एक गहन निराशा व्यंग्यात्मक रूप में व्यक्त हुई है । युवा कवियों में आज़ादी के प्रति व्यंग्य प्रायः उनकी वितृष्णा का प्रकाशन करते हुए व्यक्त हुआ है । चन्द्रकांत देवताले की निम्न पंक्तियों में स्वतंत्रता एवं उसकी उपलब्धियों के प्रति बड़ा उपेक्षामूलक व्यंग्य है -----

> ' और स्वतंत्रता जैसा कोई भी अर्थ नहीं है / केवल कुछ शब्द हैं / जिन्हें हम खौलते पानी से निकाल कर / रेत पर सुखा रहे हैं / और अखबार को समचार / औरत को लूप / दफ्तर को योजना / आदमी को भूख देने वाले संसार में हम / मन्त्र और तंत्र और यन्त्र / और ज्ञान और विज्ञान के मसान में / कविता जगा रहे हैं /[2]

स्वतंत्रता का अर्थ केवल दिखावटी प्रगति रह गया है । कवि ' भूख देने वाले संसार के ' मसान में ' कविता जगा रहा है, इन पंक्तियों द्वारा प्राप्त आजादी पर तीखे व्यंग्य के साथ कवि - कर्म की विवशता पर भी व्यंग्य है ।

मणि मधुकर आज़ादी बाद की स्थितियों के प्रति गहन निराशा को व्यंग्य के स्वर

---

1. दीवारों पर खून से - चन्द्रकांत देवताले; पृ0 - 23
2. दीवारों पर खून से - चन्द्रकांत देवताले; पृ0 - 72

में निम्न प्रकार से व्यक्त करते हैं -----

> ' तकलीफों के गुच्छे मीलों लम्बे राष्ट्रीय वैभव में
> छितराकर सूख जाते हैं आये दिन
> और आज़ादी का अंधा विश्वास मनौती के रंगीन
> चिथड़े की तरह
> रजत जयन्ती के शामियाने में लहराने लगता है बेसबब ।'[1]

यहाँ आजादी के बाद हुए मोह - भंग की स्थिति को प्रतीकों द्वारा उभारकर चुभता व्यंग्य किया गया है । ' उत्पात ' शीर्षक कविता में मणिमधुकर ने समकालीन राजनीतिक यथार्थ को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त किया है । व्यवस्था - पक्ष तथा अफ़शरशाही, सभी जनता को लूटने वाले हैं, फिर भी इन्हें बर्दाश्त किया जा रहा है , यही आज की विडम्बनामय स्थिति है -----

> ' चूहे खूब उत्पात मचा रहे हैं / खा गये हैं / खेत - खलिहान कि खोखला / कर रहे हैं, नगर को / बर्दाश्त करो, बर्दाश्त करो / × × × / रेशम की शतरंज/ कि मौजूद / हाथी - घोड़े - प्यादे / सब चूहों के संग खेलने में / मशगूल हैं / कुतर रहे हैं काजू हमरे / बाँके सिपैया / मस्त - मस्त ता - ता थैया /' बर्दाश्त करो, बर्दाश्त करो / '[2]

यहाँ सत्ता - पक्ष एवं पूँजीवादी पक्ष से अफसरों की मिली - भगत, तथा उनके द्वारा जनता को लूटने की प्रक्रिया के प्रति तीखा व्यंग्य ' चूहों ' तथा शतरंज के ' हाथी घोड़े प्यादे ' के प्रतीकों द्वारा किया गया है । कवि का विनोदात्मक स्वर उसके तीव्र आक्रोश से निःसृत है ।

युवा कवियों में राजीव सक्सेना ' स्व ' की अनुभूति में पिरोकर बाह्य यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं । कवि अपने चारों तरफ के बाह्य परिवेश - राजनीति, समाज, व्यक्ति,

---

1. बलराम के हजारों नाम - मणि मधुकर; पृ0 - 50

1. बलराम के हजारों नाम - मणि मधुकर; पृ0 - 98

साहित्य के विविध सन्दर्भों को अपनी लम्बी कविता ' आत्म निर्वासन ' में दृश्य - चित्रों के रूप में प्रस्तुत करता है । निम्न पंक्तियों में कवि का उद्‌भार व्यंग्यपूर्ण है -----

' लोग भीड़ क्यों हैं
जुलूस क्यों नहीं बन जाते
मैं रोग - शैया से उछलकर
बाहर पहुँचने को कसमसाता हूँ
कायर कण्ठ में घुमनेवाले क्रान्तिकारी नारे की तरह । '[1]

इसमें कवि की क्रान्ति - चेतना भी एक विवशता के रूप में व्यक्त हुयी है । यथार्थ की यथास्थिति के प्रति एक तीखा आक्रोश इन पंक्तियों में निहित है । कवि ने ' कायर कण्ठ में ' ' क्रन्तिकारी नारे ' के कथन द्वारा आम जनता की, साहस के अभाव में भीड़ बनकर जीने की, स्थिति के प्रति अर्थपूर्ण व्यंग्यात्मक संकेत किया है । देश की अराजक स्थिति तथा सरकार के दमनात्मक रवैये के प्रति व्यंग्य निम्न पंक्तियों में व्यक्त हुआ है । देश भक्ति की बातें करने वालों से कवि को खतरा महसूस होता है -----

' कहीं अश्रु गैस लाठी से
वे ला रहे हैं लोगों को होश में
× × × ×
उनके देशभक्ति की बातें बघारते ही
मुझको लगता है
वे अभी छुरा भोंक देंगे
मेरे पलक मारते ही ।'[2]

यहाँ यथार्थ के विरोधाभास के प्रति व्यंग्य को कवि ने बड़े तीखे स्वर में उद्‌घाटित किया है । देशभक्ति की बातें करने वालों से छुरा घोंप देने का खतरा राजनीति के क्रूर, छद्‌म रूप को उसकी भयानकता के साथ प्रत्यक्ष कर देता है ।

---

1. आत्म निर्वासन तथा अन्य कवितायें - राजीव सक्सेना; पृ० - ११
2. आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएँ - राजीव सक्सेना; पृ० - १2

आठवें दशक में नयी कविता के युवा कवियों ने नये आयाम जोड़े हैं । इस दौर की कविता में तीखे आक्रोश एवं घृणा की अभिव्यक्ति से अलग, भाव - बोध की सहज एवं सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है । व्यंग्य का प्रहार प्रत्यक्ष न होकर गहरे स्तर पर चोट करने वाला है । राजेश जोशी की कवितायें इस सन्दर्भ में उल्लेख्य हैं । सहज - बोध के स्तर को कविता में उतारते हुए व्यंग्य की अदृश्य धार को धीरे से गहरे में उतार देना कवि की विशिष्टता है । राजेश जोशी की कविताओं में स्थिर, परिपक्व एवं संवेदनशील धरातल की पकड़ मौजूद है । ' एक दिन बोलेंगे पेड़ ' संग्रह में जो कवितायें राजनीतिक दृष्टि की हैं, वे भी कवि की जनवादी चेतना से युक्त हैं । ' नौंवी मंजिल ' कविता में कवि बड़ी शालीनता एवं सादगी से तथा वैचारिक धरातल से व्यवस्था - पक्ष के यथार्थ का अवलोकन करता है -----

' सचिवालय की नौवीं मंजिल से देखो
नौवीं मंजिल से सब कहीं
सबकुछ हरा - भरा दिखता है
× × ×
नौवीं मंजिल के केबिन में टहलता अफसर
सोचता है
कितना झूठ कितना गलत
सूखे और भूखे का शोर
कितनी हरी - भरी है धरती ।'[1]

यहाँ कवि ने सचिवालय की नौंवी मंजिल द्वारा ही व्यवस्था - पक्ष की यथार्थ स्थितियों के प्रति अनभिज्ञता तथा असम्पृक्ति की तरफ व्यंग्यात्मक संकेत किया है । सुविधा में जीने वाले अफसरशाही मनोवृत्ति पर से परदा हटाते हुये कवि ने बड़ा शालीन किन्तु पैना व्यंग्य किया है । एक अन्य कविता ' चौरासी बंगले ' में वर्ग - वैषम्य पर आधारित व्यवस्था - पक्ष की अभिजात्य - भावना पर सूक्ष्म एवं पैना व्यंग्य संयत स्वर में है । यहाँ कवि रघुवीर सहाय की शैली से प्रभावित दिखता है, जब वह ' चौरासी ' संभ्रांत लोगों की हरकतों द्वारां उनके, ऐश्वर्य, गर्व तथा पूँजीवादी रूप को उभारता है ------

---

1. एक दिन बोलेंगे पेड़ - राजेश जोशी; पृ0 - 7।

' बगुले से उजले - उजले
धुले - पुँछे
हल्के से मुस्कराने वाले
सलाम के जवाब में
सिर्फ मुंडी हिलाने वाले
चौरासी - लोग
सारे शहर पर उनका रौब - दाब चलता है
वे जिसकी चाहें खाट खड़ी कर सकते हैं ।'[1]

इसमें लोकतांत्रिक पद्धति की विडम्बना, उसमें व्याप्त असमानता, शोषण एवं अत्याचार को बड़ी सहजता से प्रस्तुत किया गया है । कवि ने सूक्ष्म स्तर पर तीखापन उत्पन्न करते हुए व्यंग्य किया है ।

इस प्रकार नयी कविता में बाद के युवा कवियों में राजनीतिक - यथार्थ की विकृतियों के प्रति एक संतुलित तथा संयमित दृष्टि का विकास क्रमशः लक्षित होता है । नयी कविता - दौर के कवियों की व्यंग्य - दृष्टि में भी सातवें तथा आठवें दशक में आकर पर्याप्त संतुलन एवं संयम उत्पन्न हुआ है । वस्तुतः कविता के भीतर राजनीतिक चरित्रहीनता एवं मूल्यहीनता के प्रति तात्कालिक उत्तेजना से युक्त प्रतिक्रिया की आगामी - परिणति, उसके प्रति एक वैचारिक संयम से युक्त व्यंग्य - दृष्टि के विकास के रूप में हुई है, जिसमें कवि स्वयं तमाम विसंगतियों से ऊपर उठकर, तटस्थ ढंग से देख - परख कर उन्हें कविता में सजीव ढंग से प्रस्तुत कर देता है । इस सन्दर्भ में प्रेमशंकर का कथन सर्वथा सही है कि ' भ्रष्ट व्यवस्था के भीतर भारतीय समाज की अपनी अस्मिता क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर समकालीन रचना के पास भी नहीं है शायद । इसीलिए आरम्भ में उसमें आक्रोश-फुफकार है या फिर स्थिति से पलायन न कर पाने की विवशता का चीत्कार । पर धीरे - धीरे वह सँभली है, संयमित हुई है, अधिक दायित्वपूर्ण भी ।'[2]

---

1. एक दिन बोलेंगे पेड़ - राजेश जोशी ; पृ0 - 73, 74
2. 'समकालीन कविता और जीवन - यथार्थ - प्रेमशंकर; आलोचना - अक्टूबर, दिसम्बर' 85; पृ0 - 47

अध्याय - चतुर्थ।

सामाजिक व्यंग्य

प्रयोगवादोत्तर काल में सामाजिक परिवेश में मूल रूप में दो प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं । पहला है आधुनिक जीवन - दृष्टि के फलस्वरूप प्राचीन सांस्कृतिक - नैतिक मूल्यों का विघटन तथा उसके प्रति निषेध का भाव । दूसरा परिवर्तन वैज्ञानिक तथा यांत्रिक उन्नति के फलस्वरूप विकसित नगर - सभ्यता एवं संस्कृति है, जिसके खोखले तथा विकृत रूप में मनुष्यता की सहज और निश्छल संवेदनायें दबकर रह गयी हैं । मनुष्य भी मशीनों की भाँति कृत्रिम एवं संवेदनशून्य होता जा रहा है । उसमें आडम्बर तथा प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी, आधुनिकता को फैशन के रूप में अपनाने के कारण, गहरे पैठ गई है । एक ओर तो शहरी जीवन की चकाचौंध का आकर्षण और दूसरी ओर उसमें अपना स्थान बनाने की होड़ और उससे उत्पन्न जटिल तथा विडम्बनापूर्ण स्थितियाँ, इन दोनों के बीच मध्यवर्गीय समाज की खोखली, त्रासद तथा असंगत जीवन पद्धति ने नये कवियों के भाव - जगत को उद्वेलित किया है । प्रयोगवादोत्तर कवियों ने प्राचीन मूल्यों, विश्वासों मान्यताओं तथा रूढ़ियों के खोखले, निरर्थक और अप्रासंगिक स्वरूप पर तीव्र प्रहार करने के साथ ही साथ मध्यवर्गीय जीवन के दोहरे स्तर की विडम्बना पर भी आक्रमण किया है ।

नयी कविता के प्रगतिशील विचारधारा और जनवादी चेतना के कवियों की सामाजिक चेतना मूलतः बुर्जुआ वर्ग के आभिजात्यभाव, ऐश्वर्य - प्रदर्शन तथा शोषण की अमानवीय एवं स्वार्थलिप्त गतिविधियों के प्रति व्यंगयशील रही है । धीरे - धीरे राजनीतिक सत्ता के पूँजीवादी शोषक स्वरूप में ढलते जाने के कारण इन कवियों की दृष्टि राजनीतिक व्यवस्था पक्ष के शोषण तथा अमानवीय स्वरूप को उद्घाटित करने की ओर उन्मुख होती गयी है । राजनीतिक परिवेश के इस दबाव ने युवा कवियों में जनवादी - चेतना का विकास किया, जो उनके राजनीतिक व्यंग्यों के रूप में सामने आई हैं । इस प्रकार राजनीतिक विकृतियों के प्रति नये कवियों की अधिकाधिक व्यंग्यशीलता का कारण भी मूलतः असमानता, वर्ग - वैषम्य एवं सामाजिक - आर्थिक शोषण की बुर्जुआ प्रवृत्ति है । सामाजिक जीवन पर दृष्टि डालते हुए इन कवियों का व्यंग्य पूँजीवादी शोषण एवं शोषकों के प्रति तीखे आक्रोश एवं उपहास की मुद्रा में व्यक्त हुआ है । नये कवियों में जातीयता की भावना से अधिक वर्ग - भावना के अवांछनीय

एवं त्रासद स्वरूप के प्रति व्यंग्य - चेतना जागृत हुई है ।

प्रयोगवादोत्तर कविता में सामाजिक विसंगतियों का चित्रण प्रायः व्यक्ति - जीवन के अन्तर्द्वन्द्वों, तनावों, विसंगतियों तथा विरोधाभासों के सन्दर्भ में हुआ है । ' उसके कवियों में प्राचीन सामाजिक रूढ़ियों तथा प्रथाओं पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति कम है । आज के समाज में बदले हुए जीवन - मूल्यों तथा उसके फलस्वरूप व्यक्ति - जीवन में आये विडम्बनामय परिवर्तनों के प्रति इन कवियों की दृष्टि अधिक गई है । नयी कविता में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ प्रारम्भिक दौर में अधिक हैं, परन्तु बाद में कवियों के विश्लेषण का आधार या माध्यम समाज की विसंगतियों तथा विडम्बनाओं के बीच जीता मानव ही है । डॉ0 जगदीश गुप्त के शब्दों में ' समाज की चरम सार्थकता सामूहिक रूप से मानव - व्यक्तित्व के विकास में निहित है, क्योंकि व्यक्ति उसकी अनिवार्य इकाई है ।'[1] इसीलिए नयी कविता में व्यक्ति - वैशिष्ट्य के प्रति भी विशेष जागरूकता है । समाज के अन्तर्विरोधों को व्यक्ति के जीवन में घटित होता दिखाते हुए नये कवियों ने ' मैं ' शैली का अधिकाधिक प्रयोग किया है । कवि अपने ' मैं ' को समाज के मैं पर आरोपित करता हुआ समाज के प्रत्येक व्यक्ति की पीड़ा, विडम्बना, तथा व्यंग्यात्मक स्थितियों को अपनी कविता में व्यक्त करता है । युवा कवियों के प्रारम्भिक रचनाओं में यह मैं व्यक्तिवादी - चेतना से युक्त है । उसमें अकविता के कुंठित व्यक्तिवादी - भावनाओं के प्रभाव से उच्शृंखल एवं अप्रतिबद्ध व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति भी दिखती है । पर क्रमशः इन कवियों का व्यंग्य जनवादी चेतना से जुड़कर सामाजिक प्रतिबद्धता से युक्त होता गया है । सातवें आठवें दशक में युवा कवियों नें बाह्य यथार्थ को अपने ' स्व ' में ढालकर निजी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है । अज्ञेय इस प्रवृत्ति को नयी कविता का दोष मानते हुए चौथा - सप्तक की भूमिका में लिखते हैं ----- " आज की कविता का बहुत बड़ा और शायद सबसे बड़ा दोष है कि उसपर एक मैं छा गया है । वह भी अपरीक्षित और अविसर्जित ' मैं ' ।"[2]

---

1. नयी कविता - स्वरूप और समस्यायें - जगदीश गुप्त; पृ0 - 319
2. ' कवि - दृष्टि ' - अज्ञेय; पृ0 - 95

परन्तु अकविता दौर के कुछ कवियों की कुछ रचनाओं को छोड़कर यह ' मैं ' सामाजिक जीवन की ठोस विकृतियों से अलग व्यक्ति - जीवन को आक्रांत करने वाली अधिक सूक्ष्म तथा जटिल विसंगतियों के व्यंग्य को अधिक विश्वसनीय ढंग से उजागर करता है । आज का मानव सामाजिक भीड़ का अंग होते हुए भी अकेला है । इस निपट अकेलेपन के साथ भी वह समाज की अवांछित, असंगत तथा जटिल स्थितियों के बीच जीनें तथा उन्हें झेलने को विवश है । भीष्म साहनी के शब्दों में ' आज यदि मनुष्य का अकेलापन दुखान्त आयाम ग्रहण कर गया है तो वह भी मनुष्यों के अपने रिश्तों के ही सन्दर्भ में ।'[1] अतः व्यक्ति के चारित्रिक मूल्यों में जो गिरावट आई है, उन्हें सामाजिक - राजनीतिक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिगत बोध के स्तर पर नयी कविता में प्रायः अभिव्यक्ति मिली है । उसमें सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन में संबन्धों के विकृत, खोखले एवं असंगत स्वरूप को उसकी विडम्बनापूर्ण स्थिति में उद्घाटित किया गया है । इन सभी स्थितियों के प्रति नये कवियों में आक्रोश, क्षोभ, घृणा एवं उपेक्षा भाव के साथ विविध रूपों में व्यंग्यशीलता प्रगट हुई है । सामाजिक विसंगतियों को प्रत्यक्ष करने के लिये नयी कविता में मिथकीय चरित्रों व सन्दर्भों का प्रतीकात्मक प्रयोग करने की प्रवृत्ति भी अधिकांश कवियों में मिलती है । कुछ मिलाकर प्रयोगवादोत्तर कविता की सामाजिक - चेतना वर्ग वैषम्य, पूँजीवादी शोषण, उच्च वर्गों के दिखावे, ऐश्वर्य तथा आभिजात्य - भाव, जातीयता की भावना, नगर सभ्यता के विकृत रूप, वैज्ञानिक एवं यांत्रिक सभ्यता के अमानवीय प्रभाव, मध्यम वर्ग की जीवन शैली, व्यक्ति - जीवन की विडम्बनामय स्थिति, आधुनिकता का खोखला स्वरूप, इन सभी के प्रति तीखी व्यंग्यात्मकता से युक्त रही है ।

अज्ञेय प्रयोगवादोत्तर नयी कविता के जनक हैं । इनके काव्य में व्यक्ति - वैशिष्ट्य की पक्षधरता स्पष्ट रूप में प्रकट हुयी है । प्रारम्भ में कवि में व्यक्ति - स्वातंत्र्य के हनन तथा उस पर समाज के अनावश्यक दबाव के प्रति निषेधात्मक चैतन्यता अधिक है । परन्तु व्यक्तिवाद का यह रूप अपने अतिवादी घेरे से धीरे - धीरे समाज - सम्पृक्ति की ओर उन्मुख हुआ है । उनकी सामाजिक - चेतना को सामाजिक अवांछनीय स्थितियों के प्रति उनके तीखे

---

1. 'संत्रास का आतंक '- भीष्म साहनी - 'आलोचना' - अक्टू0,दिस0'68; पृ0 - 11

व्यंग्य के रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है । अज्ञेय आभिजात्य वर्ग से सम्बद्ध होते हुए भी उसकी विकृतियों से सर्वथा अलग हैं । इसीलिये इन्होंने इस वर्ग के प्रति पैना तथा निर्मम व्यंग्य किया है । वस्तुतः कवि का आभिजात्य - संस्कार उसके अभिव्यक्ति - पक्ष पर तो प्रभाव डालता है, पर उनके भाव - पक्ष को कहीं भी आक्रानत नहीं करता । इस सन्दर्भ में डॉ0 बच्चन सिंह का यह कथन उद्धृत किया जा सकता है कि ----- ' अज्ञेय का आभिजात्य उन्हें अत्यन्त सजग बनाये रखता है, किन्तु सजगता केवल कला तक ही सीमित है । उनकी शब्दावली चाहे संस्कृत से ली गयी हो या लोक - भाषा से, कटी - छँटी और तराशी हुयी होती है ।'[1]

समाज के प्रति अज्ञेय की व्यंग्यशीलता ही उनके सामाजिक - दायित्व - बोध की परिचायक है । परन्तु वे अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्र - सत्ता , आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्णय की शक्ति के साथ ही सामाजिक पंक्ति में बैठते हैं । ' तार - सप्तक ' की भूमिका में अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि ' कला की सच्ची प्रगतिशीलता कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता में है, व्यक्तित्वहीनता में नहीं ।'[2] इसीलिए कवि की व्यंग्य - दृष्टि व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशिष्टता का हनन करने वाली विज्ञानवादी यांत्रिक नगर - सभ्यता, शोषक - संस्कृति तथा अर्थ संस्कृति के प्रति अत्यंत नुकीली है । ' अज्ञेय का मूल स्वर गंभीर चिंतनशील व्यक्ति का है, अतः व्यंग्य, विडम्बना इत्यादि के मूल में भी यही स्वर उत्प्रेरक भी होता है और बीच में या अन्त में ऊपर आ जाता है । आदिम विदूषक की भाँति हँसते - हँसते खुद आँसू ढालने लगे और दोनों स्थितियाँ संगत भी लगें, कुछ ऐसा प्रभाव इन कविताओं का पड़ता है ।'[3]

अज्ञेय की प्रयोगवादी कविताओं से लेकर साठोत्तर कालीन कविताओं तक में उनकी सामाजिक व्यंग्य दृष्टि पर उनके चिन्तनशील व्यक्तित्व की छाप दृष्टिगत होती है । प्रयोगवादी दौर की कविताओं में सामाजिक दृष्टि से ' शोषक भैया ' तथा ' दफ्तर : शाम '

---

1. समकालीन हिन्दी कविता का संघर्ष - सं0 - डॉ0 कामेश्वर प्रसाद सिंह ; लेख - ' अज्ञेय की कविता ' - डॉ0 बच्चन सिंह; पृ0 - 11
2. तार-सप्तक - अज्ञेय; पृ0 - 6; द्वितीय संस्करण - 1966
3. अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन - चन्द्रकान्त महावादिवड़ेकर; पृ0 - 189

उल्लेखनीय है । ' शोषक भैया ' में जहाँ शोषक - संस्कृति के प्रति कवि का तीखा व्यंग्य - स्वर है, वहीं अपनी विशिष्ट सत्ता की शक्ति पर गहरी आस्था भी है -----

' शायद तुम्हें पचे नहीं - अपना मेदा तुम देखो मेरा क्या दोष है
× × ×
मेरी लहर भी ताजा और शक्तिशाली है ।'[1]

' दफ्तर : शाम ' में दफ्तर में व्यक्तियों की यांत्रिक कार्य - पद्धति के प्रति मार्मिक व्यंग्य है, जो कवि के चिंतन को भी व्यक्त करता है -----

' बाहर देख आया हूँ (और भी जाते हैं) बीड़ी सिगरेट फूँक आते हैं या फिर पान खाते हैं
और जिस देह में है खून नहीं, रसना में रस नहीं
उसकी लाल पीक से दवारें रंग आते हैं ।'[2]

' शरणार्थी - 6 ' तथा ' शरणार्थी - 11 ' कविताओं में अज्ञेय ने स्वतंत्रता - प्राप्ति के पश्चात देश में उत्पन्न साम्प्रदायिक विघटन की स्थिति में मनुष्य - मात्र की स्वार्थी, क्षुद्र तथा कुटिल वृत्तियों पर व्यंग्य करते हुए अंतिम अंश में मनुष्य के सनातन अविकृत स्वरूप के प्रति अपनी निष्ठा दार्शनिक तेवर में व्यक्त की है । निम्न कवितांश में कवि ने आधुनिक मनुष्य के क्रूर, चालाक तथा दिखावटी रूप के प्रति तीखा व्यंग्य किया है, जिसमें कविता के अंतिम अंश में उसके व्यंग्य की दार्शनिक मुद्रा अपने मार्मिक प्रभाव के साथ स्पष्ट हो उठी है । कवि का मन्तव्य है कि मनुष्य मूलतः बुरा नहीं है, पर आधुनिक सभ्यता नें उसे विकृत एवं क्रूर रूप धारण करने पर विवश कर दिया है -----

' आजकल का चलन है - सब जन्तुओं की खाल पहने हैं - गले गीदड़ - लोमड़ी की / बाघ की है खाल काँधों पर / दिल टंका है भेड़ की गुल गुली चमड़ी से / हाथ में थैला मगर की खाल का / × × / जगमगाती साँप की केंचुल बनी है श्री चरण का सैंडल / × × × / किन्तु भीतर कहीं पर रौंदा हुआ अब भी तड़पता है सनातन मानव ।'[3]

---

1. सदानीरा - भाग - 1 - अज्ञेय; पृ0 - 259
2. सदानीरा - भाग - 1 - अज्ञेय; पृ0 - 256
3. सदानीरा - भाग - 1 - अज्ञेय; (शरणार्थी - 6 समानान्तर साँप); पृ0 - 229

अज्ञेय की कविताओं में कहीं तो व्यंग्यात्मकता किसी अंश में उभर कर पूरी कविता के तेवर को स्पष्ट कर देती है और कहीं व्यंग्य के बाद दार्शनिकता उभर कर व्यंग्य को गंभीरता तथा गरिमा प्रदान करती है । ' शरणार्थी - ।। ' में कवि स्वराज्य की प्राप्ति के पश्चात समाज द्वारा व्यक्ति - स्वातंत्र्य के हनन पर व्यंग्य करता है, जो प्रच्छन्न है -----

' अपनी समस्त सभ्यता के सारे
संचित प्रपंच के सहारे
जीना है हमें तो, बन सीने का साँप उस अपने समाज के
जो हमारा एक मात्र अक्षंतव्य शत्रु है
क्योंकि हम आज होके मोहताज
उसके भिखारी शरणार्थी हैं ।'[1]

यहाँ स्वतंत्र समाज तथा सभ्यता के प्रपंचों ने व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता को क्या दिया, इसके प्रति कवि का व्यंग्य बड़े सांकेतिक किन्तु पैने रूप में समाज के सीने का साँप बनकर जीने की विडम्बना में व्यक्त हुआ है ।

नगर - सभ्यता के प्रति तीखा व्यंग्य अन्योक्ति के माध्यम से ' साँप ' कविता में है । इसमें नगर में बसे तथाकथित सभ्य लोगों की असलियत को बड़े कम शब्दों में कवि ने सामने रख दिया है -----

' साँप ।
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डँसना - विष कहाँ पाया ? '[2]

' इतिहास की हवा ' कविता में अज्ञेय ने मिथकीय चरित्रों का प्रयोग किया है ।

---

1. सदानीरा - भाग - । - अज्ञेय; पृ0 - 225
2. सदानीरा - भाग - । - अज्ञेय; पृ0 - 269

इसमें कवि का इतिहास - बोध आधुनिक शैक्षिक - क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों को गुरू - शिष्य सम्बंधों की नयी व्यंग्यपूर्ण व्याख्या के साथ प्रगट किया है । आज का द्रोण अंगूठा नहीं माँगता वह एकलव्य के बनायें कुएँ में भाँग डाल देता है, जिसे पीकर आज के एकलव्य कृतकृत्य हो दिग्भ्रमित हो उठते हैं । निम्न पंक्तियों में अभिनव एकलव्य के कथन द्वारा शिक्षा - क्षेत्र में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं दिशाहीनता पर कवि की पैनी व्यंग्य - दृष्टि गई है -----

> ' धन्य धन्य गुरूदेव / आपने अँगूठा नहीं माँगा जो; / पितरों को नहीं तो हम क्या दिखाते ? लीजिये हमारे संस्कार हम देते हैं / पुरखों की झोपड़ी में आग हम लगाते हैं, घर - घर का भेद हम लाते हैं / × × × / तनु हमें छोड़िए - मन आप लीजिए / आत्मा तो होती ही नहीं धनु हमें दीजिए / दिग्बोध हम मिटा देंगें, दिग्विजय आप कीजिए /'[1]

उपरोक्त कवितायें प्रयोगवादी दौर से लेकर नयी कविता के प्रारम्भिक वर्ष तक की हैं । नयी कविता दौर में अज्ञेय ने नगर - सभ्यता के खोखले तथा विकृत स्वरूप के प्रति बड़ा मार्मिक व्यंग्य किया है । ' महानगर : रात ' कविता में कवि की वितृष्णा व्यंग्य के स्वर में व्यक्त हुयी है । नगर जीवन की चकाचौंध में घिरा मानव कृत्रिम जीवन जीता हे । सभ्यता तथा सुरूचि के दिखावे के प्रति उसमें जितना आकर्षण है, उतना मानवता से जुड़े प्रश्नों के लिए नहीं, इसी के प्रति व्यंग्य प्रस्तुत कविता में किया गया है, जिसमें अंतिम पंक्तियों में कवि का दार्शनिक तेवर व्यंग्य को अधिक मार्मिक तीक्ष्णता से युक्त कर देता है -----

> ' ये खेल - तमाशे, ये सिनेमाघर और थियेटर ?
> × × ×
> यह गलियों के नुक्कड़ - नुक्कड़ पर पक्के पेशाबघरों की सुविधा
> ये कचरा - पेटियाँ सुधड़ (आह! कचरे के लिए यहाँ कितना आकर्षण है!)
> × × ×
> सभ्यता बहुत बड़ी सुविधा है सभ्य तुम्हारे लिए
> × × ×
> ' हाँ पर मानव! तुम हो किसके लिए ?'[2]

---

1. सदानीरा - भाग - । - अज्ञेय; पृ0 - 273
2. सदानीरा - भाग - । - अज्ञेय; पृ0 -

' हरा - भरा है देश ' में कवि शोषक समाज पर व्यंग्य करता है, जिसमें कवि की सहानुभूति शोषक वर्ग के प्रति उद्बोधन के स्वर में व्यक्त है । किसानों की दयनीय स्थिति के सन्दर्भ में सम्पन्न वर्ग की खुशहाली के रूप में ही देश हरा - भरा है, इसकी तरफ कवि का व्यंग्य निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -----

' हरा - भरा है देश:
रूँधा मिट्टी में ताप
पोसता है विष - वट का मूल
फलेंगे जिसमें शाप
मरा क्या और मरे
इसलिए अगर जिए तो क्या
जिसे पीने को पानी नहीं
लहू का घूँट पिये तो क्या ।'[1]

अज्ञेय ने आभिजात्य - भावना पर संयत परन्तु गहरा व्यंग्य उसके अमानवीय या शोषक स्वरूप की पहचान करते हुए ' बाँगर और खादर ' कविता में किया है । इसमें कवि की संवेदना शोषितों के प्रति बड़ी मार्मिकता से व्यक्त है । कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, जिनमें उच्च वर्ग की जाति - भेद की भावना पर चोट की गई है -----

' कुँए तो राजाजी के और भी हैं / - एक चौगान में, एक बाजार में - / पर इस पर रहता है पहरा / × × × × / कुएँ का पानी राजाजी मंगाते हैं / शौक से पीते हैं / नदी पर सब लोग जाते हैं / उसके किनारे मरते हैं / उसके सहारे जीते हैं /'[2]

अज्ञेय की कविता में कहीं - कहीं व्यंग्य अन्तिम अंशों में अचानक प्रकट होकर पूरी कविता के अर्थ को धार प्रदान कर देता है । ' काँच के पीछे मछलियाँ ' कविता में कवि का प्रारम्भिक दार्शनिक दृष्टिकोण अंतिम अंश में व्यंग्यात्मक निष्कर्ष के रूप में सामने आता

---

1. सदानीरा - भाग - 1 - अज्ञेय; पृ0 - 314
2. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 60

है । सिर्फ कुछ पंक्तियाँ ही आज के मानव - जीवन की मूल विकृति और विडम्बना के मर्मस्थल पर ऊँगली रख देती है -----

' जिन्दगी के रेस्तारॉं में यही आपसदारी है
रिश्ता - नाता है
कि कौन किसको खाता है ।'[1]

यहाँ कवि ने सारे मानवीय रिश्तों के पीछे निहित एक - दूसरे को खाने की या ठगने की स्वार्थपूर्ण प्रक्रिया की पहचान बड़े दार्शनिक मूड में करते हुए जीवन के कटु सत्य का साक्षात्कार कराया है । यह कविता सातवें दशक के मध्य की है । इसी दौर की एक अन्य कविता ' केले का पेड़ ' में कवि ने शोषक संस्कृति पर व्यंग्य करने साथ ही अपने देश की जनता की उस मानसिकता पर व्यंग्य किया है, जिसमें आत्मनिर्णय तथा आत्म विश्वास से रहित होकर धर्म या समाज के ठेकेदारों की छलावे वाली बातों में आकर ठगा जाता है । कवि अंतिम पंक्तियों में भारतवासी को उद्बोधित करता हुआ उसके प्रति तीखा व्यंग्य लुजलुज भारतवीस ' कह कर करता है -----

' ओ केले के पेड़, क्यों नहीं भगवान ने तुझे रीढ़ दी
कि कभी तो तू अपने भी काम आता
चाहे तुझे कोई न भी खाता
× × × ×
तू एकबार तन कर खड़ा तो होता
मेरे लुजलुज भारतवासी ।'[2]

यहाँ कवि ने अपने देश की आम जनता की कूपमंडूकता को शोषण प्रक्रिया के सन्दर्भ में ' केले के पेड़ ' के प्रतीक द्वारा बड़े ही सटीक ढंग से, उद्बोधन तथा पैने व्यंग्य के साथ प्रकट किया है । इस कविता में विनोद का तेवर भी है और भाषा आम आदमी के निकट है ।

---

1. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 174 (1966)
2. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 223, 224 (1968)

' हीरो ' कविता में मुखौटा लगाकर अपनी छवि बनाने वाले तथाकथित आधुनिक बहादुरों की पोल खोली गई है । इसमें कवि ने डींग हाँकने वाले मित्थ्याचारी एवं कायर लोगों को बड़ी नाटकीयता से बेनकाब किया है -----

' सिर से कन्धों तक ढँके हुए
वे कहते रहे
कि पीठ नहीं दिखायेंगे -
× ×
पर जब गिरने पर उनके नकाब पलटे तो
उनके चेहरे नहीं थे ।'[1]

उच्च जातीयता की भावना पर बड़े सहज ढंग से, विनोद की मुद्रा में चुभता हुआ व्यंग्य ' पंडिज्जी ' कविता में दृष्टव्य है । पंडित होने के दंभ के प्रति व्यंग्य कवि ने उनके ' फ़कत आदमी ' होने की स्थिति द्वारा व्यंजित कर दी है -----

' अरे भैया, पंडिज्जी ने पोथी बंद कर दी है
× × ×
पंडित जी चुप से हो गये हैं
भैया, इस समय
पंडिज्जी
फकत आदमी हैं ।'[2]

आभिजात्य वर्ग के प्रति अज्ञेय में भी प्रबल आक्रोश के दर्शन होते हैं, क्योंकि वे उनके अमानवीय रूप से परिचित हैं । पूँजीवादी शोषक वर्ग से सम्बद्ध करते हुए कवि उच्च वर्ग की आभिजात्य भावना के खोखलेपन को शोषित वर्ग की सहज तथा सच्ची भावना के समकक्ष रखकर शोषक संस्कृति के प्रति व्यंग्य ' खून ' शीर्षक कविता में आक्रोश के तेवर में करता है । शोषक वर्ग की कला के सजे - धजे सौंदर्य को उसकी दासी के रूप में कार्य करती

---

1. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 307
2. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 373 (1980)

सीधी - सादी, किन्तु सहज सौंदर्य से युक्त कन्या के सामने तुच्छ दिखाते हुए कवि अभिजात्य वर्ग की फैशनपरस्ती एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन के प्रति सहज ढग से अत्यन्त निर्मम व्यंग्य करता है -----

' फिर भी तुम्हारे चेहरे पर / वह लुनाई नहीं आयेगी / जो उसके चेहरे पर है / × × × / जो तुम्हारी आँखों की मद - भरी हिसे को / अपनी कुतूहल भरी आँखों से देखती है / उसके बाप का खून तुम्हारे बाप ने चूसा है / × × × / हो सकता है तुम्हारे बाप नें / अभी तुम्हें यह नहीं बताया है / और निश्चय ही / रूप - रक्षा के नुस्खों वाली तुम्हारी / रंगीली पत्रिका नें यह तुम्हें नहीं पढ़ाया है /'[1]

इस प्रकार अज्ञेय की सामाजिक दृष्टि आठवें दशक में सामाजिक - विषमता, शोषक - संस्कृति तथा आभिजात्य की जातिगत भावना के प्रति तीखी व्यंग्यात्मकता ग्रहण करती गयी है । कवि ने क्रमशः सामाजिक यथार्थ को अधिक ठोस धरातल पर ग्रहण किया है, जिसमें कवि की भाषा पूरे संयम तथा शालीनता की सीमा में ग्रामीण जीवन के तीखे व्यंग्यात्मक शब्दों से सजी है ।

मुक्तिबोध की सामाजिक चेतना मार्क्स से प्रभावित है, पर वह उसके घेरे से मुक्त भी है । उसमें व्यक्ति के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों की भी पहचान है । डॉ0 राजेन्द्र मिश्र के शब्दों में '... उन्होंने मार्क्सवाद की शर्तो पर कविता का नहीं, बल्कि कविता की शर्तो पर मार्क्सवाद का इस्तेमाल किया है ।'[2] मुक्तिबोध में सामाजिक - आर्थिक वैषम्य पर आधारित वर्ग - चेतना की प्रखर अनुभूति मिलती है । इस वैषम्य की पीड़ा को कवि व्यक्तिगत स्तर पर भी भोगता हुआ अपने ' मैं ' के माध्यम से व्यक्त करता है, जो समाज के प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति का 'मैं' बन जाता है । कवि सर्वहारा के वर्ग - संघर्ष तथा क्रान्ति चेतना में आस्था रखता हुआ पारम्परिक सामाजिक - सांस्कृतिक मूल्यों की आड़ में चल रही शोषण प्रक्रिया के प्रति तीखे आक्रोश तथा विद्रोह से भर कर व्यंग्य करता है । मुक्तिबोध ने जिस क्षेत्र में भी दृष्टि दौड़ाई

---

1. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 378
2. नयी कविता की पहचान - डॉ0 राजेन्द्र मिश्र; पृ0 - 55

है, बुर्जुआ वर्ग को क्रियाशील पाया है । अतः कवि बुद्धिजीवी, धर्म, ईश्वर, नेता, उद्योगपति, सभी के प्रति व्यंग्य करता है, जिसमें उसकी दृष्टि उनके पूँजीवादी शोषक स्वरूप को अनावृत्त करती हुयी उनकी पर्त - दर - पर्त को उधाड़ कर रख देती है । विज्ञान, मशीनों तथा औद्योगिक उन्नति का अमानवीय क्रूर एवं खोखला स्वरूप, कवि ने नगर - सभ्यता के सुसंस्कृत, प्रबुद्ध तथा प्रगतिशील दिखने वाले लोगों के मुखौटों के पीछे छिपे वास्तविक खूँखार और शोषक प्रवृत्तियों को अनावृत्त करके, प्रत्यक्ष किया है । ' यह नगर - सभ्यता शोषण की सभ्यता का ही राक्षसी दुर्ग रूप है, जो यथार्थ की भित्ति पर समुद्घाटित हुआ है ।'[1] परिवेश की भयानक व क्रूर स्थितियों को व्यक्त करने के लिए मुक्तिबोध प्रायः फैन्टेसी का प्रयोग करते हैं । प्रतीकों का सटीक प्रयोग व्यंग्य को वजनदार तथा तीखा बना देता है । इन्होंने मिथकीय प्रतीकों का निर्माण भी किया है । कवि ने अपनी लम्बी कविताओं में नाटकीय शैली का प्रयोग किया है । ये सारी विशिष्टतायें कवि के अन्तरमन के द्वन्द्व के साथ तीखी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तियों को संश्लिष्ट रूप में समाहित किये रहती हैं ।

मुक्तिबोध सामाजिक वैषम्यमूलक भयानक, क्रूर स्थितियों तथा सभ्यता के मुखौटों को बड़े सूक्ष्म ढंग से मनोवैज्ञानिक स्तर पर उद्घाटित करते हैं । कवि में विद्रोह तथा क्रान्ति की तीखी चेतना है, पर ' विज्ञान और तकनीकी प्रगति के सामाजिक प्रभाव के साथ जिस आर्थिक और सामाजिक विषमता के विद्रूप को वह मूर्त करता है, उसमें सहज स्वीकृति या नादान अस्वीकार की बजाय तर्कयुक्त विवेकशील विश्लेषण की प्रधानता है ।'[2]

पूँजीवादी सभ्यता के रूप में नगर - सभ्यता के प्रति तीखा व्यंग्य ' बारह बजे रात के ' कविता की निम्न पंक्तियों में है, जिसमें कवि ने आभिजात्य वर्ग के विलायती टीमटाम तथा फैशन के प्रति गहरी वितृष्णा का प्रकाशन किया है -----

' विलायती टीमटाम लिए हुए चकते रेस्तराँ में
कैप्टन के गरबीले बैंजो से बटनो से

---

1. समावेशी आधुनिकता - धनञ्जय वर्मा; पृ0 - 210

2. समावेशी आधुनिकता - धनञ्जय वर्मा; पृ0 - 209

खेलते हुए सुकुमार रँगे हुए नाखून
किराये पर मुस्कुराती
कामिनी स्त्रियों के
यूरोपीय पैन्टों के बटन चमकते से लगते थे
कामुक इशारों - से ।'[1]

' नहीं चाहिए मुझे हवेली ' कविता में भी सामाजिक - आर्थिक वैषम्य की विडम्बना को उभारते हुए शोषित और पीड़ित सर्वहारा वर्ग की विवश स्थिति के सन्दर्भ में बुर्जुआ वर्ग के स्वार्थप्रेरित मूल्यों पर व्यंग्य है । सामाजिक मूल्यों की विडम्बना यह है कि --

' ... भद्रता के हाथों में तुला - दंड है
और हवेली के हाथों में मान - मूल्य है
और इमारत के हाथों में चित्र छापना
और भद्रता के आँगन में हमें बदा है
लिए बाल - बच्चे कंधे पर सिर्फ काँपना ।'[2]

यहाँ उच्च वर्ग की भद्रता के प्रति व्यंग्य उसकी अमानवीयता के उद्घाटन द्वारा बड़े प्रच्छन्न रूप में है । मुक्तिबोध सामाजिक जीवन की विसंगतियों को प्रतीकात्मक ढंग से तटस्थ मुद्रा में भी व्यक्त करते हैं । 'हर चीज जब अपनी ' कविता में एक अंश में कवि समय को ऊँचा सफेदपोश ' बताता हुआ, उसे भी पूँजीवादी व्यवस्था का पक्षधर साबित करता हुआ, अपना व्यंग्य प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त करता है -----

' टिकट कलेक्टर है ऊँचा सफेदपोश वक्त
वेल - शेव्ड चेहरा है काला और सख्त
भीतर घुस नहीं सकता है
बिला - टिकट कोई भी
समस्या विकट है
जिसके पास पैसा है उसक पास टिकट है ।'[3]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2 - पृ० - 24 (संभावित रचनाकाल 1957)
2. मुक्तिबोध रचनावली - 2 - पृ० - 50,51 (1957)
3. मुक्तिबोध रचनावली - 2 - पृ० - 229 (संभावित रचनाकाल 1960-62)

मुक्तिबोध नें नगर - सभ्यता के प्रतिनिधि के रूप में भी शोषक आभिजात्य वर्ग पर तीखा व्यंग्य किया है । मुक्तिबोध की ' चाँद का मुंह टेढ़ा है ' तथा ' अंधेरे में ' कवितायें नगर - सभ्यता की भीड़, यांत्रिकता, आतंक तथा भयानकता को नाटकीय वार्तालाप शैली में तीखी व्यंग्यात्मकता के साथ प्रस्तुत करती है । ' चाँद का मुँह टेढ़ा है ' में चाँद तथा चाँदनी पूँजीपति वर्ग तथा उसके ऐश्वर्य के प्रतीक रूप में व्यक्त हुए हैं । यहाँ नगर - सभ्यता शोषक - सभ्यता का पर्याय बनकर प्रकट हुयी है, इसीसे उसके प्रति कवि का आक्रोश एवं घृणाभिव्यक्ति तीखी व्यंगात्मकता से युक्त है । इसमें कवि की वर्ग - संघर्ष एवं क्रान्ति के प्रति आस्था का दृढ़ स्वर भी है । कवि चाँद को पूँजीवादी सभ्यता का प्रतीक बना उसका उपहास करता हुआ उसके ऐश्वर्य - विलास की प्रतीक चाँदनी के प्रति क्रान्ति एवं विद्रोह के स्वर में तीक्ष्ण व्यंग्य करता है -----

' टेढ़े मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी भी खूब है
लोहे के गजों वाली जाली के झरोखों के इस पार
लिये हुए कमरे में
काली - काली धारियों के पीले - पीले बड़े - बड़े चौकोन
जेल के कपड़े - सी फैली है चाँदनी
जेल सुझाती हुयी तिलिस्मी रोशनी ।'[1]

यहाँ कवि चाँदनी को ' जेल के कपड़े - सी फैली ' हुयी तथा उसकी रोशनी को ' जेल सुझाती हुयी ' कहकर शोषक - वर्ग के अमानवीय, क्रूर शोषण प्रक्रिया की परिणति जेल जाने के रूप में संकेतित करता हुआ प्रखर क्रान्ति - चेतना का स्वर भी मुखरित करता है । इस लम्बी कविता में तिलक तथा गांधी के पुतलों पर बैठे घुग्घू तथा उल्लू के वार्तालाप द्वारा प्रतीकात्मक ढंग से कवि ने वैषम्यमूलक शोषक संस्कृति के विडम्बनामय रूप के प्रति व्यंग्य तथा सर्वहारा के प्रति अपनी - सहानुभूति प्रकट की है । निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

" वाह, वाह,
रात के जहाँपनाह

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 275, 276

इसीलिए आज कल
दिन के उजाले में भी अँधेरे की साख है
इसीलिए संस्कृति के मुख पर मनुष्यों की अस्थियों की राख है
जमाने के चेहरे पर
गरीबी की छातियों की खाक है ।। वाह - वाह ।। "[1]

इस कविता में भैरो क्रान्ति का प्रतीक है, जिसके विकराल खतरनाक ठहाके को सुनकर -----

' चाँदनी के चेहरे पर धूल का परदा
गलियों की भूरी खाक
हवाओं में लहराने लगी यों
कि और - और पगलायी
और - और नंगी हुई चाँदनी ।'[2]

इसमें पूँजीवादी शोषक आभिजात्य सभ्यता की प्रतीक चाँदनी के प्रति कवि का तीखा आक्रोश तथा उसका व्यंग्यात्मक प्रहार स्पष्ट है । इसी कविता में चाँदनी के रूप में बुर्जुआ - सभ्यता व संस्कृति के प्रति कवि की तीखी घृणा यौन - उपमाओं के प्रयोग द्वारा उसकी विकृति के प्रति कटु व्यंग्य के रूप में प्रगट हुई है -----

' चाँदनी
× × × ×
गंदगी के काले - नाले से झाग पर
बदमस्त कल्पना सी फैली थी रात - भर
सेक्स के कष्टों के कवियों के काम - सी ।'[3]

एक अन्य कविता ' कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं ' में भी कवि ने चाँदनी को

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 279
2. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 182
3. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 280 (1954 - 1962)

पूँजीवादी सभ्यता के कीर्ति का प्रतीक बनाकर शोषक समुदाय को घुघ्घुओं, चमगादड़ों, सियारों तथा भूतों - प्रेतों के रूप में प्रस्तुत कर उनके प्रति तीखे आक्रोश का परिचय भी दिया है तथा उनकी बुद्धिहीनता, विवेकहीनता, धूर्तता तथा भयानक क्रियाकलापों के यथार्थ को भी नग्न कर दिया है -----

> ' सूखे हुए कुओं पर झुके हुए झाड़ों में / बैठे हुए घुघ्घुओं व चमगादड़ों के हित / जंगल के सियारों और / घनी - घनी छायाओं में छिपे हुए / भूतों और प्रेतों तथा / पिशाचों और बेतालों के लिए ही - मनुष्य के लिए नहीं फैली यह - सफलता की, भद्रता की / कीर्ति, यश - रेशम की पूनों की चाँदनी /'[1]

आगे कवि आभिजात्य - संस्कृति के वास्तविक स्वरूप पर चिंतनशील मुद्रा में उनकी सामाजिक उन्नति तथा प्रतिष्ठा के पीछे झूठ एवं फरेब तथा शोषण की शालीन भंगिमा का बड़ा तर्कसंगत तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता हुआ पैना व्यंग्य करता है । यहाँ कवि का व्यंग्य वक्रोक्तिपूर्ण है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

> ' सामाजिक महत्व की / गिलैरियाँ खाते हुए / असत्य की कुर्सी पर / आराम से बैठे हुए / मनुष्य की त्वचाओं का पहने हुए ओवरकोट / बंदरों व रीछों के सामने/ नई - नई अदाओं से नाच कर / झुठाई की तालियाँ देने से, लेने से / सफलता के ताले यें खुलते हैं /'[2]

यहाँ बंदरों व रीछों द्वारा मनुष्य की खाल पहन कर सामाजिक महत्व प्राप्त करने में सामाजिक वर्ग - वैषम्य और पूँजीवादी शोषण के विडम्बनामय रूप को बड़े सटीक ढंग से व्यक्त करते हुए कवि ने व्यंग्य को अधिक वजनदार बना दिया है ।

कहीं - कहीं कवि का आक्रोश शोषक - वर्ग के प्रति शालीनता का उल्लंघन करके गाली का प्रयोग करता हुआ व्यक्त हुआ है । ' एक रंग का राग ' कविता की निम्न

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 287
2. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 290, 291

पंक्तियाँ इसका उदाहरण हैं -----

> ' अंध कौन बहरा कौन
> एक नेत्र कौन कहाँ उट्ठा है
> कौन किस उल्लू का कितना बड़ा पट्ठा है
> सब हमें मालूम ।'[1]

' अँधेरे में ' मुक्तिबोध की अमर रचना है, जिसमें नगर - सभ्यता के भयानक - यथार्थ को फैण्टेसी के सहारे नाटकीय शैली में व्यक्त किया गया है । इसमें पूँजीवादी वर्ग के प्रति कवि का व्यंग्य यथार्थ के क्रूर, अमानवीय, आतंक भरे माहौल की जटिलता के बीच कवि के आत्मचिंतन तथा अन्तर्द्वन्द्व के साथ संश्लिष्ट रूप में व्यक्त हुआ है । कहीं - कहीं व्यंग्यात्मक पक्ष अधिक उभर कर सामने आ गया है । कवि ने अँधेरे को भी प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है । नगर सभ्यता के प्रतिनिधि, रात्रि के अँधेरे भयावह वातावरण में प्रेतों की बारात के जूलूस में सम्मिलित हैं । इनमें कवि, कलाकार, उद्योगपति, गुण्डे तथा मंत्री सभी हैं । नगर - सभ्यता के ये प्रतिनिधि अपने वास्तविक पाखंडी रूप में कवि द्वारा देख लिये जाते हैं, इसलिये वे कवि को दण्डित करने के लिए उसका पीछा करते हैं । इसमें कवि का व्यंग्य नगर जीवन के आतंक, षडयंत्र, भय, पाखण्ड तथा शोषण के नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करता हुआ उसके प्रति बहुत गहरा व वैचारिक गंभीरता से युक्त है । फैण्टेसी की नाटकीय शैली में यह व्यंग्य अपने संश्लिष्ट प्रभाव में अनूठा हे । निम्न पंक्तियों में सामाजिक यथार्थ की विसंगतियों को हल्के से व्यंग्य के साथ व्यक्त किया गया है -----

> ' गहन मृतात्मायें इस नगर की / हर रात जुलूस में चलती / परन्तु दिन में / बैठती हैं मिलकर करती हुई षड़यंत्र / विभिन्न दफ्तरों, कार्यालयों, केन्द्रों में, घरों में / × × × / हाय ! हाय ! मैंने उन्हें देख लिया नंगा / इसकी मुझे और सजा मिलेगी /'[2]

---

1. मुक्तिबोध - रचनावली - 2; पृ0 - 166
2. मुक्तिबोध - रचनावली - 2; पृ0 - 330, 331 (संभावित रचनाकाल 1957-1962 तक)

मुक्तिबोध ने मनोविश्लेषण पद्धति द्वारा आभिजात्य भाव तथा उसके अहंकार के खोखले स्वरूप को ' लकड़ी का रावण ' में प्रत्यक्ष कर उसके प्रति अपनी गहरी, चिन्तनपरक व्यंग्य - दृष्टि का परिचय दिया है । इसमें लकड़ी का रावण के प्रतीक द्वारा कवि ने मनुष्य - मात्र के मन से छिपे बुर्जआ संस्कारों के खोखलेपन, उसके अहंभाव की हास्यास्पद स्थिति को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया है । इसमें भी कवि की क्रान्ति - चेतना बुर्जुआ शोषक - सत्ता के भय के रूप में भी व्यक्त होती हुयी जनवादी शक्ति के प्रति उसकी आस्था को ध्वनित करती है -----

' मेरी इस अद्वितीय
सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ
हमला न कर बैठें खतरनाक
कुहरे के जनतंत्री
वानर ये, नरये ।।
समुदाय, भीड़
डार्क मासेज ये मॉब हैं ।'[1]

इस पौराणिक प्रतीक (रावण) द्वारा मानव मन के खोखले स्वरूप पर भी कवि का व्यंग्य ध्वनित होता है । आज पुरानी परम्पराओं तथा अंधविश्वासों से जर्जरित मनुष्य - मन लकड़ी के बने रावण की तरह खोखला, व्यर्थ तथा झूठे दंभ का प्रतीक बन गया है । अतः मनुष्य के खोखले विश्वासों तथा उसके दंभों का विनाश आवश्यक है । ' भूल गल्ती ' कविता में भी कवि ने मनुष्य मन के भीतर छिपी शोषक - प्रवृत्तियों की मनोवैज्ञानिक पड़ताल करते हुए ' भूल और गल्ती को मनुष्य के हृदय पर सम्राट की तरह राज्य करते देख उसके प्रति अपने व्यंगयात्मक रूख को संश्लिष्ट रूप में व्यक्त किया है ।[2] इसमें कवि नें आज के मानव मन की विकृतियों पर मनोवैज्ञानिक विवेचनापूर्ण व्यंग्य किया है । इसमें कवि की भाषा उर्दू के निकट है, जिसके द्वारा शाही दरबार, सुल्तान और उनके क्रियाकलापों की प्रतीकात्मक

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 370 (1957-1963)
2. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 390 - 392 (1963)

अभिव्यक्ति अत्यनत प्रभावपूर्ण ढंग से हुयी है । पूरी कविता में अद्भुत नाटकीयता का समावेश है । इसमें आज के मनुष्य के जीवन की विडम्बाओं की व्यंग्यात्मक व्यंजना की गयी है ।मुक्ति-बोध न केवल बाह्य जगत में व्याप्त शोषण तथा अमानवीय स्थितियों के प्रति व्यंग्यशील है, बल्कि वे उसे मानव - मन में भी घटित देखते हैं । मनुष्य के भीतर भी क्रूर अमानवीय प्रवृत्तियाँ अधिक बलवान होकर शोषक - सत्ता का रूप धारण कर लेती हैं । ' औरांग - उटाँग ' कविता में भी मानव - मन में छिपी क्रूर, भयानक तथा अमानवीय प्रवृत्तियों के दर्शन करता कवि उसके प्रति व्यंग्य बोध जागृत करता है । इसमें नगर - सभ्यता के प्रतिनिधियों के सभ्य एवं सुसंस्कृत चेहरे के मुखौटों को हटाता कवि उनके वास्तविक क्षुद्र, शोषक तथा अमानवीय स्वरूप को नंगा करता है । मुक्तिबोध के प्रतीक प्रायः एक से अधिक अर्थो को ध्वनित कर देते हैं । सामाजिक स्तर के साथ ही साथ वे व्यक्तिगत स्तर पर मानव - मन की मनोवैज्ञानिक पर्तो को उधाड़ कर उसकी विकृतियों के यथार्थ नग्न रूप के प्रति तीखी व्यंग्य - चेतना उत्पन्न करते हैं । आज के सभ्य और सुसंस्कृत मानव के भीतर की क्रूरताओं के प्रति कवि का व्यंग्यात्मक तेवर मार्मिक स्वर में निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -----

' और मेरी आँखें उन बहस करने वालों के
कपड़ों में छिपी हुई
सघन रहस्यमय लम्बी पूँछ देखती ।।
और मैं सोचता हूँ ....
कैसे सत्य हैं -
ढाँक रखना चाहते हैं बड़े - बडे नाखून ।।
किसके लिये हैं वे बाघनख ।। '[1]

इस प्रकार मुक्तिबोध के सामाजिक व्यंग्य जटिल जीवनानुभवों के विस्तृत एवं सूक्ष्म विश्लेषण के रूप में व्यक्त हुए हैं ।

भारतभूषण अग्रवाल की सामाजिक दृष्टि व्यक्ति - जीवन की विवशता, परवशता, व्यक्तित्वहीनता इत्यादि के विडम्बनामय स्वरूप पर व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुयी है । साथ ही

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 165 (संभावित रचनाकाल 1959 के बाद)

परम्परा एवं इतिहास से जोड़कर आधुनिक विकृतियों को भी कवि नें देखा है । परवर्ती रचनाओं में कवि का व्यंग्य स्वयं के प्रति अधिक रहा है । भारत भूषण की कविताओं में उनकी संवेदनशीलता, कलात्मकता तथा विनोदप्रियता के मिले - जुले प्रभाव के साथ व्यंग्यात्मकता का समावेश हुआ है । अशोक बाजपेयी के शब्दों में ' उनके मुहावरे में तेज तर्रारपन भले न हो आत्मालोचन का स्वर स्पष्ट है । बौद्धिक दिखाऊपन या आत्मदया दोनों से ही भारत जी की कविता जो कुछ लेना - देना नहीं है । '[1] इनके अन्तिम संग्रह ' उतना वह सूरज है ' में सामाजिक व्यंग्य प्रायः 'स्व' के माध्यम से किये गये हैं तथा स्वयं को भी व्यंग्य का विषय बनाया गया है । भाषा का सहज एवं साधारण रूप भी बाद की रचनाओं में अधिकांशतः परिलक्षित होता है ।

प्रयोगवाद काल से नयी कविता काल तक की व्यंग्यात्मक कवितायें, जो सामाजिक सन्दर्भो की देन हैं, इनके संग्रह ' ओ अप्रस्तुत मन (1943 - 58) में संकलित हैं । इसमें कवि ने मध्यवर्गीय मनुष्य की घुटन, पीड़ा तथा विवशता के प्रति मार्मिक व्यंग्य किया है । 'नाग बीन और मदारी ' कविता में कवि ने औसत आदमी की, व्यवस्था - पक्ष तथा नौकरशाही के हाथों में, विवश एवं परतंत्र स्थिति की छटपटाहट तथा उसकी विडम्बना को नाग, बीन तथा मदारी के प्रतीक द्वारा बड़े कलात्मक, संयत तथा प्रभावपूर्ण ढंग से प्रत्यक्ष कर परतंत्रता में विवश लोगों पर पैना व्यंग्य भी किया है । निम्न पंक्तियों में परतंत्र नाग के प्रति बीन का कथन आम आदमी की विडम्बनामय स्थिति पर तीखे व्यंग्य के रूप में है -----

" जिस मदारी ने तुम्हारे दाँत तोड़े हैं
उसी के दृढ़ सख्त हाथों में बँधी
मैं बोलती हूँ बस उसी की बात
× × × ×
विषमता की चरमा है यह कि मैं अपने स्वरों की सफलता पर दुखी होती हूँ ।"[2]

---

1. 'उतना वह सूरज है' - (भारतभूषण अग्रवाल) की भूमिका - लेखक - अशोक बाजपेयी ।

2. ओ अप्रस्तुत मन - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 67

मानव मन पर यांत्रिकता के दबाववश उसकी संवेदन शून्यता के प्रति उलाहनापूर्ण व्यंग्य अत्यंत सहज व सरल रूप में ' चलते रहो ' कविता में है । इसमें मनुष्य की मतलती एवं सामाजिक गतिविधियों से तटस्थ जीवन के प्रति कवि की पीड़ा ' मेरे भाई ' संबोधन द्वारा व्यंजित हुई है -----

' स्वप्न मत गढ़ो
काव्य मत पढ़ो
मतलब से मतलब मानों मेरे भाई
यह है जमीन
यह है मशीन
इनका उसूल पहचानों मेरे भाई ।'[1]

नयी कविता - दौर की सामाजिक - सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न एक अन्य कविता ' टूटे सपनों का सपना '[2] अपने मिथकीय प्रतीकों के सटीक प्रयोग के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इसमें पौराणिक चरित्रों को प्रतीक रूप में प्रयुक्त कर कवि ने अपने युग - बोध को इतिहास - बोध के साथ जोड़ते हुए आधुनिक युग में व्यवसायीकारण की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है, जिसमें कला को भी व्यावसायिक बनना पड़ता है । इसमें सांस्कृतिक स्थितियों के उद्घाटन के साथ ही धार्मिक, एवं पौराणिक चरित्रों की भी खिल्ली उड़ाई गई है ।

' अनुपस्थित लोग ' (1958 - 64) संग्रह में संकलित कविताओं में कवि की व्यंग्य - दृष्टि व्यक्ति जीवन के स्वतंत्र अस्तित्व के हनन के प्रति अधिक सतर्क दिखती है । ' साथ हो जुलूस के ' कविता की निम्न पंक्तियों में मनुष्य की भीड़ की मानसिकता तथा उसके परवश यांत्रिक क्रियाकलापों के प्रति कवि बड़ी सहज मुद्रा में हल्का-सा व्यंग्य करता है, जिसका प्रभाव अत्यंत मार्मिक है -----

' भावों को भूलों और नारों के हो जाओ
नीड़ों से निकलो और भीड़ों में खो जाओ ।'[3]

---

1. ओ अप्रस्तुत मन - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 77
2. ओ अप्रस्तुत मन - भारतभूषण अग्रवाल;
3. अनुपस्थित लोग - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 29

एक अन्य कविता ' विदेह ' में भी कवि का व्यंग्य व्यक्ति के अस्तित्व के प्रश्न से जुड़कर प्रगट हुआ है । आज के व्यस्त तथा जटिल जीवन और नौकरशाही के शिकंजे में फँसे मनुष्य का अपना अस्तित्व नगण्य रह गया है । वह यांत्रिक मानसिकता का शिकार होता जा रहा है । इस स्थिति के प्रति कवि बड़ी सहज नाटकीय मुद्रा में अत्यंत असरदार ढंग से 'स्वयं' को ही माध्यम बनाकर व्यंग्य करता है -----

' भूल से मैं सिर छोड़ आया हूँ दफ्तर में
हाथ बस में ही टँगे रह गये
आँखें जरूर फाइलों में ही उलझ गई
मुँह टेलीफोन से ही चिपटा होगा
और पैर हो न हो क्यू में ही रह गये हैं
तभी तो मैं आज घर आया हूँ विदेह ही ।'[1]

परवर्ती रचनाओं में भी कवि का सामाजिक व्यंग्य व्यक्ति के मनोभावों की, स्वयं के माध्यम से, पहचान करते हुए व्यक्त हुआ है । ' स्वार्थ ' कविता में लोगों की स्वार्थ से प्रेरित गतिविधियों के प्रति व्यंग्य स्वयं पर किये गये निर्मम व्यंग्य के रूप में प्रकट हुआ है -----

' मैंने चाहा था कि सब आकर मेरा पानी भरें
मैंने अच्छी तरह हिसाब करके सबके लिए डॅयूटियाँ तय कर दी थीं
जिनका लक्ष्य था - मैं - केवल मैं
और जिनके पूरे होने पर बदले में मैं मुस्कुराने की कृपा करने वाला था ।'[2]

भारतभूषण अग्रवाल नें जहाँ सामाजिक विषमता या शोषण की स्थिति का चित्रण किया है, वहाँ उनकी क्रान्ति - कामना भी व्यक्त हुयी है । ' एक सांस्कृतिक चूहे की कुतरन ' कविता में कवि नें सामाजिक वैषम्य तथा उसमें अभावों में पिसते मनुष्य की विवश एवं विडम्बनापूर्ण स्थिति चूहे की भूख ओर पिंजड़े में पड़ी रोटी के माध्यम से चित्रित करते हुए

---

1. अनुपस्थित लागे - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 78
2. उतना वह सूरज है - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 6

क्रान्ति की अपनी इच्छा का भी संकेत दिया है । आज के साधारण मनुष्य को रोटी की कामना में भूख से मरना है या उसे हासिल करके मारा जाना है; परन्तु उसकी मृत्यु तो निश्चित है । इस व्यवस्था में निष्कृय रहकर भूखे मरने से अच्छा है संघर्ष करके तुष्टि प्राप्त करते हुए मरना । निम्न पंक्तियों का व्यंग्य मनुष्य की इसी विडम्बनामय विवश स्थिति के उद्घाटन में निहित है -----

> ' मैं उस क्षण को अब ज्यादा / देर तक नहीं टाल सकता / जब मैं भविष्य की तरफ से / आँख मूँदकर / इस पिंजरे में घुस जाऊँगा / और रोटी के इस टुकड़े से पेट भरते न भरते / मौत के घाट उतर जाऊँगा / × × × / विकल्प अगर है मेरे पास तो सिर्फ / इतना ही / कि बाहर भूख से तड़प - तड़पकर मरूँ / या भीतर पहुँचकर भरपेट मरूँ /'[1]

आठवें दशक की इस कविता में कवि की क्रान्ति - चेतना का विकास हुआ है । सातवें दशक की एक अन्य कविता ' चीखता सवाल ' में भी कवि का उद्बोधनपूर्ण स्वर व्यंग्य की धार के साथ व्यक्त है । इसमें कवि ने ' भारतवासियों ' के रूप में समाज के लोगों को अपनी अस्मिता की पहचान के प्रति उद्बोधित किया है -----

> ' माना कुछ नहीं है / ईश्वर न विश्वास न कार्यक्रम न भाषा / किन्तु / रोग, गरीबी, अविद्या में पड़े हुए / ईश्वर के प्रतिरूप / विश्वास के आधार / कार्यक्रम के स्रोत / और भाषा के जनक / मेरे देशवासियों ! क्या तुम भी नहीं हो !'[2]

भारतभूषण की व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति ' तीसरी कसम देखने क बाद ' कविता में आभिजात्य वर्ग के दिखावे, फैशन तथा खोखले आभिजात्य - भाव के प्रति भी बड़ी नाटकीयता से व्यक्त हुई है । फिल्म की कहानी में ग्रामीण जीवन के सहज तथा यथार्थ दृश्यों के प्रति अपनी कुरूचि का प्रदर्शन करती सभ्यता एवं सुसंस्कृति का आडम्बर करने वाली महिला की मानसिकता के प्रति तीखी व्यंग्यात्मकता निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है -----

---

1. उतना वह सूरज है - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 10, 11
2. उतना वह सूरज है - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 58

' इन्हें बड़ा अजीब लगता है कि एक परी / और एक नौजवान / तीस घंटों तक साथ रहते हैं और ' डुएट ' नहीं गाते / ओर गाड़ीवान (हाय , तुम उसे ड्राइवर क्यों नहीं कहते ?) के पास / ' थर्मस ' तक नहीं है । वह लिपस्टिक लगी महिला चीख उठी थी : / ' लोटे में चाय - ओ : / इट इज टू मच /' सच प्याले में पिला देते तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता /'

यहाँ कवि का सम्बोधन कहानीकार रेणु जी के प्रति है, तथा संवेदन शूय फैशनपरस्त आधुनिक सभ्यता की प्रतिनिधि महिला के माध्यम से समस्त आधुनिक सभ्यता पर पैना व्यंग्य है ।

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में उनकी सामाजिक चेतना, आर्थिक - विषमता, यांत्रिक - सभ्यता तथा जीवन, आधुनिकता का विकृत रूप, फैशन, खोखले प्रदर्शन इत्यादि की व्यंग्यात्मक स्थितियों का उद्‌घाटन करती हुई व्यक्त हुई है । माथुर जी का दृष्टिकोण प्रगतिशील विचारधारा, विश्व - बंधुत्व तथा मानवतावाद से प्रभावित है । कवि की मानवतावादी दृष्टि विश्व - स्तर पर मानव के दुःख - दैन्य तथा शोषित अवस्था से जुड़ी हुई है । इन्होंने अपनी कविताओं में मार्क्सवाद का प्रभाव गहरे नैतिक धरातल पर ग्रहण किया है, अतः उनमें उसके सिद्धान्तवादी दिखावटी रूढ़ रूप से अलग, यथार्थ - बोध के वास्तविक सन्दर्भो की अभिव्यक्ति मिलती है ।

नयी कविता के प्रारम्भिक दौर में कवि की सामाजिक व्यंग्य - दृष्टि को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भो में ' शिलापंख चमकीले ' (1961) संग्रह में देखा जा सकता है । ' क्रानिक मरीज ' कविता में आज क मानव मन की ऊब, असंतोष एवं बदमिजाजी को वैज्ञानिक प्रतीकात्मकता के साथ व्यक्त किया गया है, जिसमें कवि की दृष्टि हल्की सी व्यंग्यात्मक है।[1] ' हब्श देश ' कविता में पश्चिम की व्यापारिक पूँजीवादी शक्तियों द्वारा उपनिवेशों के शोषण की प्रक्रिया पर व्यंग्य है । साम्राज्यवादी ताकतों ने अपनी शक्ति का दुरूपयोग कर स्वाधीन राष्ट्रों को उपनिवेशों में बदलकर उनकी धन - सम्पक्ति को स्वयं चूसकर उनकी स्थिति

---

1. शिलापंख चमकीले - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 22, 23, 24

बना दी है, इसके प्रति कवि का तीखा व्यंग्य अफ्रीकी - लोगों के सन्दर्भ द्वारा व्यक्त किया गया है -----

' एक ओर है मेरी संपति
एक ओर यह कीचड़ का घर
एक ओर हब्शी गुलाम मैं
एक ओर कुंभोदर अजगर
मेरी भूमि कुबेर सरीखी
मैं हूँ अब तक स्याह जानवर छोड़ गयें खंडहर ही मुझपर
कितने हनीबाल औ' सीजर ।'[1]

कैसी विडम्बना है कि सम्पक्ति वाले का घर कीचड़ का है, अजगर की भाँति सम्पक्ति पर कुंडली जमाये बैठी साम्राज्यवादी ताकतों के समानान्तर उसकी ' हब्शी गुलाम ' की स्थिति है, जिसकी अपनी भूमि ' कुबेर ' की तरह धनवान है । इन विडम्बनापूर्ण तथा असंगत स्थितियों को प्रस्तुत करते हुए कवि ने अफ्रीका की जनता की विवशता, पीड़ा तथा शोषित अवस्था के प्रति सहानुभूति रखते हुए साम्राज्यवाद की कुटिल, स्वार्थी चालों तथा अमानवीय नीतियों पर बड़ी मार्मिकता से पैना व्यंग्य किया है ।

' भीतरी नदी की यात्रा ' (1975) संग्रह की कविताओं में भी माथुर जी की व्यंग्यशीलता सामाजिक - सन्दर्भो को, मानव - जीवन में उत्पन्न आडम्बर, प्रदर्शन, खोखलेपन, मानवीय सम्बंधों की यांत्रिकता एवं विकृतियों से, सम्बद्ध करते हुए व्यक्त हुई है । ' कनाट प्लेस ' कविता में कवि नगर - जीवन के आधुनिक विकृत रूप को उसके अश्लील फैशन, वैज्ञानिक उन्नति की चकाचौंध, सांस्कृतिक कुरूचि इत्यादि के यथार्थ - चित्रण के साथ अनावृत्त करता है । इसमें कवि की भाषा उसकी वितृष्णा का प्रकाशन कर रही है । कनाट प्लेस की भीड़ की मानसिकता को उसकी गतिविधियों में पकड़ता हुआ कवि व्यंग्य एवं विद्रूप को उभार देता है । कुछ अंश निम्न हैं -----

---

1. शिलापंख चमकीले - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 59

' जीभे लटक रही हैं कुछ चोंच सी, ज्यादातर गजों लम्बी / चाट रही हैं / फर्राती उधड़ी टाँगें स्कूटरों पर / जानबूझकर गिरते पल्लों के ऊपर फिरती हैं । लप - लप खिंचती हुई रबड़ें / छातियों के झुण्ड / × × × / स्टिट ब्लाउज कसे दुकानें / अंगों को दिखलाती घूमती नुमइशें / पिन - अप लालसायें भड़काते सिनेमाघर / ट्रम्पेट और शैक और कैबरे /'[1]

' यंत्र - त्रास ' कविता में कवि यांत्रिक और मशीनी सभ्यता के विकृत एवं विडम्बनामय स्वरूप पर यथार्थ - चित्रण शैली में व्यंग्य करता है, जो कचोट उत्पन्न करने वाला है । आज मानव सुख - सुविधा की वस्तुओं के बीच स्वयं भी वस्तु - सा निर्जीव बन गया है -----

' मैंने रहने के लिए मंजिलों ऊँचे
भवन बनाये थे
वह मुझपर ही बैठ गये
लोहे शीशे की समाधि से
अब मैं बिल्डिंग बनाता हूँ
और कब्र में लेट जाता हूँ ।'[2]

सभ्यता के विकास नें पारिवारिक - रिश्तों को किस सीमा तक तोड़ा और विकृत बनाया है, इसके प्रति कवि की मार्मिक संवेदना व्यंग्य के स्वर में निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है -----

' एक गृहस्थी बनायी थी / वह एक दिन कपड़े फेंक / कैबरे में लाचने लगी / विज्ञापनों में बैठ गयी / × × × / अब न माँ है न बाप है / न पत्नी है न पति है / अब प्लेक्सी - ग्लास के / किसी भी उधड़े फ्लैट में / कोई भी मर्द है / कोई भी औरत है /'[3]

---

1. भीतरी नदी की यात्रा - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 44, 45
2. भीतरी नदी की यात्रा - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 48
3. भीतरी नदी की यात्रा - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 48, 49

नैतिक मूल्यों के विघटन की वर्तमान स्थिति के प्रति कवि की दृष्टि ' वणिक संस्कृति का मृत्युगीत ' कविता में सभ्यता के विकृत यथार्थ की विडंबना के प्रति व्यंग्यपूर्ण तेवर से युक्त है । आज के मानव की जिस स्थिति का चित्रण कवि ने निम्न पंक्तियों में किया है, वह स्वयं में व्यंग्यपूर्ण है -----

' हर स्वीकृत विश्वास से
ऊबकर भागे हुए
आत्म - भयभीत विद्रोही
जिन्दगी की खिल्लियाँ उड़ाते हुए
देह के अघोरचार में
घृणा, गुस्सा डुबाते हुए
न दुखी हैं न खुश हैं
न भीड़ हैं न व्यक्ति हैं ।'[1]

सांस्कृतिक मूल्यहीनता तथा नैतिक मूल्यों के विघटन की स्थिति की व्यंग्यात्मकता का उद्‌घाटन ' बीसवाँ अंधकार ' कविता में भी है । वैज्ञानिक सभ्यता के कृत्रिम स्वरूप के प्रति व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति में माथुर जी ने वैज्ञानिक प्रतीकों तथा शब्दों का भी प्रयोग किया है । ' बीसवां अंधकार ' कविता की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' भरे ताजी हवाओं में गन्धक के बादल, धूप पर इलेक्ट्रो प्लेटिंग
चाँदनी पर डियोडोरेण्ट वार्निश
सब्जियों का रस
गमैक्सीन से गया बस
× × ×
घर स्टेराइल जिन्दगी के अस्पताल
डिसइन्फेक्टेड व्यवहार ।'[2]

विज्ञान ने मानव को ही कृत्रिम नहीं बनाया, प्रकृति के सहज रूप को भी दूषित

---

1. भीतरी नदी की यात्रा - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 51
2. भीतरी नदी की यात्रा - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 65

किया है । अतः यहाँ विज्ञान के विकृत स्वरूप के प्रति कवि ने चोट की है । माथुर जी ने आधुनिक सभ्य मानव के जीवन की यांत्रिकता तथा खोखलेपन को ' मूड टैंक्वेलाइज़र ' तथा रचनाहीन ' कविताओं में भी व्यक्त किया है । ' रचनाहीन ' की निम्न पंक्यिों में कवि ने आज के स्त्री - पुरूषों के क्रियाकलापों व गतिविधियों के बीच उन्हें ' कठपुतलियों ' तथा ठंडी रोशनी वाली बैटरियों ' सा व्यक्त करके उनके मानवीय संवेदनाओं के स्पन्दन तथा स्फूर्ति से शून्य यांत्रिक स्वरूप पर तीखा व्यंग्य बड़े सटीक तथा कलात्मक ढंग से किया है -----

' काम धन्धे में लगे तमाम आदमी निकलते हैं
उनमें और कठपुतलियों में
अब कोई फर्क नहीं लगता
मैदा के रंग - सी
मटकती सुन्दर औरतें चलती हैं
ठंडी रोशनी वाली बैटरियों - सी ।'[1]

कवि के अगले संग्रह ' साक्षी रहे वर्तमान में 1966 से 1977 तक की रचनायें हैं । इस संग्रह की कविताओं को देखकर कवि की रूझान एवं अभिव्यक्ति में परिवर्तन को लक्षित किया जा सकता है । अभी तक प्रायः कवि की दृष्टि सामाजिक सन्दर्भ में व्यक्ति - जीवन के खोखलेपन, कृत्रिमता, फैशन आदि के प्रति व्यंग्यशील थी, पर सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में वह राजनीति की ओर अधिक उन्मुख दिखती है । अब कवि प्रायः सम्पूर्ण परिवेश का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करता है । ' एक अधनंगा आदमी ', ' वर्तमानः एक स्थिति ', ' शाम, ' खड़ी हुइ पंक्तिः' तथा ' निर्णय का क्षण ' कविताओं में कवि ने बाह्य परिवेश को विस्तृत परिप्रेक्ष्य में चित्रित कर उसके व्यंग्य तथा विडम्बना को प्रत्यक्ष किया है । इसमें सामाजिक स्थितियों का चित्रण राजनीतिक सन्दर्भों से युक्त है । ' एक अधनंगा आदमी ' में कवि ने स्वयं को केन्द्र में रखकर बाह्य यथार्थ की विसंगतियों के बीच मानव की विद्रूप स्थिति को अकविता वादी घृणित शब्दावली में व्यक्त किया है । निम्न पंक्तियों में कवि ' मैं ' के माध्यम से आज के मानव की भयानक विवशता का चित्रण कर उसके प्रति घृणामूलक व्यंग्य की सृष्टि करता है -----

---

1. भीतरी नदी की यात्रा - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 69

' मैं अपनी ही विराट विष्ठा में
धंसा खड़ा हूँ आराम से
कितना अजीब है
मैं जिन्दा हूँ अब भी इत्मीनान से ।'[1]

आगे इस कविता में राजनीतिक - सामाजिक यथार्थ का व्यंग्यात्मक चित्रण है । ' सड़क से देश दर्शन ' कविता में आजादी के बाद देश की वर्तमान दशा की ओर ग्रामीण जनता की गरीबी, अज्ञान तथा अशिक्षा की स्थिति के प्रति व्यंग्य करते हुए संकेत किया गया है । आज भी देश की अधिसंख्य ग्रामीण जनता परम्पराओं के विकृत रूपों का निर्वाह अपनी गँवार तथा असभ्य शैली में करती हैं, इसके प्रति कवि का पैना व्यंग्य आक्रोश की तीव्रता के साथ व्यक्त है । कविता की निम्न पंक्तियों में गरीबी का जीवन जीते निरूपाय, बेबस लोगों का करूण - चित्र हल्की - सी व्यंग्यात्मकता के साथ दर्शनीय है -----

' बिवाई फटे पैर
वही हमेशा के धूल फाँक हाल
पीते चिलम
कोसते पटवारी, अमीन, अमले को
समर्थ ऊँची जात को
वहीं बेबस मुंह बाये ।'[2]

आगे की पंक्तियों में कवि नें गाँवों में व्याप्त असभ्य परम्परा के रूप में जातीयता की खोखली भावना तथा अस्पृश्यता की विडम्बना पूर्ण स्थिति, जिसमें अश्पृश्य कहलाने वाला व्यक्ति अब भी दूसरों की, दुर्गन्ध को हाथों में समेटता है, तथा असंगत स्थिति के प्रति बड़ा सटीक और तीखा व्यंग्य किया है -----

' कोढ़ खायी सामाजिकता
आदतन घूँघट काढ़ असभ्यता
जातीय शील के खोखले ढोल पर

---

1. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजाकुमार माथुर; पृ० - 9
2. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजाकुमार माथुर; पृ० - 18

गँवार असलियत की थप्पड़
लोगों की दुर्गन्ध
अब भी हाथों में समेटती
सदियों से अपमानित अश्पृश्यता
मुर्गे, पुश्त सूँघते कुत्ते ।'[1]

यहाँ कवि ने अश्पृश्यता को उच्चवर्गीय शालीनता को खोखली भावना के गाल पर थप्पड़ के रूप में चित्रित किया है, क्योंकि यह उनके गँवार, एवं पिछड़े होने का सबूत है ।

' शाम ' कविता में समूचे युग पर वैचारिक मुद्रा में दृष्टि डालते हुए कवि ने आज की विषम व्यवस्था में पिसते आम आदमी तथा सम्पन्न जीवन बिताते खास लोगों को एक साथ चित्रित किया है । इसमें जहाँ एक ओर आज को खोखली समाजवादी लफ्फ़ाजी के प्रति तीखा व्यंग्य है, वहीं कवि विपन्न, त्रस्त, विवश मानवता के समानान्तर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीते उच्चवर्गीय लोगों पर भी व्यंग्य की धार तीखी करता है -----

' कितने ही किस्म के लफ्जी समाजवाद
चारों ओर घूम रहे ज्यादातर
थूकते, कॉखते,कराहते विपन्न
असंतुष्ट नाराज आदमी
या इम्पाला कारों में सपाटे लगाते
कैबरे के कीमती ड्रिंक उड़ाते खास आदमी ।'[2]

आज की व्यवस्था में मनुष्य दो श्रेणियों में बँटा हुआ जीवन के समग्र अनुभव से वंचित या तो सिर्फ दैहिक जरूरतों को पूरा करता हुआ पशु स्तर का जीवन जीता है या फिर क्रूर अमानवीय शोषक कृत्य करता हुआ । दोनों ही स्थितियों में मनुष्य - मनुष्य नहीं रह गया है । निम्न पंक्तियों में इस स्थिति के प्रति कवि का व्यंग्य तीखी घृणा एवं वितृष्णा को व्यक्त करने वाले सटीक प्रतीकों द्वारा व्यक्त हुआ है -----

---

1. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 19, 20
2. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 32

' दिन - दिन विपन्न होते घर सड़ांध के कारखाने हैं
क्योंकि मामूली आदमी
अब सिर्फ पेट है, लिंगी है
और हर ऊँचे चढ़ने वाला आदमी
पंजा है दाँत है ।'[1]

(वर्तमान: एक स्थिति)

' गुमसुम गाँव ' में भी कवि आर्थिक - सामाजिक विषमता के प्रति व्यंग्यशील है ।[2] ' सेक्स लिबरेशन ' शीर्षक कविता में कवि ने समाज में नारियों की दयनीय पारिवारिक स्थिति तथा बदलते नैतिक मूल्यों की विडम्बनामय स्थिति पर मार्मिक स्वर में तीखा व्यंग्य किया है । आज की आधुनिकता तथा उसके नये मूल्यों के खोखलेपन को कविता की अंतिम दो ही पंक्तियों में उजागर कर दिया गया है -----

' जहाँ सिर्फ मर्द को अधिकार है ' सेक्स लिबरेशन ' का
पत्नी को चौके - बर्तन का ।'

संविधान में स्त्री - पुरूषों की समानता तथा समाज में उदारवादी मूल्यों के प्रति कितना तीक्ष्ण व्यंग्य है ! कुल मिलाकर गिरिजाकुमार माथुर की सामाजिक व्यंग्य - दृष्टि क्रमशः मानवीय जीवन की विवशताओं, कष्टों तथा विसंगतियों को सामाजिक - आर्थिक असमानता के सन्दर्भ में टटोलती हुयी विकसित हुई है ।

नागार्जुन की सामाजिक - व्यंग्य - दृष्टि पूँजीवादी आभिजात्य वर्ग के वैभव - प्रदर्शन, फैशन की प्रवृत्ति, प्रगतिशीलता तथा संस्कृति - प्रेम के ढोंग को बिना किसी लाग - लपेट के साहसिक ढंग से अभिव्यक्त करने में खूब रमी है । नागार्जुन जन - जीवन की करूण स्थिति के प्रति असीम करूणा तथा सहानुभूति से प्रेरित होकर ही व्यंग्य करते हैं । अतः उनकी दृष्टि सामंती तथा पूँजीपति वर्ग के वैभव तथा उसके प्रदर्शन के प्रति व्यंग्य करने

---

1. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 35
2. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजाकुमार माथुर; पृ0 - 39, 38

में अत्यधिक सजग हैं । प्रारम्भिक संग्रह ' प्यासी पथराई आँखें ' में नागार्जुन के व्यंग्य सामाजिक - आर्थिक - वैषम्य, तथा उच्च धनिक वर्ग के प्रति बड़े तीखे तथा मारक हैं । कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में ' जयति नखरंजनी ' कविता उल्लेख्य है । आभिजात्य वर्ग की नारी में फैशन की प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि वह केवल नाखून की पालिश व उँगलियों के सौंदर्य को बचाने के लिए देश की व्यवस्था के निर्धारक वोट देने के अधिकार को छोड़ देती है । यह फैशनपरस्ती धनिक वर्ग की विकृत अहंवादी एवं खोखले प्रदर्शन की प्रवृत्ति का ही एक रूप है । इस कविता में नाटकीय शैली में कवि ने इसी प्रवृत्ति पर बड़ा चुटीला व्यंग्य किया है ।

' उँगली की जड़ से चमक रहा था काला ताजा निशान
ठमक गये सहसा बेचारियों के पैर
हाथ इतने सुन्दर हाथ हो जायेंगे दागी
भड़क उठा परिमार्जित रूचि - बोध
फिर कौन लगवाये काला निशान
मतदान कौन करें ।'[1]

' विज्ञापन सुन्दरी ' कविता में कवि का व्यंग्य आर्थिक विवशता तथा मानवीय रिश्तों में तद्जन्य परिवर्तन का करूण स्वर लिये हुए है । कुछ अंश द्रष्टव्य है, जिसमें कवि विज्ञापन देनें की विवश मुस्कान को धन - कुबेरों के शोषण - प्रक्रिया से सम्बद्ध करके बड़ा मार्मिक व्यंग्य करता है -----

' गलाती है तुम्हारी मुस्कान की मृदु - मद्धिम आँच
धन - कुलिश हिय - हिम कुबेर के छौनों का
क्या खूब । क्या खूब । कर लाई सिक्योर विज्ञापन के आर्डर ।'[2]

' घिन तो नहीं आती हैं कविता में भी कवि पढ़े - लिखे आभिजात्य लोगों पर पैना व्यंग्य श्रमिकों के प्रति अपनी सहानुभूति समर्पित करते हुए करता है । ट्राम पर श्रमिकों के साथ यात्रा करते भद्र लोगों के प्रति कवि का व्यंग्य वक्रोक्तिपूर्ण है -----

---

1. प्यासी पथराई आँखे - नागार्जुन; पृ0 - 34, 35
2. प्यासी पथराई आँखे - नागार्जुन; पृ0 - 19

' सटता है बदन से बदन / पसीने से लथपथ / छूती है निगाहों को / कत्थई दाँतों की मोटी मुस्कान / × × × × / दूध सा धुला सादा लिबास है तुम्हारा / × × ×/ बैठना था पंखे के नीचे / अगले डिब्बे में / × × × / सच - सच बतलाओं अखरती तो नहीं इनकी सोहबत ? / जी तो नहीं कुढ़ता है ? घिन तो नहीं आती है /'[1]

यहाँ डॉ0 नामवर सिंह का यह कथन उद्धृत करना प्रासंगिक होगा कि ' शहराती भद्रवर्ग के इन चित्रों में एक ग्राम कवि की सहज स्वच्छ दृष्टि स्पष्ट दिखाई पड़ती है, जो सारे आडम्बर को तार - तार कर दने में मजा लेती है ।'[2] प्रस्तुत संग्रह (प्यासी पथराई आँखे ' में कवि की ' 59, 60, 61 की रचनायें हैं । पूँजीपति वर्ग के धन - वैभव के प्रदर्शन के प्रति कवि की व्यंग्य - दृष्टि ' पैसा चहक रहा है ' तथा ' यह उन्मत्त प्रदर्शन ' कविताओं में है । एक उदाहरण दृष्टव्य है, जिसमें कवि का स्वर सामान्य मनुष्य की बौनी स्थिति के कारण अवसाद से युक्त है ।।

' शादी क्या है वैभव का है, / यह उन्मत्त प्रदर्शन
× × ×
कारों के जमघट देखो, / देखो कुबेर के छौने
ये लक्ष्मी के निजी लाड़लें / हम लगते हैं बौने ।'[3]

' बोला ठाकुरिया का पानी ' में पूँजीपति वर्ग की मोटी सेठानी के प्रति कवि का व्यंग्य उपहास की मुद्रा में है । उच्च धनिक वर्ग की प्रदर्शन भावना न केवल धन तथा वैभव तक सीमित है, वरन प्रगतिशीलता सुसंस्कृति तथा परिष्कृत अभिरूचि का भी ढोंग - करने में पीछे नहीं है । ' प्लीज एक्सक्यूज मी ' कविता में नागार्जुन बड़ी नाटकीयता के साथ वार्तालाप शैली में आभिजात्य धनिक वर्ग की इस प्रवृत्ति पर तीक्ष्ण व्यंग्य कर उसकी पोल खोल देते हैं इस कविता की पात्र मिसेज गुप्ता (डबल एम0ए0) अपनी साहित्यिक अभिरूचि तथा

---

1. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन; पृ0 - 29, 30
2. 'जमीन की कविता और कविता की जमीन' - डॉ0 नामवर सिंह; आलोचना - जन0,मार्च'81; पृ0 - 3
2. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन; पृ0 - 34

प्रगतिशील मनोवृत्ति का सिक्का जमाती हुई बड़ी हास्यास्पद दिखने लगती हैं । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' वो रहा हक्सले --
वो जुंग --
और वो पावलोव --
जी हाँ, मार्क्स का भी पूरा सेट है अपने पास --
कैपिटल पर तो भिड़ ही गये थे बाबूजी ।'[1]

फिर कवितांत में उनका यह कथन कि -----

' कविता का बेहद शौक है --
लिख दीजियेगा वहीं - पाँखे खुजलाई कौवे नें
रोता रहा चूल्हा
चक्की थी उदास
याद तो होगी न । '

साहित्य तथा संस्कृति प्रेम के दिखावटी रूप की व्यंग्यास्पद स्थिति के प्रति कवि उपहास - भावना को स्पष्ट कर देता है ।

' अनुदान ' कविता में कवि ने महिला मंगल समाज ' की ट्रस्टी के रूप में पूँजीवादी वर्ग की महिला की समाज - सेवा के ढोंग, को उसके अभिनय के रूप में व्यक्त कर उसकी असलियत को व्यंग्य के रूप में सामने रखा है ।[2] यह रचना नयी कविता के प्रारम्भिक दौर की है । नागार्जुन का आक्रोश शोषक - समाज के प्रति क्रान्ति के व्यंग्यात्मक स्वर में भी व्यक्त हुआ है । ' खड़े हैं दिनरात ' कविता में भी कवि का व्यंग्य नफाखोरों के प्रति क्रान्तिकारी स्वर में है । निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' खबरदार नफाखोरों, तिकडमबाजों खबरदार ।।
आवाज के जेहन में जहर घोलने वालों खबरदार ।।
महज निजी कुर्सियों के रखवालों खबरदार ।'[3]

---

1. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन; पृ0 - 51, 53
2. हजार - हजार वाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 55
3. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 140

समाज के चाटुकार वृत्ति के स्वार्थी तत्वों के प्रति भी कवि की व्यंग्य - दृष्टि तीखी और उपहासपूर्ण है -----

' जपे हैं नाम बहुत, उसका फल दो
फिलहाल गेहूँ दो, चावल दो
× × ×
कानों को भले बराबर मल दो
हिलेगी खूब दुम में बल दो ।'[1]

अपने परवर्ती काव्य - संग्रहों तथा कविताओं में नागार्जुन की व्यंग्य - दृष्टि राजनीतिक यथार्थ से अधिक सम्बद्ध होती गयी है, क्योंकि स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति ही जनता के शोषण के लिए प्रमुख उत्तरदायी तत्व बन गयी है । परन्तु कवि की व्यंग्य दृष्टि समकालीन सामाजिक यथार्थ गतिविधियों के प्रति भी सतर्क रही है । ' पुरानी जूतियों का कोरस ' (1983) संग्रह की इसी नाम की एक कविता में कवि चुटकुले वाली मुद्रा में विभिन्न वर्गों की जूतियों के माध्यम से उनकी - वास्तविकता का उद्घाटन कर उनपर व्यंग्य करता है । इसी के अन्तर्गत ' सौभाग्यवती जूती बिड़ला की ' शीर्षक में कवि पूँजीपति बिड़ला के ऊपर स - चोट निर्भीक व्यंग्य करता है । निम्न पंक्तियों में पूँजीवादी वर्ग के शोषण पर कवि का तीखा कटाक्ष है -----

' पीकर लाखों का लहू चमकने वाली
मैं धन - कुबेर के तलुवों की हूँ लाली ।'[2]

इसी संग्रह की एक अन्य रचना ' चलो चलो धरना दें चलकर ' में भी कवि ने समाज में व्याप्त मँहगाई एवं गरीबी के सन्दर्भ में सत्ता - पक्ष को धनिक वर्ग के रूप में देखकर उसके एश्वर्य - विलास पर व्यंग्य कसा है -----

' ठुमक रही रेशम की साड़ी चिथड़ों के अम्बार में
गूँज रहे हैं मँहगाई के पद कोमल गांधार में ।'[3]

---

1. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 145
2. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ0 - 89
3. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ0 - 62

इसमें व्यवस्था - पक्ष की सम्पन्नता तथा उसकी चिकनी - चुपड़ी बातों के प्रति कवि का व्यंग्य सामाजिक - परिप्रेक्ष्य में ही है ।

' ऐसे भी हम क्या । ऐसे भी तुम क्या ।' संग्रह में नवें दशक की इसी शीर्षक की कविता में कवि का समाज के लोगों के प्रति व्यंग्य उद्‌बोधन की भंगिमा में है, जिसमें कवि ने आज के मनुष्य की क्षुद्र मनोवृत्तियों के प्रति बड़ी वैचारिक मुद्रा तथा संयत भाषा में व्यंग्य किया है -----

' सोंधते रहें जुगत भीतर घात की
कदर नहीं करें दिन की रात की
पल - पल खोते चलें
छिन - छिन रोंते चलें
औरों की सिद्धि पर सिर धुनें
दूर की ढोल पर गप्प ही गप्प बुनें
× × ×
ऐसे भी हम क्या ।
ऐसे भी तुम क्या ।। ।'[1]

इस प्रकार नागार्जुन की कविताओं में सामाजिक व्यंग्य यथार्थ - स्थितियों का साक्षात्कार कराते हुए व्यक्त हुआ है । धनञ्जय वर्मा के शब्दों में ' उनके व्यंग्य के कई स्तर हैं - फब्ती कसने से लेकर मजाक बनाने, चुटकी लेने, हँसने और कशाघात करने के साथ विकृतियों को उधाड़ने तक उनके व्यंग्य का परिसर फैला हुआ है । × × । उसमें शोषित और दलित जनता के साथ एक गहरा भावात्मक लगाव है ।'[2]

केदारनाथ अग्रवाल की सामाजिक - चेतना लोक - जीवन में उनकी गहरी आस्थ्था तथा मानवीयता से अटूट रिश्ते के रूप में व्यक्त हुई है । इसीलिए इनकी व्यंग्य दृष्टि सामाजिक सन्दर्भो में ग्रामीण परिवेश में विचरण करती है । कवि ने गाँव के महाजनों, बड़े कृषकों, समाज व धर्म के ठेकेदारों, मुनाफाखोंरो, सभी के प्रति तीखी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की है । इनके

---

1. ऐसे भी हम क्या । ऐसे भी तुम क्या । - नागार्जुन; पृ0 - 32
2. समावेशी आधुनिकता - धनञ्जय वर्मा; पृ0 - 77

व्यंग्य ग्रामीण जीवन व श्रमिक वर्ग की यथार्थ - जीवन स्थितियों से जुड़े हैं । केदारनाथ अग्रवाल की कवितायें सही अर्थो में प्रगतिशील कवितायें हैं । इनकी अभिव्यक्ति - शैली की अपनी विशिष्ट पहचान एवं मुद्रा है । उसमें आत्मनिष्ठ वस्तुनिष्ठता के कलात्मक सौंदर्य का सुन्दर निर्वाह है, जिससे यथार्थ के असंगत तथा विडम्बनामय स्वरूप के साथ कवि का अपना दृष्टिकोण तथा आक्रोश व्यंग्य में ढलकर और भी कलात्मक ढंग से व्यक्त होकर अनूठा प्रभाव छोड़ता है । अमृत राय के शब्दों में ' केदार का जीवन - प्रेम एक वस्तुवादी का जीवन - प्रेम है । यथार्थ का बोध उसकी मज्जा में भिदा हुआ है । यथार्थ का बोध अर्थात व्यक्ति के यथार्थ और समाज के यथार्थ को समन्वित रूप में देख सकने वाली ऐतिहासिक दृष्टि ।'[1]

केदारनाथ अग्रवाल की प्रारम्भिक रचनाओं में, जो प्रयोगवादी काल की है, ग्रामीण जीवन के सुख - दुख तथा श्रमिक और छोटे किसानों की पीड़ा, विवशता आदि का चित्रण तो है, पर उसमें कवि का आक्रोश मुखर नहीं है । इसीलिए व्यंग्य भी कम है । ' युग की गंगा' (1947) संग्रह की एक रचना ' डाँगर ' उल्लेखनीय है । सर्वहारा श्रमिक वर्ग से सहानुभूति रखने वाला कवि इस कविता में सुविधासम्पन्न लोगों की आरामतलब जिन्दगी के प्रति व्यंग्य 'डाँगर ' के प्रतीक द्वारा तीव्र फटकार की मुद्रा में करता है -----

' ये कामचोर
आरामतलब
मोटे तोंदियल
भारी भरकम
हट्टे - कट्टे सब डाँगर ऊँघा करते हैं;
हम चौबीस घंटे हँफते हैं ।'[2]

यहाँ कवि ने चौबीस घंटा खटने वाले श्रमिकों के समकक्ष अवकाश भोगी लोगों को रखते हुए उन लोगों के लिए जितने विशेषणों का प्रयोग किया है, वे सभी उनके आराम करने की स्थिति की असंगतता तथा विडम्बना को भी प्रत्यक्ष कर देते हैं । डॉ0 राम विलास शर्मा के

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता - सं0 - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 79
2. गुलमेंहदी - (युग की गंगा) - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 50

शब्दों में इस कविता द्वारा कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता है - ' मानों अनाज की दुकान पर मोटा सेठ बैठा ऊँघ रहा हो और पसीने से लथपथ मजूर बोरियाँ ढो रहा हो ।'[1] इसमें भाषा अपने अगगढ़ एवं सहज रूप में ग्रामीण परिवेश के निकट है ।

इनके अगले संग्रह ' फूल नहीं रंग बोलते हैं ' (1965) में आजादी के पश्चात गाँवों में गरीबों की स्थिति का करूण व्यंग्य ' पैतृक सम्पत्ति ' कविता में तथा गाँव की आर्थिक विषमता और शोषण पद्धति के मूल, महाजन का व्यंग्य - चित्र ' गाँव का महाजन ' कविता में है । पहली कविता में कवि ने भूखे किसान के बेटे को पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली भूख और गरीबी का चित्र खींचा है जिसमें आजादी के बाद सामाजिक विषमता पर व्यंग्य है । दूसरी कविता में ठीक इसके विपरीत महाजन की पैतृक धन सम्पत्ति उसके बेटे द्वारा सूद पर बाँटते चित्रित किया गया है । दोनों कविताओं के कुछ अंश नीचे हैं -----

' बस यही नहीं जो भूख मिली
सौगुनी बाप से अधिक मिली
× × ×
वह क्या जाने आजादी क्या ?
आजाद देश की बातें क्या ? ।'[2]

(पैतृक सम्पत्ति)

× × ×
' वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन
× × ×
नागमुखी पैतृक सम्पत्ति की थैली खोले
जीभ - निकाले, बात बनाता, करूणा घोले
व्याज स्तुति से बाँट रहा है रूपया - पैसा ।'[3]

(गाँव का महाजन)

यहाँ कवि ने समाज के दो वर्गों का चित्रण किया है, पर उसकी दृष्टि मूलतः शोषण - प्रक्रिया के प्रति ही व्यंग्यपूर्ण है । गरीब किसान के बेटे को जो बाप से सौगुनी

---

1. श्रम का सूरज - भूमिका - डॉ0 राम विलास शर्मा; पृ0 - 26
2. फूल नहीं रंग बोलते हैं - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 74
3. फूल नहीं रंग बोलते हैं - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 82

अधिक भूख मिली उसका कारण तो गाँव का यही चालाक महाजन है, जो व्याज पर रूपया बड़ी स्तुति के साथ बाँट रहा हे । यहाँ ब्याज - स्तुति शब्द का प्रयोग बड़ा कलात्मक अर्थपूर्ण एवं स्टीक हुआ है । महाजन द्वारा लेनदारों से नकली करूणा व सहानुभूति का प्रदर्शन मूलतः ब्याज की मोटी रकम वसूलने के लिए है । इसी कारण उसकी प्रस्तुत स्तुति रूपी बातें ब्याज रूप से लेनदारों को बनाते हुए उनका उपहास ही कर रही हैं ।

कवि का अगला संग्रह है ' आग का आइना ' (1970), जिसमें कवि के व्यंग्य बोध एवं अभिव्यक्ति शैली - दोनों में विस्तार, कलात्मकता तथा तटस्थता के दर्शन होते हैं । इसमें कवि की क्रान्ति - चेतना का स्वर भी व्यक्त हुआ है । प्रतीकों के सटीक चयन द्वारा कवि ने अपने तीव्र आक्रोश को संयमित तटस्थता प्रदान कर बड़ी कलात्मकता से तीव्र व पैने व्यंग्य की सृष्टि की है । सातवें दशक के अंत की निम्न कविता में कवि ने छोटे किसानों के शोषण व उनकी दयनीय स्थिति की विवशता तथा सम्पन्न किसानों महाजनों जैसे शोषक वर्गो के प्रति तीखा व्यंग्य एक विडम्बना - बोध के साथ प्रस्तुत किया है, जिसमें प्रतीकों का बड़ा सार्थक व सटीक प्रयोग द्रष्टव्य है -----

' गधों के निकल आये हैं
पैने सींग
जमीन और आसमान को हुरेटते हैं
बैल
अब बिक गये हैं बाजार में
कुबेर का रथ वही खींचते हैं ।'[1]

यह शोषक अर्थ सभ्यता की ही विडम्बनापूर्ण स्थिति है कि खेत जोतने वाले धरती - पुत्र बिके हुए बैल की तरह धन - कुबेरों के लिए खटते हैं तथा धन - सम्पत्ति के जोर से मूर्ख एवं निकृष्ट पूँजीपति किसानों के सींग निकल आयी है, जिससे वे निर्बलों को आतंकित करते हैं । यहाँ तीखा व्यंग्य कलात्मकता के साथ व्यक्त होकर वस्तुनिष्ठ हो गया है ।

---

1. आग का आइना - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 68

' गुलमेंहदी ' में संकलित ' लोक और आलोक ' (1975) संग्रह की ' पत्थर के सिर पर दे मारों अपना लोहा '[1] कविता में कवि का तीव्र आक्रोश क्रान्ति के आहवान के साथ व्यंग्य के स्वर में व्यक्त हुआ है । एक अन्य कविता ' 110 का अभियुक्त '[2] में कवि नें गाँव के जमीदारों, जमाखोरों व उनके दलालों की झूठी गवाही द्वारा निर्दोष पृथ्वी - पुत्र गरीब किसान को सजा दिये जाने की घटना के मार्मिक प्रसंग में शोषक वर्ग पर स - चोट तीखे व्यंग्य के साथ ही कानून व न्याय की विडम्बनामय स्थिति को भी प्रत्यक्ष किया है ।

सातवें दशक के अन्तिम वर्षों की एक अन्य कविता में भी प्रतीक - योजना का सटीक प्रयोग एवं क्रान्ति के उद्बोधन का तीखा व्यंगयात्मक स्वर द्रष्टव्य है । इसमें कवि नें दूसरों के मुँह से कौर छीनकर खाने वाले कुत्ते के रूप में शोषक वर्ग पर कटु व्यंग्य किया है। कवि ऐसे लोगों को इन्सान का दुश्मन खतरनाक कुत्ता कहकर उन्हें मार डालना उचित समझता है -----

' आदमी की रोटी छीन ले जाने वाला कुत्ता
सचमुच कुत्ता है
चाहे छोटा हो
या बड़ा

× × ×

आदमी का दुश्मन
गोली मार देने लायक है
न मारना पाप है गुनाह है ।'[3]

परवर्ती संग्रहों में ' पंख और पतवार ', (1979) ' मार प्यार की थापें, (1981) ' कहें केदार खरी - खरी ' (1983) अपूर्वा (1984) तथा बोले बोल अबोल ' (1985) में कवि की सामाजिक - चेतना लोक - जीवन के वैषम्यगत विकृतियों के प्रति व्यंग्य के रूप में

---

1. गुलमेंहदी - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 132
2. गुलमेंहदी - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 126 - 128
3. आग का आइना - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 71

व्यक्त हुयी है । इन संग्रहों में कवि की अभिव्यक्ति अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ होती गयी है, पर उसमें कवि की आत्मनिष्ठता भी वैचारिक मुद्रा में उसके आक्रोश को संयमित करती हुई दिखती है । क्रमशः कवि का यथार्थ बोध वैचारिकता से सम्पृक्त होकर व्यक्त हुआ है, तथा ग्रामीण - परिवेश की विकृतियों के अतिरिक्त मनुष्य - मात्र की स्थिति पर विचार के रूप में भी व्यंग्य किया गया है । आधुनिक आदमी के डर की विडम्बना पूर्ण प्रक्रिया का विश्लेषण करता कवि प्रतीक - योजना द्वारा शोषक वर्ग के प्रति तीखी व्यंग्यात्मकता की सृष्टि करता है -----

' शेर से डरते - डरते
आदमी
सियार से डरने लगा ।'[1]

न्यायिक प्रक्रिया की विडम्बना के प्रति भी कवि का व्यंग्य संक्षिप्त तथा वैचारिक है -----

' सच
अब नहीं जाता अदालत में
खाल खिंचवानें
मूड़ मुड़वाने
हाड़ तोड़वाने ।'[2]

सच अब केवल निर्धन वर्ग के पास है, और न्यायालय में झूठे लोग ही जाते हैं, क्योंकि उनके पास झूठ को सच बनाने के साधन हैं, हथकंडे हैं । एक अन्य कविता (सातवें दशक के अन्त की) में कवि मानव की वर्तमान स्थिति के प्रति व्यंग्य, विकास के सन्दर्भ में करता है, जिसमें विकास की विडम्बना भी प्रत्यक्ष है -----

' विकास इस दिशा में हुआ है
अब बहुत आदमी
बे - सिर पैर का हुआ है ।'[3]

---

1. पंख और पतवार - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 42
2. पंख और पतवार - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 73
3. कहें केदार खरी - खरी - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 165

परवर्ती संग्रहों में कवि की दृष्टि समूचे मानव मात्र की व्यंग्यात्मक स्थिति के यथार्थ - चित्रण में रमती भी दिखाई देती है । एक उदाहरण दृष्टव्य है, जो नौवें दशक का है -----

' अकबकाये सकबकाये
चलते चले जा रहे हैं लोग
चीखते
चिल्लाते
काटते जूतों से परेशान
× × ×
पास आती मौत को मनौतियों से रोकते ।'[1]

यहाँ ' काटते जूतों से परेशान ' वाक्य द्वारा प्रतीकात्मक रूप में मानव - समुदाय की बदहवास जीवन - पद्धति के मूल में निहित सामाजिक विकृतियों को प्रत्यक्ष करते हुए उन पर व्यंग्य किया गया है । कवि की शब्दावली में हास्य का पुट भी है । कवि जैसे सारे मानवीय परिदृश्य को बड़ी सहजता एवं हल्के - फुल्के व्यंग्य के साथ वैचारिक तेवर में व्यक्त कर देता है ।

' बोले बोल ऊबोल ' संग्रह तक आते - आते कवि नौवें दशक की परवर्ती रचनाओं में अधिकाधिक सहज, विनोदी तथा संयमित दिखता है । सामाजिक यथार्थ के प्रति कवि की पकी हुयी व्यंग्य दृष्टि अब अपने ऊपर भी जाती है । निम्न कविता में कवि आधुनिक मानव - जीवन की विसंगतियों को हास्यास्पद रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें वह स्वयं भी शामिल है --

' हाँक के हाँके हम
जमीन में जीते हैं हम
जीने का धोखा
आतंकित
हाँपते - काँपते हम
संविधान की शरण में धूल झौकते हैं
मौत की दूरी नापते हम ।'[2]

---

1. अपूर्वा - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 32, 33
2. बोले बोल अबोल - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 116

यहाँ विषमतापूर्ण व्यवस्था में जीते सामान्य मनुष्य की पीड़ा, विवशता, आतंक, थकान और डर, न्याय न पानें की विडम्बना तथा जीनें का धोखा (अभिनय) करते हुए मौत की दूरी नापने की स्थितियों के विडम्बनामय स्वरूप को सहज प्रवाहपूर्ण भाषा में विनोद का पुट भरते हुए प्रस्तुत किया गया है । इसका व्यंग्य समूची विसंगति तथा विरूपता के प्रति उद्वेलित करने तथा कचोट पैदा करने के साथ ही एक वैचारिक भूमि भी प्रदान करता है ।

नौवें दशक में भी कवि का उद्बोधन संयत एवं वैचारिक मुद्रा में हल्के से व्यंग्य के साथ व्यक्त हुआ है । इसमें पूँजीवादी वर्ग की सम्पन्नता एवं कृत्रिम जीवन के प्रति व्यंग्य है --

' पाँव न पकड़ो
इनके उनके
कंचन के सिर काँधे जिनके
पाँव नहीं है जिनके अपनें
झूठे होते जिनके सपने ।'[1]

परन्तु इस दौर में कवि आर्थिक - शोषण करने वाले वर्गो पर भी व्यंग्य करता है, जिसमें पूर्व की अपेक्षा अधिक संयत, स्थिर तथा तटस्थ अभिव्यक्ति लक्षित की जा सकती है । एक कविता द्रष्टव्य है, जिसमें शोषक वर्ग की नकली विनम्रता, उनके विविध प्रकार के ढोंग पर से कवि परदा हटा देता है -----

' कुछेक लोग
अर्थ की कामधेनु का
× × ×
भरपूर दोहन करते हैं
उपास्य का वरदान पाने को,
विनम्र हुए नत मुख
श्रद्धालु नयनों से
निर्भ्रान्त वशीभूत करते हैं ।'[2]

---

1. बोले बोल अबोल - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 53
2. बोले बोल अबोल - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 126

यहाँ अर्थ - संस्कृति की धूर्तता पर पड़े शालीन आवरण को कवि ने बड़ी शालीन मुद्रा में हटाते हुए उस पर गहरा वार किया है । एक अन्य कविता में भी कवि की नाटकीय मुद्रा वक्रोक्ति एवं विनोद से युक्त होकर बड़ी सहजता से बड़े लोगों की आरामतलब जिंदगी पर व्यंग्य करती है -----

' चुप रहें सरकार सोते हैं अभी
आँख में सपने भरे हैं -
जिन्दगी से दूर हैं
× × ×
बेकार रोते हैं सभी ।'[1]

अतः केदारनाथ अग्रवाल की सामाजिक व्यंग्य की कवितायें क्रमशः अधिक तटस्थ, वैचारिक एवं संयत भाषा तथा मुद्रा से युक्त होती गयी हैं । उनमें सीधा कटु प्रहार एवं चोट करने की प्रवृत्ति नहीं है । प्रारम्भिक दौर में कवि का तीखा आक्रोश सीधे - सीधे डाँट - फटकार के स्वर में भी है, जिसमें निर्धन वर्ग की करूण - स्थिति का सन्दर्भ है । बाद में उसमें मनुष्य - मात्र की सामाजिक स्थिति के प्रति भी व्यंग्यशीलता आई है ।

त्रिलोचन की सामाजिक दृष्टि समूचे बाह्य - यथार्थ को हल्की - सी व्यंग्यात्मकता के साथ पकड़ती हुयी व्यक्त हुई है । त्रिलोचन की कविताओं में वर्ग - वैषम्य, क्रान्ति - चेतना, श्रमिक के प्रति उदात्त - भाव, शोषण, सम्बंधों का खोखलापन, कानून की विडम्बनापूर्ण स्थिति, इन सबके प्रति व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की गयी है । सामाजिक व्यंग्यों में कवि का आक्रोश तथा व्यंग्य अधिक संयमित व शिष्ट है । त्रिलोचन राजनीतिक प्रसंगों का अधिक प्रत्यक्ष चित्रण, तीखे व्यंग्य - बोध के साथ करते हैं । सामाजिक दृष्टि के व्यंगय किसी वर्ग - विशेष के प्रति अधिक प्रत्यक्ष नहीं हैं । कवि की इन कविताओं के सम्बन्ध में वह कथन पूर्णतः सत्य है कि ' बौद्धिक या भावनात्मक अतिवाद से पूरी तरह मुक्त उनकी कविता में विचार, संवेदना और रूप की गहरी अन्तर्क्रिया सुलझती है '[2] सामाजिक - चेतना से युक्त कवि की अभिव्यक्ति नितान्त सहज, स्वाभाविक तथा अकृत्रिम है, जिसमें कवि की आत्मीयता भी मिली हुयी है ।

---

1. बोले बोल अबोल - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 134
2. समकालीन हिन्दी कविता का संघर्ष - लेख - 'जीवन से सर्जनात्मक जुड़ाव का' कवि: त्रिलोचन - डॉ0 चन्द्रकला त्रिपाठी; पृ0 - 57

प्रगतिशील तत्व गहन चिन्तन के स्तर पर ग्रहीत हैं क्योंकि ' त्रिलोचन में मार्क्सवादी विचारों को फ्रेम की तरह नहीं, बल्कि आस्था के रूप में स्वीकार किया है '[1] सानेट में ढलकर उनके व्यंग्य और भी संयमित प्रभाव डालते हैं । नयी कविता - दौर की कविताओं का संग्रह ' फूल नाम है एक ' में कवि जीवन की कृत्रिमता, भागदौड़, छीन - छपट, आरोप - प्रत्यारोप तथा स्वार्थ - सिद्धि की होड़ इत्यादि के प्रति हल्का सा व्यंग्य भाषा के विशेष ग्रामीण तेवर द्वारा करता है । सानेट का निम्न अंश दर्शनीय है, जिसमें कवि का विक्षोभ एवं वितृष्णा ' कुकुर झौं झौं एवं धौं धौं ' शब्दों द्वारा व्यंग्य के स्वर में व्यक्त हुई है -----

' कठिन परिश्रम है । सुख ? सुख ? सुख? अजी राम का;
नाम लो करो जो बन पड़े यह कुकुर झौं झौं
जल्द नहीं थमने की । हित की रक्षा धौं धौ
ध्वनि से गले कर रहे हैं । जो पथिक शाम का
भूला है, वह कहाँ जाय । इन दिनों चाम का
दाम बढ़ा है, पट्टे से निकली है भौं भौं ।'[2]

त्रिलोचन के अगले संग्रह ' ताप के ताए हुए दिन ' (1980) कवि की व्यंग्य - दृष्टि सामाजिक विषमता, सम्बंधों का खोखला रूप, शोषक - प्रवृत्ति तथा युग की असंगत एवं विकृत स्थियों के प्रति शिष्ट, संयत तथा सादगीपूर्ण है । निम्न पंक्तियों में शोषक - संस्कृति के प्रति कवि की व्यंग्यात्मकता क्रान्ति - चेतना से सम्बद्ध है । इसमें भी कवि की मुद्रा वैचारिक है -----

' आज जो गाजते हैं
कल गाज लें
क्या बरसों वह गाजते जायेगें
शक्ति की ऐंठ में
लूट के माल को
लूटक गर्व से साजते जायेंगे ।'[3]

---

1. समकालीन हिन्दी कविता का संघर्ष - लेख - 'जीवन से सर्जनात्मक जुड़ाव' का कवि: त्रिलोचन - डॉ0 चन्द्रकला त्रिपाठी; 55
2. फूल नाम है एक - त्रिलोचन; पृ0 - 76
3. ताप के ताए हुए दिन - त्रिलोचन; पृ0 - 28

एक अन्य कविता ' सम्बन्धों के हवा महल ' में कवि खोखले सम्बन्धों को निभाते हुए मानव की रिक्तता के प्रति प्रश्नाकुल, वैचारिक व्यंग्य करता है -----

' कल तुम्हें / जिन्होंने बुलाया था / क्या वहाँ / तुमने कुछ पाया था / × × × / ये सम्बन्धों के हवामहल / रचते हों कितनी भी चहल - पहल / पूछो अपने मन से / अपना कुछ लाया था ।'[1]

आज के समाज में हवामहलों की रौनक जैसे सम्बन्ध बनते हैं, जो अवास्तविक, झूठें प्रदर्शन से युक्त तथा आत्मीयता - विहीन होते है । कवि ने यहाँ ऐसे सम्बंधों को विवश - भाव से निभाते मनुष्य तथा उसकी खोखली सभ्यता के प्रति व्यंग्य किया है ।

' काठ की हाँडी ' में कवि ने छद्मवेशी विकृतियों से युक्त मनुष्य की प्रवृत्तियों का सामाजिक सन्दर्भ में व्यंग्यात्मक चित्रण किया है -----

' चढ़ती नहीं दुबारा कभी काठ की हाँडी
एक बार में उसका सबकुछ हो जाता है
× × ×
..... यहाँ आदमी हरदम नंगा
दिखलाई देता है, चोरी - सीना जोरी
साथ - साथ मिलती है निष्कलंकता गंगा
उठा - उठा कर दिखलाती जिह्वा झकझोरी ।'[2]

आज के समाज में चोरी और सीना जोरी तथा फिर गंगाजल उठाकर निष्कलंकता सिद्ध करने की प्रवृत्तियों का नग्न चित्र प्रस्तुत करता कवि ' काठ की हाँडी ' के रूप में उनकी असलियत पर व्यंग्य करता है । आदमी कितने भी आवरण चढ़ाये, काठ की हाँडी की भाँति एक बार ही में वह बेनकाब होकर व्यर्थ हो जाता है ।

' उस जनपद का कवि हूँ ' (1981) संग्रह की ' सपना देख रहा हूँ ' कविता

---

1. ताप के ताए हुए दिन - त्रिलोचन; पृ0 - 44
2. ताप के ताए हुए दिन - त्रिलोचन; पृ0 - 50

में कानून तथा व्यवस्था के सन्दर्भ में मनुष्य की उस विवशता पर भी व्यंगय है जिसमें - 'जीवन नहीं और अधिकार सभी रहते हैं ।'[1]

' यह कबन्ध युग है ' कविता में पूरे युग की विसंगतियों के मध्य मनुष्य को कबन्ध रूप में नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता कवि उस पर बड़ी दार्शनिक मुद्रा में हँसता है । इसमें प्रारम्भ की व्यंग्य - दृष्टि बाद में दार्शनिक - दृष्टि में बदल गयी है -----

' सिर सबका पेट में धँसा
है, बाहें आहार खोजने को जाती हैं
इधर - उधर यो जब भी वे जो कुछ पाती हैं
उसे जकड़ लाती हैं, लीला देखकर हँसा
मैं मन ही मन कौन नहीं इस जाल में फँसा ।'[2]

' तुम्हें सौंपता हूँ (1985) संग्रह की ' रामचंद्र दुबे ' तथा ' युग - दर्पण ' कवितायें कवि की व्यंग्य - चेतना को ही व्यक्त करती हैं । ' राम चंन्द्र दुबे ' में कवि ने ग्रामीण जीवन के एक ब्राह्मण चरित्र को चुनकर उसकी व्याज कमाने की बनिया प्रवृत्ति तथा धंन - डूबने की आशंका में ब्राह्मणत्व धारण करने की अवसरवादी, लोभी आस्था को प्रत्यक्ष कर उसका उपहास किया है । ब्राहमण के कुलीन व उच्च - भाव की विडम्बना को प्रत्यक्ष करती निम्न पंक्तियों में बड़ा पैना व्यंग्य है -----

' व्याज कमाते थे ऋण देकर, धन क्यों खोएँ
किसी बड़े को बड़ा ऋण दिया व्याज न आया
फेरे करते रहे पाँव उनके खिया गये
प्राप्ति नहीं दीखी तो ब्राहमण भाव आ गये
न्याय देवता करें इसलिए बाल रखाया ।'[3]

एक अन्य कविता ' युग - दर्पण ' में कवि का व्यंग्य वक्रोक्ति पूर्ण है । इसमें सिंह

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 83
2. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 103
3. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 55

की तुलना में गधे की प्रशंसा करते हुए कवि ने व्याज - स्तुति तथा अन्योक्ति का प्रतीकात्मक प्रयोग कर समाज के शोषित वर्गों की मूढ़ता व जुल्म सहकर सेवा करनें तथा हिलमिलकर रहने की प्रवृत्ति पर बड़ा तीखा व्यंग्य किया है । कवि जिस आत्मीयता के माहौल में कविता प्रारम्भ करता है, वह कवि की, तीखे व्यंग्य - भाव को भी बड़ी सहजता तथा सादगी से सम्मुख रखनें की, विशिष्ट शैली है -----

' बन्धु प्रशंसा की है मैंने सदा गधे की
कितना सहनशील होता है, लाज नधे की
ढोता है, हिलमिलकर साथ - साथ चरता है
कितना सामाजिक है, यह है चाल सधे की ।'[1]

त्रिलोचन की सामाजिक व्यंग्य - दृष्टि नितान्त सहज, सरल, सौम्य तथा गहरी है । इस सम्बन्ध में यह कथन पूर्णतः सत्य है कि " दरअसल त्रिलोचन में अगर कुछ चमत्कृत करता है तो वह सादगी ही हो सकती है ।"[2]

नयी कविता में पौराणिक चरित्रों, ऐतिहासिक कथा - सन्दर्भों व धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग व्यंग्य - विपर्यय के लिए करने की प्रवृत्ति प्रायः मिलती है । लक्ष्मीकांत वर्मा एवं विजयदेव नारायण साही में यह प्रवृत्ति अधिक है । मलयज के अनुसार इन पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से आधुनिक युग की विसंगतियों, को इसलिये व्यक्त किया गया है कि ' पौराणिक प्रतीकों के रूप में ही सापेक्ष मानवीय सन्दर्भों में उस व्यंग्य - विपर्यय (irony) की प्रभावशाली सृष्टि हो सकती है, जो मूल्यों के स्तर पर मानवीय अनुभूतियों और जीवन - सत्यों की टकराहट का आवश्यक परिणाम है । '[3] लक्ष्मीकांत वर्मा ने आज के समाज एवं उसमें जीने वाले मनुष्यों की विकृतियों, विसंगतियों तथा विवशताओं को प्रायः ऐतिहासिक सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है । इसीलिये इनकी कवितायें दुहरे - स्तर पर व्यंग्य - बोध से युक्त हैं । प्राचीन

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 62
2.
3. 'नयी कविता और पौराणिक प्रतीक' - मलयज; ' नयी कविता - संयुक्तांक - 5-6; पृ0 - 5।

मान्यताओं, विश्वासों तथा चरित्रों को आधुनिक सन्दर्भों में पुनर्परीक्षित करते हुए उनकी निरर्थकता के प्रति भी व्यंग्य का समावेश सहज व स्वाभाविक रूप में हुआ है । समाज व जीवन के प्रति कवि की व्यंग्य दृष्टि उसकी कविताओं में घुली - मिली रहती है । प्रायः कवि स्वयं के प्रति तथा अपनी पारिवारिक स्थिति के प्रति व्यंग्यशील हो उठता है । इसीलिये वह स्वयं के सन्दर्भ में भी सामाजिक अवांछनीय स्थितियों के व्यंग्यात्मक स्वरूप को प्रकट करता है ।

नयी कविता दौर की, सामाजिक - राजनीतिक विडम्बनाओं को प्रस्तुत करती कविता ' यज्ञ मैंने भी किये थे ' में कवि ने ऐतिहासिक प्रसंग को व्यंग्य के लिए प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है । चमत्कृति उत्पन्न करते हुए आज की व्यवस्था में मनुष्य की विवशता तथा विपन्नता का चित्रण निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य हैं -----

' घास की रोटी तो मैंने भी बनाई थी
पर चूहों की नस्ल नें आदमी से बिल्ली तक
महज भटकन ही पैदा की
बिल्ली नें घास की रोटी नहीं खाई
बच्चों को मगर खानी पड़ी ।'[1]

कवि की इतिहास दृष्टि भी व्यंग्यपूर्ण है । ' इतिहास और चरवाहा '[2], ' इतिहास और चूहे '[3], ' इतिहास और डी0डी0टी0 '[4], कवितायें इतिहास के परम्परागत स्वरूप के विकृत एवं अप्रासंगिक रूप तथा उसकी विडम्बना के प्रति तीखे व्यंग्य से युक्त है । ' कोमल पलकों में ये आँसू ' कविता में कवि यथार्थ की घटनाओं को देख उनमें मानवीय जीवन की विसंगतियों के दर्शन करता है -----

' पागल कुत्ते डोम भर रहा
जीभ काट कर दवा बनेगी
जनश्रुति का यह भी कहना है
कुत्ते के काटे जख्मों को ठीक करेगी

---

1. अतुकान्त - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 41
2. अतुकान्त - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 58
3. अतुकान्त - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 61
4. अतुकान्त - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 60

पागल कुत्ते बहुत बढ़ रहे बेहद शायद ।'[1]

यहाँ पागल कुत्तों के सन्दर्भ को आज के समाज में बढ़ रहे विकृत मनुष्यों के लिए व्यंग्यात्मक रंग देकर प्रस्तुत किया गया है ।

लक्ष्मीकांत वर्मा आधुनिक जीवन में व्याप्त विकृतियों तथा विसंगतियों को जहाँ विस्तृत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्त करते हैं, वहीं उनकी विस्तीर्ण दृष्टि आधुनिक सभ्यता के विकृत स्वरूप को व्यक्त करते हुए विश्व मानवता से भी जुड़ी है । ' बरसता है धन अंधकार भी ' कविता में कवि ने सभ्यता के क्रूर, अमानवीय रूप का यथार्थ - चित्र प्रस्तुत कर उसकी विडम्बना के व्यंग्य को समक्ष रख दिया है । केवल कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -----

' सफेद दुनिया ने बसाये हैं नर - पशु, मेघ के जाले
अंधकार और घना होता है
× × × × ×
सफेद सभ्यता के आदमखोर पंजों में है केवल काली लाशें ।'[2]

प्रस्तुत कविता ' तीसरा पक्ष ' (1975) की है । इसके पश्चात प्रकाशित संग्रह ' कंचन - मृग ' (1981) में कवि की व्यंग्यशील दृष्टि प्राचीन कथा - सन्दर्भों को, आधुनिक जीवन की विडम्बनामय तथा असंगत स्थितियों और उसकी विकृतियों को प्रकट करने के लिए, प्रयुक्त करती है । ' तुम मुझे बीच धार में ले आये ', ' आत्माराम ', ' गंगाराम एक किंवदन्ति ' तथा 'जंगल - नरेश' कविताओं में कवि ने हितोपदेश की कथाओं का प्रतीकात्मक प्रयोग व्यंगयात्मक अभिव्यक्ति के लिए किया है । इनके द्वारा कवि ने बड़े मनोरंजक तथा चमत्कारपूर्ण ढंग से आज के समाज तथा मनुष्य के बदले हुए असंगत तथा विकृत रूप को पैने व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया है । आज के मनुष्य की संवेदनहीनता तथा खोखले जीवन और घात की प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य वक्रोति खोखले जीवन और घंत की प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य वक्रोक्ति एवं कलात्मकता से युक्त होकर ' तुम मुझे बीच धार में छोड़ ओय ' की निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -----

---

1. अतुकान्त - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 159
2. तीसरा - पक्ष - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 30

' सुनो मेरे घड़ियाल दोस्त / × × × / जो हम बन्दरों की नसल पैदा हुई है / उसके जिस्म में कलेजा बना ही नहीं / × × × / क्योंकि मैं और मेरी नसल हजारों वर्षों से बिना कलेजे, गुर्दे, दिल के / जीती आ रही है और जीती चली जायेगी ।'[1]

इसी प्रकार ' आत्माराम ' कविता में आत्माराम तथा तोते को आज के शोषक वर्ग तथा आम आदमी की स्थिति के उद्घाटनार्थ प्रतीक रूप में प्रयुक्त कर वर्तमान समाज की क्रूरता और अमानवीयता को चमत्कृत करने वाले रूप में प्रस्तुत किया गया हे । एक ओर आजाद आम आदमी के रूप में हीरामन तोता है, जिसके पर कटे हैं, जो जमीन पर है -----

' लेकिन बिल्लियाँ उसे सूँघकर चली जाती हैं
और बाज मंडराकर वापस मुड़ जाते हैं
उन्हें जमीन से नफरत है
वह उड़ते हुए तोते का शिकार पसंद करते हैं ।'[2]

दूसरी ओर आत्माराम है जो -----

' .... जमीन से ऊपर उठ गया हे
और
आम से आम
और खास से खास होता जा रहा है ।'[3]

इसी संग्रह की ' चूहे ' कविता में कवि ने आज की व्यवस्था तथा समाज को दूषित करने वाले अवसरवादी, स्वार्थी तथा क्षुद्र लोगों पर ' चूहे ' के प्रतीक द्वारा तीखा व्यंग्य किया है। इसमें भी कवि की व्यंग्य दृष्टि कल और आज की तुलना करती हुई अधिक विस्तृत आयाम में व्यक्त हुई है । आज की व्यवस्था पर भी तीखी चोट है -----

' कल तक ये महज पालतू थे
इसलिये व्यवस्था को कुतरते नहीं थे
× × ×

---

1. कंचन - मृग - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 33, 34
2. कंचन - मृग - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 35
3. कंचन - मृग - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 36

लेकिन आज ये फालतू हो गये हैं
इसलिये व्यवस्था से लेकर
अपनी दुम तक कुतरने में इन्हें संकोच नहीं है ।

विजयदेव नारायण साही की कविताओं में आज के यथार्थ - जगत की भयावह तथा विसंगतिपूर्ण स्थितियों का व्यंग्य - बोध बड़े गहरे स्तर पर व्यक्त हुआ है । इसमें सामाजिक - राजनीतिक - स्थितियाँ संश्लिष्ट रूप में व्यक्त हुयी हैं । अपने प्रथम संग्रह ' मछलीघर ' में साही जी सामाजिक स्थितियों के प्रति प्रच्छन्न रूप से व्यंग्यशील रहे हैं । ' एक अर्द्धविस्मृत मित्र के नाम ' तथा ' आखिरी सामना ' में कवि का व्यंग्यात्मक तेवर स्पष्ट है । इसमें दूसरी कविता सत्ता - पक्ष के चरित्र पर व्यंग्य है । प्रथम में कवि के चिन्तनशील विवेचन के बीच व्यंग्यात्मकता कहीं - कहीं उभरी है । द्वितीय संग्रह ' साखी ' में कवि की व्यंगयशीलता उभरकर सामने आई है । साही की कवितायें एकालाप शैली में हैं । कवि ने सामाजिक यथार्थ को लोगों की मनोवृत्ति तथा मानसिकता की विकृति के रूप में अधिक उभारा है । साही जी आधुनिक नगरीय सभ्यता की उस विरूपता को नग्न कर उसके व्यंग्य को ग्रहण कराया है, जिसमें मनुष्य आपस में अजनबियों की तरह रहते हैं । उनकी संवेदनायें सिमट कर निजी स्वार्थ के दायरे तक सीमित हो गयी हैं । ' कुएँ में कोई गिर गया है ' तथा ' एक कार दुर्घटना ' इस दृष्टि से उल्लेखनीय कवितायें हैं । प्रथम में कवि यथार्थ की विसंगति को बड़ी हैरान मुद्रा में प्रकट करता है -----

' अजीब बात है
इस पूरे दयार में एक भी गोताखोर नहीं है
अब लोग या तो समतल पर चलते हैं
या खबरें पहुँचाते हैं
या मुआइना करते हैं
लेकिन कुएँ में उतरने के लिए कोई तैयार नहीं होता ।'[1]

यहाँ लोगों की निरपेक्षता व सुविधावादी सामाजिक भावना पर व्यंग्य है जिसमें वे

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 21

खबरें पहुँचाने तथा मुआइना करने में तो रूचि रखते हैं, पर कष्ट में पड़े हुए को बचाने में कोई साहस नहीं दिखाते । दुर्घटना उनके लिए मात्र मनोरंजक तमाशा है । इसमें रूपक कथा का सटीक प्रयोग गहरे व्यंग्यात्मक अर्थ के लिए किया गया है । दूसरी कविता में भी लोगों की अलगाववादी संवेदना तथा कष्ट में पड़े हुए के प्रति तटस्थ दृष्टि की अमानवीयता के प्रति गहरा व्यंग्य है -----

' वे भारी मन से उस सभ्यता के पास आने का इन्तजार कर रहे हैं
जो हर दुर्घटना की तरह इसे भी कानून के हवाले कर देगी ।'[1]

साही जी ने व्यक्ति के मनोभावों के चित्रण के रूप में ही सामाजिक विडम्बनाओं को प्रत्यक्ष किया है । ' शाम के वक्त रूद्ध अवस्थाओं वाला आदमी ' कविता में आत्मालाप के रूप में समाज से एक चरित्र को उठाकर उसके व्यवहार में कथनी - करनी के फर्क का चित्रण कर बड़ी शालीनता तथा नाटकीयता से व्यंग्य किया गया है । आत्म - सम्मान तथा स्वाभिमान की बड़ी - बड़ी बातें करने वाले व्यक्ति की गतिविधियों को चित्रित कर कवि ने उसक ढोंग की सारी पोल खोल दी है -----

' वह अनायास हाथ बढ़ा कर मेरी सिगरेटें लेने लगता है
तो मैं कुछ कह नहीं पाता
× × × ×
मेरे मन में उन तमाम सिगरेटों का हिसाब है
× × × ×
रिक्शे के लिए दिए पैसे का भी
और उन बिलों का भी
जो मैंने चुकाये हैं ।'[2]

' अकेले पेड़ों का तूफान ' कविता में भी कवि मनुष्य के अकेले होते जाने की विडम्बनामय परिणति को रूपक के माध्यम से प्रस्तुत करता है । कोई भी उत्तेजित करने वाली

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 30
2. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 24

लहर सिर्फ उसे प्रभावित करती है जिसे छूकर गुजरती है । कवितांत में कवि का व्यंग्य उसकी चिन्तनपरक दृष्टि के साथ प्रकट होता है -----

' इस नगर में / या तो लोग पागलों की तरह / उत्तेजित होते हैं / या दुबककर गुमसुम हो जाते हैं / जब वे गुमसुम होते हैं तब अकेले होते हैं / लेकिन जब उत्तेजित होते हैं / तब और भी अकेले हो जाते हैं /'[1]

आज की नगरीय सभ्यता के अकेलेपन तथा दूसरों के प्रति संवेदनहीन तटस्थता की चरम परिणति इस विडम्बना में होती है कि वहाँ लोग उत्तेजित होकर और अकेले हो जाते हैं, क्योंकि उनकी किसी उत्तेजना, में कोई और साझीदार नहीं बनता । ' अस्पताल में ' कविता में कवि अस्पताल को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत कर उसके माध्यम से आज की सामाजिक - राजनीतिक विडम्बनामय स्थितियों को नाटकीयता के साथ प्रस्तुत करता है । इस कविता में कबीर की टेक तथा उनकी धार्मिक शब्दावली का व्यंग्यात्मक प्रयोग कर साही जी ने उसे विस्तृत आयाम प्रदान किया है । ' सहज समाधि ' तथा ' अनाहद नाद ' शब्दों का प्रयोग कबीर की टेक से युक्त हो कविता को अनूठी विनोद-भंगिमा से भर देते हैं । इसमें ' पैरोडी ' का भी हल्का - सा आभाष मिलता है । कविता का अंतिम अंश दृष्टव्य है -----

' साधो भाई
इस अस्पताल में सब सो रहे हैं
सहज समाधि की तरह
सब कराह रहे हैं अनाहद नाद की तरह ।'[2]

यहाँ बाह्य - जगत को अस्पताल के रूप में व्यक्त करने तथा उसमें सोने व कराहने की स्थितियों द्वारा आज के मानव की कुंठित सुप्त चेतना, उसके कष्टों और व्यवस्था की विसंगतियों में जूझते उसके अस्तित्व का संश्लिष्ट व्यंग्यात्मक चित्रण अत्यन्त सहज, सटीक तथा विनोदपूर्ण बन पड़ा है ।

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 78
2. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 117, 118

प्रभाकर माचवे की कविताओं में भी उनकी समाज तथा संस्कृति के प्रति व्यंग्यशीलता के दर्शन होते हैं । माचवे जी के सामाजिक व्यंग्यों में वह गहराई नहीं लक्षित होती, जो नयी कविता के अन्य समकालीन कवियों में है । उसमें व्यंग्यात्मक स्थिति को बड़े हल्के - फुल्के ढंग से लिया गया है तथा उसमें प्रायः यथार्थ की का अभाव है । तुकों का सरल प्रयोग भी दृष्टिगत होता है । पर कहीं कहीं व्यंग्य प्रभावपूर्ण ढंग से भी व्यक्त हुआ है । ' तेल की पकौड़ियाँ ' संग्रह की सभी कवितायें विनोद का पुट लिये हुए है । ' सोने का हिरन ' कविता में धार्मिक मिथकों का प्रयोग है । पूरी कविता में कवि का जो मन्तव्य है और जो मूल व्यंग्य दृष्टि है, वह अन्तिम दो पंक्तियों में व्यक्त हुयी है -----

' लक्ष्मण की रेखा खुद लक्ष्मण मिटाता है,
खुशी - खुशी सीता संग रावण मुस्काता है ।'[1]

यहाँ आधुनिक सभ्यता तथा संस्कृति के विघटित मूल्यों की विडम्बना को प्राचीन सांस्कृतिक - परम्परा के सन्दर्भ में उद्घाटित कर पैना व्यंग्य किया गया है । परन्तु पूरी कविता का प्रभाव, सरलता व वर्णनात्मकता के कारण उतना गहरा नहीं पड़ता ।

एक अन्य कविता ' डरू संस्कृति ' में भी संस्कृति के आधुनिक रूप में दूसरों की चापलूसी तथा डर कर हर कार्य करने वाली मानसिकता के प्रति व्यंग्य है, जिसमे हास्य का पुट है । कुछ पंक्तियाँ निम्न है -----

' दफ्तर में अफसर से डरते, साहस कहीं भी न दिखलाओं
गाड़ी में ड्राइवर से डरते, चिकनी - चुपड़ी गाते जाओ ।
कहीं तुम्हारे मित्र उभरते, कहीं तुम्हारे पुत्र उभरते,
हो तो उनकी सभी उमंगों पर डालो तुम पानी ठंडा
ध्यान रखो मुर्गी बन पाये कहीं न यह इच्छा का अंडा
कोई मिले अपरिचित चाहे, कर जोड़ों, जोड़ों दो वाहें ।'[2]

---

1. तेल की पकौड़ियाँ - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 36
2. तेल की पकौड़ियाँ - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 43

' नीवं ' कविता में सामाजिक वैषम्य के प्रति व्यंग्य है । इसमें कवि का व्यंग्य इस तथ्य के उद्घाटन में हैं कि बड़ी - बड़ी अट्टालिकाओं की नींव रखने में जुटे श्रमिकों के पास टूटी झोंपड़ी तक नहीं है । वस्तुतः श्रमिक वर्ग ही समाज की उन्नति की नींव रखते हैं, पर उनकी दशा अभावों से जर्जरित होती है । प्रस्तुत कविता में कवि का व्यंग्य प्रश्नाकुल तथा मार्मिक है । निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -----

' और उन विवसन श्रमिक महिलाजनों की
आह पर जो चाँदनी बनती चलेगी
क्या उसी पर खिलखिलायेंगी
वे बूर्ज्वा बालिकायें - ?
× × ×
क्या इसी को लोग कहते हैंगे नीवं ? ' ।

' मेपल ' (1967) संग्रह में प्रभाकर माचवे की विदेश - प्रवास के दौरान लिखी कवितायें हैं, जिसमें कहीं - कहीं विदेशी सभ्यता - संस्कृति के प्रति कवि की व्यंग्यात्मकता परिलक्षित होती है । परन्तु इसमें पाश्चात्य सभ्यता का दृश्य चित्र केवल ब्योरों के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कवि की गहरी चिन्ता तथा उद्वेलन की छाप नहीं दिखती । इस सम्बन्ध में कृष्णनन्दन पीयूष का यह मत समीचीन है कि मेपल की ' किसी भी कविता को पढ़कर पाठक के मन में यात्रा - वृतांत या ' लैंडस्केप ' सी चित्रात्मकता के सिवा विचार की दृष्टि से कुछ भी हाथ नहीं लगता है । कवि की समस्त सचेष्टता के बावजूद ' मेपल ' की कवितायें मात्र यथातत्थ्य की भाषा में वर्णन भर प्रस्तुत करती है । '[2] इस संग्रह में कवि तुकबंदी का चमत्कार उत्पन्न करनें के लिए विशेष प्रयासरत जान पड़ता है । विनोद का पुट देनें के लिए भी कवि ऐसा करता है । ' शिकागों ' कविता में कवि ने ' नाइट क्लब में नंगी भद्दी टाँगों के ', ' तेजाब की बोतलों के कागों के ', ' सभ्यता संस्कृति के स्वाँगों के ' वर्णनों के बाद अन्तिम अंश में असम्बद्ध तुकबंदी का प्रयोग कर कविता को मनोरंजकता के अधिक

---

1. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 12
2. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 20

निकट कर दिया है । ये विवरण अपने आप में व्यंग्यात्मक तो हैं, पर प्रभावोत्पादक गहराई का उसमें अभाव है । कविता का उत्तरार्द्ध निम्न है -----

> ' जागो - जागो / नाइट - क्लब में नंगी भद्दी टाँगों के / जाज के अखण्ड और घोर रागों के / कांगो में रक्त भरे दागों के बे - असर दिमागों के / तेजाब की बोतलों के कागों के / सभ्यता - संस्कृति के स्वाँगों के / ' पोएट्री ' के सम्पादक मिल गये हेनरी रागो / शिकागो /'[1]

यहाँ अंतिम पंक्तियों के यात्रा - संस्मरण वाले रूप से तुक बैठाती हुयी पूरी कविता एक आरोपित कलात्मकता से युक्त है ।

' बास्टन ' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य है, जिसमे यंत्र - सभ्यता तथा वैभवपूर्ण जीवन के प्रति कवि की व्यंग्य - दृष्टि अपनी संस्मरणात्मक शैली में ब्योरे के रूप में ही है -----

> ' तुम सत्य जानों, तुम्हें सत्य मुक्त कर देगा '
> जानू कैसे ? देखी ' टीचिंग मशीन ', देखा ' मशीन ट्रांसलेशन ',
> मुक्ति मानूँ किसे ? घूम रही है शैवरले ऑस्टिन
> ' हायवे ' ' बीच ', ' बस - स्टन ' यह ब्राह्मण नगर
> निर्धन को बना अस्पृश्य हरि - जन ।'[2]

' मेपल ' की कविताओं में कवि दृश्य को त्वरित प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त करने के लिए भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग करता है । वस्तुतः कवि के संस्मरण में उसके व्यंग्यात्मक दृश्य कहीं विनोद तो कहीं विक्षोभ की भावना से युक्त होनें से ही कविताओं की कुछ सार्थकता सिद्ध होती है । ' इमर्सन के घर पर ' कविता में कवि ने पाश्चात्य - संस्कृति के नग्न सौंदर्य - यौन- भावना, व्यक्तिवादी, खोखले तथा ऐश्वर्यमय जीवन का विवरण प्रस्तुत किया है निम्न पंक्तियों मे -----

---

1. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 12
2. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 20

' एक कन्दरा, आदिम घोर जिघांसा, जमीन - रति - स्वच्छन्द / रूपसि पूर्ण प्रकाम सभ्यता / सज्जित 'मधी' स्वर्ण वन्दिता / देखी ' श्री ' उद्भुता, अनूपम बाग ' कि 'बिकिनी' में दिगम्बरा / × × × × / सबकुछ था व्यापार भ्रमायित / पैसा ही था धुरा, धर्म सब अरा, और वे भी सर्पाघित /'[1]

यहाँ अंतिम पंक्तियों में कवि पाश्चात्य भौतिकवादी जीवन के विषैलेपन के प्रति विक्षोभ के स्वर में हल्का सा व्यंग्य प्रस्तुत करता है । ' मेपल ' की ये कवितायें छठें दशक के उत्तरार्द्ध की हैं । यह कहा जा सकता है कि इस संग्रह में पाश्चात्य जीवन - शैली के प्रति कवि की प्रतिक्रिया व्यंग्य के स्वर में व्यक्त हुयी है, जो कहीं - कहीं मात्र विवरण का रूप ले लेती है ।

कुँवर नारायण नें यद्यपि व्यंग्यधर्मी कवितायें कम ही लिखी हैं, पर सामाजिक विसंगतियों के प्रति उनकी बौद्धिक प्रौढ़ दृष्टि सतर्क रही है । ' चक्रव्यूह ', ' परिवेशः हम तुम ' तथा ' अपने - सामने ' संग्रहों में कवि का सामाजिक विसंगतियों का व्यंग्य क्रमशः विकसित तथा परिवर्तित भाव - बोध तथा अभिव्यक्ति - शैली को संकेतित करता है । भाषा का सहज सरल प्रवाह तथा अनुभूति का तनाव दोनों ही कवि के बौद्धिक चिन्तन से संयमित एवं संश्लिष्ट रूप में व्यंग्यात्मक स्थितियों को व्यक्त करते हैं । ' चक्रव्यूह ' (1956) संग्रह में ' गिद्धों की बस्ती ' कविता में कुंवर नारायण प्रतीकात्मक बिम्बों में यथार्थ की भयावह स्थिति तथा उसकी व्यंग्यात्मकता को प्रस्तुत करते है -----

' गिद्धों की बस्ती में / खाने को मिलती है लाश यहाँ सस्ती / बिछी बही पर / रही - सही परं / किसी मुंशी की तरह / कंधों के बल टँगे / लाल रोशनाई से / चोंच कलम रंगे / जिन्दगी उलट - पुलट / खोल मूंद खाते / आय और व्यय का कुल हिसाब लगाते /'

यहाँ अमानवीय शोषक - वर्ग द्वारा मनुष्य की लाश को किसी मुंशी की तरह बही पर बिछाकर, आय और व्यय का कुल हिसाब लगाते हुए खाने की कल्पना, अनूठी कलात्मकता

---

1. चक्रव्यूह - कुँवर नारायण; पृ0 - 57

के साथ, यथार्थ जीवन में सामान्य जन की त्रासद स्थिति की विडम्बना को प्रत्यक्ष कर देती है । इस कविता में भाषा के सहज किन्तु सटीक व चुस्त रूप को देखा जा सकता है ।

' परिवेशः हम तुम ' (1961) संग्रह में कवि की व्यंग्य - दृष्टि वैज्ञानिक यांत्रिक सभ्यता के विडम्बनामय स्वरूप को उजागर करती है । ' एक सवाल ' कविता में कवि की दार्शनिक दृष्टि खामोशी को चीरती हार्न की आवाज और अँधेरे को चीरती तेज रोशनी की बीच मानवीय जीवन के यांत्रिक होते जाने की विडम्बना की पहचान निम्न पंक्तियों में करती हुई उसके प्रति व्यंग्य करती है -----

' एक सवाल चौंककर बाकायदा उठ बैठा था
' मशीनों को चलाता हुआ आदमी ?
या आदमती को चलाती हुई मशीनें ? '[1]

कवि ने ' समझौता ' कविता में अस्तित्ववादी निराशाभाव के बीच मानव जीवन की निस्सारता व निरर्थकता के प्रति व्यंगय को उभारा है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

'.... एक जीती जागती हलाहल पीड़ा से
क्या बुरा है फिलहाल चलता फिरता कीड़ा ? '[2]

' गृह - युद्ध ' कविता में वैज्ञानिक - सभ्यता में जीते मानव की टूटन, हताशा अकेलेपन तथा खोखलेपन को सभ्यता और संस्कृति की विसंगतियों के बीच बड़े प्रभावी ढंग से व्यक्त किया गया है । आज की वैज्ञानिक सभ्यता की आस्थाहीनता में देवता तो पत्थर के हो चुके हैं, पर यंत्र के दानव भी पैदा हो गये हैं, जो मनुष्य की शक्ति का स्वरूप होकर भी उसी को परास्त कर रहे हैं और सभ्यता नाखूनों की पालिश की तरह मात्र दिखावटी सज्जा रह गई है -----

---

1. परिवेशः हम तुम - कुंवर नारायण; पृ0 - 79
2. परिवेशः हम तुम - कुँवर नारायण; पृ0 - 89

' पत्थर का देव और लोहे का दानव / यह युग / अनी ही ताकत से हारा मनुष्य/ × × × / इन्सान / मगर बेजान मकानों सा ढहता / अपने से दूर पास बस्ती के रहता / सभ्यता / लगी नाखूनों पर पालिश जैसे /'[1]

इस कविता के व्यंग्य में कवि की चिन्तनशील प्रवृत्ति, यथार्थ के विरोधाभाषों को भाषा की सहजता में ही अत्यन्त कलात्मकता से व्यक्त करनें में पूर्णतः सफल हुई है ।

' अपने - सामनें ' (1979) संग्रह में कवि ने यथार्थ जीवन की भयानकता, गरीबी, शोषण, अनैतिकता तथा अमानवीयता को परिवर्तित शैली में व्यक्त किया है । नाटकीय स्थिति के विरोधाभाषों के बीच बड़ी सहज चमत्कृति के साथ गरीबी, शोषण व अमानवीयता को ' इन्तिजाम ' कविता में तीखे व्यंगय - बोध के साथ उजागर किया गया है -----

' फिर वहाँ एक बच्चा लाया गया
जो बीमार नहीं - भूखा था
डाक्टर नें मेज पर से ऑपरेशन का चाकू उठाया, मगर वह चाकू नहीं
जंग लगा भयानक छुरा था
छुरे को बच्चे के पेट में भोंकते हुए उसने कहा
अब यह बिल्कुल ठीक हो जायेगा ।'[2]

इसमें रहस्यमयता की भी सृष्टि हुई है, जिससे यथार्थ की अविश्वसनीय किन्तु सत्य स्थितियों को प्रभावपूर्ण ढंग से नग्न करनें में कवि पूर्णतः सफल हुआ है ।

' चलती हुई सड़के '[3] तथा ' हिसाब और किताब '[4] कविताओं में भी कवि की व्यंग्यात्मकता हास्य - विनोद के स्वर में व्यक्त हुई है । प्रथम में कवि ने स्वयं को बीच में रखकर यथार्थ की विडम्बनाओं तथा भयानक स्थितियों को दृश्य - चित्रों के रूप में हल्के -

---

1. परिवेशः हम तुम - कुंवर नारायण; पृ0 - 90
2. अपने - सामने - कुंवर नारायण; पृ0 - 29
3. अपने - सामने - कुंवर नारायण; पृ0 - 47, 48
4. अपने - सामने - कुंवर नारायण; पृ0 - 59, 60

फुल्के विनोदी लहजे में व्यक्त किया है । दूसरी कविता में भी स्वयं के माध्यम से कवि ने मानव की विपन्न अवस्था की बीच बचत के विज्ञापनों की हास्यास्पद स्थिति के प्रति हल्का - फुल्का व्यंग्य किया है । ' काले लोग ' कविता में कवि विश्व की सफेदपोश सभ्यता की विकृत मानसिकता के प्रति व्यंग्य करता है । काले लोगों के शोषण के प्रति कवि का व्यंग्य पैना है -----

' इनकी असभ्यता से भी ज्यादा खतरनाक सभ्यता में इनका शिकार होता है ।'[1]

इस प्रकार कुँवर नारायण ने सामाजिक विरूपताओं को उनके विरोधाभास के साथ सहजता से किन्तु सधी हुई सतर्क भाषा में प्रकट किया है, जिसमें उत्तरोत्तर अधिक सहजता का समावेश विनोद तथा नाटकीयता द्वारा किया गया है ।

दुष्यन्त कुमार की कविताओं में सामाजिक स्थितियों के प्रति जो व्यंगयात्मकता है, वह व्यक्ति - जीवन की विवशताओं, विपन्नता तथा व्यवहार के विरोधाभाष के रूप में अभिव्यक्त हुई है । दुष्यन्त कुमार की कविताओं का स्वर व्यक्तिवादी अधिक है । उन्होंने स्वयं के जीवन की जटिल व विवशता की स्थितियों के प्रति भी व्यंग्यशीलता का परिचय दिया है । ' सूर्य का स्वागत ' (1957) संग्रह में कवि की दृष्टि मनुष्य मात्र में व्याप्त विरोधाभास की विडम्बनामय प्रवृत्तियों पर बड़ी दार्शनिक मुद्रा में व्यंग्यपूर्ण दिखती है । ' यह क्यों ' कविता की निम्न पंक्तियों में कवि ने मनुष्य की कथनी - करनी के फर्क के प्रति हल्की सी व्यंग्यात्मकता के साथ अपनी खिन्नता का प्रदर्शन करते हुए ' यह क्यों ? ' पंक्ति द्वारा अपनी चिन्तना का भी आभाष दिया है -----

' जीवन के दर्शन पर दिन-रात
पंडित विद्वानों जैसी बात
लेकिन मूर्खों जैसी हरकत
यह क्यों ?'[2]

---

1. अपने - सामने - कुंवर नारायण; पृ0 - 95
2. सूर्य का स्वागत - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 41

' इनसे मिलिए ' कविता में कवि अपने नख - शिख के वर्णन द्वारा हास्य व विनोद की सृष्टि करता हुआ आज के सामाजिक - आर्थिक ढाँचें की विषमता के प्रति बड़ा मार्मिक और गहरा व्यंगय करता है । निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' छाती के नाम महज हड्डी दस - बीस
जिस पर गिन - चुनकर बाल खड़े इक्कीस
पुट्ठे हों जैसे सूख गये अमरूद
चुकता करते - करते जीवन का सूद ।'[1]

' अभिव्यक्ति का प्रश्न '[2] कविता में भी कवि आत्म - व्यंग्य करता हुआ जीवन के आभावों और विवशताओं की ओर मार्मिक ढंग से संकेत करता है । आगे . . भी कवि की व्यक्तिवादी भावना, सामाजिक जीवन में व्यक्ति की विवश व त्रस्त स्थिति को आत्म - व्यंग्य के रूप में व्यक्त करती परिलक्षित होती है । ' उपक्रम ' कविता में अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव स्वरूप कवि का व्यंग्य अपनी विवश असहाय स्थिति के प्रति बड़े प्रखर रूप में व्यक्त हुआ है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

' मेरा जन्म एक नैसर्गिक विवशता थी ,
दूर्घटना
आत्म हत्यारी स्थितियों का समवाय
मुझे अनुभव के नाम पर परिस्थिति नें कोड़ों से पीटा ।'[3]

यहाँ 'परिस्थितियों द्वारा कोड़े से पीटे जाने ' में कवि का आत्म - व्यंग्य अत्यन्त मार्मिक और स्वयं के प्रति निमर्म है । स्वयं का उपहास करना गहरी संवेदनाशीलता व परिपक्वता का परिचायक है । एक अन्य कविता ' एक सफर पर ' में कवि ने ट्रेन की यात्रा के संस्मरण के रूप में लोगों की गतिविधियों का सूक्ष्म - निरीक्षण कर मनुष्य की संकुचित व संशयशील मनोवृत्ति तथा युग में व्याप्त चोरी, लूट, ठगी, हिंसा इत्यादि की प्रवृत्तियों का

---

1. सूर्य का स्वागत - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 60
2. सूर्य का स्वागत - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 46
3. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 10

उद्घाटन किया है । निम्न पंक्तियों में कवि यात्रियों के परस्पर व्यवहारों का यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्रण कर आधुनिक मानव की सभ्यता, युग की क्रूर और आतंकपूर्ण स्थितियों तथा शंका और भय के साथ जीते मनुष्य के एकाकीपन की विडम्बना को प्रत्यक्ष कर देता है । यहाँ व्यंग्य विडम्बना न विसंगति के उद्घाटन में निहित है -----

' यात्रा में लोग बाग सचमुच डराते हैं
आँखों में एक विचित्र मुलायम सी
हिंस क्रूरता का भाव लिए
एक - दूसरे का गन्तव्य पूछते हुए
दोस्ती का हाथ बढ़ाते हैं
सहमकर मुस्कराते हैं ।'[1]

' आवाजों के घेरे ' संग्रह ' में भी कवि ने स्वयं के माध्यम से व्यक्ति तथा समाज की वर्तमान स्थिति के प्रति व्यंग्य किया है । दुष्यन्त कुमार के समाज व व्यक्ति तथा स्वयं के प्रति किये गये व्यंग्यों का स्वर आक्रोशपूर्ण नहीं, करूण है । उसमें कवि के विक्षोभ, खिन्नता और वितृष्णा की अभिव्यक्ति हुयी है । दुष्यन्त कुमार ने व्यंग्य - विपर्यय के रूप में पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग भी किया है । 'दृष्टान्त ' कविता में कवि स्वयं को अभिमन्यु के रूप में देखता वर्तमान जीवन में उसकी विडम्बनामय परिणति को निम्न पंक्तियों में व्यक्त करता है । इसमें व्यक्ति जीवन के असहाय एकाकीपन व व्यर्थता के प्रति तीखा व्यंग्य है ---

' आक्रामक सारे चले गये
आक्रामण कहीं से नहीं हुआ
बस मैं ही दुर्निवार तम की चादर जैसा
अपने निष्क्रिय जीवन के ऊपर फैला हूँ ।'[2]

' भविष्य की वन्दना ' कविता में मनुष्य के अतृप्त, विवश जीवन के खोखलेपन पर व्यंग्य करते हुए कवि उसमें महत्वाकांक्षाओं को रावण की तरह घुस आते हुए देखता है ----

---

1. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 17
2. आवाजों के घेरे - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 10

' गैस के गुब्बारों से सपने
बच्चों सी लालची हमारी आत्मओं को
निकट बुलाते हैं
..... पर हम रोते हैं
इस पर दम्भ है महत्वाकांक्षाओं का (जो कि जीवन की चौहदी में वेष बदल,
रावण - सी घुस आई)'[1]

यहाँ स्वप्नों को पूर्ण करने में असमर्थ अभावग्रस्त मनुष्य की दंभपूर्ण महत्वाकांक्षाओं को रावण के पौराणिक प्रतीक द्वारा बड़ी सटीक व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की गयी है ।

विपिन कुमार अग्रवाल की कवितायें आधुनिक - भाव - बोध को विसंगति - बोध के रूप में प्रस्तुत करती हैं । विपिन की दृष्टि वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी है । इनके काव्य में भी व्यक्ति के अनुभव के रूप में आधुनिक जीवन की विसंगति और उसके व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है । विपिन सहज - बोध के स्तर पर बड़े हल्के - फुल्के ढंग से व्यक्ति या समाज की विसंगति को व्यक्त करते हैं । इससे उनका तेवर विनोदपूर्ण हो जाता है । केवल अपनी कथन - भंगिमा या अभिव्यक्ति - शैली की विशिष्ट मुद्रा द्वारा कवि व्यंग्यात्मक स्थिति को स्पष्ट कर देने में सक्षम है । विपिन अनुभव की सहज अभिव्यक्ति को महत्व देते हैं । अतः शिल्प-पक्ष और कथ्य को अलग से महत्व नहीं देते । साज - सज्जा तथा विषय विशेष को लेकर चलने की प्रवृत्ति कवि में नहीं है । ' नंगे पैर ' (1970) संग्रह में संकलित कविताओं में सामाजिक विसंगति को व्यक्ति के सन्दर्भ में आत्मालाप शैली में व्यक्त किया गया है । ' इस बार ' कविता में कवि ने सहज एवं सरल भाषा में वक्रोक्ति द्वारा जीवन के अभावों को व्यक्त कर समाज की आर्थिक विषमता के प्रति प्रच्छन्न व्यंग्य किया है -

' और घूमना तो मुझे बेहद पसन्द है
पैदल ही दस कोस चलकर आया हूँ
यह लो
सब दुकानें बन्द हो गयी वरना
मैं न जाने क्या - क्या खरीदता ।'[2]

---

1. आवाजों के घेरे - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 33
2. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 7

' मैं ' कविता में भी कवि स्वयं की मनोवृत्तियों और गतिविधियों की वैज्ञानिक दृष्टि से पड़ताल करता हुआ आधुनिक जीवन में मनुष्य की स्थिति के प्रति व्यंग्यशील है -----

' सबसे मिलता - जुलता मैं
खुद हूँ उठता - बैठता ऐंठा हुआ
एक रिश्ते से दूसरे तक
रँगा हुआ तरह - तरह के रंगों में
सजा हुआ परायों में, बेहद खुला हुआ
अपनों में ढँगा हुआ, अजब सा अकेले में ।'[1]

यहाँ कवि ने मानव जीवन की विसंगतियों को प्रकट कर उनके व्यंग्य को बड़े सहज स्तर पर ग्रहण कराया है । इसी प्रकार ' स्टिल - लाइफ ' कविता में भी विपिन नें लोगों से मिलते एवं उनके बीच जीते हुए मनुष्य के जिस खोखले व कृत्रित स्वरूप का अनुभव किया है, उसे बड़ी सहजता से परन्तु कौतुक के साथ सामने रख उनके प्रति विनोदपूर्ण व्यंग्य की सृष्टि की है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

' .. लाखों चेहरे देखे हैं
पर याद करता हूँ तो मेरे सामने
एक चीनी की तश्तरी बनकर आते हैं
तरह - तरह के आँख, नाक, मुँह के घेरे
मानों इनके पीछे गोल सिर है ही नहीं

× × ×

हाथों के नाम पर मकान की छतों पर
रेडियों के एरियल निकल आते हैं ।'[2]

' व्यक्तित्व ' कविता में भी कवि मनुष्य की बाह्याकृति का व्यंग्यात्मक खाका खींचकर एक ओर अपनी विनोद - वृत्ति का परिचय देता है तो दूसरी ओर संवेदन शून्य लोगों के मात्र शारीरिक ढाँचा बनकर जीने के प्रति व्यंग्य करता है । अंतिम पंक्तियों में कवि की व्यंग्य - दृष्टि स्पष्ट है -----

---

1. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 29
2. नगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 27

' सभी कुछ तो किसी न किसी की
नकल है लगता है महज्
अपनी गठन को तुम मैं कहते हो ।'[1]

' सुनों ' कविता में विनोद की मुद्रा में कवि आदमी की तुलना घड़ी से करता हुआ उसके जीवन की यांत्रिकता, विवशता, हताशा एवं अवरूद्ध स्थिति की विसंगति को प्रगट कर उसके प्रति पैना व्यंग्य करता है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' तुम बिना बात अपने हाथ हवा में चला रहे हो
तुम अपने चेहरे पर सदा बारह बजा रहे हो
तुम एक पल प्रति मील दौड़कर भी खड़े हो
तुम नाहक अपने को
अब भी आदमी कहने पर अड़े हो ।'[2]

आदमी के प्रति कवि की यह व्यंग्य - दृष्टि उसके वैज्ञानिक - बोध का ही परिणाम है । कवि जैसे आदमी को आदमी के रूप में न देखकर एक यंत्र के रूप में देखता है आज के वैज्ञानिक युग में आधुनिक मनुष्य की परिवर्तित यांत्रिक स्वरूप के प्रति ही विपिन की प्रखर चेतना अधिक सजग रही है । ' विडम्बना ' कविता में आधुनिक मनुष्य की विडम्बनामय स्थिति को विचित्रता के साथ व्यक्त किया गया है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' मनबोधन ने पत्थर की दीवारें उठवा
जगह को घेरा
और खुद बँध गये
प्रीतम सिंह नें ज्यों ही बाहों में समय को समेटा
उनकी उम्र सहसा बढ़ गयी
सहसराम नें सारे संसार को एक नज़र से देखा
और दुनिया दो हिस्सों में बँट गयी ।'[3]

1.

2. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 4।

3. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 5।

' प्रतिक्रिया ' कविता में कवि नें किसी घटना के प्रति प्रतिक्रिया करते तमाम लोगों की भीड़ की यांत्रिकता का भी चित्रण किया है । लोग किसी घटना के प्रति प्रतिक्रिया भी बड़े ठंडेपन एवं यांत्रिकता के साथ करते हैं, निम्न पंक्तियों में इसी विसंगतिपूर्ण स्थिति का चित्रण है -----

' लोग आते गये और भीड़ बढ़ती गई
सब सड़क जो उधर जाती थी
भर गयीं, किसी ने कुछ पूछा नहीं
हर व्यक्ति अपनी जगह चुपचाप खड़ा
अखबार के आने की प्रतीक्षा करने लगा ।'[1]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में व्यंग्य करने की प्रवृत्ति प्रारम्भिक रचनाओं से लेकर बाद तक की कविताओं में मिलती है । सर्वेश्वर के व्यंग्य का क्षेत्र प्रारम्भिक दौर में सामाजिक रहा है । धीरे - धीरे कवि बाह्य परिवेश के विस्तृत आयामों की विसंगतियों तथा अवांछनीय स्थितियों के प्रति अधिक जागरूक - चेतना से युक्त व्यंग्य करने में प्रवृत्त हुआ है ।

' काठ की घंटियाँ ' में कवि की चेतना अन्तर्मुखी अधिक रही हैं परन्तु ' आंतरिकता का दबाव और परिवेश का अपरिहार्य संघर्ष जब इन्हें चोट पहूँचाता है, तो तनाव पैदा होता है और इसी तनाव के कारण वे व्यंग्यकार हो जाते हैं ।'[2] अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण इस दौर में कवि का व्यंग्य कवि - कर्म के विडम्बनामय स्वरूप तथा बुद्धिजीवियों की खोखली मानसिकता के प्रति ही अधिक रहा है । ' लिपटा रजाई में ' कविता में कवि के जीवन - यथार्थ और काव्य - लोक के ' गैप ' को हास्य - व्यंग्य के रूप में व्यक्त किया गया है ।

' बाँस का पुल ' संग्रह में कवि की दृष्टि मध्यवर्गीय जीवन के तनावों और पीड़ाओं से साक्षात्कार करती हुयी आधुनिक सभ्यता में मनुष्य के अजनबीपन और अस्तित्वहीनता के प्रति व्यंग्यशील रही है । कवि के स्वर में भावुकता का भी समावेश है और इसीलिये व्यंग्य में आक्रोश नहीं, दर्द की तीखी धार है । ' भटम गये हो तुम ' तथा ' तमाम समझदार लोगों के

---

1. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 62
2. सर्वेश्वर का काव्यः संवेदना और संप्रेषण - हरिचरण शर्मा; पृ0 - 38

बीच ' कवितायें इस द्रुष्टि से उल्लेखनीय हैं । ' भटम गये हो तुम ' में कवि स्वयं के माध्यम से आधुनिक सभ्य मनुष्य के आत्मीयता - विहीन बनावटी जीवन की विडम्बना को लोक - जीवन की सहजता के साथ सम्बद्ध करता हुआ उजागर करता है -----

' खेतों के मेड़ों की ओस नयी मिट्टी
जितनी देर मेरे इन पावों में लगी रही
उतनी देर जैसे मेरे सब अपने रहे
× × ×
किन्तु मैने ज्यों ही मोजे जूते पहन लिये
जेब का, पर्स का ख्याल आने लगा
मेरे आत्मीयों का रूका हुआ काफिला
एक - एक करके शीश झुका जाने लगा । '[1]

यहाँ मोजे - जूते पहनते ही सहज आत्मीयता से दूर ऐश्वर्य एवं अहंकारपूर्ण हो जाने की प्रक्रिया के सहज चित्रण द्वारा आधुनिक - सभ्यता के मर्म पर चोट की गयी है । ' तमाम समझदार लोगों के बीच ' कविता में कवि की संवेदना आधुनिक मनुष्य के अमानवीय स्वरूप को मार्मिकता से सामने रखती हुयीं उसके अन्तर्विरोधों और असंगतियों के प्रति व्यंग्यशील हुई है । इसमें भी कवि का व्यंग्य स्वर विक्षोभ का है, आक्रोश का नहीं । कविता की अंतिम पंक्तियाँ द्रुष्टव्य हैं -----

' इस दुनिया में जों जितनी ही यातना देने में समर्थ है
वह उतना ही समझदार है ।'[2]

' एक सूनी नाव ' में कवि ने आधुनिक मानव के टूटते सम्बंधों, व स्वार्थ प्रेरित जीवन - पद्धति की विवश व त्रासद स्थितियों के प्रति मार्मिक व्यंग्य को विविध मुद्राओं में व्यक्त किया है । ' इस मृत नगर में ' कविता की निम्न पंक्तियों में कवि आधुनिक नगर सभ्यता में सभी मनुष्यों को मुर्दों की भाँति अनुभव करता है । कवि की विवशता बनकर व्यक्त

---

1. कविताएँ - । (बाँस का पुल) - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 20।
2. कविताएँ - । (बाँस का पुल) - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 240

हुई है, जिसमें मृतक समान लोगों के प्रति तीखा व्यंग्य दृष्टव्य है -----

' जैसे मैं मुर्दों के बीच हूँ
उन्हें ही उठा रहा हूँ, रख रहा हूँ
उनसे ही लिपट रहा हूँ, लड़ रहा हूँ
उन्हें ही बाँध रहा हूँ, छोड़ रहा हूँ
छोड़कर आगे बढ़ रहा हूँ
इस मृत नगर में ।'[1]

आज का मनुष्य स्वार्थलिप्त होकर इतना स्वकेन्द्रित तथा निरपेक्ष हो गया है कि उसके साथ मानव - सुलभ किसी भी व्यवहार की कोई प्रतिक्रिया कवि को नहीं मिलती । यहाँ मुर्दों के साथ स्वयं के दृश्य - बिम्बों को प्रस्तुत कर कवि ने बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से यथार्थ का चित्रण भी किया है और उसके प्रति व्यंग्य भी । एक अन्य कविता ' व्यंग्य मत बोलो ' में कवि विकृत यथार्थ के प्रति विरोध प्रकट न कर यथास्थिति में जीनें वालों की समझौतावादी व अनुकरणशील मनोवृत्ति के प्रति वक्रोक्तिपूर्ण व्यंग्य करता है -----

' व्यंग्य मत बोलो
काटता है जूता तो क्या हुआ
पैर में न सही
सिर पर रख डोलो ।'[2]

विनोद व हास्य की मुद्रा में उक्ति - चमत्कार के साथ आज के जटिल - यथार्थ कों जीते - भोगते मनुष्य की स्थिति तथा यथार्थ की विसंगति को ' किसी और की पसंद पर ' कविता में व्यक्त किया गया है । निम्न पंक्तियाँ पहले तो उक्ति - वैचित्र्य के द्वारा विनोद व हास्य की सृष्टि करती हैं, फिर बड़े हल्के - फुल्के ढंग से बड़े लोगों की असलियत को उसकी विडम्बना के साथ सामने रख देती है -----

' एक बात साफ है
कई होती तो बात दूसरी थी

---

1. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 37
2. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 -

दूसरी बात भी साफ हो सकती है
यदि आप इज़्लास में हों
यानी फूलों की क्यारी
या बच्चों की मोटर में
पर आप बड़े हैं
इसीलिए कटघरे में खड़े हैं ।'[1]

आगे के संग्रहों में कवि की संवेदना राजनीतिक - चेतना से अधिक जुड़ती गयी है । ' कुआनों नदी ' संग्रह में राजनीतिक गतिविधियों पर व्यंग्य के साथ ही स्वतंत्र भारत में ग्रामों की दयनीय स्थिति, अशिक्षा, पिछड़ेपन, गरीबी इत्यादि के प्रति कवि का मार्मिक व्यंग्य उसकी वैचारिक चिन्ता के स्वर में व्यक्त हुआ है । कवि ने ' कुआनो नदी ' को ग्रामीण सभ्यता - संस्कृति के प्रतीक के रूप में भी प्रयुक्त किया है । वह समाज के शोषित वर्ग की जड़ मानसिकता के प्रति अपने विवश आक्रोश की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति करते हुए कहीं तो बाह्य यथार्थ से स्वयं को जोड़ता है -----

' एक बंजर भूमि में बढ़ा हुआ नाखून लिए मैं खड़ा हूँ ।'[2]

और कहीं कवि का व्यंग्य इस विडम्बनापूर्ण स्थिति के प्रति तटस्थ मुद्रा में किन्तु तीखे प्रभाव वाला है कि -----

' नाखनू दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं
और जमीन उसी अनुपात में बंजर होती जा रही है ।'[3]

' कुआनो नदी ' कविता में कवि ने एक ही प्रतीक को कई अर्थों में प्रयुक्त किया है । ' नाखून ' एक तो कवि के विद्रोह और क्रान्ति का प्रतीक है, दूसरे अंश में सत्ता - पक्ष की क्रूरता, शोषण व अमानवीयता का प्रतीक है । आम आदमी की स्थिति की विडम्बना इन

---

1. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 63
2. कुआनो नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 19
3. कुआनो नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 20

पंक्तियों में देखी जा सकती है कि -----

' अभी एक डाँगर बहता हुआ निकल गया
अभी एक आदमी बहता हुआ चला जायेगा ।'[1]

इन स्थितियों के प्रति कवि की प्रश्नाकुल व्यंग्यात्मकता क्रान्ति की सुगबुगाहट से युक्त है -----

' क्यों हर चेहरा मोम का है ?
क्यों हर दिमाग कूड़े से पटा हुआ है ?'[2]

' कुआनों नदी ' संग्रह की अन्य कविताओं में ' एक बस्ती जल रही है ' तथा ' शरणार्थी ' में कवि ने आधुनिक सभ्यता के विकृत स्वरूप तथा आधुनिक मनुष्य की क्रूर व घातक प्रवृत्तियों के प्रति तीखा व्यंग्य किया है । प्रथम कविता में विसंगति - बोध के रूप में नैतिकताविहीन संस्कृति के अमानवीय स्वरूप पर व्यंग्य निम्न पंक्तियों में व्यक्त है -----

' ... सभ्यता इस स्तर पर पहुँच गयी है
कि एक की आग दूसरे के घर का चिराग बन जाये ।'[3]

' शरणार्थी ' में कवि आज के आदमी को आदमखोर जानवर से भी अधिक खतरनाक बताकर उस पर तीक्ष्ण व्यंग्य करता है, क्योंकि आज तो सम्पन्नता व ऐश्वर्य से भरा - पूरा आदमी ही अधिक खूँखार है -----

' और आदमी ? उसकी बात मत करो
बेहतर है कि मुझे किसी
आदमखोर जानवर की माँद में ले चलो
कम से कम पेट भरे होने पर वह हमला तो नहीं करेगा ।'[4]

---

1. कुआनों नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 20
2. कुआनों नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 28
3. कुआनों नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 63
4. कुआनों नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 68

' जंगल का दर्द ' संग्रह में कवि का व्यंग्य प्रतीकों के माध्यम से शोषक - व्यवस्था के प्रति व्यक्त हुआ है । ' कुत्ता - ' । ' कविता में समाज के चाटुकार व टुकड़खोर लोगों के प्रति तीखा व्यंग्य है, जो एक उदाहरण की मुद्रा में हैं । ' कुत्ता - 2 ' में समाज में चाटुकारों की लालची व स्वार्थी प्रवृत्ति के सम्मुख समझदार लोगों की स्थिति को खतरे में बताता हुआ कवि प्रगल्भ और पैना व्यंग्य करता है -----

' जब हर चेहरा / हाँफता, लार टपकाता / नजर आये / पुचकारते ही / दुम हिलाये / दुलारते ही पेट दिखाये / × × × / तब समझदारों को चाहिए / डर जाये / कि कहीं वह उनसे प्रतिस्पर्धा न कर जाये ।'[1]

' खूटियों पर टँगे लोग ' (1982) संग्रह में भी कवि व्यक्ति व समाज के प्रति व्यंग्यशील दिखता है । इसमें ' कोट ' कविता में कवि का व्यंग्य विवशता व निराशा के दर्द से युक्त है । आज के जड़ होते जाते जीवन के प्रति कवि का व्यंग्य ' खूँटी पर टँगे कोट ' के प्रतीक द्वारा स्वयं की अनुभूति के रूप में व्यक्त है -----

' खूँटी पर एक अरसे से टँगे - टँगे
मैं कोट से
अपना कफन बनता जा रहा हूँ ।'[2]

' पोस्टपार्टम की रिपोर्ट ' कविता का तेवर अलग है । इसमें कवि सामाजिक - आर्थिक वैषम्य के प्रति व्यंग्य चुटकुले वाली शैली में करता है । नाटकीयता और विनोद के साथ गरीबी व भूख की स्थिति की विडम्बना को व्यक्त किया गया है -----

' गोली खाकर
एक के मुँह से निकला
' राम '
दूसरे के मुँह से निकला - ' माओ '

---

1. जंगल का दर्द - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 47
2. खूँटियों पर टँगे लोग - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 23

लेकिन तीसरे के मुँह से निकला
' आलू '
पोस्टमार्टम की रिपोर्ट है
कि पहले दो के पेट
भरे हुए थे ।'[1]

यहाँ कवि का व्यंग्य यह है कि भरा पेट होने पर ही व्यक्ति ईश्वर या राजनीति में रूचि रखता है । भूखे व्यक्ति और समाज का इन बातों से वास्ता कैसे रह सकता है ।

अगले संग्रह ' कोई मेरे साथ चले ' में कवि की सामाजिक - चेतना विस्तृत परिप्रेक्ष्य में व्यंग्यशील हुई है । ' वे हमारे मसीहा नहीं हो सकते ' कविता की निम्न पंक्तियों में कवि की मानवीय आस्था, दृढ़तापूर्वक वैज्ञानिक - सभ्यता के विध्वंसक रूप के प्रति विद्रोह तथा व्यंग्य के स्वर में व्यक्त हुई है -----

' हम अपनी धरती पर आजाद रहकर जीवित रहने का
अधिकार चाहते हैं
जिनके हाथों में खोदने के फावड़े हों
वे हमारे मसीहा नहीं हो सकते ।'[2]

र्स्वेश्वर दयाल के बाद के संग्रहों में सामाजिक - स्थितियों के प्रति व्यंग्य की प्रवृत्ति कम है । प्रायः राजनीतिक व्यंग्यात्मक सन्दर्भो में ही शोषित - मानवता व आर्थिक - सामाजिक विसंगतियों का चित्रण हुआ है । कवि के व्यंग्य में विविधता है । करूणा एवं मार्मिक स्वर से युक्त व्यंग्यों से लेकर विनोदपूर्ण तथा तीखे आक्रोशपूर्ण व्यंग्य कवि ने सामाजिक - सन्दर्भो में भी किये हैं । भाषा का स्वरूप भी सहज, चुटीला, तीखा तथा भावानुरूप है ।

रघुवीर सहाय की कविताओं में सामाजिक असमानता तथा शोषण की स्थितियों को राजनीतिक सन्दर्भ में व्यक्त करनें की प्रवृत्ति अधिक रही है । लेकिन इसके साथ ही आज के

---

1. खूँटियों पर टँगे लोग - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 37
2. कोई मेरे साथ चले - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 59

समाज में लोगों के ढोंग, स्वार्थ, कृपणता, शोषक - वृत्ति, अमानवीयता, आभिजात्य - भाव तथा नारी की स्थिति के प्रति भी कवि की व्यंग्य - दृष्टि बड़ी सतर्क तथा गहरी है । किसी भी सामाजिक स्थिति या किसी भी व्यक्तित्व मे निहित विसंगति तथा विडम्बना को प्रत्यक्ष करने में कवि की मूल - दृष्टि उसके शोषक - स्वरूप के प्रति ही अधिक रही है । कवि की संवेदना की जड़े आम आदमी की बेबसी, घुटन तथा पीड़ा में गहराई में फैली हुई हैं । कवि की दृष्टि प्रायः सम्पूर्ण परिवेश की विसंगतियों और उसमें रहते लोगों की बाहरी वस्तुओ व मुद्राओं द्वारा उनकी मनः स्थिति के छद्म रूप को उजागर कर तीखे तथा गहरे व्यग्य की सृष्टि कर देती है। परवर्ती रचनाओं में कवि की अभिव्यक्ति सपाट तथा भाषा तथा सरल होती गयी है । व्यग्य, विक्षोभ, घृणा तथा आक्रोश का भाव वैचारिकता में ढलकर सयमित होता गया है । नेमिचन्द्र जैन के शब्दों द्वारा रघुवीर सहाय की कविताओं में निहित व्यंग्यात्मकता को भली प्रकार समझा जा सकता है । उनके अनुसार ' रघुवीर सहाय की कविता अपने प्रभाव के लिए अपनी 'सपाटबयानी' के नीचे एक विस्फोटक भाव - स्थिति को छिपाये रखने पर निर्भर है ।'[1]

' सीढ़ियों पर धूप मे ' कवि का प्रारम्भिक संग्रह है, जिसमें उसकी बाद मे विकसित व्यंग्य - चेतना का बीज कुछ कविताओं में मिल जाता है । इसमें कवि ने पूरे परिवेश पर व्यंग्य - दृष्टि डाली है तथा युग के लोगों के मिजाज, व्यवहार तथा चरित्र की गिरावट को बिम्बों में प्रस्तुत कर उन पर पैना व्यंग्य किया है । ' दुनिया ' तथा ' सभी लुजलुजे हैं ' कवितायें ऐसी ही अभिव्यक्तियाँ हैं । इनमें भाषा विशेष तीखे एव घृणामूलक शब्दो तथा ग्राम्य जीवन के सहज उपहासमूलक शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यंग्य का तीखापन तथा विनोद का चुलबुलापन दोनों ही विद्यमान है । ' दुनियाँ ' कविता का उद्धरण निम्न है -----

' लोग ही लोग हैं, चारों तरफ, लोग, लोग, लोग
मुँह बाये हुए लोग और आँख चुंधियाते हुए लोग
कुढ़ते हुए लोग और बिराते हुए लोग
खुजलाते हुए लोग और सहलाते हुए लोग
दुनिया एक बजबजायी हुयी सी चीज हो गयी है ।'[2]

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता - संपादक - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 106
2. सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय; पृ0 - 139

यहाँ कवि नें लोगों को उनकी विभिन्न मुद्राओं मुँह बाये हुए, आँखें चुंधियाते हुए, कुढ़ते हुए और बिराते हुए खुजलाते और सहलाते हुए ----- में व्यक्त कर उनकी सकुचाहल-, कुढ़न, घुटन, ईर्ष्या, स्वार्थ, धूर्तता तथा चालाकी के चित्रण के साथ ही उनके विविध वर्गों का भी संकेत किया है । दुनिया जैसे तमाम विकृत तथा दूषित मनोवृत्तियों से प्रेरित लोगों से भर गयी है । इसलिए कवि तीखी घृणा के साथ उसे ' बजबजाती हुयी - सी चीज ' के रूप में व्यक्त कर उस पर व्यंग्य करता है । ' सभी लुजलुजे हैं ' कविता में भी कवि ने आज के मनुष्य को उनके व्यवहार की विरोधी तथा असंतग स्थितियों में व्यक्त करते हुए उनकी नैतिक तथा चारित्रिक भ्रष्टता के प्रति तीखा व्यंग्य किया है । इसमें ' लिजलिज ', ' गिलागिल ' तथा ' लुजलुजे ' शब्दों द्वारा आधुनिक मुनष्य की की विकृतियों की आत्मा को व्यंग्यास्पद तथा उपहासात्मक रूप में प्रत्यक्ष कर दिया गया है । आज के व्यक्ति में नैतिक दृढ़ता के अभाव, स्वार्थ - साधना तथा विवशता में तरह - तरह के तेवर बदल लेने की प्रवृत्ति का उद्घाटन इन शब्दों द्वारा बड़े सटीक ढंग से हुआ है -----

' सभी लुजलुजे हैं
मोलतोल करते हैं, हिचकिचाते हैं, मुकर जाते हैं
ऐंठते हैं बिछ जाते हैं
तपाक से मिलते हैं, कतरा जाते हैं
बीड़ा उठाते हैं, बरा जाते हैं
सभी लुजलुजे हैं, गिजगिज हैं, गिलगिल हैं ।'[1]

समाज में स्त्रियों की पिछड़ी स्थिति व संकुचित परिधि के प्रति भी कवि व्यंग्य करता है । स्त्रियों की गीता पढ़ लेने भर की शिक्षा, सीता बननें का आदर्श और मूर्ख से ब्याही जाकर केवल घर - बसने और ' भात ' पकानें की स्थिति का चित्रण कर कवि उनकी उस मनोवृत्ति का उपहास करता है, जिसमें वे इतने को ही अपने जीवन की परम सार्थकता समझ लेती हैं । इसके साथ ही उस विवशता पर भी व्यंग्य है, जिसमें सामाजिक मान्यतायें तथा बाध्यतायें उसे संकुचित परिधि में जीवन - बिताने पर विवश करती हैं । निम्न कविता में कवि

---

1. सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय; पृ0 -

का व्यंग्य तीखा तथा साथ ही मार्मिक भी है -----

' पढ़िये गीता
बनिए सीता
फिर इन सबमें लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर बार बसाइये
× × × × ×
घर की सबसे बड़ी पतीली भर - भर भात पसाइये ।'[1]

' आत्महत्या के विरूद्ध ' संग्रह में कवि की चेतना सामाजिक अन्याय तथा शोषण के प्रति तीखे व्यंग्य से युक्त है । इसमें शोषक वर्ग के साथ ही शाषित वर्ग की मूढ़ता पर भी व्यंग्य है । प्रतिष्ठित वर्ग के शोषक रूप के प्रति कवि का उपहास शोषित की करूण अवस्था की सापेक्षता में व्यक्त है । निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' जोड़कर हाथ काढ़कर खीस / खड़ा है बूढ़ा राम गुलाम / सामने आकरके हो गये / प्रतिष्ठित पंडित राजाराम / मारते वही, जिलाते वही / वही दुर्भिक्ष, वही अनुदान / × × × / दया से देख रहे हैं दृश्य / गुसलखाने की खिड़की खोल / मुक्ति के दिन की ऐसी भूल / रह गया कुछ कम ईसपगोल /'[2]

(अकाल)

यहाँ कवि ने एक ओर निम्न वर्ग के प्रतिनिध रामगुलाम की गरीबी तथा भूख को और दूसरी ओर आभिजात्य वर्ग के शोषक राजाराम की अपच की स्थिति को पहुँची हुई सम्पन्नता को सामने रखकर सामाजिक अन्याय तथा वैषम्य की विडम्बना की बड़ी तीखी अभिव्यक्ति की है । ' एक और मतदाता ' कविता की निम्न पंक्तियों में कवि ने समाज के दलित वर्ग के एक चरित्र को ' खुशनसीब खुशीराम ' सम्बोधन देकर उसके नाम की विडम्बना के साथ ही उसकी अन्याय को सहज - भाव से सहने की मूर्खता पर व्यंग्य किया है -----

---

1. सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय; पृ0 - 149
2. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 14, 15

' दिनरात साँस लेता है ट्रांजिस्टर लिए हुए खुशनसीब खुशीराम
फरसत में अन्याय सहने में मस्त ।'[1]

हँसों - हँसों जल्दी हँसों ' संग्रह में कवि की दृष्टि सत्ता - पक्ष के शोषण तथा अमानवीयता के प्रति ही अधिक रही है । ' आप की हँसी ' में व्यवस्था पक्ष तथा संभ्रान्त लोगों की हँसने की क्रिया द्वारा उनकी मिथ्यावादिया को प्रत्यक्ष किया गया है । ' हँसो - हँसों जल्दी हँसों ' कविता में परिवेश की भयावह आतंक में हँसने की विवशता के चित्रण द्वारा लोगों के छद्म व्यवहार के प्रति भी व्यंग्य किया गया है । इनका विवेचन राजनीतिक व्यंग्य के अन्तर्गत हो चुका है ।

' लोग भूल गये हैं ' तथा ' कुछ पते, कुछ चिट्ठियाँ ' संग्रहों में कवि की अभिव्यक्ति का तेवर बदलता गया है, उसमें अधिक सादगी, सहजता तथा सपाटता आती गयी है, पर व्यंग्य का उद्घाटन कवि के मूल अभिप्रेत के मध्य बड़े सूक्ष्म स्तरों पर हुआ है । इनमें कवि ने समकालीन जगत के कुरूप तथा भयावह यथार्थ के प्रति गहरी संवेदना तथा तीक्ष्ण दृष्टि से युक्त मार्मिक व्यंग्य किये हैं । ' लोभ भूल गये हैं संग्रह की ' एक दिन रेल में ' कविता में कवि ने एक यथार्थ घटना के रूप में आज के मानव की कंजूसी की भावना पर पॉलिश लगाने वाले गरीब युवक के सन्दर्भ में, बड़ा सांकेतिक तथा पैना व्यंग्य किया है । ट्रेन में पॉलिश वाले युवक को देखकर लोगों की प्रतिक्रिया पहले पाँव समेटने तथा फिर झेंपनें के रूप में व्यक्त कर कवि ने उनकी कंजूसी तथा संवेदनहीनता के साथ ही उनकी अपनी शर्म पर भी व्यंग्य किया है -----

' पाँव एक एक कर
सब समेटने लगे
अपने जूते देखकर
असरे - पसरे लोग थोड़ा
थोड़ा झेंपनें लगे ।'[2]

---

1. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 -
2. लोग भूल गये हैं - रघुवीर सहाय; पृ0 - 20

' फायदा ' कविता में केवल अपने स्वार्थ - चिन्तन में रत लोगों की मानसिकता पर व्यंग्य है । इतिहास की व्याख्या सुनते हुए हमदर्दो की सोच के क्षुद्र स्वरूप का उद्घाटन करता कवि लिखता है -----

' उन्हें मतलब नहीं कि वक्त नें समाज के साथ क्या किया है
वे जानना चाहते हैं कि वक्त ने जो हालत की है समाज की
उनमें वे सबसे ज्यादा क्या पा सकते हैं ।'[1]

रघुवीर सहाय का व्यंग्य वैचारिक धरातल पर मनोवैज्ञानिक स्तरों को उद्घाटित करता हुआ व्यक्त होता है । सहजता तथा वैचारिकता का कवि के अंतिम संग्रह में पूर्ण विकास सम्पन्न हुआ है । महेश आलोक ने इस संग्रह में कवि की विशिष्ट मुद्रा तथा बोध की बड़ी सही पहचान करते हुए लिखा है -----'रघुवीर सहाय अपने अंतिम संग्रह ' कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ ' तक आते - आते अपनी बनी बनाई पहचान को तोड़ते ही नहीं, एक नयी पहचान निर्मित भी करते हैं - एकदम सजग, जागृत संवेदना और तिलमिला देने वाली सहजता लिए हुए इस सहजता में एक समझदार और नयी अनुभव सम्पन्न दृष्टि का वजनदार तेवर छिपा हुआ है ।'[2] ' कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ ' में रघुवीर सहाय का व्यंग्य आधुनिक सभ्यता तथा मनुष्य की विकृति और दिखावटी शालीनता के प्रति बड़े सहज, तटस्थ विश्लेषण के रूप में हुआ है । ' हत्या की संस्कृति ' कविता में कवि ने आधुनिक सांस्कृतिक मूल्यों को नाटकीय शैली में नग्न करते हुए उसकी कुरूपता पर प्रहार किया है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

' अँग्रेजी पढ़ा - लिखा हत्यारा कहता है
" मुझे कहीं छिपना है, पुलिस पीछे पड़ी है "
आधुनिक प्रेमिका कहती है " खून, अरे लाओ पट्टी कर दूँ "
औरत से कहता है अभिजात अपराधी " धन्यवाद " ।'[3]

---

1. लोग भूल गये हैं - रघुवीर सहाय; पृ0 - 64
2. ' रघुवीर सहाय की कविता ' - महेश आलोक - ' इन्द्रप्रस्थ भारती '; पृ0 - 203
3. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 17

इसमें कवि ने पढ़े - लिखे हत्यारे, आधुनिक प्रेमिका तथा अभिजात अपराधी के 'धन्यवाद' कहने के नाटकीय संयोजन द्वारा तथाकथित अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त उच्च वर्ग तथा उनकी आभिजात्य शालीनता को तार - तार कर उनकी असलियत को सामने रख दिया है । एक अन्य कविता ' एकांत ' में कवि ने आज के मानव के बदले हुए स्वरूप की पहचान करते हुए उसकी भयावह विडम्बना की अभिव्यक्ति की है । आज व्यक्ति झूठ व फरेब का इतना आदी हो गया है कि सच बात उसे समझ नहीं आती । कितनी बड़ी विडम्ब्ना है कि -----

' सच - सच बताने से कोई समझता नहीं
जब तक कि उसमें कहीं थोड़ी मिलावट न हो ।'[1]

यहाँ केवल दो पंक्तियाँ ही आधुनिक युग की विकृति तथा विरूपता के मूल मर्म का उद्घाटित कर रही हैं । यहाँ आक्रोश नहीं, खिन्नता तथा विरक्ति - भाव है, जिसमें कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता मुखर है । यूरोपीय सभ्यता के प्रति कवि का व्यंग्य काव्यात्मक - सौंदर्य से युक्त , संक्षिप्त तथा प्रभापूर्ण रूप में ' यूरोप में कविता - 3' शीर्षक कविता में द्रष्टव्य है -----

' सभ्यता मेजों पर गोश्त ही गोश्त है
और छुरी काँटे में नम्रता ।'[2]

यहाँ सभ्यता मेज पर गोश्त ही गोश्त बिम्ब पाश्चात्य वैज्ञानिक उन्नत सभ्यता के विध्वंसक अमानवीय स्वरूप की वास्तविकता तथा छुरी काँटे में नम्रता उनकी शालीनता व शिष्टाचार की विडम्बना को बड़ी सटीक व्यंजना के साथ नग्न कर देता है । नम्रता सभ्यता का लक्षण है और यहाँ गोश्त सभ्यता की मेज पर है और नम्रता छुरी - काँटे जैसी धारदार वस्तु में । इस प्रकार इसमें कवि का व्यंग्य उक्ति - वैचित्र्य के साथ सभ्यता के अमानवीय स्वरूप की

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 53
2. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 60

विडम्बना को बड़ी अर्थपूर्ण कलात्मकता में व्यक्त करता हुआ अत्यन्त धारदार बन पड़ा है ।

एक अन्य कविता ' दयावती का कुनबा ' में कवि का व्यंग्य बड़ी सूक्ष्म व्यंजना के रूप में तिलमिलाने वाली मार्मिकता से युक्त है । इसमें समाज में नारी की शोषित अवस्था तथा उसकी विवशता के चित्रण के साथ उसकी उस मानसिकता के प्रति व्यंग्य भी है, जिसमें वह सामाजिक रूढ़ियों की जकड़ में विवश भाव से अपनी सहजता को मार कर, रोगों को झेलती, सगुन मनाती बच्चे पैदा करती है । इसमें कवि की वर्णन शैली द्वारा ही नारी के जीवन की यांत्रिक गति प्रत्यक्ष हो उठी है, जिसमें एक ही लीक पर चलने की विवशता आदत सी बन गयी है । निम्न अंश में नारी जीवन के रूढ़िबद्ध स्वरूप का व्यंग्य दृष्टव्य है -----

' इच्छायें दाबकर स्वभाव को
जैसे ससुराल में पसंद था
रोगों को झेलकर दिखलाकर सगुन
चार बच्चे पैदा किये ।'[1]

' रिक्शावाला ' कविता में कवि सामाजिक - आर्थिक वैषम्य के बीच शोषक व शोषित की हैसियत को एक ही स्तर की बतानें वाली एक स्थिति का चित्रण करता उसके प्रति बड़ा पैना व्यंग्य करता है, जो एक विश्लेषण के रूप में होने से ऊपर से बड़ा सहज, संयमित व सादा है । रिक्शे पर बैठने वाले तथा रिक्शा चलाने वाले के सन्दर्भ में कवि की सिर्फ दो पंक्तियाँ ही उसके व्यंग्य को प्रत्यक्ष कर देती हैं -----

' सिर्फ जब ढुलाई पर दोनों झगड़ते हैं,
हैसियत उनकी बराबर हो जाती है ।'[2]

इस प्रकार रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में व्यंग्य की धार को क्रमशः तेज किया है, जो उनकी गंभीर सोच की सहज अभिव्यक्ति के रूप में आधुनिक मनुष्य की विकृत सभ्यता, उसकी अमानवीयता तथा शोषण की प्रवृत्ति के मर्मस्थल में उतर कर चोट और पीड़ा पहुँचाती है ।

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 -
2. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 84

श्रीकांत वर्मा की कविताओं में बाह्य संसार की भयावह सच्चाइयों की तीखी अभिव्यक्ति हुई है । मानव जीवन के अन्तर्विरोधों, और विकृतियों को उनके अप्रत्याशित स्वरूप के साथ कवि इतनी सहजता और लापरवचाही से व्यक्त कर देता है, कि सरसरी तौर पर उसकी कवितायें एक मनोरंजक मूड और खिलवाड़ की कवितायें लगने लगती हैं । तुकों के प्रयोग तथा ' स्व ' के असम्बद्ध उद्‌गार के रूप में यह खिलवाड़ - भाव प्रत्यक्ष हो उठता है । अशोक बाजपेयी के शब्दों में ' एक गंभीर कवि के रूप में श्रीकांत वर्मा अच्छी तरह जानते हैं कि कविता में कहीं न कहीं भाषा के साथ खिलवाड़ जरूरी है । और बावजूद उसमें निहित व्यंग्य और चरितार्थ भयावह संसार के, वह उनकी कविता पर एक आह्लादकारी गति दे देती है ।'[1] बाह्य यथार्थ की विसंगतियों और दहशत के प्रति कवि की प्रतिक्रिया और उसका दृष्टिकोण उपेक्षा एवं लापरवाही का है, जो कवि की गंभीर व अत्यधिक सजग गहरी संवेदना और चिन्तना का ही परिणाम है । देवकीनन्दन द्विवेदी के अनुसार । ' अबौद्धिक चिन्तन अतिबौद्धिकता की स्वाभाविक परिणति है ।'[2]

आधुनिक सभ्यता में रिश्तों तथा व्यवहारों के अप्रत्याशित, अनुचित तथा विडम्बनामय स्वरूप, श्रीकांत वर्मा की कविताओं में उनकी अन्तर्निहित करूणा, क्षोभ, क्रोध तथा तीखी घृणा के साथ सहज, नाटकीय तथा विनोदपूर्ण मुद्रा में व्यक्त हुए हैं । कहीं - कहीं अश्लील शब्दावली का भी प्रयोग है और कहीं चमकृत करनें की प्रवृत्ति भी है, पर पूरी कविता के प्रवाह में ये स्थल अपना कोई स्वतंत्र - प्रभाव नहीं डालते । कवि की त्वरित अभिव्यक्ति में कहीं आक्रोश व घृणा की अभिव्यक्ति एवं कहीं मनोरंजक प्रभाव के लिए इनका प्रयोग किया गया है ।

' दिनारम्भ ' (1967) संग्रह की ' पटकथा ' कविता में कवि यथार्थ जगत के विविध बिम्बों को प्रस्तुत करता है । इसमें कवि की दृष्टि विविध दृश्यों पर फिसलती हुयी, उनमें निहित व्यंग्य को तुकों के चमत्कारिक प्रयोग द्वारा सामने रख देती है । कवि की यह शैली ' माया - दर्पण ' संग्रह में और विकसित हुई है । ' पटकथा ' की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता - संपादक - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 115
2. 'एब्सर्डिटी: संप्रत्ययात्मक विश्लेषण' - देवकीनन्दन द्विवेदी; आलोचना - जन0,मार्च-1970 - पृ0 - 62

हैं जिनमें विसंगति तथा विडम्बना बोध को प्रत्यक्ष किया गया है -----

' एक द्वार है जो बंद है
एक जेब में घड़ी
दूसरी नें फाँसी लगाने के लिए कमन्द है
सुविधा के लिए नींद की गोली है
वह हाथ बढ़ाता है और पाता है
पसीने से चिपचिपाती हुयी एक चोली है
वह घबराकर किसी और का हाथ पकड़ लेता है ।'[1]

यहाँ कवि नें मानव जीवन की कुंठा, निराशा, त्रास, विवशता, ऊब तथा अरूचि की स्थितियों के प्रति व्यंग्य किया है । यहाँ व्यंग्य और विनोद दोनों साथ उभरते हैं । व्यंग्य तो विडम्बना बोध में है और विनोद कवि के प्रस्तुतीकरण के ढंग में । ' माया - दर्पण ' (1976) की कविताओं में भी कवि बाह्य यथार्थ को कविता के संसार में बड़े मायावी ढंग से घटित होता दिखाता है । प्रायः कवि स्वयं भी इस संसार में अपनी घुटन, ऊब, क्षोभ तथा आक्रोश की अभिव्यक्ति करता हुआ वर्तमान रहता है । ' माया - दर्पण ' कविता में कवि स्वयं के माध्यम से यथार्थ जगत के व्यंग्य और विद्रूप से साक्षात्कार करता है । महत्वाकाँक्षाओं के पीछे भागते - भागते बूढ़े हो गये लोगों में भी अतृप्ति एवं लिप्सा की भावना पर व्यंग्य निम्न पंक्तियों में व्यक्त है -----

मुझे अभी कई लड़कियों से
करना है प्रेम
मुझे अभी कई कुण्डों में करना है स्नान
अभी कई तहखानों की
करनी है सैर
मेरा सारा शरीर सूख चुका
मगर साबित हैं
पैर ।'[2]

---

1. दिनारम्भ - श्रीकांत वर्मा; पृ० - 56
2. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ० - 4

इसी कविता में आगे कवि की खीझ तथा चिढ़ समाज के शोषण तथा मनुष्य की शर्म के प्रति तीखे व्यंग्य के रूप में व्यक्त है -----

' तुमने मेरी शर्म नहीं देखी ।
मैं मात कर सकता हूँ
महिलाओं को
मैं जानता हूँ सारी दुनियाँ के ऊदबिलावों को
हमेशा से जो बैठे हैं
ताक में ।'[1]

आगे की पंक्ति में कवि तुकों के द्वारा अप्रत्याशित रूप से विषय परिवर्तन करता है, जिसमें बाह्य - यथार्थ की विकृति ऊदबिलावों का ताक में बैठे रहना ' को पहचानते हुए नाक में तकलीफ का जिक्र करना कविता में एक मनोरंजक विनोदात्मकता भर देती है । 'दिनचर्या' कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं, जिनमें कवि ने स्त्रियों की रूप लिप्सा की संकीर्ण मानसिकता का व्यंग्यात्मक बिम्ब प्रस्तुत किया है, जिसमें तुकों सुन्दर एवं सार्थक प्रयोग है -----

' कहीं पर एक स्त्री
अकस्मात उभर
करती है प्रार्थना
हे ईश्वर । हे ईश्वर । ढले मत उमर ।'[2]

यहाँ कवि ने समाज में स्त्रियों की मात्र उपभोग्य वस्तु समझे जाने की करूण स्थिति तथा स्त्री के उम्र ढल जानें के भय, दोनों के प्रति भी व्यंग्य को ध्वनित किया है । इसी प्रकार ' एक दिन ' कविता में कवि ने स्वयं पर व्यंग्य के माध्यम से समाज में विघटित मूल्यों तथा टूटते सम्बन्धों की घुटन, विवशता तथा पीड़ा को पैने व्यंग्य के साथ व्यक्त किया है, जिसमें उपहास का तीखापन तथा विनोद की चुलबुलाहट प्रतीकों के सटीक तथा हास्यास्पद रूप द्वारा

---

1. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 6
2. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 9

बड़े संश्लिष्ट रूप में दर्शनयी है -----

' मैं अपनी टाँगों पर / टँगा हुआ / गट्ठर हो गया हूँ / वह स्त्री / जो छोड़कर चली गयी / जानती थी / मैं उसके वक्ष में छिपाये मुँह / एक शुतुर्मुर्गनुमा / ठट्ठर हो गया हूँ / मैं क्या करूँ /'[1]

' जीवन - बीमा ' कविता में भी कवि नें तुकों द्वारा विविध प्रसंगों व दृश्यों को बदलते हुए यथार्थ की विसंगति तथा विडम्बना को प्रत्यक्ष किया है । निम्न पंक्तियों में कवि की पीड़ा का स्वर भी लक्षित किया जा सकता है । सामाजिक प्रथाओं को निभाते मनुष्य की परतंत्रता तथा विवशता का दर्द सामाजिक विडम्बना पर तीखे व्यंग्य के रूप में निम्न पंक्तियों में व्यकत हुआ है -----

' मेरा विवाह किसी स्त्री से नहीं
बल्कि
हुआ था
जमाने की पसन्द से
पत्नी मिली है दहेज में ।'[2]

यहाँ जमाने की पसन्द के साथ ब्याहे जाने तथा दहेज में पत्नी के मिलने के उक्ति - वैचित्र्य द्वारा सामाजिक परम्पराओं की विकृति को उजागर किया गया है । आधुनिक युग में रिश्तों का खोखलापन, पारिवारिक जीवन की ऊब और विवशता तथा दोहरी जिन्दगी जीते मानव की त्रासद स्थिति की विडम्बना और उसका तीखा व्यंग्य ' बंद पृथ्वी का प्रेम ' कविता की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -----

' बाध्य हैं हम दोनों / एक - दूसरे से घृणा / करते हुए / करने को / प्यार / एक - दूसरे का डाह भरा मौन / अपने अंधेरे में / विवश हो / छिपाये हुए / हम दोनों / बंद पृथ्वी में / कब से रच रहे हैं / दोहरा संसार / धन्य हम दोनों का घबराया प्यार /'[3]

---

1. माया - दर्पण - श्रीकान्त वर्मा; पृ0 - 12
2. माया - दर्पण - श्रीकान्त वर्मा; पृ0 - 25
3. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 70, 71

श्रीकांत वर्मा नें आधुनिक सभ्यता की विडम्बना को भी अपनी कविताओं में व्यक्त किया है । नगरों में लोगों के अपने - अपने घरों में बंद रहने, कोई सामाजिक - भावना न रखने तथा एकाकी एवं अर्थहीन जीवन जीनें की स्थिति के प्रति कवि की व्यंग्य - दृष्टि ' सभ्य - बोध ' कविता की निम्न पंक्तियों में बड़ी पैनी है -----

' सुबह इन माँदों का मुँह खुलना
शाम का मकानों में
मकानों का शाम में
फीके - फीके घुलना
दुपहर को भाँय - भाँय
अर्थ. नहीं आँच - बाँय ।'[1]

यहाँ मकानों का माँदों की तरह खुलना और शाम में फीके - फीके घुलना तथा भाँय-भाँय करना नगर - जीवन के भयानक एकाकीपन को व्यंजित कर रहा है । आँय - बाँय शब्द द्वारा लोगों के अर्थहीन प्रलाप की सटीक व्यंजना विडम्बना की समूची स्थिति से सम्बद्ध हो गई है ।

' जलसाघर ' संग्रह (1973) में भी कवि की व्यंग्यात्मक दृष्टि समाज एवं व्यक्ति की विकृतियों का उद्घाटन करती है । इस संग्रह में कवि नाटकीय संयोजन द्वारा यथार्थ के व्यंग्य को प्रस्तुत करता है । ' प्रक्रिया ' तथा ' ट्राय का घोड़ा ' कविताओं में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है । लोगों की अंधानुकरण की प्रवृत्ति ' प्रक्रिया ' में व्यक्त किया गया है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' हैरत में सब पूछ रहे हैं
' यह कैसे हुआ ?'
जिस तरह सब पूछ रहे हैं
उसी तरह मैं भी ।
यह कैसे हुआ ।'[2]

---

1. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ० - 60
2. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; पृ० - 80

' ट्राय का घोड़ा ' में प्रतीकात्मक तथा नाटकीय शैली में आज के जीवन की भागदौड़ और आपाधापी की निरर्थकता के प्रति पैना व्यंग्य है । कवि ने इस भाग - दौड़ को ऐतिहासिक बोध के साथ व्यक्त किया है । कुछ अंश द्रष्टव्य हैं -----

> ' कहाँ जा रहे हैं वे ? / क्यों भाग रहे हैं ? / क्या कोई उनका पीछा कर रहा है ? / क्या उनकी ट्रेन छूट रही है ?'/ × × × / ' फिर वे क्यों इस तरह गुजर रहे हैं ?' / ' क्योंकि उन्हें इसी तरह गुजरना है /' ' कौन हैं वे ?' / ' घोड़े हैं।/ ' घोड़े ?' / × × × / ' पागल हैं/' नहीं वह घोड़ा है / तमाशबीन कहता है / ' कहाँ जा रहा है ?'/ उसे पता नहीं /'[1]

कवि ने ' उसे पता नहीं ' उत्तर द्वारा ही मनुष्य के घोड़े की तरह सरपट अंधी दौड़ में शामिल जिन्दगी के व्यंग्य को प्रत्यक्ष कर दिया है । अन्य कविताओं में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति तथा उसकी मनोवृत्तियों की विकृति तथा विसंगति को ' अभिमान सेन ' तथा ' आध घंटे की बहस ' में व्यक्त किया गया है । इन कविताओं में ' माया - दर्पण ' संग्रह की कविताओं वाली शैली का प्रयोग है ।

रवीन्द्रनाथ त्यागी सातवें दशक में उभरे सामाजिक - वैयत्तिक विसंगतियों की विशिष्ट चेतना के कवि हैं । इनकी - सामाजिक दृष्टि के व्यंग्यों की विशिष्टता इस बात में है कि उनका संयत प्रहार उच्च वर्ग के लोगों तथा उनकी सभ्यता पर ही अधिकांशतः होता है । आभिजात्य वर्ग के जीवन की सारी रिक्तता, जड़ता, टूटन तथा ऊब को कवि नें बड़ी गहराई से देखा - परखा है, तथा उसके प्रति तीखा व्यंग्य करते समय उसका स्वर क्षोभ, वितृष्णा तथा कभी - कभी उदासी का रहा है । सहज अभिव्यक्ति भी अपने गहरे वैचारिक स्तर तथा आत्मीय बोध के कारण बड़े तीखे प्रभाव वाली है । प्रारम्भिक संग्रह ' सूखे हरे पत्ते ' में राजनीतिक लोगों पर भी कवि ने 'बड़े' तथा ' आभिजात्य ' व्यक्ति के रूप में ही व्यंग्य किया है। रवीन्द्रनाथ त्यागी नें समकालीन मनुष्य के जीवन की यांत्रिकता तथा कृत्रिमता, रिक्तता तथा व्यर्थता को प्रायः मृत स्थिति से जोड़कर प्रकट किया है । मृत प्राय, मुर्दा, तथा मरे के समान विशेषणों

---

1. कल्पवृक्ष - रवीन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 40

को कवि नें गहरी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया है । ' कल्पवृक्ष ' (1965) संग्रह की ' पाँच बज गये ' कविता में दफ्तरों में यांत्रिक ढंग से कार्य करते लोगों के पाँच बजते ही सहसा जी उठने के बिम्ब द्वारा कवि का व्यंग्य अद्भुत प्रभाव के साथ व्यक्त हुआ है ----

' पाँच बज गये
दफ्तरों के पिजरों से
हजारों परिंदे (जो मुर्दा थे)
सहसा जीवित हो गये --- ।'[1]

बड़े आदमी का बजट '[2] कविता में कवि का स्वर हल्के - फुल्के उपहास से युक्त है । आज सम्पन्न वर्ग की स्थिति यह है कि ऐश्वर्य के सारे साधन रहने के बावजूद उनके खाने - पीने पर पाबंदियां लग जाती हैं, क्योंकि अत्यधिक विलास तथा आरामतलब जीवन उन्हें रोगी बना देता है । इसी विडम्बनापूर्ण स्थिति का उद्घाटन इस कविता में हुआ है ।

' आखिरकार ' (1978) कवि का अन्य महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है, जिसमें कवि की व्यंग्य - दृष्टि उच्च तथा सम्पन्न वर्ग के ऐश्वर्यमय जीवन की चहल - पहल तथा रौनक के कृत्रिम आवरण को हटाकर उनके अन्दर की भयावह रिक्तता, जड़ता तथा अर्थशून्यता को नग्न रूप में प्रस्तुत करती है । यह संग्रह चार उपखण्डों में विभक्त है - अंधा पड़ाव, थका सवार, पीली यात्रायें तथा आखिरकार । अंधा पड़ाव में आधुनिक सभ्य तथा आभिजात्य वर्ग की जीवन शैली के दिखावटी रूप तथा बौनेपन को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है । आज की सभ्यता में मनुष्य नितांत एकाकी तथा शून्य है, वह समाज से कटा हुआ है परन्तु सामाजिक होने का ढोंग करने के लिए मुखौटे लगाता है, समाज के उत्सवों में खुश दिखता हुआ भाग लेता है, पर उसकी यह खुशी मात्र खोखला कहकहा होता है । निम्न पंक्तियों में कवि का मार्मिक स्वर इसी विडम्बना के व्यंग्य से युक्त है -----

---

1. कल्पवृक्ष - रवीन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 40
2. कल्पवृक्ष - रीवन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 46

' इसके बाद वे लोग बाहर निकले / और नये चेहरे पहिन कर नाचने लगे / × × × / इसके बाद वे थक गये / कहकहों के डिब्बे चुक गये सहसा / × × × × / झुर्रियों को चेहरे पर फिर चिपकाया / × × × / और उन्हीं दियासलाइयों के डिब्बों में फिर बन्द हो गये ।'[1]

एक अन्य स्थल पर कवि ने आधुनिक सम्पन्न वर्ग की फैशनपरस्ती, दिखावटी जीवन, शानों - शौकत के नीचे उनके मौलिक व्यक्तित्व के कुचले जाने तथा मनुष्य के वस्तु में तब्दील हो जानें की विडम्बनापूर्ण स्थिति को अत्यन्त सहजता से उसके मूल मर्म के साथ व्यक्त किया है -----

' ड्राइंगरूम में वह नहीं आया / उसके चमचमाते जूते आये / जब मिलाया उसने अपना था / मुलाकात रह गयी दस्तानों तक / जब वह बैठा सोफे पर / तो उसकी जगह एक शानदार सूट वहाँ बैठ गया / × × × / विदा की जगह हिलता रहा रूमाल / वह नहीं निकला पोर्च के बाहर / उसकी मोटर निकली /'[2]

' थका सवार ' खण्ड में भी कवि पाश्चात्य आधुनिक सभ्यता से प्रभावित उच्च वर्गीय ऐश्वर्यपूर्ण जीवन के खोखलेपन को गहरी उदासी के साथ व्यक्त करता उसपर वैचारिक गाम्भीर्य के साथ व्यंग्य करता है -----

' लड़कियाँ और पिकनिक
नाच और शराब
फर्नीचर शेयर्स और यात्रा
खुशियों का पहने कवच
तुम होते गये उदास
× × ×
किसी भी सुख की कीमत पर खरीद लो वापिस
अपनी वही पुरानी हँसी ।'[3]

' आखिरकार ' खण्ड में कवि की व्यंग्य - दृष्टि वैचारिक निष्कर्ष के रूप में

---

1. आखिरकार - रवीन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 7
2. आखिरकार - रवीन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 11
3. आखिरकार - रवीन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 48

व्यक्त हुई है । समाज तथा धर्म की परम्परागत रूढ़ियों को निभाते मनुष्य के बद्धमूक जड़ जीवन को मृत घोषित करते हुए कवि इस तथाकथित महानता के ढोंग से सहज मनुष्य के सुख - दुःख एवं पाप - पुण्य को झेलते जीवन में अपनी आस्था व्यक्त करता है । कुद पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

> ' तुम हो गये ज्ञाता / तुम्हारी प्रार्थनायें हो गयीं समाप्त / सारे भले काम कर लिये तुमने / तुम हो गये यशस्वी और पवित्र / सच बात तो यह / तुम मर चुके कभी के / x x x / जब तक दिशाओं की शाखों पर / दहकते हैं रूप, पाप, यौवन और दुःख / तब तक / मैं जीवित ही रहूँगा /'[1]

परवर्ती संग्रहों ' सलीब से नाव तक ' तथा ' अंतिम वसंत ' में कवि आर्थिक वैषम्य तथा निम्न वर्ग के जीवन की विकृतियों को उनकी विडम्बना के साथ प्रस्तुत करता है । बड़े लोगों पर भी कवि की व्यंग्य दृष्टि सामाजिक वैषम्य को उद्घाटित करती है । ' असठ ' कविता में आम आदमी की भूख व गरीबी की विवशता तथा तहजन्य परवशता एवं जड़ स्थिति के प्रति कवि का व्यंग्य सहजता तथा मार्मिकता के साथ बड़ा गहरा तथा प्रभावपूर्ण है । इसमें कवि ने निम्नवर्गीय लोगों के जीवन की जड़, पिछड़ी तथा उदासीन त्रासद स्थिति को मृतक के समान व्यंजित किया है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

> ' उनके पेट भूख से भरे थे / और कान अफवाहों से / उनके हाथ - पैर खपच्च के थे / x x x / हड्डियों की खूँटी पर टँगी थी खाल की कमीज / x x x / मृत्यु के दिन ही बाकी लोग भूल जाते थे / कि उनमें से अभी - अभी कोई जिन्दा था /'[2]

यहाँ अंतिम पंक्तियाँ आर्थिक वैषम्य के उस भयावह स्वरूप के प्रति तीखे व्यंग्य से युक्त है, जिसमें जीवित और मृत का फर्क नहीं मालूम देता ।

' विवश ' कविता में भी कवि आर्थिक विषमता का दयनीय चित्र प्रस्तुत करते हुए

---

1. आखिकार - रवीन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 96
2. सलीब से नाव तक - रवीन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 74

निम्नवर्गीय जीवन की विकृतियों की विडंबनामय स्थिति के प्रति व्यंग्य करता है । इसमें व्यंग्य प्रच्छन्न है, मार्मिक है तथा दोहरी धार से युक्त है, जो पूँजीवादी वर्गीय व्यवस्था तथा निम्नवर्गीय विकृत एवं विवश जीवन दोनों पर वार कर रहा है -----

' कर्ज से बिंधा बाल - बाल
मिल में चल रही हड़ताल
शंकरदास नें बचाये पैसे माँगकर भिक्षा
दारू पीकर वहाँ नाली में पड़ा;
× × ×
हड्डियों की ठठरी पर चढ़ा कपड़ा ।'[1]

सामाजिक तथा वैयक्तिक असंगतियों, विरूपताओं तथा अवांछनीय स्थितियों के प्रति सुरेन्द्र तिवारी की चेतना भी जागरूक एवं व्यंग्यशील है । इन्होंने अपनी कविताओं में व्यक्ति के चरित्र - मूल्यों की गिरावट, जातिवादी संकीर्णता, फैंशनपरस्ती, आभिजात्य का थोथा प्रदर्शन, व्यक्तित्व की स्वतंत्रता का हनन इत्यादि विषयों को व्यंग्य का निशाना बनाया है । सुरेन्द्र तिवारी के व्यंग्य विविध मुद्राओं तथा शैलियों में व्यक्त हुए हैं । कवि बड़ी सहजता से संयत मुद्रा में कहीं यथार्थ - चित्रण द्वारा तो कहीं वक्रोक्तिपूर्ण कथन द्वारा - व्यंग्यास्पद स्थितियों को प्रत्यक्ष करनें में सफल हुआ है । इनके व्यंग्य कहीं - कहीं चुटकुलानुमा एवं संक्षिप्त कलेवर में हैं, और कहीं वर्णनात्मक शैली की अपेक्षाकृत लम्बी कवितायें हैं । ' जूझते हुए ' संग्रह में संक्षिप्त तथा लम्बी दोनों प्रकार की कवितायें हैं । संक्षिप्त कवितायें हल्के - फुल्के ढंग से पैने व्यंग्य वाली कवितायें हैं । लम्बी कविताओं में कवि का भावुक तथा विक्षोभपूर्ण स्वर भी व्यंग्य को मार्मिक प्रभाव से युक्त करता है । ' उन्नति के रास्ते ' कविता में कवि का तीखा दर्द व्यंग्य के रूप में प्रगट है । आज व्यक्ति के ईमानदार होने का अर्थ है असफल होना । परन्तु जब व्यक्ति अपनी आत्मा को मारकर झूठ तथा बेइमानी का मार्ग अपनाता है, तो वह उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ता जाता है । आज के समाज में अच्छा होना आवश्यक नहीं अच्छाई का ढोंग करना आवश्यक है । निम्न पंक्तियों में इसी विडम्बना के तीखे व्यंग्य को व्यक्त किया गया है ----

---

1. अंतिम वसंत - रवीन्द्रनाथ त्यागी; पृ0 - 45

' आत्मा के मरने पर मैंने चुपचाप उसे दुफनाया / और उसकी कब्र पर / ईंट गारे का फ्लैट बनवाया / और उसके ड्राइंगरूम में / गाँधी के एक चित्र को / फूल मालाओं से सजाया / ' रघुपति राघव राजाराम ' बड़े जोर से गया / एकांत पाकर / उनके चित्र को मुँह बिराया / तब मेरे नये व्यक्तित्व नें मुझसे कहा था / कि अब तेरी उन्नति होगी /'[1]

संक्षिप्त कलेवर में उपहास एवं विनोद के मिले - जुले प्रभाव तुकों के कौशल के साथ नये रईसों पर कवि का व्यंग्य ' नये रईस ' कविता में व्यक्त हुआ है -----

' पैसे फेंककर मार देंगे
रोटी न हुई तो
चोट लग जायेगी
खाल मोटी न हुई तो
शक्ल से खबीस हैं
नये रईस हैं ।'[2]

' मेकअप ' कविता भी संक्षिप्त है, जिसमें महिलाओं की फैशन की प्रवृत्ति पर कवि का व्यंग्य बड़ा चुटीला है । इसमें कवि व्यंग्य - चित्र - सा प्रस्तुत कर देता है, जिसमें हास्योद्रेक की भी क्षमता है -----

' चेहरा मुलम्मा
तन बन गया कसा धनुष
चिक्की, पिक्की और मिक्की की अम्माँ
तब हुई खुश ।'[3]

आधुनिक जीवन में मूल्यहीनता को ही मूल्यों के रूप में स्वीकृति मिलती है । 'नसीहत' कविता में कवि ने वक्रोक्ति के साथ -----

' वफादारी जानवरों का गुण है

---

1. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 10
2. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 15
3. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 21

आदमियों का दोष
अक्ल से काम लो
किसी के न हो ।'[1]

कहकर मनुष्य की मतलबी मनोवृत्ति पर पैना व्यंग्य किया है ।

सामाजिक जीवन में मिलावट के साथ ही वस्तुओं में मिलावट पर भी कवि की व्यंग्य दृष्टि गई है । यहाँ भी कवि ने वक्रोक्ति का प्रयोग किया है -----

' हालत / पहले से अच्छी है / अब / सब लोग पानी और दूध में फर्क समझते हैं/ पहले के लोग नदियों में बहते हुए पानी को दूध - दही समझते थे / × × × / यह बात दूसरी है कि वही पानी दूध में भी रहता है /'[2]

आभिजात्य वर्ग की स्त्रियों की वैभव प्रदर्शन तथा अहंभाव के थोथे स्वरूप पर कवि का तीक्ष्ण व्यंग्य विनोद की मुद्रा में व्यक्त हुआ है ' अफसड़ांध ' कविता में -----

' माई लान, माई रोजेज, माइ फ्रिज / माई कार, माई डाग / माई हसबैंड / का बजता रहा / बार - बार बैंड / जितनी देर मेरे घर / बैठी रहीं मिसेजकर / पति हैं सीधे-सादे / पत्नी आइ0ए0एस0 बैंड /'[3]

कवि के दूसरे संग्रह ' आठवें दशक की - शाम ' में भी विनोदपूर्ण व्यंग्य हैं । ' कष्ट पुराण ' में हल्के - फुल्के ढंग से हास्यमिश्रित व्यंग्य मनुष्य के कष्टों के क्षुद्र स्वरूप पर है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

' कष्ट तीसरा ऐसा है / आते - जाते दुखी करे / सब जाने वह पैसा है / चौथा कष्ट पड़ोसी है / सदा सामने रहता है / हम तो दुख से रह लेते / वह सुख से क्यों रहता है /'[4]

---

1. जुझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 -
2. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 36
3. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 40
4. आठवें दशक की शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 34

एक अन्य कविता ' बातचीत का एक टुकड़ा ' में भी कवि नें वक्रोक्तिपूर्ण ढंग से बेइमानी, फरेब तथा चिन्तनहीन होने को ही सुखी होनें का उपाय बताये हुए आज के मानव - जीवन तथा समाज में व्याप्त विकृतियों पर प्रहार किया है ।[1] ' नयी पीढ़ी के नाम ' में कवि ने समकालीन सामाजिक राजनीतिक परिवेश की विसंगतियों का चित्रण किया है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं, जिनमें कवि नें सामाजिक - आर्थिक वर्ग - - वैषम्य की अवांछनीय स्थिति को प्रत्यक्ष कर उस पर वितृष्णा के स्वर में व्यंग्य किया है -----

' कुछ की आत्मा का
गला घोंट देती हैं बेहिसाब सुविधायें
और
ज्यादातर मरते हैं
अभावों के महासागर में गोते खाकर ।'[2]

जगदीश चतुर्वेदी नयी कविता में अकविता ' के पृथक आन्दोलन से सम्बद्ध प्रमुख तथा विशिष्ट कवि हैं । अकविता के प्रभाव से परवर्ती नयी - कविता में यौन - प्रतीकों तथा कुंठाओं की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला । जगदीश चतुर्वेदी का स्वर घोर व्यक्तिवादी है, जिससे उनका व्यंग्य कुंठा की अभिव्यक्ति करता हुआ समाज व व्यक्ति के प्रति घृणा मूलक उपेक्षा तथा निर्लिप्तता बरता हुआ व्यक्त हुआ है । इनके प्रारम्भिक संग्रह ' इतिहासहंता ' में यौन विकृत शब्दावली तथा कुंठित - व्यक्तिवादी चेतना का घोर अतिवादी स्वरूप वर्तमान है । इसमें यद्यपि कवि का भीतरी - संसार विस्फोटक मुद्रा में प्रतिबिंबित हुआ है, परन्तु कवि की असंयमित अभिव्यक्तियों का कारण बाह्य यथार्थ की घोर विकृति का तीखा एवं तीव्रतर बोध ही है । इसीलिये कहीं - कहीं बाह्य परिवेश की विडम्बनाओं ' की बड़ी सटीक व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है । आज समाज में औपचारिकता इस सीमा तक पहुँच चुकी है वैवाहिक पारिवारिक जीवन भी मात्र औपचारिकता का निर्वाह बन कर रह गया है । वैवाहिक जीवन की कैसी त्रासद विडम्बना है कि -----

---

1. आठवें दशक की शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 36
2. आठवें दशक की शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 82

' हर औरत अपने पति से घृणा करती है
हर मर्द अपनी पत्नी को तलाक देना चाहता है ।'[1]

' खंडित अहं ' कविता में नगरीय जीवन की विषैली सभ्यता, जड़ता तथा खोखलेपन की भयानक बिम्बों तथा प्रतीकों द्वारा तीखे व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्ति हुई है -----

' इन काष्ठ मूर्तियों और डोम तथा शंखनियों के नगर में
डोलते हैं सर्प
हा हा हा हँसते हैं मुर्दे ।'[2]

यहाँ नगरीय सभ्यता की कृत्रिमता, रिक्तता, क्रूरता, तथा अमानवीयता की बड़ी सटीक व्यंजना हुई है । ' निरापद ' कविता में भी समाज तथा संस्कृति के घोर विकृत स्वरूप को व्यंजित करते हुए कवि की तीव्रतम घृणा आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है, इसमें वीभत्स रूप के चित्र प्रमुख हैं, व्यंग्य गौड़ हैं । इसमें प्रतीकों में ही व्यंगात्मकता निहित है -----

' उगल रही है संस्कृति ढेर सारे पिस्सू और गुबरीले और ऊदबिलाव
नंगे ओठों पर कोढ़ के घाव लिये मानवता चीख रही है ।'[3]

कवि के परवर्ती संग्रह ' डूबते इतिहास का गवाह ' की कविताओं का व्यंग्य भी चरम आक्रामक घृणा से युक्त है । प्रायः कवि सामाजिक यथार्थ की कुटिल तथा विद्रूप अवस्था के चित्रण में अविश्वसनीयता तथा अतिशयोक्ति का समावेश कर देता है । सामाजिक - सांस्कृतिक मूल्यों तथा आधुनिक सभ्यता की विकृति के घिनौनेपन को उभारता कवि स्वयं निर्लिप्त हँसी हँसता प्रतीत होता है -----

' मेरे शहर में मकड़ियाँ जाले नहीं लगातीं प्यार करती हैं
पर कुछ नहीं होता है

---

1. इतिहासहंता - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 58
2. इतिहासहंता - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 -
3. इतिहासहंता - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 75

केवल काले कमरों में गौरिल्ले खाँसते हैं और लाल टपकाते हैं
एक बालिश्त भर का जोकर सारे शहर के लिए सिरदर्द है ।'[1]

कवि का व्यक्तिवादी स्वर आत्म व्यंग्य के रूप में भी प्रकट हुआ है -----

'मैं अनिश्चय की गुहा में पड़ा - पड़ा सड़ रहा हूँ ।'[2]

कहीं - कहीं कवि ने बड़ी वैचारिक मुद्रा में में आज के समाज एवं मानव की विकृत मानसिकता तथा जड़ जीवन के प्रति चरम आक्रामकता तथा कटुता से व्यंग्य किया है । कवि ने प्रतीकों तथा बिम्बों में परिवेश की अमानवीयता को पशुता से सम्बद्ध करते हुए मनुष्य की बुद्धिहीनता तथा मनुष्यत्व के विनाश की प्रक्रिया को निम्न अंश में प्रस्तुत किया है-

' जीवित मनुष्य के मस्तिष्क में पैदा होते हैं घोंघे
जब बुद्धिहीनता आती है
शरीर सड़ता है
× ×
और इन्सान कुत्तों की मौत मर जाता है
आह पागल कुत्तों के देश में भी इन्सान कभी - कभी सोचता है ।'[3]

(अकाल - कविता की मृत्यु)

' कनखजूरा ' कविता में भी कवि देश को पत्थर तथा लोगों को उस पर चिपके लाश - पिंड के रूप में देखता हुआ तथा सम्पूर्ण परिवेश की भयानक रिक्कता, अमानवीयता एवं स्पंदनहीन निरर्थकता का बोध निर्लिप्त वैचारिक मुद्रा में करता हुआ उसके प्रति गहरा व असरदार व्यंग्य करता है -----

' मुझे लगता है कि तमाम देश एक पत्थर हैं
और तमाम लोग उस पर चिपकी बेतरतीब लकीरें
× ×
वह सब लम्बी चट्टान पर चिपके लाश - पिंड हैं ।'[4]

---

1. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 23
2. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 35
3. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 30
4. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 36

कहीं - कहीं कवि की आक्रामकता सम्बोधन के स्वर में व्यक्त हुई है । निम्न पंक्तियों में कवि की आक्रोशपूर्ण ललकार लोगों को धोखा देने तथा मित्रघात करने की कुटिल प्रवृत्ति पर व्यंग्यपूर्ण है, पर अभिव्यक्ति सरल एवं सपाट है -----

' परे हट जाओ प्रदर्शन की बौनी हरकतों से मुझे धोखा देने वाले
दोस्त बनकर मेरी पीठ में खंजर भोंकने वाले
तुम एक बदनसीब ठहरी हवा के कुचले हुए पत्ते हो
× × ×
तुम मुर्दा शताब्दी के गले हुए अध्याय हो ।'[1]

धूमिल की कवितायें राजनीतिक विसंगतियों, व्यवस्था की खमियों तथा उसमें पिसते मनुष्य की स्थिति का बयान करती हैं । धूमिल में जहाँ व्यवस्था पक्ष के प्रति तीखा आक्रोश है, वहीं आम आदमी के पिछड़ेपन, अशिक्षा, अज्ञान तथा कूपमंडूकता के प्रति भी व्यंग्य तथा उपहास का भाव है । सत्तापक्ष की चाटुकारिता करने वाले आम लोगों पर भी कवि का प्रहार तीव्र है । नयी कविता के युवा कवियों में नगर - जीवन तथा सभ्यता के खोखलेपन, मानवीय रिश्तों की विडम्बनामय टूटन इत्यादि को सूक्ष्म तथा सक्षम अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति रही है । धूमिल में भी ये प्रवृत्तियाँ उनकी समाज - सम्पृक्ति तथा व्यापक दृष्टि की प्रतीक बनकर कविताओं में व्यक्त हुई हैं ।

' संसद से सड़क तक ' संग्रह की ' मोचीराम ' कविता कवि का समाज के प्रति व्यंग्यात्मक रूख निम्नवर्गीय व्यक्ति की मानसिकता की इस विडम्बना में व्यक्त है कि मोचीराम' की निगाह में -----

' न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है ।'[2]

---

1. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 49
2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 36

इसी कविता में कवि नें निम्न मध्य वर्गीय युवा मानसिकता को बड़ी नाटकीयता से उजागर किया है । छिछली हरकतों एवं आभिजात्य की नकल करने की हास्यास्पद चेष्टाओं को कवि ने बड़ी सक्षम अभिव्यक्ति की है । गरीबों के शोषण में भी यह वर्ग पीछे नहीं है । निम्न पंक्तियों में समाज के इस वर्ग के प्रति कवि की पैनी व्यंग्य दृष्टि मुखर है -----

' ओफ्फ ! बड़ी गर्मी है ' रूमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है
सड़क पर ' आतियों - जातियों को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घण्टे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त साफ नट जाता है
' शरीफों को लूटते हो ' वह गुर्राता है ।'[1]

यहाँ कवि ने युवक की क्षुद्रा मानसिकता को चित्रित करती गतिविधियों के पश्चात नाटकीय वार्तालाप में ' शरीफों को लूटते हो ?' कथन द्वारा तीखे व्यंग्य का समावेश कर दिया है । ' वसन्त ' कविता में कवि आर्थिक विवशता में परिवर्तित सौंदर्य - बोध के द्वारा मंहगाई की स्थिति के प्रति व्यंग्य करता है -----

' मेरे लिए वसंत बिलों के भुगतान का मौसम है ।'[2]

' अकाल ' कविता में कवि का व्यंग्य जन - जागृति के अभाव तथा यथास्थिति को सहजता से स्वीकारनें की विडम्बना के प्रति व्यक्त है । अकाल की त्रासद, भयानक स्थिति में भी लोग -----

' जलसों जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से
हिस्सा ले रहे हैं और
अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं
झुलसे हुए चेहरों पर कोई चेतावनी नहीं है ।'[3]

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 38
2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 19
3. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 15

यहाँ कवि लोगों की सहनशीलता के प्रति विद्रोह तथा विक्षोभ की चेतना से युक्त है । वह सामाजिक स्थिति में कष्टों से अधिक, कष्टों को चुपचाप सहने के प्रति असंतुष्ट है। एक अन्य कविता ' एकान्त - कथा ' में कवि ने व्यक्ति के दोहरे रूप में विरोधाभास को सामने रख उसके प्रति अपनी तीखी घृणा तथा व्यंग्य की सटीक अभिव्यक्ति की है -----

' सड़कों में होता हूँ
बहसों में होता हूँ
रह रह चहकता हूँ
लेकिन हर बार वापस घर लौटकर
कमरे के अपने एकान्त में
जूते से निकाले गये पाँव - सा
महकता हूँ ।'[1]

यहाँ कवि ने व्यक्ति के सामाजिक जीवन तथा निजी जीवन के बीच के अन्तर को व्यक्त कर उसके वास्तविक विकृत, कुत्सित रूप को नग्न कर दिया है । यहाँ कवि का व्यंग्य यथार्थ - बोध को पूरी सच्चाई से ग्रहण करती संवेदना की बेबाक तथा साहसिक अभिव्यक्ति का अंग बन गया है । कवि समाज के पिछड़े लोगों की अशिक्षा तथा रूढ़िवादिता की बड़ी मनोवैज्ञानिक पहचान तीखी व्यंग्यात्मकता के साथ करता है ' प्रौढ़ - शिक्षा ' कविता की निम्न पंक्तियों में -----

' जिसका
गूँगापन
न सिर्फ आत्महत्या की सरहद पर बोलता है
मुहावरों के हवाई हमले से बचने के लिए
जिसके दिमाग में शताब्दियों का अंधा कूप है ।'[2]

' कुत्ता ' कविता में कवि ने भूख और गरीबी की विवशता में व्यक्ति की पालतू - प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य कुत्ते के प्रतीक द्वारा बड़े सटीक ढंग से किया है -----

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 22
2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 44

' उस लपलपाती हुई जीभ और हिलती हुई दुम के बीच
भूख का पालतूपन
हरकत कर रहा है ।'[1]

कवि के उद्बोधन तथा फटकार से भरा व्यंग्य ' पटकथा ' के निम्न अंश में व्यक्त है, जिसमें कवि भूख की विवशता में कुछ भी कहने की चाटुकार प्रवृत्ति पर आघात करता है -----

' मगर तुम्हारी भूख और भाषा में
यदि यही दूरी नहीं है
तो तुम अपने आप को आदमी मत कहो
क्योंकि पशुता सिर्फ पूँछ होने की मजबूरी नहीं है ।'[2]

समाज में नैतिकता का ह्रास इस सीमा तक है कि ईमानदार होना शर्म की बात है तथा जो हत्यारा नहीं है, वह असुरक्षित है । इस सामाजिक विडम्बना को उद्घाटित करता कवि व्यवस्था में व्याप्त अमानवीयता और भयावहता को उसके नग्न रूप में प्रस्तुत कर देता है -----

' इससे पहले कि
इमानदारी तुम्हें उस जगह ले जाय
जहाँ बेटा तुम्हें बाप कहते हुए शरमाये
× × ×
वह सुरक्षित नहीं है, जिसका नाम हत्यारों की सूची में नहीं है ।'[3]

धूमिल सामाजिक विसंगतियों को व्यक्त करते समय की उक्ति चमत्कार तथा कलात्मकता के निर्वाह के प्रति सतर्क रहते हैं । आधुनिक मनुष्य तथा सभ्यता की विडम्बना का बड़ा कलात्मक बिम्ब ' मकान ' कविता में है । आज मनुष्य केवल अपने मकान तक

---

1. संसद से सड़क तक - धमिल; पृ0 - 70
2. संसद से सड़क तक - धमिल; पृ0 - 113
3. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 81

सीमित हो गया है । वह मकान को ही अपने अस्तित्व का प्रतीक मानने लगा है । उसकी इस गलतफहमी में मकान तो उठता है, पर आदमी मनुष्य के बजाय एक झंडे के रूप में उस मकान पर उड़ने लगता है; वह क्षुद्र स्वार्थ की निजी परिधि में समाज से कटकर अपने मकान में बद्ध होकर रह जाता है । कविता का कुछ अंश निम्न है -----

' पूरे परिवार की गलतफहमी का
फायदा उठाते हुए
एक मकान उठता है और
एक बूढ़ा आदमी
उस पर झण्डे की तरह उड़ने लगता है ।'

× × × ×

' आजादी और वक्त से ऊबकर
अपनी देशी आदतों और सस्ती किताबों के साथ 16 × 12 फुट का एक खूबसूरत कमरा हो जाता है ।'[1]

धूमिल समाज के पूँजीवादी ढाँचे के प्रति भी व्यंग्यशील दिखते हैं । महाजन की अर्थवादी संस्कृति का उपहास तीखे आक्रोश के साथ निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -----

' वह निहाल तोंदियल
कैसा मगन है
हुचुर - हुचुर हँस रहा है
× × ×
उसका कहना है कि लाभ और शुभ के बीच
सिन्दूर तो है मगर लाज नहीं ।'

यहाँ वणिक - वर्ग की उस मनोवृत्ति पर तीखा व्यंग्य है जो अर्थ लाभ के लिए निर्लज्जता की सीमा तक पहुँचता है । यहाँ भी कवि ने उक्ति - चमत्कार के द्वारा व्यंग्य को अधिक प्रभावपूर्ण बना दिया है । स्त्रियों की स्थिति भी वर्तमान सभ्यता में ' पूँजी ' तथा ' देह' बनने तक सीमित होती जा रही है । धूमिल की जागरूक चेतना स्त्रियों को इस भोगवादी

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 49, 52

दृष्टि से न केवल देखती है बल्कि उसकी इस विडम्बनामय परिणति के प्रति तीखे आक्रोश तथा घृणा के स्वर में व्यंग्य भी करत है । ' आठ स्त्री ' कविता की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' स्त्री
देह के अँधेरे में
बिस्तर की अराजकता है
स्त्री पूँजी है
बीड़ी से लेकर बिस्तर तक
विद्यापन में फैली हुई ।'[1]

यहाँ धूमिल की अभिव्यक्ति यौन - कुंठा से ग्रस्त है, पर वह स्त्रियों के शारीरिक - प्रदर्शन के प्रति तीखे व्यंग्य को बड़े सटीक रूप में व्यक्त करने में समर्थ है ।

' कल सुनना मुझे ' संग्रह में भी कवि ने सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं की अभिव्यक्ति करते हुए यौन - शब्दावली का प्रयोग किया है । आधुनिक जीवन को विस्तृत आयामों में उनकी विडम्बनाओं के साथ पकड़ता कवि ' एक कविता कुछ सूचनायें ' में तीक्ष्ण व्यंग्य को उभारता है -----

' हिंजड़ों ने भाषण दिए / लिंग - बोध पर / वेश्याओं नें कवितायें पढ़ीं - / आत्म - शोध पर / प्रेम में असफल छात्रायें / अध्यापिकाएँ बन गयी है / और रिटायर्ड बूढ़े / सर्वोदयी /'[2]

नगर जीवन की आंतरिक रिक्तता, जड़ता तथा बाह्य हलचल को कवि नें उसकी यथार्थ - रेखाओं के साथ ' नगर कथा ' में प्रस्तुत कर दिया है -----

' दौड़ रहे सब
सम जड़त्व की विषम प्रतिक्रिया:

---

1. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; पृ0 - 91
2. कल सुनना मुझे - धूमिल; पृ0 - 29

सबकी आँखें सजल
मुट्ठियाँ भिंची हुई हैं ।'[1]

कैलाश बाजपेयी ने अपनी कविताओं में साठोत्तर कालीन परिवेश की विसंगतियों का चित्रण करते हुए आज के समाज तथा व्यक्ति के जटिल अन्तर्सम्बंधों की अभिव्यक्ति बड़ी सक्षमता से की है । राजनीतिक विसंगतियों के चित्रण में जहाँ कवि में आक्रोश की मुद्रा है, वहाँ सामाजिक सन्दर्भ में उसका व्यंग्य संयत है, उसमें वक्रोक्ति का प्रयोग है, जिससे प्रभाव में वह गहरा तथा वजनदार बन गया है । आज की सभ्यता तथा संस्कृति का घोर विकृत रूप कवि को उस पर हँसनें को बाध्य करता है । मनुष्य की सतही जीवन, कृत्रिमता, खोखलापन, अकर्मण्यता इत्यादि के प्रति कैलाश बाजपेयी का व्यंग्य गंभीर, संयत तथा प्रभाव में धारदार है । कवि के महत्वपूर्ण काव्य संग्रह क्रमशः ' संक्रान्त ', ' देहान्त से हटकर ' ' तीसरा अंधेरा ' तथा ' महा स्वप्न का मध्यान्तर ' हैं । इन संग्रहों में मानव जीवन की विडम्बनामय जटिल स्थितियों को ब्योरेवार प्रस्तुत करने की कवि की प्रवृत्ति रही है । ' संक्रांत ' संग्रह में समाज, संस्कृति तथा व्यक्ति की मनोवृत्ति पर कवि का व्यंग्य वैचारिक मुद्रा में तटस्थ ढंग से व्यक्त हुआ है । ' पिशाच - संस्कृति ' कविता में कवि का व्यंग्य - स्वर अनूठी वक्रोक्ति से युक्त है । कवितांत की कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं, जिसमें सभ्यता के उस रूप पर पैना व्यंग्य है, जिसने सभी मनुष्यों को अमानवीयता में एक सा बना दिया है -----

' और चाहे कुछ भी नहीं दिया
सभ्यता ने
कम से कम यह तो किया है
सभी को
बराबर अमानव बना दिया ।'[2]

कैसी विडम्बना है कि मानव बराबर भी हुआ तो किस स्तर पर । एक अन्य कविता ' सतह चेतना ' में कवि ने इस युग के लोगों के सतही व्यवहार, जीवन - शैली तथा

---

1. कल सुनना मुझे - धूमिल; पृ0 - 49
2. संक्रान्त - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 65

सोच को बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है । इसमें कवि का विक्षोभ - भाव वैचारिक तटस्थ विवेचन के रूप में व्यक्त हुआ है, जिसका व्यंग्य गहरा तथा उद्वेलित करने वाला है -----

' फिल्मों के झागदार गीतों में / निष्पत्ति खोजते / साधारण लोगों के साधारण सपने / परदों पर पँख फड़फड़ाते हैं / कोइ एक चालू घटिया सी पंक्ति / समूचे अधकचरे दिमागों को जोड़े है / × × × / कामचोर नवयुवक नए मूल्य गढ़ते हैं / समाचार पत्रों में लोग सिर्फ दुर्घटनाएँ पढ़ते हैं /'[1]

इसमें आज के मनुष्य की चेतना कितनी कुंठित है तथा सस्ती खबरें और घटिया मनोरंजन उसकी चेतना के मूल स्रोत बन गये हैं, इसकी व्यंग्यात्मक पहचान कवि ने बड़ी सूक्ष्मता से की है ।

' देहान्त से हटकर ' संग्रह में कवि की दृष्टि यथार्थ स्थितियों के प्रति और भी सतर्क हुई है । इसमें कवि की संक्षिप्त तथा लम्बी दोनों प्रकार की कवितायें हैं । ' एक धनी मित्र के प्रति ' कविता में अत्यंत संक्षिप्त कलेवर में आज के सामाजिक वैषम्य की विडम्बनामय परिणति को अनूठी व्यंग्यात्मकता के साथ उजागर किया गया है । सम्पूर्ण कविता मात्र तीन पंक्तियों की है -----

' बड़े बाप के बेटे हैं
जब से जन्म हुआ
लेटे हैं ।'[2]

यहाँ सम्पन्न वर्गों की अकर्मण्यता तथा आरामतलबी पर अत्यन्त सहजता से चोट की गई है । तुकों के प्रयोग से उपहास की भंगिमा भी आ गई है । लम्बी कविताओं में ' मित्थ्याचार ' कविता उल्लेख्य है, जिसमें समाज में व्याप्त मित्थ्याचारिता को व्यापक परिप्रेक्ष्य

---

1. संक्रान्त - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 68
2. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 113

में व्यक्त किया गया है । इसमें समाज, राजनीतिक, व्यक्ति, अध्यापक, नेता, अधिकारी, कवि तथा हड़ताली सभी की मित्थ्याचारिता का सजीव ब्योरा देते हुए कवि सामाजिक जीवन की विडम्बना को प्रत्यक्ष कर देता है । आज के समाज में इन सबकी सम्मिलित स्थिति का प्रभाव यह है कि -----

' सब तरफ घटाटोप बौदापन
सब तरफ लगातार बकबक ।'[1]

' एक नया राष्ट्रगीत ' में कवि का आक्रोश तथा घृणाभाव प्रत्यक्ष है तथा व्यंग्य अत्यंत तीक्ष्ण है । पश्चिम की भोगवादी सभ्यता तथा संस्कृति के अंधानुकरण ने आज के भारतीय मनुष्य को सिर्फ आदिम संवेदनाओं (क्षुधा, काम) की स्थिति में पहुँचकर उसको पशु - तुल्य बना दिया है । निम्न पंक्तियों में कवि का ' मैं ' समाज के ' मैं ' का प्रतीक है । इसमें कवि ने आधुनिक व्यक्ति तथा सभ्यता के विकृत स्वरूप को बेहिचक नग्न कर दिया है -----

' सिर्फ जनक अंग चुस्त
बाकी सब सुस्त, लस्त, रक्षित
× × ×
पश्चिम की ओर थूथन उठाये यह मैं हूँ मैं
बहकर आते हुए मल कूड़े के इंतजार में ।'[2]

' तीसरा अँधेरा ' संग्रह में भी कवि ने मनुष्य के उस विक्षोभ तथा वेदना को अभिव्यक्ति दी है, जिसमें सामाजिक - राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियाँ उसका मार्ग रोके खड़ी हैं । कवि ने वैयक्तिक तथा सामूहिक दोनों रूपों में समकालीन यथार्थ की विडम्बनाओ को उनके मूल मर्म पर चोट करते हुए चित्रित किया है । ' तोड़ - फोड़ ' कविता की निम्न पंक्तियों में समाज की उस विडम्बनामय व्यवस्था पर प्रहार है, जिसमें सम्पन्न होना ही विदेश -

---

1. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 28
2. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 131

जाने की योग्यता तथा सुविधा है; जिसमें प्रतिभाशाली तथा देश के विकास में सहायक होने वाले अभियंता और वैज्ञानिक तो देखते रह जाते हैं, परन्तु त्वचा की झुर्रियाँ कसवाने के लिए अभिनेत्री विदेश चली जाती है -----

' कुमारी अभिनेत्री को विदेश जाना था
चली गई झुर्रियाँ कसाने
खड़ा रहा उत्साही अभियंता
विदेशी मुद्रा के अभाव में
खड़ा रहा धुनी विज्ञानी ।'[1]

' महा स्वप्न का मध्यान्तर ' संग्रह में कैलाश बाजपेयी सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मनुष्य की अकर्मण्यता तथा परम्पराओं के सड़े - गले रूपों पर प्रहार करने में प्रवृत्त हुए हैं । ' मेरी शह - दो ' कविता में भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता तथा भाग्यवादिता पर चोट की गयी है । भारतीय समाज कितनी पिछड़ी मानसिकता में जीता है, इसके प्रति कवि की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -----

' रूढ़ि जहाँ
हमले की तरह
श्लाघनीय है
कोई सिर - पैर नहीं तालमेल
कर्म
भाग्य
मरहम हर दाद का ।'[2]

पुरानी पीढ़ियों की ऊँचाइयों की वकालत करने वालों पर कवि सम्बोधन की मुद्रा में करारा व्यंग्य करते हुए उनकी परम्पराओं की निरर्थकता ही नहीं दर्शाता बल्कि उसे ' गैंग्रीन ' के विष की तरह घातक साबित करता है -----

---

1. तीसरा अंधेरा - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 53
2. महा स्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 48

' कल की विद्रुग ऊँचाइयाँ / दीमक के पेट से / होकर उतरती हैं / पीढ़ियाँ / × × × / कब तक उठायें या दोहरायें / बीती बेहूदगी / हट जाओ अपनी उस राह से / तुम खुद चल जिस पर से / अपने पैरों का गैंगरीन हो गये हो /'[1]

कैलाश बाजपेयी की सामाजिक - चेतना केवल अपने देश की सीमा में ही बद्ध नहीं है । आधुनिक मानव की विडम्बनापूर्ण स्थिति को विस्तृत परिप्रेक्ष्यों में विश्व के विराट फलक पर भी चित्रित करते हुए कवि अपनी वितृष्णा के प्रकाशन के साथ तीखा व्यंग्य करता है । ' मैं का बयान ' कविता का कुछ अंश दृष्टव्य है -----

' यह कासीनों का, यह यौन - तंत्र, षड़यंत्र / माफिया का संसार है / यहाँ नवबर्बर समाज उग रहा है / यहाँ पीस कोर / पेंटागन की मोहताज है / × × × / यहाँ मेंढक, बंदर / खरहे ही नहीं / आदमी भी कच्चा माल है /'[2]

लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में साठोत्तर समकालीन यथार्थ की सक्षम अभिव्यक्ति राजनीतिक सन्दर्भों में ही प्रायः हुई हैं । सामाजिक स्थिति तथा व्यक्ति जीवन की अर्थशून्यता, विवशता, नैतिक गिरावट इत्यादि के प्रति भी व्यंग्यात्मक दृष्टि कहीं - कहीं मिलती है । जगूड़ी का व्यंग्य उनकी लम्बी कविताओं की पूरी संरचना में ' आयरनी ' के रूप में व्याप्त रहता है । जगूड़ी की कविताओं में यथार्थ की विरूपताओं को अतिरंजित, अप्रत्याशित तथा चमत्कार - प्रदर्शन के साथ व्यक्त करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ में अधिक रही है । इससे उनकी कविता में बड़बोलापन अधिक है । विश्वासनीय प्रभांवात्मकता कम, क्योंकि सम्पूर्ण विवरणों और टिप्पड़ियों पर कवि का अपना व्यक्तित्व दृष्टिकोण तथा मुद्रा हावी रहती है । धीरे - धीरे कवि ने इस प्रवृत्ति को कम किया है । बाद की रचनाओं में कवि सहज, सरल तथा यथार्थ धरातल पर प्रतिष्ठित दिखता है । अपने प्रारम्भिक संग्रह ' नाटक जारी है ' में कवि नें समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति उसमें जीते आम आदमी तथा स्वयं की गतिविधियों, प्रतिक्रियाओं तथा उद्‌गारों के रूप में की है । परन्तु यथार्थ स्थितियों को बेनकाब करते समय

---

1. महास्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 84
2. महा स्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 90

कवि उन्हें आपस में इस तरह उलझा देता है कि उसमें कवि का अपना दृष्टिकोण, आम आदमी की हालत तथा राजनीतिक - सामाजिक परिस्थितियों का एक गड्मड् ब्योरा अतिशयोक्तिपूर्ण व्यंग्यात्मक कथन के रूप में सामने आता है । अलग से समाज तथा व्यक्ति जीवन की किसी विंसगति को उसके केन्द्रीय भाव में पकड़ पाना मुश्किल हो जाता है । परन्तु फिर भी कहीं - कहीं कुछ पंक्तियाँ कवि के अपने दृष्टिकोण से नैतिक - चरित्र की गिरावट को व्यक्त करती है । आज अपनी स्वार्थ - सिद्धि के लिए व्यक्ति के विनम्र बन जाने को कवि वक्रोक्ति के साथ व्यक्त करता है -----

' यहाँ अगर विनम्रता को चाल बना सकते हो
तो तुम अपनी दाल किसी भी बर्तन में गला सकते हो ।'[1]

वक्रोक्तिपूर्ण कथन तथा विनोदपूर्ण तेवर जगूड़ी के व्यंग्य की विशिष्टता है । एक अन्य स्थल पर कवि उक्ति - चमत्कार तथा ' आयरनी ' का साथ - साथ प्रयोग कर सीधे - सादे आदमी पर व्यंग्य करता हुआ समाज में रिश्वत देकर काम बनाने वाले धूर्त लोगों पर प्रहार करता है -----

' तुम आदमी नहीं पाजामा हो
किधर से कहाँ आ रहे हो
बहुत टेढ़े हो बिल्कुल सीधे चले जा रहे हो
अगर काम बनाना है
तो अंटी ढीली करो ।'[2]

कवि का अगला संग्रह ' इस यात्रा में ' है । इसमें भी कवि की दृष्टि समकालीन यथार्थ परिवेश के चित्रण में रमी है । समकालीन सामाजिक - राजनीतिक जीवन का संश्लिष्ट चित्रण आज के मानव के क्रियाकलाप तथा उसकी सोच को व्यक्त करते हुए ' कविता 1973 ' की निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है, जिसमें ग्रामीण अभद्र शब्द का प्रयोग अकविता के प्रभावस्वरूप

---

1. नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 54
2. नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 95

है तथा निरर्थक वाक्य कवि की अगंभीर विनोदात्मक प्रवृत्ति को इंगित करता है -----

' जिनके पीछे कुछ लोग / या तो फसलों की चुगली कर रहे हैं / या मंहगाई भत्ते का अनुमान (या वे अपने तमाम सम्बन्धों से मुकर रहे हैं ? (उनको यहाँ से अगर आवाज दी जाये / कि खेतों में खड़े बैल - पतला हग रहे हैं / (क्या यही है भविष्य की झंकार ? (/ तो वे इसे देश का दुर्भाग्य मानेंगे /'[1]

अपने अगले संग्रहों में भी कवि ने आम - आदमी की खामियों को व्यवस्था पक्ष की खामियों से सम्बद्ध करके देखा है । ' स्वतंत्र जुबान ' कविता की निम्न पंक्तियों में कवि नें युग के एक औसत आदमी की व्यक्तित्वहीनता, अवसरवादी मित्थ्याचारिता तथा चालाकी के प्रति बड़ी सहजता से तीखा व्यंग्य किया है -----

' किसी ने कहा - इसकी कोई जुबान नहीं
इसे कहना कुछ
और करना कुछ होता है
तो यह इसी तरह अपनी जुबान बदल लेता है
मतलब कि इधर भी चरता है
उधर भी चरता है ।'[2]

' आम आदमी : 1973 ' कविता में कवि का व्यंग्य आम आदमी को एक तल्ख़ ललकार के रूप में संबोधित करते हुए व्यक्त हुआ है । आज की व्यवस्था में आम व्यक्ति की विडम्बनामय स्थिति के उद्घाटन द्वारा उसकी विवश स्थिति पर व्यंग्य है जिसमें वह सिर्फ ' काट ' सकता है, भाग नहीं सकता -----

' तुम अब कहीं भाग नहीं सकते
तुम सिर्फ काट सकते हो
तुम सिर्फ एक जीवित दुर्घटना हो
अपने निर्माणाधीन भविष्य में ।'[3]

---

1. इस यात्रा में - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 7।
2. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 22
3. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 22

' बची हुई पृथ्वी ' संग्रह में कवि की व्यंग्याभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट तथा प्रभावपूर्ण है । इसमें कवि की दृष्टि अधिक मानवीय तथा आत्मीय होकर आम आदमी की शोषित, पिछड़ी तथा विवश दशा के प्रति मार्मिक व्यंग्य से युक्त है । ' तथाकथित महान लोग ' में कवि का व्यंग्य तीखा है । इसमें महान होनें की विडम्बना को तथाकथित महान लोगों के दोहरे जीवन - स्तर को उद्‌घाटित करते हुए बड़े वक्रोक्तिपूर्ण ढंग से प्रत्यक्ष किया गया है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

> ' कुछ महान लोग / दिन भर रात का इंतजार करते हैं / ताकि वे अपने ढोंग से / छुटकारा पा सकें / कुछ महान लोग रात के कपड़े बदलते हैं / और फिर से महान होने के लिए / सुबह का इंतजार करते हैं / × × × / कुछ महान लोगों के लिए / अपना चेहरा जैसी चीज / एक गलतफहमी है /'[1]

' बलदेव खटिक ' में कवि का व्यंग्य मार्मिक तथा करूण है । पुलिस - तंत्र के जुल्म के साथ गरीब ग्रामीण आदमी की विवशता तथा पिछड़ेपन एवं आर्थिक वैषम्य को नग्न करते हुए कवि का प्रच्छन्न व्यंग्य निम्न पंक्तियों में व्यक्त हुआ है -----

> ' पुलिस वालों पर आदमियों की आँखें थीं
> इसलिए रंगतू की नंगी औरत बाहर नहीं आ सकी
> × × ×
> बीवी बच्चों के लिए लड़ता हुआ रंगतू
> पहली बार गाड़ी में फ्री चढ़ रहा था ।'[2]

आज मात्र एक आदमी होना न्यायिक प्रक्रिया की विडम्बना बन जाता है । इसी कविता की आगे की निम्न पंक्तियों में समकालीन व्यवस्था में किसी पद या पहुँच से रहित आम आदमी की निरर्थकता को ध्वनित करता हुआ व्यंग्य है -----

---

1. बची हुई पृथ्वी - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 24
2. बची हुई पृथ्वी - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 103

' क्योंकि आजकल केवल आदमी होना
न्यायसंगत नहीं है
इसलिए उसने बताया कि मैं भी पुलिस का आदमी हूँ ।'[1]

कवि के नवीनतम संग्रह ' घबराये हुए शब्द ' में भी सामाजिक - व्यक्तिगत जीवन को केन्द्र में रखते हुए समकालीन राजनीतिक विसंगतियों तथा विकृतियों को व्यक्त किया गया है । जगूड़ी की कविता क्रमशः मानवीय संवेदना तथा यथार्थ से सम्पृक्त होती गई है । सहजता तथा सादगी के साथ यथार्थ जीवन की स्थितियों का चित्रण, मार्मिक, वैचारिक तथा प्रच्छन्न व्यंग्यात्मकता के साथ करनें की प्रवृत्ति कवि की परवर्ती रचनाओं में विकसित हुई है ।

वेणु गोपाल की कविताओं में साठोत्तर परिवेश तथा उसमें जीते मनुष्य की दशा राजनीतिक सन्दर्भों में व्यक्त हुई हैं । वेणु गोपाल में आक्रोश का तीखापन भी है और वैचरिक विश्लेषण की दृष्टि की दृष्टि भी । कवि का तीव्र आक्रोश और उसकी घृणा सारी स्थिति के प्रति अत्यन्त तीखा व्यंगय करते हुए भी तटस्थ दिखती है । कवि सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन की विकृतियों के भयानक स्वरूप के सम्मुख अपने को विवश अनुभव करता है । निम्न कवितांश में कवि नें समाज में क्रूर, घाती तथा अमानवीय लोगों की बाढ़ के प्रति अपनी चिन्ता तीखे व्यंग्य के साथ प्रतीकात्मक रूप में की है । इसमें कवि का आक्रोश तथा विवशता दोनों साथ - साथ व्यक्त हुआ है, जिससे कविता में वस्तुनिष्ठता के समावेश द्वारा संतुलन आया है और उसका व्यंग्य अधिक व्यापक धरातल पर अवस्थित हो गया है -----

' आज / लोग दिन - दहाड़े / साँप बनाने की फैक्टरियाँ चला रहे हैं / और जिनके पास फैक्टरियाँ नहीं है / वे / वहाँ नौकरी कर लेते हैं / और मैं यह सब देखते हुए चुप हूँ / कुछ नहीं करता / बहुत हुआ तो गर्म चाय का आर्डर दे देता हूँ /'[2]

वेणु गोपाल की कविताओं पर अकविता का भी प्रभाव है । ' जनता कविता और

---

1. बची हुई पृथ्वी - लीलाधर जगूड़ी; पृ० -
2. वे हाथ होते हैं - वेणु गोपाल; पृ० -

चुम्बन ' कविता व्यवस्था पक्ष की धूर्त चालों में फँसते आम आदमियों पर व्यंग्य है । जन - मानस की जड़ता, मूर्खता तथा ' अपने अपने दड़बों में ' पशुओं की भाँति जीवन बिताते लोगों के जीवन की विडम्बना को निम्न पंक्तियों में कवि नें बड़े नंगे शब्दों में अत्यन्त तीखे व्यंग्य के साथ नग्न किया है -----

' भविष्य और आशा जैसे दोगले शब्दों
के हाथ
अपनी अस्मत बेचते हुए
अपने को कृतार्थ अनुभव करते हैं
और जब लौटते हैं अपने - अपने दड़बों में
तो संभोग करने की पूरी पृष्ठभूमि
उनकी धड़कनों में तैयार हो चुकती है ।'[1]

युवा कवियों में राजीव सक्सेना महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, जिनकी कविताओं में आक्रोश तथा घृणा का तीखा स्वर है । इन्होंने समकालीन परिवेश की विकृतियों तथा कुरूपताबओं को बड़ी सजगता एवं सूक्ष्मता से व्यक्त किया है । यथार्थ की विकृतियों के प्रति कवि का व्यंग्य अत्यन्त तीखे, साहसिक तथा नग्न रूप में व्यक्त होता है । ' आत्म निर्वासन तथा अन्य कवितायें ' संग्रह में कवि की व्यंग्य - दृष्टि सारे परिवेश तथा उसकी भयानक विडंबनाओं के मध्य जीते मनुष्य की स्थिति को बेनकाब करनें की है । आधुनिक मनुष्य की परिवर्तित नैतिक चेतना तथा आत्महीनता की स्थिति पर भी कवि की जागरूक दृष्टि गई है । ' आत्म निर्वासन' कविता में कवि ने स्वयं के उद्गार के रूप में बाध्य यथार्थ के प्रति अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । यह एक लम्बी कविता है, जिसमें कवि का व्यंग्य विविध वर्गों, स्थितियों तथा सन्दर्भों से युक्त है । इसमें श्रीकांत वर्मा जैसी हल्के - फुल्के लापरवाह अन्दाज में भयानक विसंगतियों को प्रस्तुत करनें तथा उन पर तीक्ष्ण व्यंग्य करनें की प्रवृत्ति दिखती है । कविता का एक अंश प्रस्तुत है, जिसमें कवि नें नगर - जीवन को वीभत्स बिम्बों द्वारा प्रत्यक्ष किया है । कवि ने स्वयं को मरे हुए लोगों के बीच तथा डाक्टर को खुद अपना इलाज करते हुए

---

1. वे हाथ होते हैं - वेणु गोपाल; पृ0 - 49

दिखाकर यह दर्शाया है कि आज समूचा समाज तो रोगग्रस्त है ही पर उसकी व्यवस्था करनें वाले स्वयं ही रोगग्रस्त हैं, दिग्भ्रमित हैं -----

> ' एक नगर गंधाने लग जाता है / छितरा - सा / बिखर कर / मैं शायद बीमार हूँ / अकेला हूँ / डाक्टर खुद अपना इलाज कर रहे हैं / झगड़ रहे हैं अपने डायगनोसिस पर / मुझे जिन्दा ही मुर्दाघर में छोड़कर / इन मरे हुए लोगों के बीच मैं सोंचता हूँ / इनमें से कितने लोग जीवित हैं /'[1]

इसी कविता में में आगे की कुछ पंक्तियों में कवि ने समूचे परिवेश की तुलना अस्पताल से करते हुए वक्रोक्तिपूर्ण व्यंग्य किया है -----

> ' परिवेश है एक अस्पताल
> पाक साफ
> माफ हैं सौ खून
> नर्सें सदा मुस्कुराती ही रहती हैं
> स्वस्थ देह के लिए गेह के लिए ।'[2]

यहाँ परिवेश को ' पाक साफ ' तथा नर्सों को स्वस्थ देह, गेह के लिए मुस्कुराते दिखाकर कवि नें यथार्थ के पतित तथा भ्रष्ट स्वरूप तथा सुविधासम्पन्न लोगों की धूर्तता एवं पाखण्ड पर गहरा वार किया है । इसमें उर्दू शब्दों का सहज प्रवाह कवि की तल्खी को व्यक्त कर रहा है । एक अन्य स्थल पर समाज के चाटुकार लोगों की स्वार्थप्रेरित गतिविधियों को नग्न करता हुआ तीखा व्यंग्य है, जिसमें कवि अपनी विवश तथा संशयग्रस्त मनःस्थिति के साथ उपस्थित है -----

> ' निरर्थकता में जी रहे हैं कुत्ते, दुम हिलाते गुर्राते
> अपने स्वामियों के चरणों पर, और राहगीर को
> वफादारी से डराते - धमकाते, गुर्राते और भौंकते;
> मैं चौंका हुआ, शायद दिग्भ्रमित एक राहगीर हूँ ।'[3]

---

1. आत्मनिर्वासन तथा अन्य कवितायें - राजीव सक्सेना; पृ0 - 13
2. आत्मनिर्वासन तथा अन्य कवितायें - राजीव सक्सेना; पृ0 - 13
3. आत्मनिर्वासन तथा अन्य कवितायें - राजीव सक्सेना; पृ0 - 16

आधुनिक सभ्यता की गिरावट पर तीखा व्यंग्य ' रात पहले पहर में ' कविता में है । इसमें कवि का आक्रोश वैचारिक संयम के साथ व्यक्त हुआ है । आज सभ्यता - संस्कृति इतनी पतनशील अवस्था में पहुँच चुकी है कि ' घर ' तथा ' कोठे ' की स्त्री की मानसिकता में फर्क नहीं रह गया है -----

' वह घर है या कोठा, जहाँ एक भोली - सी औरत
लेट जाती है साथ में दो रोटी की खातिर
हर बेटा और बेटी जहाँ पाप की निशानी ।'[1]

आज पति-पत्नी का रिश्ता प्रेम पर नहीं, रोटी पाने की सुविधा पर टिका है, इस पर कवि की सूक्ष्मदर्शी दृष्टि कितनी मार्मिक है ! इसके साथ ही इसमें नारी की सामाजिक विवशता, परम्परित मूल्यों तथा शोषक - संस्कृति के प्रति भी कवि का व्यंग्य ध्वनित है । एक अन्य कविता ' विलुप्त पीढ़ी का गीत ' में आधुनिक मनुष्य के वस्तु में तब्दील होनें की विडम्बना, उसकी लाभ - लोभ से प्रेरित मानसिकता के सन्दर्भ में उजागर हुई है । कवि के स्वर में क्षोभ है, जो मनुष्य में आत्मा के अभाव के प्रति है -----

' जिन्सों का कोई पितृ - ऋण नहीं
वे मनुष्य को नहीं
जन्म देती हैं सिर्फ ---
सिर्फ मूनाफों को
बैंकों के पिजड़ों में बंद पड़ी हुई हैं
उनकी आत्मायें ।'[2]

आज का मानव परम्परा से विच्छिन्न तो है, पर उसके सामने कोई निश्चित दिशा नहीं है । किंकर्तव्यविमूढ़ता की इस स्थिति के प्रति व्यंग्य कवि यथार्थ को बेनकाब करके करता है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

---

1. आत्मनिर्वासन तथा अन्य कवितायें - राजीव सक्सेना; पृ0 - 16
2. आत्मनिर्वासन तथा अन्य कवितायें - राजीव सक्सेना; पृ0 - 49

' परम्परा
एक शिला - लेख धरती के सीने पर आ गिरा
भाषा कोई नहीं जानता, जिसमें वह लिखा है
× × × ×
शेष केवल कोतूहल है
जिसके न पीछे कल है न आगे कल है ।'[1]

स्पष्ट है कि परवर्ती नये कवियों की दृष्टि सामाजिक विरूपताओं के तटस्थ चित्रण द्वारा व्यंग्य को प्रत्यक्ष करने में अधिक रमी है । उसका व्यंग्य वैचारिक विश्लेषण के साथ अवसाद, विक्षोभ, घृणा तथा आक्रोश को संयमित करते हुए गहराई में चोट करने वाला और उद्वेलित करने वाला है ।

---

1. आत्मनिर्वासन तथा अन्य कवितायें - राजीव सक्सेना; पृ0 - 50

अध्याय - पंचम्

बुद्धिजीवी वर्ग पर व्यंग्य

व्यंग्यशीलता नये कवियों की एक अनिवार्य भंगिमा है, जिसमें बाह्य यथार्थ की विकृत, कुरूप तथा अमानवीय स्थितियों से निपटने के लिए कविता को धारदार हथियार के रूप में तब्दील किया है । नयी कविता का व्यंग्य न केवल सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक असंगतियों पर प्रहार करता है, बल्कि वह साहित्यकार, चिन्तक और कलाकार के रूप में मनीषी वर्ग की विडम्बनामय स्थितियों, उनके अनुचित रवैयों, यश - लिप्सा, छद्म स्वार्थो एवं तत्प्रेरित साहित्यिक गतिविधियों के प्रति भी तीखी आलोचनात्मकता से युक्त दिखता है । समकालीन साहित्य तथा साहित्यकार की विकृतियों तथा विसंगतियों को दर्शाते हुए डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी लिखते हैं कि ' साहित्यिकार काफी - चाय घरों में बैठकर कबूतरों की तरह गुटरगूँ करता है, जिसमें पाश्चात्य का मोह और भारत की विस्मृति अधिक है, चमत्कार की लालसा उसका लक्ष्य है, स्थापना संतोष है, प्रकाशन साधन है, और पाठ्यक्रम का विषय बन जाना साध्य है । ---- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इतनी अराजकता, ---- मानवीय अकल्याणधार्मिता की इतनी बढ़ोत्तरी और साहित्यकार वादग्रस्तता से जूझ रहे हैं, नये - नये विज्ञापन, घोषणा - पत्र निकाल रहे हैं ।'[1]

नयी **कविता** से पूर्व छायावादी कवियों में रूमानी भावुकता तथा कोरी कल्पनाशीलता की प्रवृत्ति थी । उनमें यथार्थ से पलायन करनें एवं वैज्ञानिक तर्कसंगत दृष्टि को स्वीकार न करने की प्रवृत्ति भी थी । स्वप्न लोक के भ्रमों में जीते हुए इन कवियों की कविताओं में भावों को उद्वेलित करके हँसाने और रूलाने की तो क्षमता थी, परन्तु यथार्थ को बौद्धिक दृष्टि से आत्मसात करके प्रस्तुत करनें एवं उसके द्वारा पाठक में वैचारिक मंथन या उद्वेलन पैदा करनें की क्षमता न थी । नये कवियों में भावुक, कल्पनाशील तथा यथार्थ - विमुख कवियों के प्रति भी व्यंग्यात्मकता है । लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में ' वस्तुतः छायावाद और उसके बाद के युग में समस्त सौंदर्य - बोध को किसी भी मानवीय मूल्य से सम्बन्धित करना उस युग का कवि जानता ही नहीं था । इसलिये वह मसीहा बनकर बोलता भी है तो खोखली आवाजें ही व्यक्त होती हैं ।' नये कवियों में भी कहीं कहीं किसी कवि में छायावादी संस्कारों की झलक मिल

---

1. नयी कविता के बाद - डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी; पृ0 - 15

जाती है । इन सभी के प्रति यथार्थ - चेता नया कवि व्यंग्य करता है । कवियों की तथाकथित मसीहाई भी नये कवियों के व्यंग्य का लक्ष्य बनी है ।

आज हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य - साहित्य की नकल तथा मिलावटकर वाहवाही लूटने एवं नकली आधुनिकता ओढ़ कर मात्र फैशन के तौर पर चौंकाने की प्रवृत्ति से निस्सार साहित्य का प्रणयन बढ़ा है । यही नहीं साहित्यकार वर्ग में भी वर्ग - भावना, उनकी गुटबंदी तथा सत्ता की पक्षधरता के रूप में दृष्टिगत होती है । मुक्तिबोध ने साहित्यकारों में व्याप्त इस वैषम्य को बड़ी गहराई से महसूस किया तथा उनकी पूँजीवादी - व्यवस्था से साँठ - गाँठ के प्रति अपने तीखे तथा घोर आक्रामक रूख को व्यक्त किया है । डॉ0 मदन गुलाटी के शब्दों में ' -- कवि दो हिस्सों में बँट गये हैं । एक ऐसे हैं जिनके जहन में महाजनी सभ्यता अपना स्थान बनाती जा रही है । दूसरे उस असर को तोड़ने की कोशिश में हैं । दोनों का ही दावा है कि वे आम आदमी और समकालीन परिस्थितियों से जुड़े हुए हैं ।'[1]

' तीसरा - सप्तक ' के वक्तव्य में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने साहित्य में फैली विकृतियों को ही अपने काव्य रचना की मूल प्रेरणा स्वीकार किया है । कवि के शब्दों में ' मुझे कविता लिखने की इतनी उत्तेजना न मिली होती यदि: ----- साहित्य के क्षेत्र में भी राजनीतिक कतारबन्दी न की गई होती, पद - प्रतिष्ठा के लालच में सत्य पर पर्दा न डाला गया होता ----- नये साहित्य की परख ईमानदारी से करने की कोशिश की गई होती ।'[2] स्पष्ट है कि नयी कविता में जहाँ कुछ कवि व्यवस्था - पक्ष की चाटुकार पक्षधरता कर रहे थे, वहीं उनमें आपस में भी राजनीतिक दाँव - पेंच के साथ एक - दूसरे को पछाड़ने की भावना थी । पुराने कवि नयी कविता की नयी पद्धतियों की तीखी आलोचना में जुटे थे । इन कारणों से नये कवियों में बुद्धिजीवी वर्ग के भी व्यंग्यास्पद स्वरूप के उद्घाटन की प्रवृत्ति बढ़ी। इनका व्यंग्य कई रूपों में है । एक रूप में तो वह साहित्यकारों के छद्म स्वार्थों तथा

---

1. समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य - ले0 डॉ0 मदन गुलाटी; पृ0 - 116
2. तीसरा - सप्तक - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 -

तथा यशोकामी रूप पर प्रहार कर उसकी खिल्ली उड़ाता है तथा व्यंग्य का दूसरा आत्मलक्षित रूप है, जिसमें कवि स्वयं एक साहित्यकार के यथार्थ जीवन एवं उसके साहित्यिक - कर्म के बीच की विवशता एवं विडम्बनामय स्थितियों की मार्मिक तथा व्यंग्यात्मक व्यंजना करता है । स्वयं बुद्धिजीवी होने के नाते इस वर्ग पर व्यंग्य करते समय कवि स्वयं आहत भी हुआ है तथा उसकी आलोचना न सिर्फ अन्य साहित्यकारों के प्रति रही है, बल्कि वह कवि की आत्मालोचना के रूप में भी है । नयी कविता का साहित्यिक व्यंग्य निर्मम आत्मान्वेषण तथा तीखे प्रहार से युक्त होते हुए भी भाषा में अत्यंत संयत तथा शालीन है ।

प्रयोगवादी तथा नये कवियों की तीखी नोंक - झोंक का साहित्यिक सन्दर्भो में किये गये व्यंग्यों की श्रृंखला में ऐतिहासिक स्थान तथा महत्व है । नये कवियों ने अपने व्यक्तिगत जीवन पर व्यंग्य के माध्यम से साहित्यकारों की दयनीय स्थिति का उद्घाटन करते हुए आर्थिक वैषम्य पर भी प्रहार किया है । नये कवियों की व्यंग्यशीलता की सच्चाई तथा ईमानदारी आत्मालोचना के रूप में उनके अपने वर्ग की विकृतियों के साहसिक उद्घाटन द्वारा पूर्णतः सिद्ध हो जाती है । बुद्धिजीवी वर्ग पर किये गये व्यंग्य में उनकी मनोवृत्तियों के अनुकूल ही वैचारिक निष्कर्षपूर्ण दृष्टि का समावेश भी प्रायः हुआ है और कहीं सहभाव से युक्त विनोद तथा चुहल की प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है । एक बुद्धिजीवी का दूसरे बुद्धिजीवी पर व्यंग्य जिस भासिक संयम तथा प्रगल्भ तीखेपन से युक्त है, वह पूर्णतः उचित तथा संगत लगता है । नयी कविता के प्रारम्भिक कवियों से लेकर साठोत्तर काल के युवा कवियों में बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति विविध रूपों में व्यंग्य करनें की प्रवृत्ति जितनी रही है उतनी अन्य किसी काल की कविता में नहीं है । साहित्यिक वर्ग पर व्यंग्य यद्यपि राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितियों पर व्यंग्य की तुलना में कम हैं, परन्तु कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि नयी कविता में बुद्धिजीवी वर्ग के अन्तर तथा बाह्य जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए उनकी छद्म, छुद्र वृत्तियों के उद्घाटन के साथ ही वर्तमान की जटिल तथा कुरूप वास्तविकताओं के प्रति उनकी किंकर्तव्यविमूढ़ता और उत्तरदायित्वहीनता के प्रति भी तीखा व्यंग्य - बोध है । नयी कविता - दौर में बुद्धिजीवी वर्ग अज्ञेय की व्यंग्यशीलता नये कवियों तथा नयी कविता के

प्रति प्रतिक्रियात्मक ढंग से व्यक्त हुई है । ' प्रयोग ' से प्रारम्भ कर नयी कविता की स्थापना में इनकी भूमिका अगुआ तथा प्रमुख की रही है । नयी कविता में जो कवि बाद में आये और जो अपनी रचनाओं को अज्ञेय की प्रयोगवादी नयी कविता से सर्वथा भिन्न भाव - बोध एवं शिल्प वाली साबित करने की चेष्टा में विविध उद्घोषणायें करने लगे उनसे अज्ञेय का मतभेद व्यंग्यात्मक आक्षेपों में प्रकट हुआ । कविता में परस्पर आरोप - प्रत्यारोप, अस्वीकार तथा उलाहना की यह प्रवृत्ति तीखे व्यंग्य के साथ ही मनोरंजक मुद्रा में व्यक्त हुई है । अज्ञेय के साहित्यिक व्यंग्य में भी उनकी दार्शनिक तथा चिन्तनशील मुद्रा प्रायः प्रारम्भ से अन्त तक प्रकट है, परन्तु बाद की कविताओं में वह अधिक उभरी तथा स्पष्ट हुई है । कवि की व्यंग्यात्मकता प्रारम्भ में नयी कविता की अगुआई को लेकर आपस की नोक - झोंक के रूप में व्यक्त है । ' नयी कविता : एक सम्भाव्य भूमिका ' कविता में कवि नें बड़ी शालीनता के साथ अपनी - कविता में व्यंग्य को पिरोते हुए उन लोगों को उलाहना दिया है जो प्रयोगवादी नयी कविता को दस वर्ष की अवधि प्रदान कर आगे की काव्यधारा को उससे पृथक सिद्ध करते हैं । इसमें व्याज - स्तुति का प्रयोग कर कवि ने व्यंग्य को वैचारिक गरिमा के साथ ही अत्यन्त तीखा भी बना दिया है -----

' आपने दस वर्ष हमें और दिये
बड़ी आपने अनुकम्पा की हम नत - शिर हैं
हममें तो आस्था है : कृतज्ञ होते
हमें डर नहीं लगता कि उखड़ न जावें कहीं ।'[1]

आगे की पंक्तियों में संयत स्वर तथा भाषा में व्यक्त कवि का व्यंग्य और भी धारदार है । इसमें तथाकथित ' नये कवियों ' की नवीन प्रवृत्तियों की पोल खोलता कवि कहता है -----

' ... आपका जो 'गाँधियन सत्य' है
उसको क्या यही सात-आठ वर्ष पहले
गान्धी पहचानते थे ?

---

1. सदानीरा - भाग - 1 - अज्ञेय; पृ0 - 28।

तुलना नहीं है / हमको चर्राया नहीं है ' शौक मसीहाई का

× × ×

हमारे पाये सत्य के मसीहा तो
हमारे मरते ही, बन्धु आप बन जायेंगे ।'[1]

छठें दशक की एक कविता ' रेंक ' में अज्ञेय का व्यंग्य अत्यन्त उपहासजनक प्रतीक तथा भाषा से युक्त है । इसमें कवि ने तथाकथित नये कवियों को मुह चिढ़ानें की मुद्रा में उन पर चुलबुला व बेधक व्यंग्य किया है -----

' रेंक रे रेंक गधे रेंक रे रेंक
अपने ही रूप पर होता लोट - पोट, टाँगें
नभ की ओर फेंक रे फेंक ।'[2]

प्रयोगवादी दौर की एक कविता ' कवि क्या हुआ फिर ' में कवि ने लोक - कल्याण की चेतना से विमुख होकर कोमल कल्पनायें करने व विरह के आँसू बहाने वाले कवियों की नाजुकमिजाजी का तीक्ष्ण स्वर में उपहास किया है । इसमें अज्ञेय नें उर्दू शायरी की शब्दावली का प्रयोग कर व्यंग्य के तीखे प्रभाव में विनोद का पुट भी भर दिया है । जिससे कविता अनूठी बन पड़ी है -----

' कवि हुआ क्या फिर
तुम्हारे हृदय को यदि लग गयी है ठेस ?
चिड़ीदिल को जमा कर लो मूठ पर ('ऐहे, सितम, सैयाद !')
न जाने किस झरे गुल की सिसकती याद में बुलबुल तड़पती है
न पूछो दोस्त !
हम भी रो रहे हैं लिए टूटा दिल ।
('मियाँ बुलबुल लड़ाओगे ?')[3]

आगे चल कर तथाकथित भिन्न धारा वाले नये कवियों के प्रति कवि की मुद्रा अधिक

---

1. सदानीरा भाग - । - अज्ञेय; पृ0 - 282
2. सदानीरा भाग - । - अज्ञेय; पृ0 - 268
3. सदानीरा भाग - । - अज्ञेय; पृ0 - 233

व्यंग्यात्मक हो उठी है । ' नया कवि : आत्म स्वीकार ' कविता में इन कवियों की अनुकरण की प्रवृत्ति का बड़ा सूक्ष्म उद्घाटन कलात्मक सौंदर्य एवं शालीन प्रभाव के साथ है । प्रतिभाविहीन अनुकरणमूलक काव्य की रचना करने वाले नये कवियों के झूठे दंभ तथा अहंकारवृत्ति पर कवि का छद्म वार बड़ा गहरा तथा नुकीला है । इसमें प्रारंभ में कवि के आत्म - व्यंग्य की मुद्रा अन्त में उसके व्यंग्य के असली मन्तव्य को व्यक्त कर देती है । कुछ अंश दृष्टव्य है -----

' किसी का सत्य था, / मैंने सन्दर्भ में जोड़ दिया / कोई मधुकोश काट लाया था, / मैंने निचोड़ लिया / किसी की उक्ति में गरिमा थी / मैंने उसे थोड़ा - सा संवार दिया / × × × × × / चाहता हूँ आप मुझे एक एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें / पर प्रतिभा - अरे, वह तो / जैसी आपको रूचे, आप स्वयं गढ़ें ।'[1]

' नये कवि से ' कविता में कवि के स्वर में क्रोध तथा फटकार का पुट भी है और खिल्ली उड़ाने का भाव एवं विनोद भी । कवि ने नयी कविता को स्वयं के देय को स्पष्ट करते हुए उसे स्वीकार न करने वालों के प्रति तीखे आक्रोश के साथ व्यंग्य किया हे । निम्न पंक्तियों में कवि की चिढ़, विक्षोभ तथा आक्रोश एक ललकार के साथ व्यक्त है -----

' आ, तू आ,
हाँ आ,
मेरे पैरों की छाप - छाप पर रखता पैर,
जयी, युगनेता, पथ प्रवर्तक
आ तू आ
ओ गतानुगामी ।'[2]

' नया कवि : आत्मोपदेश ' कविता में उलाहना देने के बदले कवि उपदेश देने की पद्धति अपनाकर व्यंग्य करता है । इसमें कवि का व्यंग्य नये कवियों के साथ ही अपने भीतर के कवि के प्रति भी है, जो बड़ा प्रच्छन्न - सा है -----

' अनुभूति से मत डर

---

1. सदानीरा भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 47 (1958)
2. सदानीरा भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 51 (1958)

मगर पाखंड उसके दर्द का मत कर ;
नहीं अपने आप जो स्पन्दन डँसे
तेरी धमनियों को, त्वचा की कँपकँपी से
झूठ मत आभाष उसका स्वयं
अपने को दिखाने की
उतावली से भर ।'[1]

सातवें दशक में साहित्यकार के दायित्व के प्रति सजग चिन्तन के रूप में कवि की समाज - सम्पृक्ति के साथ उसका व्यंग्य बोध भी प्रकट हुआ है । ' आजादी के बीस बरस ' कविता में स्वतंत्रता के बीस बरसों की देश की उपलब्धियों से असंतुष्ट कवियों, लेखकों, के स्वार्थप्रेरित दृष्टिकोण के प्रति अज्ञेय का व्यंग्य अत्यन्त तीखा तथा निर्मम है, परन्तु उसमें कवि की गरिमा तथा वैचारिकता भी झलक रही है । निम्न पंक्तियों में आक्रोश एवं फटकार की तिलमिला देने वाली गहराई तीखी भाषा तथा चुटीली शैली द्वारा व्यक्त है -----

' आजादी के बीस बरस निकल गये
और तुम्हें कुछ नहीं मिला
एक कम्बख्त कम से कम पहचाना जा सकने वाला
जटियल सलीब भी नहीं
× × ×
हाय मेरे मसीहा ।
बिना सलीब के कोई तुम्हें पहचाने भी तो कैसे ।'[2]

आठवें दशक की एक कविता ' बौद्धिक बुलाये गये ' में कवि की अभिव्यक्ति - शैली बदली हुई है । इसमें बौद्धिकों के सम्मानित होंने की प्रक्रिया की विडंम्बनापूर्ण स्थिति को यथार्थ के तटस्थ चित्रण द्वारा सम्मुख रख वैचारिक रूप से सक्रिय करने वाले व्यंग्य की सृष्टि की गयी है । कवि ने बौद्धिकों के चेहरे उतार कर फिर सम्मान बाटे जाने का वर्णन कर निम्न पंक्तियों में उनके सम्मान की वास्तविक स्थिति को नग्न कर दिया है -----

---

1. सदानीरा भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 57, 58 (1958)
2. सदानीरा भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 186 (1968)

' हमारे चेहरों पर,
नये चेहरे हैं
जिनपर श्रद्धा था
वे चेहरे भीतर उतार लिए गये थे
सुना है
उनका निर्यात होगा ।'[1]

आठवें दशक के अन्त में रचित कविता ' इतिहास बोध ' में अज्ञेय की चेतना साहित्यकारों के प्रति दायित्व - बोध से पूर्ण है । इसमें कवि का व्यंग्य बुद्धिजीवियों के वर्तमान से विमुख रहने तथा केवल भूत या भविष्य के बीच संतुष्ट भाव से विचरने की प्रवृत्ति के प्रति वैचारिक मुद्रा में व्यक्त हुआ है -----

' इन्हें अतीत भी दीखता है
और भवितव्य भी
इसमें ये इनते खुश रहते हैं
कि इन्हें यह भी नहीं दीखता
कि उन्हें सब कुछ दीखता है
वर्तमान नहीं दीखता ।'[2]

अज्ञेय में प्रारम्भिक दौर की कविताओं में फटकार तथा तीखे उपहास की मुद्रा सटीक भाषा में व्यक्त हुयी है, परन्तु क्रमशः फटकार की मुद्रा तथा आक्रोश एवं खीझ की जगह संयत, यथार्थपरक, तटस्थ तथा गहरे व्यंग्य नें ले लिया है । प्रारम्भ में अज्ञेय का व्यंग्य नये कवियों के प्रति प्रतिक्रियात्मक एवं आरोप - प्रत्यारोप वाला है, जो आगे चलकर कवि - वर्ग की नियति, उनकी मानसिकता तथा उनके जीवन की विडम्बना के सहज - बोध की तटस्थ अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण कर लेता है । यह कवि के व्यक्तिवादी रूझान के क्रमशः सामाजिक - दायित्व - बोध से जुड़ने का द्योतक है ।

भारतभूषण की कविताओं में बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति व्यंग्य की प्रवृत्ति नयी कविता

---

1. सदानीरा भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 352 (1975)
2. सदानीरा भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 385 (1980)

के परवर्ती - काल में अधिक दृष्टिगत होती है । ' एक सोच भविष्य के बहाने ' कविता में कवि साहित्यकारों की भाषा की स्तरहीनता पर उँगली रखता है । यह कविता सातवें दशक के मध्य की है । इसमें कवि नें यथार्थ को प्रस्तुत कर हल्का सा व्यंग्य किया है ।[1] ' ओ अप्रस्तुत मन ' संग्रह में कवि का व्यंग्य नये कवियों के प्रति आरोप तथा उलाहने से भरा है । ' मैं निरा विलायती स्पंज हूँ ' कविता में भारतभूषण जी नें ब्याज निंदा के माध्यम से स्वयं पर आक्षेप करते हुए उन ' प्रयोगी ' कवियों पर तीखा व्यंग्य किया है, जो तप एवं साधना से पूर्ण महत काव्य रचना का दंभ करते हैं । कुछ अंश प्रस्तुत है -----

' जीवन को जिसने बनाया एक साधना
और उस साधना के योग से बनाया गान
नहीं कभी भूल से भी मैंने नहीं सोचा है
कि मैं भी बन सकता हूँ उस कवि के समान
मैं निरा विलायती स्पंज हूँ ।'[2]

' हम नहीं है द्वीप ' कविता में अज्ञेय के ' हम नदी के द्वीप हैं ' का उत्तर तीखे व्यंग्यात्मक उलाहने के रूप में है । इसमें कवि ने अपनी साहित्यिक उपलब्धियों तथा मान्यताओं को व्यक्त करते हुए अज्ञेय की व्यक्तिवादी विचारधारा पर व्यंग्य किया है -----

' तुम अगर हो द्वीप
सूखी रेत के बेडौल टीले
धार की ही गोद में बैठे विषम व्यवधान,
तो भले ही तुम रहो ऊँचे महान
पर कृपाकर यह न सोचो
धार की हर लहर जो आती तुम्हारे पास
ठोकती है वह तुम्हारी पीठ ।'[3]

---

1. अनुपस्थित लोग - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 64
2. ओ अप्रस्तुत मन - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 59
3. ओ अप्रस्तुत मन - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 93

भारतभूषण अग्रवाल नें स्वयं अपनें कवि - कर्म पर व्यंग्य के माध्यम से साहित्यकार के सृजन तथा उसके जीवन की विडम्बना को भी अपनी कविताओं में व्यक्त किया है । ' एक उठा हुआ हाथ ' संग्रह की ' चीड़ - फाड़ ' कविता में कवि स्वयं की आलोचना करते हुए उन समस्त नये कवियों पर भी व्यंग्य करता है, जो रूपकों की दुनिया में जीते हुए यथार्थ की चुनौतियों से दूर हैं तथा जो बहुरूपिये की भाँति ' प्यार को फूल ', ' रोटी को खुशामद ' और ' क्रान्ति को रेस्तराँ ' बनाते हैं । इसी कविता में आगे कवि का विक्षोभ कवि - कर्म को सुविधा के तौर पर अपनाने की प्रवृत्ति के प्रति मार्मिक व्यंग्य के रूप में इस प्रकार व्यक्त हुआ है -----

' कब तक मैं सुविधा की छत पर चढ़ा
कविता के बाँस से जिन्दगी की कटी पतंग फाँसने का यत्न करता रहूँगा ।'[1]

आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में प्रकाशित काव्य - संग्रह ' उतना वह सूरज ' है, जिसमें सातवें दशक के उत्तरार्द्ध तथा आठवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों की कवितायें हैं, में कवि की साहित्यकारों के प्रति व्यंग्य - दृष्टि नाटकीयता, हास्य एवं विनोद की भंगिमा तथा सहजता से युक्त है । ' कविता की हालत संगीन है ', ' ऊटपटाँग ' तथा ' असली विद्रोही ' इस संकलन की साहित्यकारों से सम्बद्ध व्यंग्यात्मक कवितायें हैं । इनमें प्रथम कविता में समकालीन राजनीतिक - सामाजिक अराजक एवं क्रूर परिवेश में कविता की स्थिति की मार्मिक पड़ताल की गई है । आज कविता अमानवीय स्थितियों से घायल है, इसीलिए उसने अपनी सहज मुद्रा, सौंदर्य एवं रस को खो दिया है, इसी की व्यंजना नाटकीयता के साथ करते हुए दोहरा व्यंग्य किया गया है ----- बाह्य परिवेश की भयानकता तथा कविता की मृतप्राय स्थिति के प्रति । कुछ अंश दृष्टव्य है -----

' अब कविता अस्पताल में पड़ी - पड़ी कराह रही
मैं उसकी जान बचाने के लिए खून दे रहा हूँ ।'[2]

---

1. एक उठा हुआ हाथ - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 68
2. उतना वह सूरज है - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 41

' ऊटपटाँग ' कविता में नयी कविता में शाब्दिक खिलवाड़ तथा चमत्कृत करने की प्रवृत्ति के प्रति कवि का व्यंग्य बड़े अनोखे ढंग से व्यक्त हुआ है । कुछ अंश द्रष्टव्य है -----

' .... मदरास का मद या रास से क्या सम्बन्ध है ?
× × × ×
.... ऐसे ही प्रश्नों से साधारण सी बात भी कविता बन जाती है ।'[1]

' असली विद्रोही ' कविता में भारतभूषण अग्रवाल ने उन कवियों पर अत्यन्त तीखा व्यंग्य किया है, जिनका कवि - कर्म क्षुद्र स्वार्थ से प्रेरित है, जो राजनीतिक वर्ग विशेष से, लाभ - लोभ से प्रेरित समझौता करते हैं और जब उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता , तो वे विद्रोही बन जाते हैं । ऐसे बिकाऊ, लोभी तथा भ्रष्टाचार में लिप्त विद्रोही कवियों की पोल कवि ने वार्तालाप की नाटकीयता एवं मनोरंजकता के साथ खोली है । यहाँ कवि का व्यंग्य गहरी चोट करने वाला है -----

' अगर तुम मुझे पाँच सौ रूपये दो
तो मैं अपनी कविता में ' फेमिली - प्लानिंग ' डाल दूँगा
और अगर भारतीय संस्कृति डलवानी है
तो कम से कम तीन हजार
लेकिन अगर तुम यह मौका चूक गये
और तुमने मेरी उपेक्षा कर दी
तो मैं तुम्हारे सिंहासन के परखचे उड़ा दूँगा
क्योंकि असल में तो मैं विद्रोही हूँ ।'[2]

बुद्धिजीवी वर्ग पर व्यंग्य की प्रवृत्ति मुक्तिबोध में अधिक है । मुक्तिबोध की कविताओं में साहित्यकारों के पूँजीवादी स्वरूप की पोल खोलते हुए उनकी सत्ता - पक्ष की चाटुकारता करने की प्रवृत्ति, स्वार्थ वृत्ति तथा यशोलिप्सा इत्यादि के प्रति तीव्र आक्रोशपूर्ण

---

1. उतना वह सूरज है - भारतभूषण अग्रवाल; पृ० - 42
2. उतना वह सूरज है - भारत भूषण अग्रवाल; पृ० -

आक्रामक व्यंग्य प्रारम्भ से अन्त तक दृष्टिगोचर होते हैं । मुक्तिबोध में पूँजीवादी शोषण के लिए गहरा आक्रोश है, इसीलिए वे इस वर्ग से सम्बद्ध बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति भी तीव्र घृणा तथा आक्रोश से भरकर भरपूर प्रहार करते हैं । मुक्तिबोध साहित्यिक क्षेत्र में व्याप्त असमानता तथा पूँजीवादी वर्ग के प्रतिनिधि साहित्यकारों की भ्रष्ट गतिविधियों की बड़ी सूक्ष्म पड़ताल करते हुए उस पर घृणा तथा आक्रोश के सम्पूर्ण आवेश के साथ चोट करते हैं । प्रयोगवादी दौर की कविताओं में साहित्यकारों के प्रति कार्य के आक्रोश तथा घृणा की तीव्रता ' हे प्रखर सत्य-2' तथा ' जिन्दगी का रास्ता ' कविताओं में देखी जा सकती है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

' पूँजीवादी उल्लू के साहित्यिक पट्ठे
सुनसान रात के अहं गर्भ में वासना से चीखा करते प्रात तक ।'
× × × ×
पूँजीवादी ह्रास की गटर में
मध्यवर्गीय बुद्धिशील अवसरवादी केंकड़े
खेलते शिकार हैं ।'[1]

छठें दशक में 1953 से 1957 के काल में जिन कविताओं में कवि की दृष्टि साहित्य - जगत की विसंगतियों तथा विरूप स्थितियों के उद्घाटन में रमी है, उनमें प्रमुख हैं ' देख कीर्ति के नितम्ब इठलातें ', ' अगर तुम्हें सच्चाई का शौक है ', ' जिन्दगी में जो कुछ महान है ', ' कायरता और साहस के बीच ' तथा ' ओ मसीहा ' । ये कवितायें बहुत अधिक लम्बी नहीं हैं, जैसी कि साठोत्तर दौर की कवितायें हैं, परन्तु भाषा शैली में प्रतीकात्मकता, नाटकीय दृश्य - संयोजन तथा अभिव्यक्ति में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रवृत्ति इनमें भी है । साहित्यकारों की लाभ व यश की क्षुद्र कामना से प्रेरित होकर रचना करनें की प्रवृत्ति पर अत्यंत पैना व्यंग्य ' देश कीर्ति के नितम्ब इठलाते ' कविता की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -----

' यश के चोर व प्रतिभा की कुलटा की भैया दूज है
हिय की कोमल त्वचा - त्वचा पर अहंकार की सूज है ।'[2]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 1 - पृ0 - 263, 264 (1950)

2.

यहाँ यश को चोर तथा प्रतिभा को कुलटा कहकर कवि नें उनके भैया - दूज मनाने के कथन द्वारा साहित्यकार की कुटिल मनोवृत्तियों पर कलात्मक ढंग से चोट की है साथ ही वह हृदय की कोमल भावनाओं पर ' अहंकार की सूज ' देखते हुए कवि कर्म की क्रूर विसंगतियों पर भी मार्मिक व्यंग्य करता है । यहाँ कवि का व्यंग्य बड़े मनोवैज्ञानिक स्तर पर विरूपताओं को पकड़ने और वैचारिक उद्वेलन पैदा करने वाला है । ' अगर तुम्हें सचाई का शौक है ' कविता में भी मुक्तिबोध नें पौराणिक चरित्रों को प्रयुक्त करते हुए राजनीति . - प्रेरित नाच नाचने वाले चाटुकार तथा लोभी कवियों का तीखा उपहास किया है -----

> ' इन्द्र का अण्डरवेअर / अप्सरा की इन्द्रधनुषी चूनरी / रम्भा का लहँगा पहन / सांस्कृतिक नाच नाचो / × × × / यह बात सही है कि बहरहाल / तुम्हारे घर में चाहे जलें / या न जलें चूल्हे / नाचो - नाचो मटकाओ - मटकाओ अपने कूल्हे / सर्कस है, रिंग मास्टर बड़ा जबर्दस्त है / कारोबार चुस्त उसका, हम ही अस्त व्यस्त हैं ।।'[1]

' ओ मसीहा ' कविता में मुक्तिबोध का व्यंग्य व्याज - स्तुति शैली में है । इसमें कवि ने यथार्थ विमुख स्वप्नदर्शी चिन्तक कवि के मसीहा रूप के प्रति व्यंग्य, यथार्थ की विरूप, तकलीफदेह स्थितियों की ओर संकेत करते हुए किया है । आगे के कवितांश में कवि ने नाटकीय सहजता से ' मसीहा ' कवि को संबोधित कर उसकी महानता के प्रति तीखा व्यंग्य भी किया है और अपनी स्वतंत्र सत्ता एवं समाज के यथार्थ से अपनी सम्पृक्ति को भी दृढ़ स्वरों में व्यक्त किया है -----

> ' तुमने अपने पापों का भार / हमारी ही पीठ पर उतारा है / यही विरासत है / ओ मसीहा / तुम्हारे इस ऋण को / चुकाना असंभव है ।। / इसीलिए नमन है ।। / चला मैं /'[2]

मुक्तिबोध के साहित्यिक व्यंग्यों में उनका गहन चिनतन एवं स्थितियों की

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 1; पृ0 - 369, 370 (1953 - 54)
2. मुक्तिबोध रचनावली - 1; पृ0 - 399, 400 (1956 - 57)

मनोवैज्ञानिक पहचान भी निहित रहती है । ' एक फोड़ा दुखा ' कविता में कवि चिन्तक वर्ग की चिन्तन - प्रक्रिया का प्रतीकात्मक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नाटकीय व्यंग्यात्मकता के साथ करता है । इस कविता का मूल मन्तव्य भी तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग के विचारों व सिद्धान्तों के प्रेरणा - उत्स सुख तथा प्रतिष्ठा - भोग की स्वार्थमयी वृत्ति को उद्घाटित करते हुए उस पर वैचारिक दृष्टि - सम्पन्न गंभीर अर्थपूर्ण व्यंग्य के रूप में हैं । कवि नें सुख - भोग की लालसा को फोड़े के रूप में व्यक्त कर उसी के पोषण के लिए बनने वाले सिद्धान्तों पर अत्यन्त सूक्ष्म तथा पैना व्यंग्य किया है । कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं -----

' एक काम सिद्धान्त का यह था कि
परवरिश करे वह फोड़े की
× × ×
दूसरा काम सिद्धान्त का यह था कि
प्रतिपादित करे वह औचित्य
फोड़े को तमगे का रूप देकर घूमने का
औचित्य ।। ।'[1]

' मीठा बेर कविता में कवि का साहित्यकारों के प्रति वितृष्णा भरा व्यंग्य है । इसमें कवि नें अपनी कविता की यथार्थ जमीन से साहित्यकारों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है, जिसमें वे ऊपरी तामझाम एवं विदेशी प्रभाव - युक्त साहित्य की चमक - दमक से समकालीन साहित्य - जगत में चकाचौंध पैदाकर आकर्षण एवं चर्चा का विषय बन जाते हैं, पर अपनी जमीन के यथार्थ से जुड़े न होने के कारण इस प्रकार के साहित्य का प्रभाव अल्पकालिक होता है । निम्न पंक्तियों में कवि का व्यंग्य शिष्ट एवं गरिमामय मुद्रा में भी तीखे प्रभाव से युक्त है -----

' हजारों फ्लैश लाइटें / तुमने मंगाई हैं दूर स्थित देशों से / जो तुमने बनायी हैं अपने आवेश - / प्रकाशन के लिए / वे निधि तुम्हारी हैं / × × × / कि ये फ्लैश लाइटें और उनका विश्वव्यापी प्रभाव / यह रौब दाब / यहीं रह जायेगा / व

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 1; पृ0 - 19, 20 (1957)

अपने ही जीते जी यहीं मर जाओगे / × × × / मुझे निजत्व प्रकाशन हित / फ्लैश लाइटों व मेघों व व्योम की जरूरत नहीं ।।'[1]

यहाँ कवि का व्यंग्य वैयक्तिक सन्दर्भ से युक्त होकर एक अलग तरह का प्रभाव डालता है । जिसमें कवि का उलाहना भी स्पष्ट है । ' जिन्दगी बुरादा तो बारूद बनेगी ही ' कविता में बौद्धिक - वर्ग के प्रति कवि की व्यंग्य - दृष्टि यथार्थ के बिम्ब प्रस्तुत करती हुई व्यक्त हुई है । इस पूरी कविता में स्वार्थी बुद्धिजीवियों के विचारों व क्रियाकलापों के प्रति व्यंग्यात्मकता निहित है, जो कहीं - कहीं अधिक स्पष्ट और पैने व्यंग्य की तीखी चमक पैदा करती है -----

' गहरी चर्चायें करते विज्ञ नपुंसकगण
उस सहज
सहज मोहक गुलाब की पंखुड़ियाँ
चमगादड़ चमड़े की सी बन
हँसाती है तो बुलबुल को यह अफसोस
कि वह उल्लू न हुई ।'[2]

' एक रंग का राग ' भी लम्बी कविता है, जिसके कुछ अंशों में साहित्यकार - वर्ग पर व्यंग्य है लाभ - लोभ से प्रेरित होकर रचना करने वालों के ऊपर निम्न पंक्तियों में कवि का व्यंग्य सूक्ष्म वैचारिक विश्लेषण तथा तीखे प्रभाव से युक्त है -----

' हमें तो अपने बैंक - नोटों की, सत्यों में बू खूब आती है
एक मात्र उद्देश्य
हृदय की लुटिया से दिमाग की मोरी में पानी डाल
जमी हुई काई सब निकाल
एक मात्र लक्ष्य कि विचलित न हो पाये
विवेक सताये ना
न जिन्दगी को बेचैन करे वह ।'[3]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ० - 22, 23 (1957)
2. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ० - 169
3. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ० - 167 (रचनाकाल - 1959)

इस प्रकार के व्यंग्यों में कवि साहित्यकारों के अर्थ - लोलुप तथा प्रतिभा का दुरूपयोग करने वाले रूप की अत्यनत मनोवैज्ञानिक पहचान करता है और पूँजीपति वर्ग के साहित्यकारों की कुप्रवृत्तियों पर पैना व्यंग्य करता है । इनमें व्यंग्य कवि के विश्लेषण की तीखी, पर गरिमामय भंगिमा बन गये हैं । इन कविताओं की भाषा सुसंस्कृत तथा व्यंग्य का प्रहार अत्यन्त गहराई में पीड़ा उत्पन्न करने वाला है ।

मुक्तिबोध के काव्य की रचना - प्रक्रिया जटिल है । कवि नें परस्पर संगुफित एवं उलझे हुए यथार्थ को फैण्टेसी के माध्यम से व्यक्त करते हुए अपनी परवर्ती काल की लम्बी कविताओं में समाज, राजनीति, व्यक्ति, अर्थ - व्यवस्था तथा इन सबके पीछे एक गहरी नैतिक चिन्ता से युक्त विचारधारा में विविध असम्बद्ध बिम्बों को व्यंग्य में पिरोकर प्रस्तुत किया है । अतः लम्बी कविताओं में सम्पूर्ण बाह्य यथार्थ के विविध दृश्यों में बुद्धिजीवी वर्ग भी अपने वास्तविक विकृत रूप में व्यक्त हुए हैं । साठोत्तर दौर की रचनाओं में इस प्रकार के व्यंग्यात्मक रूख का विकास हुआ है । परन्तु मुक्तिबोध में बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति स्वतंत्र व्यंग्यात्मक कवितायें प्रतीकात्मक - योजना में लिखनें की प्रवृत्ति अधिक है । मुक्तिबोध मिथकीय प्रतीकों का बड़ा सटीक व्यंग्यात्मक प्रयोग करते हैं । ' ब्रह्मराक्षस ' कविता में मिथकीय प्रतीक द्वारा बुद्धिजीवियों की अहंवृत्ति का उद्घाटन है । इसमें कवि आज के बुद्धिजीवी वर्ग के अवचेतन मन की पर्तो को खोलता हुआ उनकी यथार्थ प्रवृत्तियों को नग्न रूप में प्रस्तुत कर उन पर व्यंग्य करता है । कवि तथाकथित बुद्धिजीवी के अहंभाव एवं यश - कामना की लालसा के साथ ही उसकी छिपी हुयी राक्षसी वृत्तियों की व्यंग्यात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है । इस कविता का व्यंग्य अर्थयुक्त, जटिल एवं वैचारिक स्तर पर प्रभावित करने वाला है । निम्न पंक्तियों में राक्षसी - वृत्तियों तथा अहंभाव के प्रति व्यंग्य स्पष्ट एवं पैना है -----

> ' और होठों से / अनोखा स्तोत्र, कोई क्रुद्ध मन्त्रोच्चार / अथवा शुद्ध, संस्कृत गालियों का ज्वार, / मस्तक की लकीरें /बुन रहीं / आलोचनाओं के चमकते तार।/ x x x / तिरछी गिरी रवि - रश्मि - रश्मि / के उड़ते हुए परमाणु, जब / तल तक पहुँचते हैं कभी / तब ब्रहमराक्षस समझता है सूर्य नें / झुककर नमस्ते

> कर दिया / पथ भूलकर जब चाँदनी / की किरन टकराये / कहीं दीवार पर / तब ब्रहम राक्षस समझता है । वन्दना की चाँदनी नें ज्ञान - गुरू माना उसे /'[1]

साहित्यकारों के प्रति व्यंग्य वाली मुक्तिबोध की साठोत्तर दौर की कविताएँ भी तीखी व पैनी भाषा तथा भंगिमा से युक्त हैं, पर पूर्व की अपेक्षा इनमें कवि का आक्रोश संयमित है और कथन में वैचारिकता का समावेश अधिक है । ' अंधेरे में ' शीर्षक लम्बी कविता में नाटकीय दृश्य - संयोजन तथा फैंन्टेसी का प्रयोग करते हुए कवि नें नगर - सभ्यता के प्रतीक जिन चरित्रों का व्यंगात्मक यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, उनमें बुद्धिजीवी वर्ग के लोग भी शामिल हैं । इसमें कवि का बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति वितृष्ण स्वरयुक्त व्यंग्य सुसंस्कृत, संयमित भाषा तथा मुद्रा में व्यक्त हुआ है, जो यथार्थ के गहरे एवं सच्चे बोध के कारण अत्यन्त तीखा बन गया है । कवि बौद्धिक वर्ग के बिक जाने पर क्षुब्ध है, इसीलिए वह उनके चेहरों पर पुती स्याहियाँ देखता उनके अपराध - बोध के साथ उनकी व्यंग्यास्पद तिरस्कृत स्थिति को व्यक्त करता है -----

> ' भभ्याकार भवनों के विवरों में छिप गये / समाचार - पत्रों के पतियों के मुख स्थूल / गढ़े जाते संवाद / गढ़ी जाती समीक्षा - गढ़ी जाती टिप्पड़ी जन - मन उर-शूल / बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास / किराये के विचारों का उद्भाष / बड़े - बड़े चेहरों पर स्याहियाँ पुत गयीं ।'[2]

मुक्तिबोध के साहित्यिक वर्ग से सम्बद्ध व्यंग्य मात्र व्यंग्य करने के उद्देश्य से नहीं लिखे गये हैं, उनमें अपने समय के शोषण - तंत्र व शोषित वर्ग के ताने - बाने में गुँथे समाज के भयानक और विकृत यथार्थ को उसकी सम्पूर्ण जटिलता के साथ वैचारिक विवेचन के रूप में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्तर पर आक्रोशी एवं विद्रोही चेतना के तीखे स्वर में अभिव्यक्त किया गया है । प्रारम्भ में कवि में आक्रोश की त्वरित तीव्रतम प्रतिक्रिया कड़वी भाषा में अधिक है, जिसमें बाद में स्थिरता और संयम का समावेश हो गया है । कवि का अपना अन्तर्द्वन्द्व तथा उसकी पीड़ा भी इसमें अन्तः सलिला की भाँति वर्तमान रही है ।

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2; पृ0 - 316, 317 (रचनाकाल - 1956-1962 के बीच)
2. मुक्तिबोध रचनावली -2; पृ0 - 352, (रचनाकाल - 1957-1962 के बीच)

गिरिजा कुमार माथुर के काव्य में बुद्धिजीवी वर्ग पर व्यंग्य कम हैं । आठवें दशक के अन्तिम वर्षों में प्रकाशित संकलन ' साक्षी रहे वर्तमान ' में कवि बुद्धिजीजी वर्ग के प्रति व्यंग्यशील दिखता है । इस संग्रह की ' एक अधनंगा आदमी ' शीर्षक लम्बी कविता में यथार्थ की विसंगतियों का व्यंग्यात्मक चित्र खींचते हुए कवि निम्न पंक्तियों में भोंदू लोगों की भीड़ में प्रतिभासम्पन्न तथा चिन्तनशील लोगों की स्थिति को व्यंग्यास्पद बना देता है -----

' अक्ल और काबलियत
मौलिकता और साहस
इनीशेटिव याने श्योर जूते खाने का नुस्खा
× × ×
भोंदुओं की यह अपार भीड़
कनफुसियों में कहती है
यह आदमी है खतरनाक
यह आदमी है सोचता ।'[1]

इसमें प्रथम पंक्ति में कवि का विनोद भाव स्पष्ट है । ' आन्दोलन शब्दों के ' कविता में केवल शाब्दिक आडम्बर खड़ा करने वाले तथा बड़ी - बड़ी बातें बघारकर बुद्धिजीवी का स्वांग करने वाले नकली विद्रोही एवं आधुनिक बुद्धिजीवी पर बड़ी सहज मुद्रा में व्यंग्य है । इसमें उनके क्रिया - कलाप के यथार्थ में छिपे विसंगति - बोध को वक्रोक्ति के साथ उजागर कर उन पर अत्यन्त तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है -----

' वे शब्दों से बड़े - बड़े / आन्दोलन कर सकते हैं इतिहास की मूर्ति मिनटों में मिटा सकते हैं / वे इतिहासहंता आधुनिक हैं / इतिहास रच नहीं सकते हैं / कंकालों का जुलूस उनसे / अभी बहुत दूर है / और वे बेहद सुरक्षित हैं / वे विद्रोही कलाकार हैं / वक्त आने पर कहीं और चले जायेंगे /'

यहाँ ' इतिहासहंता ' तथा ' कंकालो का जुलूस ' द्वारा, कवि - विशेष की अनास्था तथा ध्वंसात्मक एवं निषेधात्मक विद्रोही चेतना के प्रति भी व्यंग्यात्मक संकेत है । गिरिजा

---

1. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 12, 13

कुमार माथुर की कविताओं में बुद्धिजीवी वर्ग की मूल्यहीन अभिव्यक्तियों के प्रति ही उनकी व्यंग्यात्मकता मुखर हुई है । नवें दशक के प्रारम्भ में प्रकाशित विज्ञान - काव्य ' कल्पान्तर' में कवि की वितृष्णा से युक्त व्यंग्य बुद्धिजीवी के यथार्थ से ऊबे हुए कोरे विज्ञानवादी एवं मानवीय संवेदना एवं मूल्यों से रहित अभिव्यक्तियों के निषेधवादी, सिनिकल तथा भोगवादी दैहिक दृष्टिकोणों के प्रति निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है । इसमें कवि व्यंग्यात्मक यथार्थ का ब्योरेबार वर्णन प्रस्तुत करता है -----

> ' द्वन्द्व पीड़ित कितने विचार / दुहरे व्यक्तियों पर छाये हुए अपस्मार / मूल्यहीन निरपेक्ष / कोरे विज्ञानवाद / नाम आधुनिकता का देते ये निषेधवाद / भागे हुए दुनिया से / इतिहास, आदर्श, संस्कृति, समाज से / जकड़े हुए माफिया से / मादक नशे की / फण्टेसियों में डूबे हुए / हिंसा विक्षिप्त / देह के सभी अघोरचार / टूटे घर / भ्रंश सभी ममता / विश्वास, प्यार / सामग्री संचय के / ऊबे हुए भोगवाद /'[1]

यहाँ कवि का विवरण अकविता तथा बीट कविता की निषेधात्मक, हिंसात्मक, मूल्यहीन विद्रोही प्रवृत्तियों की ओर अवसादपूर्ण मुद्रा में तीखा व्यंग्यात्मक संकेत है । गिरिजा कुमार माथुर के साहित्यिक व्यंग्य समकालीन नयी कविता से सम्बद्ध बुद्धिजीवी वर्ग की विशेष अनुत्तरदायित्वपूर्ण मानसिकता के प्रति ही हैं, जिसमें कवि का व्यंग्य वैचारिक भूमि का भी स्पर्श करता है तथा उसमें कवि के तीखे दर्द का स्वर भी व्याप्त है । कवि के स्वर में आक्रोश के बजाय विनोद खिन्नता, वितृष्णा एवं विक्षोभ के भाव प्रमुख हैं ।

नागार्जुन नें नयी कविता के प्रारम्भिक दौर से लेकर नौंवे दशक तक की साहित्यिक गतिविधियों की सुगबुगाहट को तीक्ष्ण व्यंग्य के साथ अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति दी है । नौवें दशक में प्रकाशित संग्रहों में कवि की दृष्टि साहित्य - जगत की विकृतियों के प्रति अधिक सतर्क रही है । नागार्जुन के कुछ साहित्यिक व्यंगय समकालीन राजनीतिक यथार्थ की विद्रूपताओं के उद्घाटन के साथ सम्बद्ध होकर साहित्यकारों की सत्ता - पक्ष की चाटुकारिता

---

1. कल्पान्तर - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 38

पर तीखे व्यंग्य के रूप में हैं । नयी कविता के परवर्ती काल में उसमें राजनीतिक यथार्थ के बढ़ते दबावों के कारण उनकी विसंगतियों व विकृतियों का अधिकाधिक चित्रण और उन पर प्रहार की प्रवृत्ति नये कवियों की रही है । साहित्यकारों का एक वर्ग तथा कुछ अवसरवादी यशोकामी साहित्यकार राजनीतिक भ्रष्टता से सम्बद्ध होते गये हैं । नागार्जुन में इन सभी यथार्थ स्थितियों के प्रति आक्रोशपूर्ण, तीखी व व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया मिलती है । राजनीतिज्ञों द्वारा साहित्य के दुरूपयोग तथा साहित्यकारों के नकली मिलावटी तथा स्वार्थप्रेरित मनोवृत्तियों के कारण कवि में इनके प्रति व्यंग्यात्मक प्रहार की प्रवृत्ति बाद की रचनाओं में बढ़ती गयी है । इसके साथ ही साहित्य - जगत में कवियों की आपसी होड़, दलबंदी, स्थापित होनें के लिए कृत्रिम चमत्कारिक अभिव्यक्ति तथा कविता की दुर्गति से सम्बद्ध व्यंग्य भी नागार्जुन में अत्यन्त पैनेपन के साथ जागृत हुआ है । साहित्यिक वर्ग से सम्बद्ध नागार्जुन के व्यंग्य अन्य व्यंग्यों की तुलना में संक्षिप्त एवं संयमित हैं । इनमें कवि वैचारिक धरातल पर अवस्थित होकर वार करता है । छठें दशक में नागार्जुन का व्यंग्य साहित्यकारों की यशोलिप्सा, स्वार्थपरता, राजनीतिज्ञों की ठकुर सुहाती कर सुविधायें बटोरनें की प्रवृत्ति पर तीखी प्रतिक्रिया के रूप में है, जिसमें धारदार भाषा तथा चुहलपूर्ण मुद्रा का अनोखा संगम है । कहीं - कहीं उसमें विचारोत्तेजक मार्मिकता के भी दर्शन होते हैं । इन साहित्यिक व्यंग्य - कविताओं में क्रमशः संक्षिप्तता एवं अभिव्यक्ति की गरिमा का समावेश हुआ है । छंदविहीन रचनायें प्रायः बाद की ही हैं, जिनके व्यंग्य के लहजे में कहीं - कहीं नयी कविता के परवर्ती कवियों के लहजे का पुट भी झलकता है । कवि की परवर्ती संक्षिप्त, संयत एवं विचारशील व्यंग्यात्मक कविताओं के भी मारक प्रभाव में कमी नहीं आई है, बल्कि उसमें शालीन नाटकीय कौशल के साथ विनोदपूर्ण एवं मनोरंजक ढंग से उपहास को अत्यधिक नुकीला बनाया गया है ।

नागार्जुन के प्रारम्भिक संग्रह ' सतरंगे पंखों वाली ' की 'तो फिर क्या हुआ ' कविता में बुद्धिजीवी मानुभाव का उपहास शिष्ट भाषा में आदर सूचक शब्दों द्वारा किया गया है । इसमें नागार्जुन में तथाकथित बुद्धिजीवी के सोच - विचार के ढंग एवं उसके व्यवहार को नाटकीय शैली में व्यक्त करते हुए उनकी कृत्रिम गरिमा का उपहास किया है तथा उनकी शिष्टता एवं सौम्यता के बनावटीपन की पोल खोली है । जिस प्रकार बुद्धिजीवी महानुभाव सौम्यता, शालीनता

का कृत्रिम मुखौटा लगाये रहते हैं, उसी प्रकार उसको अनावृत्त करने के लिए कवि भी शिष्ट एवं आदरसूचक शब्दों का प्रयोग करता है । ऊपर से चढ़ाये गये मुलम्मे की तरह ही कवि द्वारा प्रयुक्त आदरसूचक शब्द भी तथाकथित बुद्धिजीवी के व्यक्तित्व के उस मुलम्मे पर ही प्रच्छन्न किन्तु गहरा वार करते हैं, जिससे उसकी सारी वास्तविकता अत्यन्त चतुराई के साथ उधड़ जाती है -----

' किशोर हुआ खून ...
पिट गये शान्त, शिष्ट अफसर ....
प्रज्ञाकर, गुणनिधान बोले
तो फिर क्या हुआ
महीन मुस्कान फेंकते रहे मेरी ओर
वेतन - सर्वस्व बुद्धिजीवी महानुभाव
बढ़ा दी आगे गोल्ड फ्लैक की पाकिट ।'[1]

आगे कवि बुद्धिजीवी की मनोवृत्ति का व्यंग्यात्मक चित्रण वार्तालाप शैली की नाटकीयता के साथ करता है । अंतिम कुछ पंक्तियों में कवि का व्यंग्य बड़ा प्रच्छनन, और शिष्ट मुद्रा वाला है, जो यथार्थ के उसी रूप में प्रस्तुत करते हुए व्यंग्यास्पद पर गहरे व्यंग्य के रूप में है -----

' अगले ही क्षण बढ़ गया हाथ गोल्ड फ्लैक की ओर
नत - नयन मुद्रित मुख बुद्धिजीवी महानुभाव
' स्टेट्समैन ' में डूब गये ।'[2]

समकालीन साहित्यिक गतिविधियों पर त्वरित प्रतिक्रिया के रूप में नागार्जुन का व्यंग्य साहित्य - क्षेत्र में सप्तकों के प्रकाशन एवं उसके कवियों के प्रति व्यक्त हुआ है । कवि का उपहासपूर्ण तीखा व्यंग्य सप्तकीय कवियों के प्रति विनोद की चुलबुली मुद्रा के साथ दृष्टव्य है -----

---

1. सतरंगे पंखों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 36
2. सतरंगे पंखों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 38

' वज्रयान, ग्रह्यान
मात हुए सभी पंथ
खुल गये गाथा ग्रन्थ
तैयार हो कुछ और पुत्र दत्तक
पूरा हो तीसरा चौथा सप्तक
खुदा करे पा जाओ चाकरी हजारों की
स्वप्नस्थ भष्मासुर करते परिक्रमा अपने मजार की ।'[1]

सप्तकों के प्रणेता और जनक तथा उसके कवियों की खिल्ली उड़ाता हुआ तीखा व्यंग्य अत्यंत चुटीले रूप में ' चाचा भरे चाबी ' कविता में है । कवि का प्रहार प्रत्यक्ष व निर्भीक है और भाषा अत्यंत सजग, सटीक व धारदार है -----

' सात की जमात है / बात ही बात है / सारी सृष्टि मात है / समझा कुछ आपने? / × × × / करने लगे गूटर - गूँ प्रतिभा के / पंडुक कतकी बयार में / धूप - धूल - धुआँ - धुंध ..../ बचें बेचारे बचऊ की आँखें / चचा भरे चाबी / लकवा न मार जाये बेचारे भतीजे की पाँखें... /'[2]

एक अन्य कविता में नागार्जुन बुद्धिजीवी के कलाकार से प्रवचन कर्ता बनकर यश, धन तथा भोजन के स्वाद की मौज उड़ाते रूप का यथार्थ - चित्र प्रस्तुत करते हुए उसके द्वारा किये गये चातुर्यपूर्ण आयोजनों और उनमें अपनी कृत्रिम दार्शनिकता के प्रदर्शन द्वारा नाम कमाने और उसे भुनाने की प्रवृत्ति पर उपहासपूर्ण गहरा व्यंग्य करते हैं -----

कलम की निब का लग गयी जंग / × × × / बुलाते हैं श्रद्धालु, सुनते प्रवचन / × × × / दक्षिणा मिलती है, आदर होता है / सांस्कृतिक संकट का रोना रोता है / प्रीमियर से लेकर इतर - साधारण पर्यन्त / सभी के कि कुतः कथम् का समाधान ।। कैसे दुष्कर हैं बेचारे के अनुष्ठान / ग्रहण करता फिरता श्रद्धा निवेदित सुदुर्लभ पकवान ।। बखानता चलता जीवन - दर्शन - ज्ञान - विज्ञान /'[3]

---

1. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 68 (रचनाकाल - 1956)
2. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 119
3. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 89

यथार्थ विमुख सुविधावादी सहित्य के रचनाकारों पर नागार्जुन का व्यंग्य आत्मोद्‌गार के रूप में भी व्यक्त हुआ है, जिसमें कवि कृत्रिम, चाटुकार एवं स्वार्थी कवियों पर तीखा व्यंग्य, स्वयं के कवि कर्म से उनकी तुलना के रूप में करते हुए अपनी विवशता की भी मार्मिक अभिव्यक्ति करता है । कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, जिनमें सत्ता - पक्ष की कृपा प्राप्त करने वाले बिकाऊ कवियों पर तीखा व्यंग्य है -----

' बड़े - बड़े निर्लज्ज बन गये / मैं क्यों आज लजाऊँ ?
लखनऊ दिल्ली जा - जा मैं भी, कहो कोच गरमाऊँ ?
× × × / इन होठों में लोगों से कैसे रबड़ी पुतवाऊँ ?
घाघों से ही मैं भी क्या, अपनी कीमत कुतवाऊँ ?' [1]

नागार्जुन सामाजिक यथार्थ के प्रति अत्यन्त सजग जागरूक तथा प्रगतिशील चेतना से युक्त हैं । अतः प्रयोगवादी नये कवियों की व्यक्तिवादी कविताओं के प्रति भी उनकी सतर्क दृष्टि गई है । निम्न पंक्तियों में व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों के प्रति कवि का व्यंग्य अत्यन्त तीखा, उपहासपूर्ण तथा मार्मिक है । कवि यथार्थ - विमुख इन कवियों के प्रति अत्यंत विक्षोभ से भरकर स्तुति की मुद्रा में गहरा वार करता है -----

' बंधु तुम धन्य हो ।
इतना अधिक आत्म मंथन ।
इतना अधिक
कथित कथन, रोमंथन ।
मन - ही मन मस्सों से
इतनी अधिक सूखी कीलें निकालना
इतना अधिक दोहन स्वगत अनुभूतियों का
इतनी अधिक फेनिल जुगालियाँ ।'[2]

बुद्धिजीवियों की सुविधायें बटोरनें की प्रवृत्ति के प्रति कवि का विक्षुब्ध स्वर आत्मीय

---

1. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 91

2. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 172

मुद्रा में आत्मालोचना के रूप में निम्न पंक्तियों में व्यक्त है । इसमें कवि का व्यंग्य हल्का सा और दृष्टि दार्शनिक - सी है -----

' लगता है / बुद्धिजीवियों की हमारी अपनी बिरादरी भी / शत - प्रतिशत लिप्त है / सुविधायें बटोरते जाने की द्यूत - क्रीड़ा में / जीहाँ, अँगूठा दिखलाते जा रहे हैं / हमारे पुत्र - पौत्र, स्वजन - परिजन / सुरक्षित हैं हमारी आशीष / उन्हीं के निमित्त / जी हाँ, अपन तो स्थिति प्रज्ञ ठहरे ।'[1]

स्वयं भी कवि होंने के नाते यहाँ नागार्जुन नें कवियों की स्थिति पर सहानुभूतिपूर्ण ढंग से विचार किया है, जिसमें यथार्थ - स्थिति में निहित व्यंग्य स्वयं स्पष्ट हो उठा है । सत्ता - पक्ष की प्रशस्ति गाकर सम्मान प्राप्त करने वाले कवियों की नकली अभिव्यक्तियों के प्रति नागार्जुन का विक्षोभ , आक्रोश और उद्‌बोधन उलाहने के स्वर में एक कविता की निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -----

' हाँ युवक - हृदय - सम्राट, संभावित प्रधान मंत्री की
गौरव - गाथायें गुंफित करो
लोकप्रिय छन्दों में
टसुआ ढरकाओं अपनी इन टुट्टी आँखों से
.... अबेर ही सही
' पद्‌मभूषण ' का मैडल तुम्हें मिलना ही है न
प्लीज, कवि महोदय , अब भी होश में आ जाओ ।'[2]

जनकवि होने के नाते नागार्जुन सामान्य मनुष्य द्वारा झेली जाने वाली यथार्थ स्थितियों की विषमता और उसके जीवन संघर्षो से विमुख कवियों के सौंदर्य - बोध के प्रति भी व्यंग्य करते हैं । ' अन्नपचीसी ' कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं, जिसमें कवि की खिन्नता का स्वर और उलाहना स्पष्ट है -----

---

1. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 180
2. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 185

' शीशमहल में बुनता है कवि नायलान की जाली
कुछ आँखों का काजल देखा, कुछ गालों की लाली,
भुला दिया है कटु - सत्यों को देखो खामखयाली ।'[1]

' बुद्धिजीवियों की आत्म विज्ञप्ति की प्रवृत्ति, उनके द्वारा स्वयं के महत्व प्रतिपादन तथा उनके विचारों के हल्के व प्रदर्शनकारी स्वरूप पर भी नागार्जुन की तेज दृष्टि गई है । कवि यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए नाटकीय मुद्रा तथा शालीन भाषा द्वारा ऐसे चिन्तकों के कृत्रिम दिव्य स्वरूप एवं दार्शनिक तेवर का भी उपहास करता है -----

' पीठ पर विज्ञप्तियों का
बोझ लादें
दिव्य - चिंतन
जगमगाता है
योगियों के दु:ख भगाता है
बौद्धिकों के दिल में संशय जगाता है ।'[2]

' क्या हम ' कविता में नागार्जुन साहित्यकारों की परिस्थितियों के आगे झुकने और हार मानने की प्रवृत्ति की विवशता के प्रति प्रश्नाकुल विचारोत्तेक एवं मार्मिक स्वर में हल्का सा व्यंग्य करते हैं, जिसमें राजनीतिक दबावों के सामने समझौता कर ठकुरसुहाती करनें और यथार्थ की विकृतियों से आँखे मूँद लेने वालों के प्रति उद्बोधन भी है -----

' क्या हम आगामी वर्षों में
अपने दोनों कान पकड़कर दंड बैठक लगायेंगे ?
क्या हम आँखें मूँदकर
उनकी हर बात पर हामी भरते जायेंगे
क्या हम डर के मारे हमेशा के लिए गूँगे हो जायेंगे ।'[3]

सत्ता - पक्ष की चापलूसी करके सुख - सुविधायें बटोरने वाले स्वार्थी एवं लोभी

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; पृ0 - 55
2. पुरानी जूतियों कोरस - नागार्जुन; पृ0 - 91
3. ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! - नागार्जुन; पृ0 - 12

कवियों के प्रति नागार्जुन ने अत्यंत पैना, व्यंग्य चटपटी भाषा में किया है । ' रचों - रचों मधुर गीतम् ' कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

> ' इनको इमरती / उनको कलाकंद / शासन - सुख भोगें / गिरधारी फटिकचन्द / अपन को झंझट / अपन को लंदफंद / उनके मुखों में मुसकी है मंद - मंद / रेशमी तिनरंगा / गछी में पैबन्द / अभागे हो कवि तुम / रचते नहीं उनके छन्द /'[1]

यहाँ कवि में भाषा के ठेठ ग्रामीण तेवर के साथ अपनी व्यंजना यथार्थ - धरातल के जनकवि के रूप में की है । चापलूस साहित्यकारों के लिए ' मुसकी ' तथा ईमानदार सच्चे कवियों के लिए ' लंदफंद ' शब्दों का प्रयोग अत्यन्त सटीक एवं सार्थक हैं । यहाँ भाषा की विशिष्ट ठेठ मुद्रा द्वारा हास्य, विनोद तथा तीखे उपहास का अद्भुत मिश्रण हुआ है । एक अन्य कविता ' फागही झाग तो हों ' में नागार्जुन का विक्षोभ संवेदना - शून्य एवं भाव - विहीन रचनायें करने वाले कवियों के प्रति व्यंग्य के स्वर में छूटा है । कवि ऐसे नये कवियों की काव्यगत शुष्क्ता तथा उनके कृत्रिम एवं दिखावटी रूप के प्रति धिक्कार के स्वर में व्यंग्य करता है, जिसमें कवि का विश्लेषण वैचारिक गंभीरता से युक्त है -----

> ' लानत है, तुम तो खुलकर हँस भी नहीं पाते
> प्रभावित नहीं होती लाजवन्ती तुम्हारे छूने से
> गन्ध - चेतना ठस है तुम्हारी
> रस - बोध पंगु है
> श्रुति - कुहर हो गये हैं रबर की तरह
> अपने ' स्व ' को सुला दिया है तुमने
> ऐसे में क्या हो आप
> झाग ही झाग तो हो ।'[2]

नागार्जुन अपने व्यंग्य में ऐसी भाषा - शैली का प्रयोग करते हैं, जो स्वयं कवि की नाटकीय मुद्रा का चित्र - सा प्रस्तुत करती है । इससे व्यंग्य के प्रभाव में एक अनोखी

---

1. ऐसे भी हम क्या । ऐसे भी तुम क्या । - नागार्जुन; पृ0 - 33
2. ऐसे भी हम क्या । ऐसे भी तुम क्या । - नागार्जुन; पृ0 - 50

मनोरंजकता का भी समावेश हो जाता है । ' आँ हाँ, इन्हें न उतारों ' कविता में कवि एकालाप की नाटकीय मुद्रा में बुद्धिजीवी वर्ग के सम्मानित होने की प्रक्रिया का चित्र - खींचता हुआ अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से उनकी प्रच्छन्न यशलिप्सा की ओर व्यंग्यात्मक संकेत करता है, जो पैना होने के साथ ही अनोखी विनोदमयता से भी युक्त है -----

> ' आँ हाँ, उन्हें ना उतारों / झूलने दो जरा देर / मोंगरे की इकहरी लड़ियाँ वक्ष पर / उतरने दो उन्हें छाया - छवियों में / x x x / निःसंकोच टेपित होने दो अपने आपको / और भला कैसे होगा दूर / सांस्कृतिक सूनापन / अगली पीढ़ियों का /'[1]

यहाँ अंतिम पंक्तियों में कवि ने बुद्धिजीवी वर्ग के आत्म प्रचार आत्म प्रदर्शन द्वारा सांस्कृतिक सूनापन दूर करनें के कथन द्वारा उनके खोखले और कृत्रिम रूप पर अत्यंत शालीनता से गहरा व्यंग्य किया है । उपरोक्त कवितायें नौंवे दशक में प्रकाशित संग्रह ' ऐसे भी हम क्या। ऐसे भी तुम क्या ।' में संकलित है । इसी दशक के एक अन्य संग्रह ' आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने ' में भी कवि साहित्यकारों की मान - सम्मान एवं यश पाने की लालसा, राजनीतिक सुविधायें एवं लाभ लेनें की प्रवृत्ति पर व्यंग्य के साथ ही नयी कविता में भूखी पीढ़ी तथा अकविता कवियों पर भी प्रहार करता है । राजनीतिक - लाभ लेने के लिए पक्षपातपूर्ण दृष्टि से साहित्य रचने वालों तथा ऊपर से तटस्थ बने रहने का ढोंग करने वालों पर कवि का व्यंग्य अत्यन्त तीखा और पैना है, परन्तु कवि की मुद्रा नाटकीय ढंग से शिष्ट एवं शालीन है । कवि द्वारा अपनायी गयी यह नाटकीय शालीनता तथा वक्रोक्तिपूर्ण कथन के कारण व्यंग्य देखने में जितना ही संयत होता है, गहरी मार करने में उतना ही सक्षम होता है । एक कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

> ' तटस्थता के मजे लूटना / ' द ग्रेट होने के बराबर है / तो महोदय आप / हमारी इन पंक्तियों पर नजर न डालें / x x x / आपके तन से दुर्गन्ध का भभका उठेगा / x x x / ढेर सारे '   ' हैं इस धरती पर / जो आपको घर बैठे / दक्षिणा पहुँचा रहे हैं /'[2]

---

1. ऐसे भी हम क्या । ऐसे भी तुम क्या । - नागार्जुन; पृ0 - 52
2. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने - नागार्जुन; पृ0 - 41 (1981)

अकविता एवं भूखी पीढ़ी के कवियों के प्रति कवि का घृणामूलक व्यंग्य ' सद्गति ' कविता में व्यक्त हुआ है । निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' भुक्खड़ शब्द शिल्पियों के अन्दर
ईर्ष्या की आग सुलगती होगी
सूखे तालुओं से थूक भी तो न पायेंगे गरीब ।'[1]

' आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने ' में मानवीय - संवेदनाओं से रहित कवियों के प्रति कवि का व्यंग्य उसकी नाटकीय मुद्रायुक्त भाषा में बड़ी प्रगल्भता से व्यक्त हुआ है । यहाँ कवि ने कविता का मानवीकरण कर वार्तालाप शैली द्वारा अपने व्यंग्यात्मक मन्तव्य एवं स्वर को वाणी दी है -----

' मैं तो विचरण करूँगी
दिलों वाली नदियों का
सैकत - पुलिन पर टंकित होऊँगी
दीन - दुखियों के मानस पटल पर
अरे , अरे, अरे
तुम हमसे मुँह चुराते हो ।
आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने ।'[2]

प्रगतिशील विचार धारा से सम्बद्ध कवियों में त्रिलोचन एक ऐसे कवि हैं, जिनका व्यंग्य वैचारिक मुद्रा, संयत - दृष्टि एवं सटीक भाषा के कारण अत्यन्त प्रभावपूर्ण है । त्रिलोचन के साहित्यिक व्यंग्यों में भी ये विशिष्टतायें मौजूद हैं । कवि ने यथार्थ से अलग रहकर प्रेम - गान लिखने वाले कवियों, प्रगतिशीलता का झूठा दंभ करने वाले साहित्यकारों, ठकुर सुहाती पसंद संपादकों, खाऊ मनोवृत्ति के आलोचकों अवसरवादी एवं स्वार्थप्रेरित रचनाओं, कृत्रिम एवं छिछली कविताओं, इन सभी पर अपनी व्यंग्य - दृष्टि डाली है । त्रिलोचन के व्यंग्य देखने में अत्यंत सहज, सरल तथा सादे होते हैं, पर उनका प्रभाव तीव्र कचोट उत्पन्न

---

1. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंन - नागार्जुन; पृ0 - 44 (1981)
2. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने - नागार्जुन; पृ0 - 64 (1984)

करने वाला होता है । त्रिलोचन ठेठ भाषा के प्रचलित सटीक शब्दों तथा मुहावरों का चुनाव करनें में कुशल हैं । कवि की मानवतावादी दृष्टि उसके साहित्यकारों के प्रति व्यंग्य में भी झलकती रहती है । कवि साहित्यकारों के शोषक - स्वरूप पर भी व्यंग्य करता है, जिसमें वह यथार्थ जीवन स्थितियों तथा मानवता से जुड़े होने के कारण अपने कवि कर्म में आस्था भी व्यक्त करता है । नकली स्वार्थ प्रेरित तथा पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक अवसरवादी साहित्यकारों के सन्दर्भ में कवि का व्यंग्य कहीं - कहीं आत्म - करूणा की मार्मिकता से भी युक्त हो उठता है । अपने को मानवतावादी या साम्यवादी घोषित करने के लिए अनुकरणमूलक कृत्रिम कवितायें लिखकर श्रेष्ठता - ग्रन्थि विकसित करने वाले कवियों पर त्रिलोचन का अत्यंत सटीक और तीखा व्यंग्य बड़े दार्शनिक तेवर में एक कविता की निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -----

' देसी और विदेसी लादी ढोते ढोते
जिनकी पीठ कट गयी थी वे गधे शान से
घोड़े कहलाते फिरते हैं / आन बान से
× × ×
साम्यवाद के पथ में लीद किया करते हैं
मानवता का पोस्टर देखा लगे रेंकने
क्या प्रतीक है और तत्थ्य क्या, दूर दूर हैं
समझ बड़ी भोली है व्यस्त जिया करते हैं
संस्कृति की हरियाली देखी लगे छेंकने,
अपनी दुलत्तियों के मद में सदा चूर हैं ।'[1]

यहाँ कवि नें ' गधे ' का प्रतीक रूप में अत्यंत सटीक तथा सारगर्भित प्रयोग किया है । इस प्रतीक का पूरी कविता में तीखे और उपहासपूर्ण व्यंग्य के लिये सफल निर्वाह लीद करनें, रेंकने और दुलत्तियों के मद में चूर रहनें के वर्णन द्वारा, किया गया है । इसमें कवि नें उर्दू तथा ठेठ शब्दों का प्रयोग व्यंग्य के लिए भाषा के सहज प्रवाह में किया है । एक अन्य सॉनेट में भी कवि साहित्यकारों के मानवताविहीन, स्वार्थी, लोभी एवं क्षुद्र प्रवृत्तियों पर अपनी

---

1. फूल नाम है एक - त्रिलोचन; पृ० - 21 (रचनाकाल - 1954)

वितृष्णा का प्रकाशन करते हुए व्यंग्य करता है, जिसमें कवि की अन्तर्निहित मानवतावादी दृष्टि की गहन पीड़ा का आभाष मिलता है -----

' कौर छीन कर औरों का जो खा जाते हैं,
वे भी कवि साहित्यकार की छाप लगाये,
पथ पर घूम रहे हैं / ऐसे लोग न आये,
× × ×
शब्द रचा करते हैं - वही अर्थ उतराये,
जिसकी आकाँक्षा हो, चाल दिखा जाते हैं
राज्यपाल को देखा तो पैरों पर माथा
टेक दिया फिर स्पष्टीकरण किया भारत की,
परम्परा ऐसी ही है / दूतों को देखा,
सिर के बल दौड़े, फोटो में उभरी गाथा ।'[1]

त्रिलोचन समकालीन कवियों में अपने सहज, सरल एवं सादगीपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलग से पहचाने जाते हैं । आज कवियों की भीड़ में नकलची तथा कृत्रिम कवि ही अधिक हैं, क्योंकि अब कवि कहलाना आसान है । त्रिलोचन ऐसे नकली कवियों की खिल्ली उड़ाते हैं, उनपर व्यंग्य करते हैं । निम्न कविता में त्रिलोचन ऐसी कविताओं की सार्थकता की जाँच - परख अत्यंत नाटकीय व्यंग्य के साथ करते हैं -----

' हो तुम भी घोंचू ही / भाषा, छंद, भाव के
पीछे जान खपाते हो / लद गया जमाना
इनका / छोड़ो भी / आओ अबसे मनमाना,
लिखा करो / गद्य ही ठीक है / अब कटाव के,
ढब बदले हैं / बोल चढ़े हैं भाव - ताव के,
लिखो, लिखो कुछ बहुत सरल है कवि कहलाना
यह खेलों में नया खेल है, तुम आ जाना ।'[2]

---

1. फूल नाम है एक - त्रिलोचन; पृ0 - 23 (रचनाकाल - 1954)
2. फूल नाम है एक - त्रिलोचन; पृ0 - 31 (1954)

यहाँ कवि ने अत्यंत सादगी के साथ परन्तु अत्यधिक कुशलता से कविता को व्यवसाय समझकर सुविधानुसार विविध रूप देनें तथा अत्यन्त आसान कर्म समझकर उसके प्रति खेल के दाँव - पेंच वाली दृष्टि अपनाने की प्रवृत्ति के प्रति बड़ा असरदार व्यंग्य किया है । इसमें भी कवि के कथन की भंगिमा में उसकी गहरी वैचारिकता की छाप है । आठवें दशक की एक कविता में त्रिलोचन की यथार्थसम्पृक्ति काल्पनिक अयथार्थ अभिव्यक्ति करने वाले कवियों के प्रति व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुई है । आज का कवि व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनाकर ऐसी रचनायें करता है, जिनका कोई मूल्य नहीं है । कवि का विक्षोभ भरा व्यंग्य स्वर निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है -----

> ' देखे हैं साहित्य विधाताओं ने सपने
> आँख खोलने पर जो नहीं दिखाई देते,
> × × ×
> साँस - साँस को कैसा अपने - अपने तप ने
> तपा रखा है कैसे कंठ बधाई देते
> हाथों को कुछ दिया नहीं है मन के जपने ।'[1]

त्रिलोचन नें विनोदी - मुद्रा में भी साहित्यकारों पर व्यंग्य किया है । निम्न कविता में कवि नें नये कवियों के उस वर्ग पर व्यंग्य किया है, जिनकी कविताओं में श्रोता तो कोई रुचि नहीं लेते, पर वे स्वयं अपनी कविता की प्रशंसा करते हुए उन्हें सुनने के लिए बाध्य करते हैं । इस हास्यास्पद स्थिति का चित्रण करके कवि नें इन कवियों के आत्म - प्रशंसा के भाव का उपहास नाटकीय एवं तटस्थ मुद्रा में किया है -----

> ' उनकी धुन उनकी तत्परता से यह सीखा,
> गुंजाइश के बिना किस तरह बात घंसाई,
> जाती है दिमाग में औरों के, वे रह - रह,
> कोंच रहे थे, अजी सो रहो हो तुम इतनी
> जल्दी कैसे काम बनेगा तुमको कितनी
> कवितायें हैं अभी सुनानी मुझको .....।'[2]

---

1. फूल नाम है एक - त्रिलोचन; पृ० - 97 (1973)
2. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन; पृ० - 84

त्रिलोचन नें आलोचकों पर भी व्यंग्य किया है । निम्न कविता में आलोचक व कवि की पोल खोलता कवि उनकी खाने - खिलाने की प्रवृत्ति तथा पक्षपातपूर्ण आलोचना पर पैना व्यंग्य सटीक मुहावरेदार भाषा में करता है -----

' हल्दी लगे न फिटकरी, कहाँ हो सकता है
अमुक अमुक कवि नें जम कर जलपान कराया,
आलोचक गन कीर्तिगान में कब थकता है
दूध दुहेगा, जिसने अच्छी तरह चराया ।'[1]

' उस जनपद का कवि हूँ, संग्रह में त्रिलोचन के व्यंग्य में वैचारिकता, विक्षोभ, मार्मिकता एवं करूणा घुली मिली दिखती है । इसमें कवि नें अधिकांशतः निज के कवि - कर्म की तुलना में अन्य साहित्यकारों पर व्यंग्य किया है । ' अनुकृति - अनुकृति - अनुकृति' कविता में साहित्यकारों की अनुकृति की प्रवृत्ति के प्रति कवि का हलका - सा विक्षोभपूर्ण व्यंग्य है ।'[2] इसी प्रकार ' कविता के चेहरे पर ' कविता में भी कवि स्वयं की कविताओं की व्याख्या करता हुआ उसकी तुलना बनावटी, संवेदन शून्य किन्तु रिझाऊ श्रृंगारिक कविता और उधार के विचारों वाली कविता तथा उसके प्रसंशकों पर व्यंग्य करता है । यहाँ कवि की अभिव्यक्ति में शिष्ट मुद्रा है, जो अपने विशिष्ट छंद सॉनेट में ढलने के कारण अधिक प्रभावपूर्ण है । कवि के विश्लेषण में वैचारिकता का भी समावेश है । निम्न पंक्तियों में उधार के भद्‌दे पाउडर ' के पीछे छिपे कविता के वास्तविक रूप को बड़ी सादगी से पैने व्यंग्य का विशाल बनाया गया है -----

' कविता के चेहरे पर जो पाउडर उधार का
लगा हुआ था भद्‌दा था, उस पर मतवाले
कितने ही जन थे पर उनके उस दुलार का
मर्म विदित था मुझे, वही श्रृंगार निराले ।'[3]

---

1. ताप के ताए हुए दिन - त्रिलोचन; पृ0 - 48
2. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 112
3. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 113

इस सॉनेट के आगे के अंश में कवि नें स्वयं के कवि - कर्म के विश्लेषण द्वारा कविता के व्यंग्य को एक अलग रंग दे दिया है । कवि अपनी - कविता में सहजता, सरलता एवं सीधे - सादे सुरों की सार्थकता दर्शाता है, जिससे कविता के प्रारम्भिक अंशों में वर्णित कृत्रिम, अनुकरणमूलक एवं भाव - हीन कविता पर कवि का व्यंग्य जैसे भूमिका रूप ले लेता है । त्रिलोचन नें आलोचकों के ऊपर भी बड़ी सादगी के साथ प्रच्छन्न तीखा व्यंग्य एक अन्य सॉनेट में किया है । कवि आज समीक्षा को आसान कर्म बताता हुआ कहता है -----

' रूख देख कर समीक्षा का अब मैं हूँ हामी,
कोई लिखा करे कुछ, जल्दी होगा नामी ।'[1]

' तुम्हें सौंपता हूँ ' संग्रह में कवियों के सौंदर्य एवं प्रेम सम्बन्धी भावुक अभिव्यक्तियों के प्रति हल्की - सी व्यंगात्मकता विनोद के पुट के साथ निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य हैं -----

' आँसुओं में बूड़ - बूड़
साँसों में उड़ - उड़कर
मनमानी कर धरके
क्या करते कविगण तब
अगर चाँद मर जाता
झर जाते तारे सब
क्या करते कविगण तब ?'[2]

त्रिलोचन प्रेम की भावुक कविता में लिखने वालों तथा उनका पक्ष लेने वालों पर उपहास की मुद्रा में व्यंग्य करते हैं -----

' गीत प्रेम का गाते हैं रसिकेश हमारे
साँझ सबेरे और दूसरा व्यसन नहीं है

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 114
2. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 26, 27

भला करें क्या बेचारे दुनिया से हारे
जहाँ प्रेम की या प्रेमी की कदर नहीं है
नल - दमयंती; लैला - मजनू आज कहानी ।'[1]

' शराब और कविता ' में त्रिलोचन अपने सन्दर्भ में ही कविता को शराब से जोड़ते हुए आभिजात्य वर्गीय कवियों पर पैना व्यंग्य करते हैं, जिसमें हल्का सा विनोद का पुट भी है और कवि की विपन्न स्थिति का करूण व्यंग्य भी है -----

' .... बिना शराब पिये यदि कोई
कवि होने का दम्भ करे तो उसको छोड़ो
उसके अहंकार का गुब्बारा मत फोड़ो;
पीने से शराब जिसकी उतर गई लोई
क्या कर लेगा कोई / उसकी बात हटाओ,
नाम त्रिलोचन का लेते हो यह नादानी
है, पीता है वह लोटे पर लोटे पानी ।'[2]

त्रिलोचन साहित्य - जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति सजग रहे हैं । संपादकों की, चापलूसी करवाने की प्रवृत्ति पर भी कवि की व्यंग्य दृष्टि गई है । कवि का संपादकों तथा उसकी चापलूसी करके काम बनाने वाले साहित्यकारों, दोनों के प्रति पैना व्यंग्य मुहावरों के सटीक प्रयोग द्वारा अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -----

' बात नहीं है, इसमें केवल तेल लगाना
अगर जरा आ जाय तो समझ लो पौ बारा,
× × ×
.... कौन कहे चाँदी है जिसकी,
सीधी करनी पड़ी जूतियाँ किस की किस की ।'[3]

इस प्रकार त्रिलोचन के बुद्धिजीवी वर्ग पर किये गये व्यंग्य भी तीखे प्रभाव से युक्त है । व्यंग्य करते हुए उस स्थिति के विक्षोभ का भाव एवं कवि की दार्शनिक मुद्रा व्यंग्य को

---

1. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 60
2. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 70
3. अनकही भी कुछ कहनी है - त्रिलोचन; पृ0 - 34

एक विशेष मार्मिकता से भर देती है । बाद के संग्रहों में कवि साहित्यकारों पर व्यंग्य करते समय स्वयं के साहित्यिक कर्म से उनका विरोधाभास भी व्यक्त करता है । निजी - सन्दर्भ से युक्त व्यंग्य प्रच्छन्न हैं या फिर मार्मिक हैं । ' शराब और कविता ' में कवि अपने जीवन के अभाव - पक्ष से सम्पन्न आभिजात्य वर्गीय साहित्यकारों की जीवन - शैली एवं दृष्टि की तरफ व्यंग्यात्मक इंगित करता है, जिसमें कवि अपनी विपन्नता की ओर भी मार्मिक संकेत, व्यंग्यात्मक भाषा में करता है । त्रिलोचन के साहित्यिक व्यंग्य अत्यन्त सहजता से, सधी हुयी ठेठ मुहावेरदार प्रवाहपूर्ण भाषा में विनोद तथा उपहास के साथ किये गये हैं ।

केदारनाथ अग्रवाल की बुद्धिजीवियों के प्रति व्यंग्य - दृष्टि उनके यथार्थवादी मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित है । केदारनाथ अग्रवाल नें अधिकतर साहित्यकारों के यथार्थ से पलायन करनें, उनकी व्यक्तिवादी तथा काल्पनिक अभिव्यक्तियों, निराशा, ऊब तथा कुंठा की भावना के प्रति तीखा व्यंग्य किया है । इनका व्यंग्य वैचारिक दृष्टि एवं संयमित तटस्थ मुद्रा के कारण अत्यन्त गहरा और नुकीला बन जाता है । केदारनाथ अग्रवाल की आस्था जीवन के यथार्थ में है, अतः वे काल्पनिक एवं स्वाप्निल कवितायें लिखने वाले और जीवन के संघर्षों से भागने तथा मृत्यु - बोध, अनास्था एवं संत्रास की अभिव्यक्ति करने वाले साहित्यकारों के प्रति अधिक व्यंग्यशील रहे हैं ।

इनके प्रारम्भिक संग्रह ' युग की गंगा ' की एक कविता ' स्वप्नदृष्टा से ' में कवि ने स्वप्नदृष्टा बुद्धिजीवी की सामाजिक यथार्थ से परे निरर्थक कल्पनाशीलता, आत्मलिप्त दुर्बल चिंतन, जीवन की सहज इच्छाओं का बलपूर्वक हनन एवं भीतर से उनके प्रति आसक्ति के प्रति पैना व्यंग्य करते हुए उनकी बखिया उधेड़ी है -----

' कायरों की माँद में बैठे अकेले अन्ध चिन्तन कर रहे हो
हीन दुर्बल भावनाओं का निरर्थक
सिन्धु - मंथन कर रहे हो
वृद्ध - वेश्या कल्पना की ओर
मारूत मन उड़ाते जा रहे हो

× × ×

मार डाली वासनायें, कामनायें और इच्छायें रंगीली
किन्तु स्वप्नों में उन्हीं को देखते हो ।'[1]

प्रारम्भिक संग्रहों में ' फूल नहीं रंग बोलते हैं ' में भी कवि की मार्क्सवादी चेतना से संवेदित व्यंग्य हैं, जिसमें कवि के स्वर में विक्षोभ तथा पीड़ा स्पष्ट है । ' लौह का घन गल रहा है ' कविता में शोषण के विरूद्ध संघर्ष करने व जूझने के बजाय विवश भाव से ऊब, कुंठा अनास्था, व्यर्थता एवं भय की प्रवृत्तियों में जीने वाले तथा साहित्य व कला का आश्रय लेकर कल्पना - लोक की उड़ान में अपनी विवशताओं का हल ढूढ़ने वाले, लेखकों, कवियों एवं कलाकारों पर यथार्थ चित्रण शैली में कवि का व्यंग्य अत्यंत तीखा तथा वैचारिक तेवर से युक्त है -----

' वह थका, हारा बहुत ऊबा मनुज है / भूमि उसको प्रिय नहीं है / वर्ग के संघर्ष से वह काँपता है / × × × / श्वान के संग भूख अपनी मेटता है / शासकों के कटु दमन की यंत्रणा से / शोसकों के अपहरण की यातना से / रक्त के कुल्ले उगलकर मर रहा है / लाश अपनी ढो रहा है / वह कला के काव्य के डैने लगाकर / सान्त्वना की प्राप्ति के हित / कल्पना के नील - नभ में / प्राण अपने खो रहा है /'[2]

साहित्य - जगत की विसंगतियों का उद्घाटन कवि ने ' कवि मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद ' कविता में किया है । इसमें समकालीन साहित्यिक परिवेश में कृत्रिम संवेदना व औपचारिक प्रशस्ति - गान के प्रति कवि का क्षुब्ध मार्मिक स्वर युक्त व्यंग्य है । कवि की यथार्थवादी एवं मानवतावादी दृष्टि साहित्यकार के जीवन की मार्मिक विडम्बना को भी प्रत्यक्ष करती है, जिसमें मुक्तिबोध जैसे युगदृष्टा कवि को सहानुभूति तथा सम्मान, उसके मरने के उपरान्त मिलता है । जीवन काल में तो उसे उपेक्षा तथा अभावों का ही सामना करना पड़ता है । कविता की कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं, जिसमें कवि का अवसादपूर्ण व्यंग्य विचारोत्तेजक भी है, जिसमें व्यंग्य की प्राभावात्मकता मिश्रित प्रकार की सुसंस्कृत भाषा द्वारा बढ़ गयी है -----

---

1. गुलमेंहदी - पृ0 - 39, 40
2. फूल नहीं रंग बोलते हैं - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 8।

' मरे की प्रशस्ति
उसकी और हमारी प्रशस्ति है
वाह रे हम
और हमारा ग़म
फ़रेब पर फ़िदा है मातम ।'[1]

केदारनाथ अग्रवाल साहित्यकारों पर व्यंग्य करते समय तटस्थ मुद्रा धारण करके यथार्थ को नग्न रूप में प्रस्तुत कर देते हैं । ' पंख और पतवार ' संग्रह में संकलित एक कविता ' बौद्धिक नौजवान ' में कवि ने यथार्थ विमुख आत्मवादी साहित्यकार के जीवन एवं कृतित्व का एक चित्र - सा प्रस्तुत करते हुए उसके प्रति वैचारिक तटस्थता से गहरा व्यंग्य किया है । इसमें कवि नयी पीढ़ी के साहित्यकार की आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति, खोखली मनोभूमि तथा जीवन के कटु यथार्थ से विमुख होकर यौनाचार में शरण तलाशने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता है, जिसमें कवि के स्वर में वितृष्णा लक्षित की जा सकती है -----

' विसंगतियों से विकृत / आदमी का चेहरा चिपकाये / समय की गड़बड़ सड़क पर/ चलता चला जा रहा है ठोकर खाते / × × × / किसी न किसी परकीया के अंक में / समर्पित - समाप्त हो जाने के लिए / समाजवाद से विमुख / अपने आत्मवाद के अकेलेपन में /'[2]

नौवें दशक के प्रारम्भ की एक रचना में केदारनाथ अग्रवाल नें नयी कविता के कुछ कवियों की बिकाऊ मनोवृत्ति, हल्के कृतित्व एवं विराट अहंभाव के प्रति अत्यंत तीखा व्यंग्य किया है । इसमें भाषा के सहज बोलचाल वाला रूप है, जिसमें हिन्दी के तत्सम शब्दों तथा लोकजीवन में प्रचलित हिन्दी तथा उर्दू के शब्दों का व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए सटीक तथा प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया गया है -----

' इनको घमंड है पहाड़ खोदकर
चुहिया निकाल लाने का

---

1. आग का आइना - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 30
2. पंख और पतवार - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 51

रामायनी भूमि पर भटकटैया उगाने का
करछुल भर लिखकर ही कालिदास होने का
करछुल भर खाने पर
फौरन बिक जाने का ।'[1]

कुल मिलाकर केदारनाथ अग्रवाल के साहित्यिक व्यंग्य तीखे, मार्मिक एवं विचारोत्तेजक रहे हैं, जिनमें आक्रोश के बजाय विक्षोभ तथा वितृष्णा का प्रकाशन अधिक हुआ है । मार्क्सवादी समाजवादी विचारधारा का प्रभाव कवि की प्रारम्भ से लेकर परवर्ती काल की कृतियों में व्याप्त है ।

विजयदेव नारायण की कविताओं में बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति व्यंग्य अत्यन्त कम है । इनके प्रारम्भिक काव्य - संग्रह ' मछलीघर ' की एक कविता है ' कवि मीडास ' जिसमे कवियों द्वारा तिलिस्मी एवं मायावी संसार की रचना करने पर व्यंग्य है । इसमें कवि का व्यंग्य वक्रोक्तिपूर्ण है । यथार्थ - बोध की उष्मा से रहित आत्म प्रदर्शनकारी खोखली एवं हल्की कविताओं का उपहास अत्यन्त सटीक भाषा और बिम्ब में करते हुए कवि का व्यंग्य निम्न कवितांश में दर्शनीय है -----

' चेहरे से लगता नहीं
बाहर सुलगता नहीं
फिर भी तुम गा - गाकर - खंजड़ी बजाते रहो
ओ सच्चे साइयाँ!
झूठ सच वाली इस मिली - जुली दुनिया में
कौन नहीं
अपनों में संत और गैरों में काइयाँ ।'[2]

इसी संग्रह की एक अन्य कविता ' नतीजे, ख़रीते, लुव्वेलुवाव में कवि बौद्धिक विचारों, मान्यताओं और व्याख्याओं का मानवीकरण करते हुए उनके प्रति हल्का - सा व्यंग्य

---

1. बोले बोल अबोल - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 26 (रचनाकाल - 1981)
2. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 36

करता है । इस कविता में कवि की अभव्यक्ति मनोवैज्ञानिक है तथा इसमें आज के बुद्धिजीवियों के आत्म प्रदर्शन की प्रवृत्ति के प्रति व्यंग्यात्मक संकेत किया गया है । कवि नें इसमें उर्दू, फारसी के शब्दों का अत्यन्त प्रभावपूर्ण प्रयोग किया है । कविता में नाटकीयता का समावेश भी है -----

> ' लैस सिपाहियों की तरह / आस्थायें, मान्यतायें, व्याख्यायें, नतीज़े, ख़रीते, लुव्वेलुवाव / मैदान में उतरते हैं / × × × / जिन्हें हफ्तों से कोई मनोरंजन नहीं मिला है / वे सब चहारदीवारियों पर उचके - उचके नज़्ज़ारा देखते हैं / ये न जादूगर हैं, न वैद्य, न डाक्टर, न गिरहकट, फिर भी दिन - दहाड़े चीख - चीखकर आवाजें करते हैं ।'[1]

' साखी ' कवि का दूसरा संग्रह है । इस संग्रह में एक कविता ' बहस के बाद ' में कवि का व्यंग्य बुद्धिजीवियों की बहस के व्यंग्यात्मक स्वरूप को संकेतित करता है, साथ ही इसे परिदेश में घटित घटनाओं पर लोगों की प्रतिक्रिया के रूप में भी लिया जा सकता है । आज के बुद्धिजीवी वर्ग की संशयग्रस्त एवं अस्थिर सोच का स्वरूप इसमें व्यंग्यात्मक रूप में प्रत्यक्ष हो उठा है -----

> ' असली सवाल है कि मुख्य मंत्री कौन होगा / × × × / कि मंत्री को राजदूत बनाना अपमान है या नहीं ? × × × / कि खूसट बुड्ढों को कब तक बर्दाश्त किया जायेगा / × × × / नहीं - नहीं, असली सवाल ...../ सुनों भाई साधो / असली सवाल है / कि असली सवाल क्या है ? '[2]

दुष्यन्त कुमार ने भी कवियों एवं साहित्यकारों पर व्यंग्य किये हैं । इनका व्यंग्य आत्मालोचना के रूप में भी है । कवि नें स्वयं अपने ऊपर उँगली उठाते हुए समूचे साहित्यकार वर्ग के मर्मस्थल पर उँगली रखी है । इसीलिए इनके व्यंग्य में दार्शनिक एवं वैचारिक तेवर भी हैं । नये कवियों की कमियों की तरफ संकेत करता हुआ संयत व्यंग्य भी इनकी कविताओं में

---

1. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 43
2. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 88-90

मिलता है ।

प्रारम्भिक काव्य - संग्रह ' सूर्य का स्वागत ' में ' अभिव्यक्ति का प्रश्न ' कविता की कुछ पंक्तियों में कवि अपने जीवन के कवि - रूप के करूण व्यंग्य का आभाष दिया है ।[1] इसमें कवि का आत्म - व्यंग्य भी है और कवि - जीवन के प्रति एक उद्‌बोधन भी है । अगले संग्रह ' जलदते हुए वन का बसंत ' की ' अस्ति बोध ' तथा ' मौसम ' शीर्षक कविताओं में आज के कवियों तथा उनकी तुकबन्दी पूर्ण सप्रयास रचित यथार्थ - बोध से रहित कविताओं के प्रति व्यंग्य आत्म - व्यंग्य के रूप में है । कवि की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जिसमें उसने एकालाप की मुद्रा में कवियों की पलायनवादी तथा सुविधावादी प्रवृत्ति को उद्‌घाटित किया है -----

' भीड़ में सुविधा की एक जगह छाँट ली
मैं धक्का - मुक्की क्यों करता ?
मैंने यहाँ - वहाँ थोड़ी - सी तुकें उगायीं और
कविता की खड़ी खूबसूरत फसल काट ली
पर .....
अब इस कविता से बचता हूँ, जिसकी रचता हूँ ।'[2]

' मौसम ' कविता में कवि का व्यंग्य स्वयं के प्रति मौसम के माध्यम से व्यक्त हुआ है -----

' वातावरण बड़ी निराश गति से
चारों ओर रेंगता है
कवि कहकर मुझे चिढ़ाता है
सच -
कैसा असहाय
कितना बूढ़ा हो गया है तुम्हारा कवि

---

1. सूर्य का स्वागत - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 46

2. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 29

बदले हुए मौसम के अनुसार
उससे
वेश तक नहीं बदला जाता है ।'[1]

उपरोक्त कविताओं में आत्म - व्यंग्य के रूप में स्वयं के निर्मम परीक्षण से उत्पन्न व्यंग्य अत्यन्त मार्मिक हैं ।

. अगले संग्रह ' आवाजों के घेरे ' में भी कवि की व्यंग्य - दृष्टि साहित्य - जगत पर गई है । ' प्रश्न - दृष्टियाँ ' शीर्षक कविता में कवि का मानवीय संवेदना से सिक्त मार्मिक एवं आहत स्वर, उन साहित्यकारों के प्रति व्यंग्यात्मक उद्‌गार के रूप में है, जो जीवन समर में आहत लोगों के प्रति दया - भाव तो रखते हैं, परन्तु तटस्थतापूर्वक, दूर से । वह कवियों की निर्लिप्त दया तथा संवेदना की असंगति को दर्शाते हुए उनसे क्रान्ति की अपेक्षा रखता है; यथार्थ जीवन में उनकी सक्रिय हिस्सेदारी और लगाव चाहता है । अतः वह उन्हें उलाहना देता हुआ मार्मिक स्वर में व्यंग्य कर उठता है -----

> ' इस समर को दूर से देखने वालों / यह सरल है / आहतों पर दया दिखलाओ / ' आह बेचारे ' / कहो / या साथ इनके तिक्त संवेदन के क्षण सहो / औ' पराजय पर विकल होकर रचो साहित्य / × × × / ... तटस्थ दया तुम्हारी / और संवेदना उनको बींधती है / आह ! बेचारे भ्रमित / यह सोचते थे - / ले चुकी है जन्म / एक विशाल औ' निर्भीक पीढ़ी ।'[2]

इस प्रकार दुष्यन्त कुमार में अनुभूति की ईमानदार अभिव्यक्ति के रूप में साहित्यकारों के प्रति उद्‌बोधनपूर्ण व्यंग्य संयत भाषा, वैचारिक दृष्टि तथा मार्मिक स्वर में व्यक्त हुए हैं । इन कविताओं में कवि की जीवन - आस्था, सामाजिक प्रतिबद्धता, गंभीर साहित्यिक-दृष्टि एवं संवेदनशील भावुकता को स्पष्टतः महसूस किया जा सकता है । इनके व्यंग्य में आक्रोश का आवेग नहीं है । कवि बड़े सुलझे हुए ढंग से स्थिति के व्यक्ति व्यंग्यशील होता

---

1. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 43
2. आवाजों के घेरे - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 66

है, जिससे कविता वार नहीं करती, बल्कि कचोटती और कुरेदती है । कहीं - कहीं वह उपहास भी करती है, पर मर्यादित ढंग से ।

छठें दशक के नये कवियों में अपनी कविता के भाव - बोध के सन्दर्भ में अन्य कवियों पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति प्रायः रही है । इस प्रकार के व्यंग्य प्रतिक्रियात्मक ढंग के व्यंग्य लगते हैं । लक्ष्मीकांत वर्मा में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । प्रारम्भिक संग्रह ' अतुकांत ' में संकलित एक कविता ' विषकम्भक ' में कवि ने अपनी कविता में कठोर व परूष भावों का पक्ष लेते हुए कोमल भावों की रंगीन कवितायें लिखने वाले कवियों पर व्यंग्य किया है । कवि उन्हें नट और बाजीगर कहता है, क्योंकि वे जीवन के कठोर सत्यों की अभिव्यक्ति न करके मानवीयता की अवहेलनापूर्वक कविता को मात्र एक प्रदर्शन एवं मनोरंजन की वस्तु बना देते हैं । इसमें कवि का व्यंग्य शिष्ट भाषा - शैली, में तीखी उपमाओं के साथ अत्यंत प्रभावपूर्ण तथा पैना है -----

> ' रस तो ले गये वे गन्धवाही योगी सब / जो आये थे केवल कलाकर से, नट से, बाजीगर से / × × × / वे पाल लेते हैं .... / गमलों में रक्त की खाद दे / असंख्य पंक्तियों कलियों को चुटकी में मसल / उगा लेते हैं एक गुलाब / जिसमें सर्प से बैठे ..... / गन्ध पी / केवल विष की तिक्तता देते हैं । हमें, तुम्हें इन्हें, उन्हें / ओ विषकम्भक ...... वे हैं कवि /
>
> कवि मैं नहीं । क्यों कि मैं कोमलता से दूर कठोरता में जीता हूँ ।'[1]

' अतुकांत ' की ही एक अन्य कविता में कुछ अटपटे चित्रण द्वारा कवि सरकारी ऑफिस में कार्यरत अनाम कवि की खिल्ली उड़ाता है, जिसमें भाषा द्वारा हास्य - विनोद का भी समावेश है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

> ' कविता से उपयोगी है बजट शीट / रकमों के कालम, नाम / शान्त थे कवि अनाम / चपरासी नें पूछा उपाय / बास नें लिखा - ऑय बॉय सॉय / बोले तब

---

1. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 24

अनामराय .... / × × × / कागज फिर बनेगा / बजट फिर चढ़ेगा / मैं तो हूँ जिन्दा / फिर क्या चिन्ता / आज नहीं / अब से मैं कल मरा करूँगा / किस्सा तमाम / कवि श्री अनाम /'[1]

इस पूरी कविता में कवि - कर्म और उसके बाह्य जीवन को सम्बद्ध करके लक्ष्मीकांत वर्मा ने अत्यंत नाटकीय मनोरंजकता के साथ दर्द के गीत गाने वाले तथाकथित कवियों पर व्यंग्य किया है । लक्ष्मीकांत वर्मा में परवर्ती काव्य - संग्रहों में बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति व्यंग्यात्मक कवितायें नहीं मिलती । कवि में प्रारम्भ में ही यह प्रवृत्ति दिखती है, बाद में वह विकसित नहीं हो सकी है ।

शमशेर बहादुर की कविताओं में कवियों पर व्यंग्य आत्मालोचन की मुद्रा में है । उसमें स्वयं अपना उपहास करने की विनोदात्मकता एवं चुहल के दर्शन होते हैं । कवि नये कवियों की आलोचना करते समय स्वयं भी उसमें शामिल है । साहित्य जगत के यथार्थ तत्थ्यों की ओर व्यंग्यात्मक संकेत चुटकुले वाली शैली में नये कवियों के जीवन, कृतित्व एवं उनकी सीमाओं तथा विवशताओं को व्यंग्यास्पद ढंग से प्रस्तुत करते हुए थोड़ी सी पंक्तियों में अत्यंत कुशलता के साथ किया गया है ' मेरे समय को ' शीर्षक कविता में -----

' कवि एक बड़ा - सा तोता होता है जैसे कि मैं
जिसे उसके संरक्षक पालते हैं
कई होते हैं ।'[2]

यहाँ नयी कविता में गुटबंदी की प्रवृत्ति, अगुवाओं की प्रधान स्थिति तथा कवि - कर्म की असहजता एवं उसकी बाध्यता के प्रति कवि का व्यंग्य अत्यन्त हल्के - ढंग से गंभीर संकेत कर रहा है ।

' चुका भी हूँ नहीं मैं ' (नौवें दशक में प्रकाशित संग्रह) में कवि नये कवियों

---

1. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा; पृ0 - 80, 81
2. इतने पास अपने - शमशेर बहादुर सिंह; पृ0 - 41

और बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य करते हुए उनका यथार्थ बिम्ब प्रस्तुत करता है । नये कवियों की अहंभावना, आक्रोशी मुद्रा, एकांगी विद्वता से उत्पन्न कठोरता और हल्कापन तथा परस्पर प्रतिहिंसा की भावना का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि नें उनकी सीमाओं तथा कमियों पर आलोचनात्मक व्यंग्य किया है, जो समूचे नये कवि - वर्ग की आत्म ' स्वीकृति के रूप में है अतः इसका प्रभाव अत्यंत गहरा, तीक्ष्ण तथा विक्षोभपूर्ण है -----

> ' अभी हमारे मुँह में झाग है, आँखों में क्रोध और दंभ और / एकांगी विद्वता की लालिमा / अभी हम बात - बात पर दाँत दिखाते हैं । देखों हम कैसे हुमसते हैं बार - बार / सभी शब्द हमारे ही कोश में है / एक प्यार के वास्तविक शब्द को छोड़कर / हमारा गर्व एक दूसरे को पीस रहा है । हम मात्र जबड़े हैं ।'[1]

कुँवर नारायण नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं, जिनकी काव्य - साधना निरन्तर विकासमान रही है । यद्यपि समाजिक - राजनीतिक व्यंग्य की प्रवृत्ति कवि में निरन्तर बनी रही है, परन्तु साहित्य के प्रति व्यंग्यशीलता इनमें नगण्य ही है । आठवें दशक के अंत में प्रकाशित संग्रह ' अपने - सामने ' में कुँवर नारायण साठोत्तर नयी कविता की कुंठाग्रस्त आशाभनीय एवं जुगुप्सामूलक प्रवृत्तियों पर व्यंग्यात्मक प्रश्नाकुलता के वैचारिक दृष्टि साथ डालते हैं । ' सन्नाटा या शोर ' कविता की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं, जिनमें कवि नये कवियों की शंकाकुल एवं प्रश्नाकुल मुद्रा में ही उनकी नैतिक दायित्व से हीन अभिव्यक्तियों के प्रति अत्यन्त गहरा व्यंग्य, प्रगुल्भता पूर्वक करता है । यह व्यंग्य आत्म - व्यंग्य के रूप में होकर अधिक प्रभावोत्पादक तथा मार्मिक हो गया है । इसमें नये कवियों की अभद्र एवं आशालीन रचनाओं पर अत्यन्त तीक्ष्ण प्रहार अत्यन्त चातुर्य के साथ दृष्टव्य है -----

> ' मैं जो कुछ भी कर पा रहा हूँ
> वह विष्ठा है या विचार ?
> मैं दो पावों पर खड़ा हूँ या चार ?
> क्या मैं खुशबू और बदबू में फर्क कर पा रहा हूँ ?
> क्या वह सबसे ऊँची नाक मेरी ही है

---

1. चुका भी हूँ नहीं मैं - शमशेर बहादुर सिंह; पृ0 - 74

जिसकी सीध में
मैं सीधा चला जा रहा हूँ ।'[1]

यहाँ अंतिम पंक्तियों में अत्यन्त हास्यास्पद बिम्ब प्रस्तुत करके कवि नें तीखेपन, मार्मिकता तथा वैचारिकता के साथ ही अपने व्यंग्य में विनोद का पुट भी दे दिया है ।

विपिन कुमार अग्रवाल के व्यंग्यों में विनोद तथा विदूषकत्व का पुट रहता है । साहित्यिक गतिविधियों, नये कवियों के भाव - बोध तथा यथार्थ परिवेश में स्वयं की हास्यास्पद स्थिति के प्रति इनके व्यंग्य अत्यन्त सहज, मनोरंजक और चमत्कारिक प्रभाव वाले हैं, जिनमें नाटकीयता का समावेश विनोदपूर्ण मुद्रा में हुआ है । ' नंगे पैर ' संग्रह में साहित्य - जगत तथा साहित्यकारों की विसंगतिपूर्ण स्थिति को कवि ने अत्यधिक सहजता के साथ हल्की - फुल्की प्रफुल्ल मुद्रा में प्रत्यक्ष किया है । ये व्यंग्य कवि के उस विशिष्ट ' मूड ' को संकेतित करते हैं, जो साहित्यकारों की कमियों पर अत्यन्त आत्मीय मुद्रा में दृष्टि डालता है और उसका मजाक बनाते हुए चोट पहुँचाने के बदले मनोरंजन सा करते हुए विकृत स्थिति के प्रति संकेत कर देता है । ' अदांत ' शीर्षक कविता में कवि अत्यंत गंभीर मसले को बड़े सहज ढंग से, हल्के से विनोद के साथ उभारता है और यथार्थ पर पड़े आवरण को बड़े कौशल से उद्‌बोधन की मुद्रा में हटा देता है । इसमें एकालाप शैली में कवि स्वयं नाटकीय भंगिमा धारण कर लेता है, जिससे कविता में अत्यंत कलात्मक विनोद की सृष्टि हो जाती है । कविता की सहजता के पीछे कवि का गंभीर - चिंतन, सुलझी दृष्टि और अनुभव की परिपक्वता की झलक ही उसके व्यंग्य को जीवन्त और प्रभावपूर्ण बनाती है । इसमें बौद्धिकों को सम्मानित करने की प्रक्रिया के यथार्थ - स्वरूप को कवि उसकी कृत्रिमता के साथ हास्यास्पद बनाकर प्रत्यक्ष कर देता है । कविता का कुछ अंश दृष्टव्य है -----

' यह सब जो ताम झाम है / मखमली आवरण और बढ़िया पृष्ठ हैं / बड़े एहतियात से लगाये गये / त्रिकोण और गुल्ले हैं, और अन्त में चुनकर रखी गयी वसन्त पर कविता, इन सब पर / मत गिरो, क्योंकि यहाँ / यह सब बस जुटाया गया है / × × × / इनके गुणों के अनुरूप लोगों को दूर - दूर से / खोजकर

---

1. अपने - अपने - कुँवर नारायण; पृ0 - 103

लाया गया है / × × × / फिर उनमें से एक उठकर / दाँयें - बाँयें झुककर और मुस्कुराकर / सबका अभिवादन करता है / × × × / वहीं कहीं अन्दर बैठ जाता है और इसको यह लोग नव संयोजन का प्रस्फुटन कहते हैं /'[1]

वार्तालाप शैली का नाटकीय और प्रगल्भतापूर्ण व्यंग्य ' पैठ ' शीर्षक कविता में है, जो आज के कवियों की आक्रोशपूर्ण मनः स्थिति पर बड़ी विनोदी - वृत्ति के साथ वार करता है -----

' तुम कौन हो / ----- / नहीं बोलोगे ऐसे / तो सुनो / तुम गूँगे हो / तुम अपने को बनते हो, उल्लू हो / ऊँट हो, खच्चर हो, गधे हो / जानवर भी नहीं लगता है, तुम / पेड़ हो, जेल में लगे दरवाजे हो / तुम .... तुम कॉफी - हाउस की मेज हो / अच्छा मत कहो कुछ अपने बारे में / बतलाओं मैं कौन हूँ - / ' तुम .... कवि हो .... /'[2]

इसी प्रकार एक अन्य कविता ' अधूरी कविता ' में भी कवि ने सहज विनोदमयता के साथ नये कवियों की तर्कहीन, निरर्थक तथा वैचित्र्य एवं चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्तियों के प्रति व्यंग्य किया है । कविता के प्रारम्भ में व्यंग्य प्रच्छन्न है, जो सत्य - स्थिति के सहज साक्षात्कार के साथ अवतरित होता हुआ अन्त में कवि की विनोदी प्रकृति से मिलकर एक विशिष्ट आह्लादक मुद्रा से युक्त हो उठा हैं, लेकिन यह व्यंग्य असरदार ढंग से कवि के आशय को गहराई में उतार भी देता है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' × × ×
अब दिन सुनने के लिए हैं ओर रातें
बोलने के लिए और दोनों में
कोई साम्य जरूरी नहीं है बल्कि जितना अलग हो
उतना ही हमारे कवियों के हित में है
और हम लोग तो यहाँ तक कोशिश कर रहे हैं
कि शाम को कान मुरझा जाया करें और सुबह को मुँह
पहले के लोग कल्पना करते थे न कि चेहरे फूल हैं ।'

---

1. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 8, 9
2. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 42

विपिन कुमार नें स्वयं अपने को भी उपहासास्वद बनाकर प्रस्तुत किया है । नौवें दशक के काव्य - संग्रह ' इस धरती पर ' में संकलित कविता ' कवि का अंत ' में कवि नें आज के परिवेश में राजनीतिक व्यक्तियों के जमघट में अपनी निरर्थक स्थिति का उद्‌घाटन विदूषकत्वपूर्ण मुद्रा में किया है । यह व्यंग्य राजनीतिक सन्दर्भ - युक्त होते हुए भी पूरे परिदृश्य में कवियों की उपेक्षित स्थिति पर हँसता प्रतीत होता है -----

' राजा वेन की भुजा मरोड़ी
निकला एक नेता
सुनों सौम्य सूत
भाइयों तथा बहनों करता
नेता में से नेता निकला
पट गया संसार
जिसमें मैं कवि हूँ बेकार ।'[1]

यहाँ केवल अंतिम एक ही वाक्य द्वारा कवि ने राजनीतिक व्यंग्य से आत्म - व्यंग्य के धरातल पर उतर कर कवियों की राजनीतिज्ञों क सामने महत्वहीन होती स्थिति का उपहासात्मक बिम्ब प्रस्तुत किया है ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना प्रयोगवाद से उभरने वाले उन नये कवियों में से एक हैं, जिनकी काव्य - संवेदना सातवें दशक में विकास की दिशा में, परिवर्तित होती हुई तथा क्रमशः विविध मुद्रा ग्रहण करती हुई, अपनी विशिष्ट पहचान बना सकी है । सर्वेश्वर में बुद्धिजीवी वर्ग एवं रचनाकारों के प्रति व्यंग्य करने की प्रवृत्ति उनके प्रारम्भिक काव्य - संग्रह ' काठ की घटियाँ ' से ही मिलती है । इनके साहित्यिक व्यंग्य के स्वरूप का बीज - रूप इस संग्रह में व्याप्त मिलता है । इसमें एक ओर तो ' लिपटा रजाई में ' जैसी व्यक्तिगत जीवन की कविता है, जिसमें हास्यपूर्ण मुद्रा में स्वयं पर व्यंग्य करते हुए कवि - कर्म पर हल्का सा व्यंग्य है । उसमें कवि ने यथार्थ एवं कल्पना - लोक के बीच की दूरी की विडम्बनापूर्ण स्थिति

---

1. इस धरती पर - विपिन कुमार अग्रवाल; पृ0 - 25

को हास्य के कलेवर में लपेटकर अत्यंत मनोरंजक और सहज रूप में प्रस्तुत किया है ।[1] दूसरी ओर ' सरकंडे की गाड़ी ' शीर्षक कविता में वह तथाकथित बुद्धिजीवियों की, जीवन के यथार्थ अनुभवों से पृथक थोथी विद्वता - के - भोंडे प्रदर्शन की प्रवृत्ति के प्रति तीखा व्यंग्य करता है -----

' आकाश की ओर मत देखो
चाँद के रथ के हिरन मर गये हैं
धरती की ओर मत देखो
शेषनाग का फन कुचल दिया गया है
उठों
इन मेंढकों से अपना धर्म सीखों
और इस सरकंडे की गाड़ी से अपनी प्रगति ।'[2]

नाटकीय - शैली में लिखी गयी एक अन्य लम्बी कविता में भी कवि नें मुखौटे लगाकर महात्मा और चिन्तक बने तथाकथित बुद्धिजीवियों तथा उनके द्वारा किये जा रहे युग - निर्माण पर व्यंग्य किया है ।[3] इसी संग्रह की एक कविता ' मैंने कब कहा ' में कवि - कर्म की व्याख्या व्यंग्यात्मक तेवर में की गयी है ।'[4]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अगले संग्रहों में ' एक सूनी नाव ' में रचनाकारों पर व्यंग्य करने में विशेष प्रवृत्त दिखते हैं । ' व्यंग्य मत बोलो ' कविता का व्यंग्य वक्रोक्तिपूर्ण है, जिसमें कवि अपनी व्यंग्यशील चेतना की वकालत करते हुए अवसरवादी तथा समझौतावादी कवियों की केवल चिकनीं - चुपड़ी कहने और विकाऊ मनोवृत्तिवश शिष्ट तथा शालीन कहलाने के लिए रंग बदल लेने की प्रवृत्ति पर अत्यन्त पैना व्यंग्य करता है । इसमें व्यंग्यात्मक प्रतीक का अत्यन्त सटीक प्रयोग है -----

' कुछ सीखो गिरगिट से

---

1. काठ की घंटियाँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 328
2. काठ की घंटियाँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 395
3. काठ की घंटियाँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 396
4. काठ की घटियाँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 426

जैसी शाख वैसा रंग
जीने का यही है सही ढंग
अथवा रंग दूसरों से अलग पड़ता है तो
उसे रगड़ धो लो
व्यंग्य मत बोलो ।'[1]

इस संग्रह की ' पढ़ी लिखी मुर्गियाँ ' कविता में भी कवि पढ़े लिखे तथाकथित आधुनिक और बौद्धिक लोगों की विकृत और दूषित मानसिकता की पोल तीखे उपहास के स्वर में खोलता है । इसके साथ ही यह व्यंग्य आज की नयी पीढ़ी के उन कवियों पर भी जान पड़ता है, जो किसी गुट में शामिल हो, यश पाने की लालसा से अनुकरणमूलक नग्न दूषित और खोखले साहित्य की रचना कर रहे हैं । इसमें कवि का तेवर चिढ़ाने वाली नाटकीयता से युक्त है, जिसके अनुरूप भाषा भी तीखी और उपहासमूलक है -----

' पता नहीं कहाँ कहाँ गंदे पर खोल रहीं
हर अपाच्य पाच्य इन्हें
ऐसी हैं प्रचुरगियाँ
किड़ किड़ किड़ कियाँ कियाँ ----
× × ×
साहस है आपस में लड़ना हैं जानती
है स्वतंत्र दड़बे को एक कवच मानती
गूदा सब उतर गया चीख रहा चिंया चिंया ।'[2]

इस संग्रह के व्यंग्य का स्वर अत्यन्त तीखा व पैना है । उसमें नागार्जुन की भाँति उपहासपूर्ण भाषा तथा प्रतीकों द्वारा तीव्र चोट करने की क्षमता है ।

कवि के अगले काव्य - संकलन ' गर्म हवाएँ ' में साहित्यिक व्यंग्य का तेवर कुछ बदला हुआ है । इस संग्रह की ' बुद्धिजीवी ' तथा ' दूसरों के कपड़े पहनकर ' शीर्षक कविताओं में तथाकथित बुद्धिजीवियों के खोखलेपन नयी कविता की फैशनवश भड़काने व

---

1. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 56
2. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 58

चौकाने वाली मुद्रा तथा यौनशब्दावली और भावों के नग्न चित्रण पर व्यंग्य है । ' बुद्धिजीवी ' कविता में कवि ने बड़ी नाटकीयता से तथाकथित बुद्धिजीवी की व्यक्तित्वहीनता और वैचारिक दिवालिएपन को दृश्य-बिम्ब के रूप में प्रत्यक्ष कर दिया है -----

> ' हाँ हाँ की गरदन हिली ऊपर - नीचे / नहीं - नहीं की दाँये - बाँये / और बस हिलती ही रही / मैं तैयार खड़ा रहा / × × × / तभी मैंने देखा उनके नथुने फड़के / आँखें मिचमिंचाईं / गालों पर उग आये गलमुच्छे / रीढ़ गिर पड़े / फिर सरककर / दुबक गये कहीं / एक थे हाँ - हाँ / एक थे नहीं - नहीं /'[1]

' दूसरों के कपड़े पहनकर ' में भी कवि का व्यंग्य नाटकीयता तथा विनोद भाव से पूर्ण है । इसमें कवि नें उधार के विचारों एवं तौर - तरीकों की नकल करके महान व आधुनिक दिखने तथा प्रचार पाने के लिए साहित्य में चौकाने वाले कृत्रिम भाव - बोधों और अभिव्यक्ति - मुद्राओं को अपनाने वालों पर व्यंग्य किया है । इस पूरी कविता के नाटकीय व्यंग्यात्मक प्रभाव के अतिरिक्त कहीं - कहीं उभरे तीखे व्यंग्य - स्थल भी स्पष्ट है । बीटनिक कवियों की यौनाचार की नग्न अभिव्यक्तियों तथा अशालीनता के प्रति कवि का तीक्ष्ण व्यंग्य निम्न पंक्तियों में अत्यन्त उपहासपूर्ण भाषा - शैली में हैं -----

> ' मारिये लात इस ठाट - बाट पर / सोइये संग भिखारियों के दशाश्वमेघ घाट पर / बिताइये जीवन जनखों या लखनऊ के लौंडों का / माशे अल्लाह, लोग भरेगें देखकर आपको आह लीजिए पहले मैं ही भरता हूँ / आभिजात्य तोड़ता हूँ / जो भी शब्द आता है जबान पर कहने में नहीं डरता हूँ / कहूँ ? ..... ? रूकिये, रूकिये हाथ क्यों छुड़ा रहे हैं आप / सुरूचि का नहीं यह विचार का और / कर्म - स्वातंत्र्य का युग है /'[2]

' गर्म हवाएं ' के बाद का इनका संग्रह है ' कुआनो नदी ' । इसमें भी बुद्धिजीवी वर्ग पर व्यंग्य मिलते हैं । इस संग्रह की ' कुआनों नदी ' कविता सम्पूर्ण रूप में एक लम्बी प्रतीकात्मक रचना है । इस संग्रह के अन्दर जो अन्य कवितायें हैं, वे भी प्रतीकात्मक व्यंग्य

---

1. गर्म हवायें - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 34, 35
2. गर्म हवायें - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 38

की हैं । इसमें ' गोबरैले ' कविता में कवि गोबरैले के प्रतीक द्वारा अपनी तीखी घृणा, वितृष्णा एवं उपेक्षा तथाकथित बुद्धिजीवी कलाकारों के प्रति व्यक्त करता है । वह उनकी विचारधाराओं पर विभिन्न कोणों से वार करता है । यह कहना अधिक ठीक होगा कि कवि इस प्रतीक को भी ' कुआनों नदी ' के प्रतीक की भाँति कई आयामों में विस्तार देकर अपने वाग्वैदग्ध्य एवं चिन्तन की विविधता तथा मौलिकता का परिचय देता है । कवि विकृत भावों से युक्त रचनाकारों को गोबरैले के रूप में चित्रित कर उनके प्रति अपनी सारी कड़वाहट को व्यक्त करता है । निम्न अंशों में कवि का तीखा व्यंग्य दृष्टव्य है -----

' गोबरैले
काली चमकदार पीठ लिये
गंदगी से अपनी - अपनी दुनियाँ रचते
ढकेलते आगे बढ़ रहे हैं
कितने आत्म - विश्वास के साथ
जितनी विष्ठा
उतनी निष्ठा ।'[1]

व्यंग्यशीलता सर्वेश्वर के काव्य को अधिक जीवन्त बना देती है । परवर्ती संग्रह ' कोई मेरे साथ चले ' में एक कविता ' हिन्दी सेवी सपूत ' है, जो उर्दू शब्दावली से युक्त एवं गज़ल की तर्ज पर है । इसमें कवि नें हिन्दी की सेवा व प्रचार के बहाने विश्व - भ्रमण करने एवं बेशर्मी के साथ स्वार्थ सिद्धि में लिप्त रहने वाले बुद्धिजीवियों पर उपहास की मुद्रा में तीखा व्यंग्य किया है । यहाँ गजल शैली का व्यंग्य के लिये प्रयोग उसे पैरोडी जैसा मनोरंजक रूप दे देता है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' नवाज़िश भी साजिश
बगावत भी साजिश
है उल्फत भी साजिश
अदावत भी साजिश
जुनूँ में उठे विश्व तक दौड़ आये
मगर कद में पहले से कम हो गये ।'[2]

---

1. कुआनों नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 49
2. कोई मेरे साथ चले - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 93

इस प्रकार सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के बुद्धिजीवी वर्ग तथा साहित्यिक गतिविधियों के प्रति व्यंग्य में विविधता है । व्यंग्य में कहीं अत्यन्त विनोदपूर्ण नाटकीयता का समावेश है तो कहीं अत्यन्त पैना प्रहार व तीखा उपहास है । कुआनों नदी में कवि का व्यंग्य प्रतीकों में ढलकर अत्यन्त तीखे रूप में किन्तु तटस्थ ढंग से व्यक्त हुआ है । ' हिन्दी सेवी सपूत ' कविता जो इस क्रम में सबसे बाद की रचना है, कवि भी भाषा तथा मुद्रा गजल में ढलकर सर्वथा नये प्रभाव से युक्त है । सर्वेश्वर के व्यंग्य जहाँ विनोदपूर्ण तथा नाटकीय है, वहाँ भी उनका प्रभाव गहरी मार से युक्त है ।

रघुवीर सहाय नें साठोत्तर कालीन कविता को अपनी वैचारिक दृष्टि और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पकड़ से युक्त व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तियों से समृद्ध किया है । कवि ने साहित्य - जगत में कवि, कविता तथा भाषा की विडम्बनामय स्थितियों पर व्यंग्य अत्यन्त जीवन्त, तीखी तथा बोलचाल की सहजता से युक्त उपहाससूचक भाषा - शैली में किया है । प्रारम्भिक काव्य - संग्रह सीढ़ियों पर धूप में ' कवि की व्यंग्यशीलता कम दृष्टिगत होती है, अतः बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति भी व्यंग्य प्रायः नहीं है । ' आत्महत्या के विरूद्ध ' संग्रह में कवि की व्यंग्य - चेतना हर क्षेत्र में सक्रिय दिखती है । इसमें कवि का व्यंग्य खिल्ली उड़ाने और उपहासने के भाव से युक्त और भाषा का ठेठ तीखा रूप है । कहीं - कहीं कवि के व्यंग्य का अत्यंत मार्मिक स्वर भी सुनाई पड़ता है । यह मार्मिकता और कवि का प्रच्छन्न विक्षोभ - भाव उसकी परवर्ती रचनाओं में अधिक प्रत्यक्ष होता गया है । कवि का आक्रोश और उसकी तीखा उपहास करने की प्रवृत्ति क्रमशः संयत वैचारिक विवेचन और व्यंग्यात्मक स्थितियों की व्यंजना में प्रवृत्त हुई है । यह विकास - क्रम कवि के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बद्ध व्यंग्यों में दृष्टिगत होता है ।

' आत्महत्या के विरूद्ध ' संग्रह की ----- कविता में कवि का व्यंग्य - स्वर कवियों के जीवन - मूल्यों तथा कविता के मूल्यों के बीच के गैप की विरोधाभास एवं विडम्बनापूर्ण स्थिति के प्रति मार्मिक तथा ईमानदार आत्मालोचना से युक्त है । कवि ने काव्य में ईमानदार अभिव्यक्ति के अभाव के प्रति पीड़ा अनुभव करते हुए व्यंग्यात्मक संकेत किया है -----

' कुछ भी लिखने से पहले हँसता और निराश होता हूँ मैं
कि जो मैं लिखूँगा, वैसा नहीं दिखूँगा
दिखूँगा या तो रिरियाता हुआ
या गरजता हुआ
किसी को पुचकारता किसी को बरजता हुआ कुछ अनाथ
मूल्यों को मैं नहीं दिखूँगा ।'[1]

इस कविता में साहित्यकार के जीवन और उसके कृतित्व की विसंगति - बोध का जो स्वर व्यक्त है, उसका विकसित रूप कवि की परवर्ती कविताओं के साहित्य से सम्बद्ध व्यंग्यों में दृष्टिगत होता है । इसी कविता के एक अंश में कवि ने साहित्यकारों की जातिगत भावना से ग्रस्त नकली आधुनिकता तथा काव्यगत विशिष्टताओं के नकल की प्रवृत्ति को साहित्यकारों की भीड़ के बीच उनकी विसंगतियों के उद्घाटन के रूप में व्यक्त करते हुए तीखा और पैना व्यंग्य किया है । इसमें भाषा का ठेठ व्यंग्यात्मक तेवर अपने सहज प्रवाह के साथ प्रगट हुआ है । विशिष्ट शब्दों के प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति में विनोदात्मक प्रभाव भी आ गया है -----

' हो सकता है कि लोग - लोग मार तमाम लोग / जिनसे मुझे नफरत है मिल जायें, अहंकारी / शासन को बदलने के बदले अपने को / बदलने लगें और मेरी कविता की नकलें / अकविता जायें / बनिया बनिया रहे / बाम्हन बाम्हन और कायथ कायथ रहे / पर जब कविता लिखे तो आधुनिक हो जाये / खींसे बा दे जब कहो तब गा दे /'[2]

इसमें बुद्धिजीवी वर्ग की स्वार्थप्रेरित चापलूसी के प्रति तीखा व्यंग्य शासन को बदलने के बदले खुद को बदलने की विसंगति पूर्ण स्थिति के प्रति बड़ी सहज भाषा और मुद्रा में है । आगे की पंक्तियों में भी कवि उन कवियों तथा संपादकों पर तीक्ष्ण व्यंग्य करता है, जिनकी मनोवृत्ति बिकाऊ तथा घटिया है । इसमें कवि ईमानदार कवि - कर्म के प्रति अपनी आस्था को भी व्यक्त करता है -----

---

1. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 71

2. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 72

' हो सकता है कि उन कवियों में मेरा सम्मान न हो
जिनके व्याख्यानों से सम्राज्ञी सहमत हैं
घूर पर कूदते हुए संपादक गद्गद हैं ।'[1]

यहाँ घटिया साहित्य का प्रकाशन लाभ - लोभ की राजनीति से प्रेरित होकर करते संपादकों की सटीक व्यंग्यात्मक व्यंजना ' घूरे पर कूदते हुए ' के बिम्बात्मक प्रतीक - विधान में दृष्टव्य है ।

रघुवीर सहाय हिन्दी की वर्तमान दशा के प्रति भी असंतुष्ट दिखते हैं । स्वतंत्र भारत में हिन्दी की स्थिति राजभाषा की है, पर सरकार अँग्रेजी की अनिवार्यता को भी बनाये हुए है । हिन्दी के विकास की सरकारी नीतियों तथा हिन्दी की स्थिति के प्रति कवि का असंतोष तथा आक्रोश रूपक में ढलकर अत्यन्त उपहासपूर्ण स्वर में व्यक्त हुआ है -----

' हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीवी है
बहुत बोलने वाली बहुत खानेवाली बहुत सोने वाली
× × ×
घर में बहुत कुछ है जो औरतों को चाहिए
सीलन भी और अन्दर की कोठरी में पाँच सेर सोना भी
और संतान भी जिसका जिगर बढ़ गया है
जिसे वह मासिक पत्रिकाओं पर हगाया करती है ।'[2]

यहाँ हिन्दी साहित्य की वर्तमान प्रवृत्तियों के अवांछनीय स्वरूप की ओर कवि का प्रतीकात्मक रूप में व्यंग्यात्मक संकेत है । ' सीलन ' ' पाँच सेर सोना ' तथा ' बढ़े हुए जिगर के द्वारा आज की हिन्दी के साहित्यकारों की अभिव्यक्ति की कमियों, भ्रष्ट तथा बिकाऊ प्रवृत्ति और घटिया रचनाओं की बाढ़ के प्रति कवि का व्यंग्य लक्षित होता है ।

' हँसो हँसो जल्दी हँसो ' संग्रह में रघुवीर सहाय का व्यंग्य स्वर मानवीयता पर आये संकट के सन्दर्भ में बुद्धिजीवी वर्ग की तटस्थ व अनुत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति

---

1. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 72
2. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; पृ0 - 79

आक्रामक एवं तल्ख है -----

> ' आप समझ सकते हैं कि एक मरे हुए आदमी को
> मसखरी कितनी पसंद है
> पर
> तब मैं पूछूँगा नहीं कि सौ मोटी गरदनें
> झुकी हैं
> बुद्धि के बोझ से
> श्रद्धा से
> कि लज्जा से ।'[1]

' कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ ' में भी कवि बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति व्यंग्यशील है । यह कवि का नौवें दशक का संग्रह है । इसमें कवि परिवेश की विसंगतियों को प्रत्यक्ष करते हुए उसमें साहित्यकारों की अपनी भूमिका को बड़े मार्मिक स्वर में, बारीक विश्लेषण के साथ नग्न रूप में प्रस्तुत करता दिखता है । इस संग्रह की व्यंग्यात्मक कविताओं में बुद्धिजीवी वर्ग के सामाजिक - राजनीतिक विकृतियों से सम्बद्ध रूप को अनावृत्त किया गया है । रघुवीर सहाय अन्य व्यंग्यों की भाँति बौद्धिक वर्ग के प्रति भी एक परिपक्व सोच से गुजरते हुए तथा उसकी अवांछनीय मुद्राओं के भीतर प्रवेश करते हुए व्यंग्य करते हैं । कवि विसंगतियों को बड़ी सहज भाषा में उनकी मूल प्रकृति में पकड़कर व्यक्त करते हुए उनके प्रति अपने तीखे व्यंग्य की व्यंजना करता है । इसमें कवि का अवसाद तथा विक्षोभ भी लक्षित किया जा सकता है । ' कविता के नक्शे में एक चाल ' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं, जिसमें वैचारिक गंभीरता के साथ कविता के नक्शे ' में होने वाली चालों की विडम्बनापूर्ण स्थिति को प्रत्यक्ष किया गया है । इसमें अपने निजी हितों का ध्यान रखकर धन - लोभ से प्रेरित होकर पक्षपातपूर्ण रचनायें करनें और गलत पक्ष का समर्थन करने के प्रति आलोचना का हल्का तेवर भी है -----

> ' कैसे लोग होते हैं जो अपने खर्च के
> और पावने के सब कागज सहेजकर रख लिया करते हैं कविता की परचियों समेत

---

1. हँसो - हँसो, जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय; पृ0 - 8

वे तब चिंताओं के हल की बनाते हैं योजना
और याद रखते हैं कि एक - एक चाल उसी कविता के नक्शे में
एक एक हत्या में, पक्ष किसका लेंगे
तय किया करते हैं उस समय
जबकि हत्यारे को पहचान लेते हैं ।'[1]

एक अन्य कविता ' विजय - जयंती ' में कवि राजनीतिक आयोजनों में बुद्धिजीवियों को सहमति - भाव से सम्मिलित दिखाकर सत्ता - पक्ष से समझौता कर उसका समर्थन करके बिक जाने की उनकी मनोवृत्ति पर व्यंग्य करता है । इसमें यथार्थ को वास्तविक रूप में चित्रित करके उसके व्यंग्य को उद्घाटित किया गया है । सत्ता - पक्ष से मिलकर प्रायोजित - सभाओं के नाम पर दावत का आनन्द लेते बुद्धिजीवियों की गिरावट को कवि नें बड़े उपहासात्मक रूप में नग्न किया है -----

' वहाँ प्रकट होती है प्रायोजित स्मृति - सभा
लेखक, समाजविद् और नयी जाति के विचारक आमंत्रित हैं
तंत्र के सलाहकार
कोई प्रस्ताव नहीं सिर्फ सर्वसम्मति है
अंत में प्रीतिभोज
एक बड़े कमरे में गलमुच्छें, चितवन की मुद्रा में ।'[2]

इस प्रकार रघुवीर सहाय का बौद्धिक वर्ग के प्रति किया गया व्यंग्य प्रभाव में अत्यंत तिलमिलाने वाला होते हुए भी अभिव्यक्ति में संयत और शालीन होता गया है । बाद की कविताओं में कवि नें यथार्थ को नग्न रूप में प्रस्तुत करके ही उसके व्यंग्यास्पद रूप को प्रत्यक्ष कर दिया है । कवि की भाषा व्यंग्य के लिए अत्यंत सहज रूप में उपयुक्त एवं सटीक शब्दों से सम्पन्न है । कवि का व्यंग्य अत्यंत गहरे स्तर झिंझोड़ता है, अवसाद तथा कचोट उत्पन्न करता है, परन्तु ऊपरी कलेवर में अत्यंत सपाट तथा सादा दिखता है ।

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; पृ0 - 45

2.

श्रीकांत वर्मा सन्' 60 के आस - पास उभरकर आने वाले युवा कवियों तथा पिछले नये कवियों के बीच अपनी अलग विशिष्ट शैली के साथ नयी कविता में उभरने वाले कवि हैं । इनके प्रारम्भिक संग्रह ' भटका मेघ ' में व्यंग्यात्मक प्रवृत्तियाँ नहीं है । इसके बाद के संग्रहों ' दिनारम्भ ' ' माया - दर्पण ' तथा ' जलसाघर ' में श्रीकांत वर्मा नें समकालीन साहित्य - जगत की विसंगतियों पर अपनी व्यंग्य दृष्टि डाली है । इनके साहित्यिक व्यंग्य तीखे प्रभाव वाले हैं, परन्तु उनमें विनोद भी झलकता रहता है; नाटकीयता एवं चमत्कारिकता भी दृष्टिगत होती है । इसमें भी एकालाप तथा वार्तालाप की नाटकीय शैली का प्रयोग है ।

' दिनारम्भ ' संग्रह में ' एक स्वदेशी का प्रतिरोध ' तथा ' एक मुर्दे का बयान ' कविताओं में समकालीन साहित्यिक गतिविधियों तथा प्रवृत्तियों की गूँज है । प्रथम कविता में कवि नें नाटकीय दृश्य बिम्बों के माध्यम से कवियों के किसी समूह या दल से निष्कासित होकर, आलोचक के रूप में उस कवि - समूह की बखिया उधेड़ने को, निष्कासित कवि द्वारा पुलिस की वर्दी पहनकर उस कवि जुलूस को पीटने के दृश्य द्वारा, आधुनिक युग के कवियों और समीक्षकों की आपस की लड़ाई, प्रतिस्पर्धा तथा प्रतिहिंसा - भाव से आलोचक बनने की प्रवृत्ति को उद्घाटित कर उसके प्रति तटस्थ परन्तु गहरा व्यंग्य किया है -----

> ' मुफ्त निकाला जाकर कवियों के जुलूस से / चलता चला गया सड़कों पर / चुनता अखबारों के कल के पन्ने / x x x x / x x और पुलिस की वर्दी पहने / लगा पीटने कवियों के कातर जुलूस को / एक भागती हुई आकृति से / घबराकर चीख रहे हैं वे सब /'[1]

यहाँ अंतिम पंक्तियों में कवि ने समकालीन साहित्य - जगत की विसंगति को प्रत्यक्ष कर दिया है । दूसरी कविता ' एक मुर्दे का बयान ' में कवि नें मुर्दे के बयान के रूप में प्रतीकात्मक ढंग से कवियों के उस वर्ग पर व्यंग्य किया है, जो युग - सन्दर्भ से कटकर अतीत में जीते हुए रचनायें करते हैं । कवि ऐसे लोगों के साहित्य को मृत घोषित करते हुए

---

1. दिनारम्भ - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 44

उन पर स्वगत - कथन - शैली में चुभते प्रतीकों के माध्यम से व्यंग्य करता है । कवि ऐसे कवियों को बिल्ली की शक्ल में चूहा कहकर उनके यथार्थ से भागने वाले पलायनवादी स्वरूप पर कसकर प्रहार करता है -----

' मैं एक बिल्ली की शक्ल में छिपा हुआ चूहा हूँ
औरों को टोहता हुआ डरा हुआ बैठा हूँ
× × ×
मैं गलत समय की कवितायें लिखता हुआ
एक बासी दुनिया में मर गया था
मैं एक कवि था
मैं एक झूठ था ।'[1]

' माया - दर्पण ' संग्रह में कवि की मुद्रा संसार के यथार्थ की विरूपताओं का दृश्य - चित्र अपनी कविताओं के माया - दर्पण में दिखाने की है । अतः इसमें दृश्यों की भरमार है । कवि ने साहित्य - जगत को भी उसकी असंगतियों तथा विकृतियों के साथ बड़ी बेबाकी से प्रस्तुत किया है । श्रीकांत वर्मा भी नयी कविता के अन्य कवियों की भाँति तथाकथित नये कवियों की हल्के - स्तर की रचनाओं की खिल्ली अत्यंत तीखे तेवर के साथ उड़ाते हैं । ' नकली कवियों की वसुन्धरा ' में कवि ने समकालीन साहित्य - जगत की विडम्बनामय स्थिति का व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें नये कवियों तथा कवयित्रियों के रूप में स्थापित होनें के लिए प्रयासरत, यथार्थ - बोध से रहित झूठे कवियों तथा कवयित्रियों को चूहे और चुहिया के रूप में वर्णित कर तथा उन्हें बिल्लियों की तरह आपस में लड़ते दिखाकर उनको अत्यन्त उपहासास्पद रूप में प्रस्तुत किया है । कवि की भाषा, प्रतीक एवं उपमान अत्यंत तीखे तथा जुगुप्सापूर्ण हैं -----

' .... मगर वेश्याई स्वर्ग में / फोड़ो की तरह उत्सव फूट रहे हैं / बरस रहा है अंधकार / मगर उल्लू के पट्ठे / स्त्रियाँ - रिझाऊ कवितायें / लिख रहे हैं / × × × × / आदमी का कोट पहन / चूहे / निर्वसन मनुष्य की / पीठ कस रहे हैं; / चुहिया के कन्धों पर / पंख / फूट रहे हैं और कण्ठ में / क्लासिक

---

1. दिनारम्भ - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 49

संगीत / अंधकार में सब के सब बिल्लियों की तरह / लड़ रहे हैं / नकली वसंत के गोत्रहीन पत्ते / झड़ रहे हैं / धन्य । धन्य । ओ नकली कवियों के वसंत में लिपटी वसुन्धरा /'[1]

श्रीकांत वर्मा का नये कवियों के प्रति यह व्यंग्य यथार्थ का सच्चा चित्र भी प्रस्तुत करता है, जिसमें उसकी विरूप स्थितियों के प्रति कवि की तीखी घृणा तथा उपहास - भावना अत्यंत कलात्मक ढंग से व्यक्त हुई है । इसमें ' उल्लू के पट्ठे ' संबोधन में कवि का विनोद - भाव भी ध्वनित होता है जिसमें समकालीन रचनाकारों के प्रति नोंक - झोंक की भंगिमा निहित है / श्रीकांत वर्मा की दृष्टि समकालीन साहित्यिक यथार्थ को जैसे दूर से समग्र रूप में देखती है और उसको गहरे वैचारिक स्तर पर ग्रहण करके बड़ी सहजता से कविता में दो - टूक शब्दों में व्यक्त कर देती हैं । नये कवियों में यथार्थ के कटु - सत्यों की अभिव्यक्ति करनें की प्रवृत्ति प्रमुख रही है । बौद्धिकता के कारण रूमानी - भावुक प्रेम कवितायें लिखने वालों के प्रति इनका तेवर उपहासपूर्ण रहता है । श्रीकांत वर्मा नें भी रूमानी प्रेम कवितायें लिखने लिखनें वालों के प्रति व्यंग्य बड़े सांकेतिक ढंग से किया है -----

' प्रेम के मलबे पर
बैठी हुयी
कवियों की मूर्ख प्रियतमायें
माँग रही हैं
स्नान में गुनगुनाने के लिये
एक पंक्ति
और जूड़े में खोंसने के लिए
एक साफ
झूठ ।'[2]

' दुनिया नामक बेवा का शोक - गीत ' शीर्षक इस कविता में आगे के अंश में कवि नें प्रतीकात्मक शैली में नये कवियों की अनास्था की व्यंग्यात्मक व्यंजना शव - यात्रा करते तथा

---

1. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 43, 44
2. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 54

शोक - गीत गाते हुए बिम्बों के प्रस्तुतीकरण द्वारा किया है । एक अन्य कविता ' बुखार में कविता ' में श्रीकांत वर्मा की मुद्रा सहज विनोद की है । इसमें कवि द्वारा प्रयुक्त विशेषण ' बेवकूफ ' तथा ' मूर्खो ' उसके व्यंग्य के आक्रोश को नहीं, उपहासने की चुहलपूर्ण प्रवृत्ति को उजागर कर रहा है । श्रीकांत वर्मा की कथन - भंगिमा की विशिष्टता है कि वे तीखे शब्दों तथा प्रतीकों के प्रयोग के बावजूद अत्यन्त सहज मुद्रा में हँसते से आभासित होते हैं । मंचीय प्रदर्शन करते नकली अप्रतिबद्ध कवियों के प्रति कविता की निम्न पंक्तियों में कवि की यह प्रवृत्ति स्पष्ट है -----

> ' मंच पर खड़े होकर / कुछ बेवकूफ चीख रहे हैं / कवि से / आशा करता है / सारा देश / मूर्खो / देश को खोकर ही / मैंने प्राप्त की थी / यह कविता / जो किसी को भी हो सकती है /'[1]

आठवें दशक में भी कवि साहित्यिक गतिविधियों पर गहरी नजर रखते हुए अपनी सहज, अटपटी तथा चुहल की भंगिमा में, सृजन की पीड़ा के नर्क से गुजरने से डरनें की प्रवृत्ति के प्रति व्यंग्य करता है । ' आध घंटे की बहस ' कविता में कवि नें बहस की मुद्रा में नाटकीयता के साथ साहित्य में आसानी के लिए परम्परा की पूँछ पकड़कर बैतरणी पार करनें के सटीक प्रतीकत्व द्वारा अत्यन्त प्रभावपूर्ण, कलात्मक तथा नुकीला व्यंग्य किया है । इसमें कथ्य के पैनेपन के साथ कथन शैली की नाटकीय मनोरंजकता का अद्भुत योग है -----

> ' मुझको लिखना है बस
> पर न मैं
> उठता हूँ न भृकुटि
> लिखने का मतलब है नरक से गुज़रना
> क्यों गुजरूँ ?
> तो जाओ
> उतरो वैतरणी अपने समय से पहले की पूँछ पकड़
> पूँछ अभी बाकी है ।'[2]

---

1. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 116
2. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; पृ0 - 16

मलयज के बौद्धिकवर्ग से सम्बन्धित व्यंग्य मनोरंजक तेवर से युक्त है । ' जख्म पर धूल ' संग्रह में ये व्यंग्य यथार्थ की विसंगति - चित्रण के रूप में व्यक्त हुए हैं । इनमें चुटकुलों का - सा प्रभाव है । ये कवि द्वारा स्वयं पर व्यंग्य के रूप में हैं । इनको काव्य - सौंदर्य में बड़ी सहजता से ढाला गया है ।

' आधी कविता ' में कवि स्वयं को ही व्यंग्य का पात्र बनाकर साहित्यकार के रचना कर्म व उससे सम्बन्धित अन्य स्थितियों में निहित व्यंग्य को प्रत्यक्ष करता है । ' सहमत'[1] नामक कविता में स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों में देश के साहित्यकारों को एक विसंगति - बोध के मध्य चित्रित करता कवि उसके व्यंग्य को उजागर करता है । ' कलावती से पूछकर ' तथा ' जख्म पर धूल ' कविताओं में कुछ पंक्तियों में कवि एवं कविता के प्रति व्यंग्यात्मक संकेत है । इन सभी कविताओं में कवि का सहज विनोद और विदूषकत्व निहित है और यही कवि के साहित्यिक व्यंग्य की विशिष्टता है । स्वयं के माध्यम से कवि की रचना - प्रक्रिया में निहित विडम्बना एक इमानदार स्वीकारोक्ति के रूप में व्यक्त हुई है । कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जिनमें कवि नें काव्याभिव्यक्ति में ' वे ' के ' मैं ' बनने की विवशता को बकरी और शेर के एक घाट पर पानी पीने के रूप में चित्रित कर अपनी मनोवैज्ञानिक सूझ तथा वाग्वैदग्ध्ययुक्त व्यंग्य - दृष्टि का परिचय दिया है -----

' पर एक निकम्मी चीज़ है भाषा
इसके मारे परेशान हूँ
जहाँ अनुभूति की पूरी सच्चाई से
लिखना चाहता हूँ ' वें '
वहाँ हो जाता है ' मैं ' .
कहते हैं गायघाट से छपी एक किताब है
जिसमें शेर - बकरी एक घाट पानी पीते हैं ।'[2]

साहित्य - जगत की विसंगति को दार्शनिक विवेचन की मुद्रा में प्रस्तुत करता कवि उसमें बड़ी सादगी के साथ विनोद का रंग भर देता है -----

---

1. जख्म पर धूल - मलयज; पृ0 - 36
2. जख्म पर धूल - मलयज; पृ0 - 30

' ..... हानि कुछ भी नहीं
उसमें
जो नित - नित मुश्किल होता जाता है
फायदे की संभावना चीजों को आसान बना देती है
जैसे बिना कविता के कविता - संग्रह ।'[1]

('कलावती से पूछ कर')

प्रस्तुत उद्धरण की अंतिम पंक्ति में फायदे की दृष्टि से लिखी जा रही घटिया कविताओं की ओर व्यंग्यात्मक संकेत है । विदूषकत्व के भाव से हास्य समन्वित व्यंग्य का एक अन्य उदाहरण निम्न कवितांश में है -----

' एक सीधा सच कि मुझे आलू पसंद है कहते
तमाम सारी डालियों में उलझे चिमगादड़ों को
तकता कवि क्यों याद आता है ? '[2]

('जख्म पर धूल')

उपरोक्त विशलेषण से स्पष्ट है कि कवि बहुत हल्के फुल्के हँसोड़ ' मूड ' में साहित्य - जगत व कवि कर्म की विसंगति या विडम्बना को उद्घाटित कर उस पर व्यंग्य करता है । मलयज की कविताओं में उनका आक्रोश नहीं बल्कि विनोद - भाव ही मुखर रहता है ।

साठोत्तर नयी कविता में नये तेवर और अनुभव - खण्डों तथा बदले हुए भाव - बोध को लेकर जहाँ एक ओर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुँवर नारायण, रघुवीर सहाय जैसे मध्यम पीढ़ी के कवि अधिक उभर कर सामने आते हैं, वहीं इस काल में कुछ मूलभूत परिवर्तन लाने वाले अन्य नये एवं युवा कवि भी हैं, जिनमें साहित्यकारों के प्रति व्यंग्य की विविध मुद्रायें मिलती हैं । अकवितावादी आन्दोलन से सम्बद्ध जगदीश चतुर्वेदी नयी कविता में व्यक्तिवादी मनोवृत्ति के कवि हैं । अतः उनके साहित्य सम्बंधी व्यंग्यों में तीखे, आक्रामक रूख का विस्फोटक रूप भी है और लापरवाह किस्म की गैर जिम्मेदार प्रतिक्रिया भी । काव्य में किसी

---

1. जख्म पर धूल - मलयज; पृ0 - 42
2. जख्म पर धूल - मलयज; पृ0 - 43

भी शब्द या भाव की अभिव्यक्ति को वर्ज्य न मानने वाले जगदीश चतुर्वेदी के साहित्य - सम्बंधी व्यंग्यों में भी इसका प्रमाण मिलता है ।

' कविता की परिभाषा ' कविता में कवि नें कविता के परम्परागत भावुकतापूर्ण रूप के प्रति व्यंग्य किया है । इसमें कवि के प्रतीक तथा शब्द उसके मत में कविता के आधुनिक परिवर्तित और नग्न स्वरूप की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं । इसमें कवि का व्यंग्य पाश्चात्य प्रभावयुक्त एवं नग्न यथार्थ को लेकर चलने वाली तथा परम्परागत छद्म स्वरूप वाली कविताओं की परस्पर तुलना के में सन्दर्भ में व्यक्त हुआ है -----

' कविता अब लंगोट है और लिजलिजी धोती से
परे हैट में मिलती है
आप इलियट का नाम लेने से चौंकते हैं
वाल्ट ह्विटमैन को विदेशी मानते हैं
पर
आप भूल जाते हैं कि अपने देश में पचास वर्ष तक एक
कविता जैसी चीज धोती पहनने वाले बाबुओं से आँहें निकलवाती रही और रास्ते काथर और शयनागारों
के तकिये आँसुओं में डुबोती रही ।'[1]

एक अन्य कविता ' समकालीन आलोचकों के नाम ' में कवि का आक्रोश तथा व्यंग्य आलोचकों के प्रति आक्रामकता, खिल्ली उड़ाने के भाव तथा अकवितावादी रूझान के कारण व्यक्तिवादी स्वर में व्यक्त हुआ है -----

' मैं मंत्र के जोर से आलोचक को भून दूँगा और
मेरी गोली का शिकार शेरनी की जगह वही होगा
यों उसे डरना नहीं चाहिए
अगर वह कमसिन है
क्योंकि मैं होमो - सेक्सुअल नहीं हूँ
जय आस्कर वाइल्ड की ।'[2]

---

1. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 43
2. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; पृ0 - 50

यहाँ कवि का व्यंग्य निजी आक्रोश की अभिव्यक्ति के रूप में है । वह एक धमकी के रूप में कवि के चरम निषेध - भाव का सूचक है । कवि आलोचक को व्यंग्य - शर से घायल करने के बदले गोलियों से भूनने की धमकी द्वारा आतंकित करता जान पड़ता है । अतः कवि का व्यंग्य दायित्वपूर्ण वैचारिक बोध से युक्त न होकर कवि द्वारा उच्श्रृंखल मानसिकता की जानबूझकर की गयी अभिव्यक्ति है ।

साठोत्तर नयी कविता में धूमिल की दृष्टि साहित्य के प्रति एक अलग तरह के व्यंग्य से युक्त रही है । धूमिल का व्यंग्य साहित्यकारों तथा कविता की आज की सामाजिक राजनीतिक विषम एवं विसंगतिपूर्ण व्यवस्था के सन्दर्भ में विवश स्थिति के विश्लेषण से सम्बद्ध है । धूमिल की प्रवृत्ति व्यंग्य को वक्तव्य के रूप में या कविता की पूरी बुनावट में गूँथ कर प्रस्तुत करने की रही है । कवि के साहित्यिक व्यंग्य भी पूरी कविता में कहीं अधिक स्पष्ट व कहीं प्रच्छन्न - से हैं । उसमें अकवितावादी मुद्रा भी जहाँ - तहाँ मिलती है ।

प्रारम्भिक संग्रह ' संसद से सड़क तक ' में धूमिल की चेतना मूलतः सामाजिक - राजनीतिक व्यवस्था - पक्ष के प्रतिपक्ष में व्यंग्यशील दिखती है, परन्तु साहित्य के प्रति भी कहीं - कहीं कवि में व्यंग्य का आवेश जन्म लेता है । ' कविता ' शीर्षक कविता में आज के परिवेश में कविता की जो अर्थहीन स्थिति है उसके प्रति अत्यन्त कलात्मक ढंग से, तीखी और तेज तर्रार भाषा में, कवि नें अपनी व्यंग्यात्मकता प्रकट की है । इसके साथ ही इसी कविता में कवि आज के साहित्यकार की विवशता को भी चित्रित करता है -----

' नहीं अब वहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है
पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों
और बैलमुत्ती इबारतों में
अर्थ खोजना व्यर्थ है ।'

× × ×

' अब उसे मालूम है कि कविता
घेराव में
किसी बौखलाये हुए आदमी का
संक्षिप्त एकालाप है ।'[1]

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 62

अंतिम पंक्तियों में कविता के प्रति कवि का व्यंग्य आत्म - व्यंग्य का ही एक रूप है, पर उसमें कवि की भावुकता, पीड़ा या अवसाद के बदले उसकी दृढ़ता और तटस्थ मुद्रा उभरी है ।

एकालाप शैली में नाटकीयता एवं विदूषकत्व का पुट भरते हुए ' कवि 1970 ' में भी धूमिल नें आत्म - व्यंग्य की मुद्रा में आज के आर्थिक अभावों के माहौल में कवि - कर्म की उपयोगिता तथा सार्थकता के प्रति प्रश्न उठाया हैं । इसमें कवि ने ग्रामीण भाषा तथा लहजे का प्रयोग किया है -----

' जब इससे न चोली बन सकती है
न चोंगा
तब आपै कहो
इस ससुरी कविता को
जंगल से जनता तक
ढोने से क्या होगा ? ।'[1]

आगे की पंक्तियों में समकालीन कवियों के खोखले और अर्थहीन तिरे आक्रोश की प्रवृत्ति पर कवि का व्यंग्य अनोखी मुद्रा में है, जिसमें व्यंग्य का तीखापन, विनोद की चुहल तथा अभिव्यक्ति का वैचित्र्य एक साथ ही अपना संश्लिष्ट प्रभाव डालते हैं -----

' जब ढेर सारे दोस्तों का गुस्सा
हाशिये पर
चुटकुला बन रहा है
क्या मैं व्याकरण की नाक पर
रूमाल लपेट कर
निष्ठा का तुक विष्ठा से मिला दूँ ?'[2]

धूमिल कविता की मिथ्या प्रशंसा की वास्तविकता को भी उपहास और व्यंग्य के द्वारा बड़े नाटकीय ढंग से व्यक्त करते हैं -----

---

1. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 62

2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 62

> ' बढ़िया उपमा है ' / ' अच्छा प्रतीक है ' / हें हें हें / हें हें हें / ' तीक है - तीक है ' / और मैं समझता हूँ कि आपके मुँह में / जितनी तारीफ है / उससे अधिक पीक है /'[1]

' नक्सलबाड़ी ' कविता की कुछ पंक्तियों में भी कवि नें समकालीन कवियों की व्यवस्था - पक्ष से विरोध एवं विद्रोह का दंभ भरने की, सारी वास्तविकता को यौन - शब्दावली का प्रयोग करते हुए बड़े तीखे व्यंग्य के रूप में नग्न किया है ।'[2] ' राजकमल चौधरी के लिए ' में भी कवि का व्यंग्य बुद्धिजीवी वर्ग के प्रति बड़ी तीखी घृणा के साथ व्यक्त हुआ है । समकालीन आलोचकों के प्रति उसका व्यंग्य-बोध तिलमिला देने वाला तथा उसका विक्षोभ समकालीन साहित्य - जगत की असंगत और विडम्बनापूर्ण स्थितियों के प्रति बड़ी मार्मिकता से व्यक्त हुआ है । कविता का निम्न अंश दर्शनीय है, जिसमें घृणामूलक भाषा का प्रयोग करता कवि साहित्य - जगत की विडम्बना को बड़ी कुशलता से एक चमत्कार की तरह सामने रख देता है -----

> ' मेरे देखते ही देखते / उसकी तस्वीर के नीचे ' स्वर्गीय ' लिखकर / फूलदान के बगल में / बुद्धिमानों का अंधापन और अंधों का विवेक / मापने के लिए / सफेद पालतू बिल्ली / अपने पंजों के नीचे से कुछ शब्द / काढ़कर रख देती है / अचानक सड़कें / इश्तिहारों के रोजनामचे में बदल जाती हैं / ' सिरोसिस की सड़ी हुई गाँठ / समकालीन कवियों की आँख बन जाती है /'[3]

' सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र ' में बुद्धिजीवी वर्ग पर व्यंग्य कम है । इस संग्रह के शीर्षक की एक कविता में धूमिल वार्तालाप शैली में स्वयं पर ही व्यंग्य करते प्रतीत होते हैं । इसमें कवि की स्थिति तथा उसकी सोच के प्रति लोगों के दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत किया गया है । एक प्रकार से इस कविता में ब्याज निंदा शैली में अपनी निंदा द्वारा कवि ने आलोचना करने वाले की मानसिकता के प्रति व्यंग्य किया है -----

---

1. संसद से सड़द तक - धमिल; पृ0 - 64, 65
2. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 66
3. संसद से सड़क तक - धूमिल; पृ0 - 30, 31

' सोचते हो ? / दिनरात बेमतलब बवंडर का बाल नोचते हो / ले देकर एक अदद चुप हो / × × × / चेहरे पर चमाइन मूत गई है / इतनी फटकार जैसे वर्षो से अपनी आँखों पर थूँकते रहे हो / अरे यार दुनिया में क्या रखा हे ? / खाओं पियो मजा लो / विजयी बनों - विजया लो /'[1]

साहित्यिक व्यंग्यों में धूमिल जहाँ अपनी स्थिति को उपहासात्मक बनाते हैं, वहाँ उनमें हास्य और विनोद की प्रधानता रहती है, परन्तु अन्य स्थलों पर उनके व्यंग्य प्रायः कठोर मुद्रा वाले हैं, जिसमें वाग्वैदग्ध्य, प्रगल्भता, भाषा का उत्तेजक तीखा तेवर, यौन - शब्दावली एवं वाक्यों का तराशा हुआ रूप मिलता है । कवि कहीं कहीं काव्यगत चमत्कार भी उत्पन्न करता है । इनके साहित्यिक व्यंग्य भी तराशी हुई सुडौल तथा नुकीले धारों वाली कलाकृति के रूप में हैं । इसके लिए ' राजकमल चौधरी के लिए ' तथा ' कविता ' शीर्षक कविताओं का व्यंग्य देखा जा सकता है । कवि की विनोद - प्रियता भी उसकी कविता में बड़ी तल्ख भाषा में व्यक्त होती है ।

लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में भी साहित्यिक गतिविधियों तथा साहित्यकारों की मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है । अपने प्रारम्भिक संग्रहों में कवि की दृष्टि प्रायः साहित्यकारों के प्रति व्यंग्यात्मक नहीं रही है । परवर्ती संग्रह ' रात अब भी मौजूद है ' की एक लम्बी कविता ' उच्चैश्रवा ' में समकालीन साहित्यिक गतिविधियों के प्रति कवि की व्यंग्य चेतना विविध रूपों में व्यक्त हुई है । इसमें एकालाप शैली का प्रयोग है तथा व्यंग्य नाटकीय संयोजन तथा अप्रत्याशित दृश्यों के रूप में अत्यंत मनोरंजक ढंग से किया गया है । इस पूरी कविता में कवि की प्रवृत्ति शाब्दिक खिलवाड़ तथा चमत्कारिक उक्तियों के साथ गंभीर साहित्यिक विसंगतियों को प्रत्यक्ष करने की रही है । इसमें साहित्य तथा राजनीति के प्रति मिली - जुली व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की गई है । कवि भगोड़े साहित्यकारों द्वारा राजनीति में शरण लेकर अपना उल्लू सीधा करनें की प्रक्रिया का मखौल उड़ाता है । निम्न पंक्तियों में कवि साहित्यकार को घोड़े के प्रतीक में बाँधकर उससे जो कुछ कहलवाता है , उससे हिन्दी कविता

---

1. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र; पृ0 - 17, 18

में विदेशी प्रभाव के प्रति कवि की व्यंग्यात्मकता स्पष्ट है -----

' मैं बाहरी सरकसों में करतब करता था
हिन्दी का तो मैंने केवल चना खाया है
मेरी सारी पीठ तो असल विदेशी है ।'[1]

साहित्य पर राजनीतिक दबाव या सत्ता - पक्ष की कृपा पर साहित्यकार की प्रतिभा के पुरस्कृत होनें की प्रवृत्ति पर कवि का व्यंग्य निम्न कवितांश में सहज एवं सरल रूप में होकर भी अत्यन्त पैना है । इसमें कवि नें वक्रोक्ति का प्रयोग किया है -----

' तुम्हारी कृपा से ही खिलेगी मेरी प्रतिभा
देखिये मेरी गरदन
यह आपकी दया नहीं तो क्या;
साहित्य की अयाल उग आयी है
महान मुट्ठियों की
मामूली जफ्फी से
इसे पकड़िये
साहित्य में घुसने के लिए ।'[2]

इस पूरी कविता में कवि साहित्यकार को ' घोड़े ' के रूपक में प्रस्तुत करता है । स्वगत - कथन के रूप में रचनाकारों व राजनीतिज्ञों के स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों, साहित्यकार का कभी सत्ता - पक्ष और कभी विपक्ष द्वारा उपयोग किये जाने, विदेशी विचारों व साहित्य के नकल की प्रवृत्ति के प्रति कवि नें उलाहनापूर्ण व्यंग्य किया है । पूरी कविता में कहीं राजनीतिक व्यंग्य प्रमुख हो जाता है, कहीं साहित्यिक व्यंग्य । कहीं कवि द्वारा इन दोनों को परस्पर सम्बद्ध रूप में प्रस्तुत करते हुए साहित्य व राजनीति के विकृत सम्बंधों को उजागर किया गया है -----

---

1. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 73
2. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 68, 69

' वाचाल सत्ता की चाल बदलने के लिए
इस क्षण मुझपर चढ़िये
इस वक्त मैं असली औजार हूँ·
कुछ मैं कहूँगा कुछ आप प्रमाणित कर देतें
(वातावरण जातीय स्मृति से भर देंगे)
उच्चैश्रवा / उच्चैश्रवा / उच्चैश्रवा
कि मैं उच्चैश्रवा का अवतार हूँ
(शेष घोड़े और टट्टुओं के मध्य)
× × ×
कीच ऐसा दौड़ूँगा छंटाक भर नहीं उछलेगा
आप पर ।'[1]

इस पूरी कविता में जगूड़ी चुटकुलेनुमा मनोरंजकता की सृष्टि करते हुए हँसते हँसाते हैं और साहित्य - जगत में व्याप्त गंभीर विकृति तथा विसंगति का उद्‌घाटन करते हैं । वे स्वयं अप्रभावित रहकर बड़ी प्रफुल्ल मुद्रा में गहरा वार करते हैं । कहीं भी कवि अपने लहजे में दार्शनिक गंभीरता या भावुक मार्मिकता का समावेश नहीं होने देता । इस लम्बी कविता में जगह - जगह कवि, श्रीकांत वर्मा की सी शैली में तुकों का कौतुक भी दिखाता है ।

कैलाश बाजपेयी की कविताओं में बुद्धिजीवियों के प्रति व्यंग्य उनकी पराजित तथा तटस्थ मानसिकता एवं अय्याश तथा भ्रष्ट आचरण के प्रति व्यक्त हुआ है । प्रारम्भिक संग्रह ' संक्रान्त ' की एक कविता ' परास्त बुद्धिजीवी का वक्तव्य ' में कवि नें वर्तमान सामाजिक - राजनीतिक व्यवस्था की विकृतियों के प्रति बुद्धिजीवियों की ऊब, उत्तरदायित्वहीनता तथा विरोध एवं विद्रोह की चेतना के अभाव के प्रति व्यंग्य किया है । इस कविता में यथार्थ की विडम्बना के चित्रण - मात्र से तीक्ष्ण व्यंग्य की सृष्टि की गयी है । उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ ही पर्याप्त हैं -----

' जितना कुछ ऊब सके ऊब लिये

---

1. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 76

हमें अब किसी भी
व्यवस्था में डाल दो । (जी जायेंगे)'[1]

इसी संग्रह की एक अन्य कविता ' राजधानी ' में भी कैलाश बाजपेयी ने कवियों तथा लेखकों की, यथार्थ चेतना से वंचित मात्र शब्दों व तुकों की क्रीणा तथा कौशल दिखलानें की, प्रवृत्ति के प्रति व्यंग्य, परिवेश के यथार्थ - चित्रण के सन्दर्भ में, कविता के एक अंश में किया है -----

' और मूँदकर आँखें जिन्होंने फेंक दिये थे शब्दों के बीज
वे तुक्कड़
कलाविद्
छन्दकार
काट रहे हैं फसल
उनके लिए सब एक हैं
कीचड़ और केंचुए
और कमल ।'[2]

कैलाश बाजपेयी बौद्धिकों में व्याप्त भ्रष्ट और अय्याश प्रवृत्तियों के प्रति भी सजग होकर व्यंग्य करते हैं । जो बौद्धिक जन - मानस के चरित्र मूल्यों की गिरावट के प्रति अपनी सच्ची घृणा का दावा करता है, वह स्वयं भ्रष्ट आचरण वाला है इसी विडम्बना को उजागर करते हुए ' तीसरा अंधेरा ' संग्रह की ' तोड़फोड़ ' कविता में कवि ने यथार्थ चित्रण द्वारा बड़े तटस्थ ढंग से बुद्धिजीवी वर्ग पर व्यंग्य किया है -----

' मासेज् करप्ट हैं ' / कहा बौद्धिक नें आँखों में आँखे डालकर / उसे सच्ची नफरत है / उसके समाज से / ग्लास लगाए हुए होठों से / पत्रकार फोन कर रहा था / बीमार बीवी को / ज्यादा है काम बहुत ज्यादा / व्यापारी अखबार में /'[3]

---

1. संक्रान्त - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 3
2. संक्रान्त - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 32
3. तीसरा अंधेरा - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 54

सुरेन्द्र तिवारी भी सातवें दशक में उभरने वाले नये कवियों में व्यंग्यात्मक तेवर से युक्त महत्वपूर्ण कवि हैं । इन्होंने बुद्धिजीवी वर्ग की स्थिति का चित्रण सामाजिक - राजनीतिक सन्दर्भों में करते हुए उस पर व्यंग्य किया है । कवि के साहित्यकारों तथा बौद्धिकों के प्रति जो उद्‌गार हैं वे आज के परिवेश में बुद्धिजीवी होने की विडम्बना को भी दर्शाते हैं और यथार्थ स्थिति के व्यंग्यात्मक पक्ष को भी उद्‌घाटित करते हैं । ' नियमानुसार ' कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

> ' होंगे आप बहुत बड़े कवि और लेखक / ढूढ़ते हैं आप क्यों / हर चीज़ में बारीकी ? / कृपया ऐसी बातें मत कीजिए / जिनसे आती हो गन्ध समझदारी की / आप अरस्तू ही सही लेकिन दफ्तर के बाद / बुद्धि पर रखिये / दफ्तर के वक्त काबू /'[1]

कवि के सामाजिक दायित्व - बोध से रहित होकर सत्ता पक्ष द्वारा महत्व हासिल कर अहंकार से भरनें की प्रवृत्ति तथा साथ ही उसकी विवश मोहग्रस्तता के प्रति मार्मिक व्यंग्य उद्‌बोधन की मुद्रा में ' आधी से ज्यादा ' कविता की निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है -----

> ' जहर बुझे नशे में व्यवस्था के
> डूबकर
> अब तू अपने को कालिदास अगर समझे
> फर्क क्या पड़ेगा ?
> तू खुद ही पछतायेगा
> समय बीत जाने के बाद
> अगर होश तुझे आयेगा ।'[2]

सुरेन्द्र तिवारी का साहित्यिक व्यंग्य प्रारम्भ में करूणा तथा मार्मिकता से युक्त है तथा वह सम्पूर्ण परिवेश के निवेचन के क्रम में कविता के एक अंश में प्रकट होता है । बाद में भावुक व्यंग्यात्मक विवेचन का स्थान उपहासपूर्ण पैने व्यंग्य ने ले लिया है । परवर्ती काव्य

---

1. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 57
2. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 63

-संग्रह ' आठवें दशक की शाम ' में साहित्यकारों व साहित्य के प्रति कवि का व्यंग्यात्मक तेवर अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आया है । ' कविता की दुम ' में कवि नें स्वयं अपनी कविता की रचना प्रक्रिया में असम्बद्ध भावों तथा स्थितियों को अप्रत्याशित ढंग से प्रस्तुत करते हुए आज के उन नये कवियों पर मनोरंजक ढंग से व्यंग्य किया है जो शाब्दिक चमत्कार को ही कविता समझते हैं । एक प्रकार का कौशल दिखाते हुए हास्य - विनोद का तर्कहीन जाल बुनने वालों पर कवि का व्यंग्य एक उदाहरण के रूप अपनी कविता को प्रस्तुत करते हुए है ।'[1]

सत्ता - पक्ष द्वारा बुद्धिजीवी वर्ग के उपयोग की राजनीति तथा बुद्धिजीवी वर्ग की यशोलिप्सा प्रेरित चाटुकारिता की विवश नियति पर पैना व मार्मिक व्यंग्य ' हर बार ' शीर्षक कविता में है -----

' प्रतिभा के पीछे
फिर पद या प्रतिष्ठा की
दुम लगा दी जायेगी
सत्ता के लिए
इतना करना
हमेशा मजबूरी होगा
सिर्फ आवश्यकता पड़ने पर
प्रतिभा का दुम हिलाना जरूरी होगा ।'[2]

छठें दशक के अन्तिम वर्षो में उभर कर सामने आने वाले युवा कवि वेणु गोपाल के सातवें दशक के काव्य - संकलन ' वे हाथ होते हैं ' में साहित्य तथा साहित्यकारों के प्रति उनका अपना दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक तेवर में व्यक्त है । ' जनता कविता और चुम्बन ' कविता में राजनीति, समाज एवं साहित्य की समवेत चेतना का स्वर है । कवि जब आज के परिवेश में जनता, कविता और चुम्बन के अभिप्राय ढूँढना चाहता है तो उसे उनकी विसंगति का

---

1. आठवें दशक की शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 42, 43
2. आठवें दशक की शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 62

व्यंग्यपूर्ण बोध होता है । इस कविता में वैचारिक विश्लेषण के दौरान कवि अपनी वितृष्णा की अभिव्यक्ति व्यंग्यात्मक गाम्भीर्य के साथ करता है -----

> ' मैंने जब - जब भी ये बातें लोगों से याने जनता / से कहीं तो लगा अकस्मात मैं कवियों की भीड़ के / बीच पहुँच गया हूँ और भगदड़ में पिसता जा रहा हूँ / × × × / .... और दूर भागता हूँ जनता कविता और चुम्बन से डरकर / लेकिन अपनी पीठ का क्या करूँ जिस पर / लदा है एक गट्ठर - जिसमें जनता और कविता / और चुम्बन की महानता के दस्तावेज बँधे हैं / और / जो मेरी कमर तोड़ रहा है /'[1]

' परिभाषाहीन ' शीर्षक कविता में विस्तृत फलक की विसंगतियों पर दृष्टिपात करते कवि की, बुद्धिजीवी - वर्ग के प्रति घृणाभिव्यक्ति तीक्ष्ण व्यंग्य के रूप में है । वहाँ वेणु गोपाल का व्यंग्य जगदीश - चतुर्वेदी के व्यंग्यों की स्मृति दिलाता है -----

> ' फिर एकमात्र विकल्प यही रहता है कि नारों को
> मंत्रों को देसी गालियों से जोड़ता हुआ मैं उन
> तमाम बुद्धिजीवियों के थोबड़ों पर खँखार कर थूक दूँ जो
> अब भी गंभीर हैं - गंभीर बने रहना चाहते हैं ।'[2]

राजनीतिक परिवेश में साहित्यकार की विवशता तथा उनके सुविधावादी लेखन पर कवि का व्यंग्य वार्तालाप शैली के नाटकीय एवं विनोदपूर्ण तेवर के साथ ' जंगल - गाथा ' कविता में दृष्टिगत होता है । इस पूरी कविता में एक तिलिस्म की रचना करता कवि साहित्यकार पर सत्ता - पक्ष के दबाव तथा राजनीतिक लाभ से प्रेरित रचना - कर्म के प्रति व्यंग्य करता है -----

> ' नर्वदा कावेरी का मसला ले
> लो या तेलंगाना विदर्भ का झगड़ा
> नहीं तो लोक - सभा, चुनाव, राष्ट्रभाषा, गोरक्षा

---

1. वे हाथ होते है - वेणु गोपाल; पृ0 - 50 (रचनाकाल - 1968)
2. वे हाथ होते है - वेणु गोपाल; पृ0 - 63 (रचनाकाल - 1969)

वगैरह कई
हैं
या जैसे यह हवा, आकाश और समुद्र
ये भी तो नकाबें हैं
और इनपर भी पुरस्कार वाली कवितायें लिखी जा सकती हैं ।'[1]

कवि के दूसरे संग्रह ' चट्टानों का जलगीत ' में भी साहित्यकारों के स्वार्थप्रेरित रचनाकर्म, सुविधावादी दृष्टिकोण, यथार्थ - स्थितियों के प्रति अनुत्तरदायी - भाव तथा सत्ता के साथ अपनी चाल बदलने वाले रूख के प्रति अत्यंत तीखा तथा प्रहारक व्यंग्य सीधे सम्बोधन की मुद्रा में दृष्टिगत होता है । इस संग्रह की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं, जिनमें कवि हिन्दी - लेखक पर सीधा प्रहार करता है -----

' तुम - तुम
कुत्ते की नहीं ।
हवा का रूख देखकर टेढ़ी या सीधी
होने वाली
हिन्दी लेखक की दुम
तुम ।'[2]

वेणु गोपाल का सुविधावादी तथा चाटुकार कवियों पर व्यंग्य क्रमशः तीखी घृणा और आक्रोश के साथ व्यक्त हुआ है ।

इस प्रकार वेणु गोपाल के साहित्यिक व्यंग्य नाटकीयता से युक्त हैं जो प्रायः सम्पूर्ण परिवेश, विशेषकर राजनीतिक परिवेश के बीच में खड़े होकर, स्वयं को इस सबसे जोड़ते हुए एक वैचारिक विश्लेषण के दौरान जहाँ - तहाँ प्रकट हुए हैं -----

युवा कवि राजीव सक्सेना सम्पूर्ण परिवेश में मनुष्य की विडम्बनामय स्थिति को व्यक्त करते हुए साहित्यिक परिवेश पर भी व्यंग्यात्मक दृष्टि डालते हैं । ' आत्म निर्वासन ' शीर्षक

---

1. वे हाथ होते हैं - वेणु गोपाल; पृ0 - 89, 90
2. चट्टानों का जलगीत - वेणु गोपाल; पृ0 - 102

लम्बी कविता में कवि नें मात्र नग्नता पर कवितायें लिखने वाले कवियों के प्रति हल्का - सा व्यंग्य निम्न पंक्तियों में किया है -----

' मेरे मित्र, नग्नता पर कविताएँ लिख सकते हो,
भोग नहीं सकते, सब स्त्रीलिंगों, पुलिंगों के
द्वारों पर भारत सुरक्षा का ताला जड़ दिया गया है;
महावारी खाते ये सारे दिवालिया हैं तुम्हारे ।'[1]

इसी कविता के एक अंश में कवि का नये कवियों के प्रति व्यंग्य उलाहनापूर्ण तथा तीखा है । नये युवा कवियों की अनास्था, निरर्थकता - बोध तथा शंकालु मानसिकता पर आक्षेप करने वालों पर व्यंग्य करता कवि उनकी चाटुकारिता, आक्रोश तथा यर्थाथ - सम्पृक्ति के दिखावे की पोल खोलता हुआ उन पर प्रहार करता है -----

' जाओं और नयी शोध - करो
मुझें अगर चाहोगे गिनी - पिग बनाना,
प्रस्तुत हूँ : सार्थक तो हो मेरी निरर्थकता
निरर्थकता में जी रहे कुत्ते दुम हिलाते, गुर्राते
अपने स्वामियों के चरणों पर, और राहगीर को
वफादारी से डराते, धमकाते, गुर्राते और भौंकते;
मैं चौंका हुआ, शायद विभ्रमित, एक राहगीर हूँ ।'[2]

एक अन्य कविता में भी कवि यथार्थ की विरूपताओं के प्रति व्यंग्यात्मकता का रूख प्रदर्शित करते हुए साहित्य - जगत की विरूप - स्थिति के प्रति व्यंग्य करता है । कवि आज के साहित्य के गिरे हुए स्तर के प्रति विक्षुब्ध है -----

' क्या दिन आ गये
गलियों की गाली - गालौज बड़े मौज से
कहलाती है कविता ।'[3]

---

1. आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएँ - राजीव सक्सेना; पृ0 - 15
2. आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएँ - राजीव सक्सेना; पृ0 - 16
3. आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएँ - राजीव सक्सेना; पृ0 - 81

इस कविता में कवि द्वारा यथार्थ के सम्पूर्ण विद्रूप की आत्मपरक पहचान के क्रम में साहित्य से सम्बद्ध व्यंग्य भी प्रकट हुआ है । अतः यहाँ व्यंग्य को एक विचार - श्रृंखला के अंग के रूप में देखा जा सकता है । कवि का फलक विस्तृत है और उस पर वह अनेक स्थितियों अनुभव - खण्डों व यथार्थ की विसंगतियों के चित्र खींचता है । इन्हीं चित्रों में साहित्यिक व्यंग्य की मुद्रा वाले चित्र भी हैं ।

नयी कविता के अन्य युवा कवियों में भी साहित्यकारों तथा बौद्धिकों पर व्यंग्य की प्रवृत्ति मिलती है । ऋतुराज प्रयोगशील कवियों के बड़बोलेपन तथा यशलिप्सा से प्रेरित असंगत रचनाओं का हवाला देते हुए, उनकी महानता के दंभ पर प्रहार करते हैं -----

' जो महज लफ्फाज और चुहलबाज होते हैं
वे अपनी बिगड़ी हुई रोटी को भी
सम्पूर्ण कलाकृति घोषित करते हैं
दर असल उन्हें रोटी की भूख नहीं होती
बल्कि अपने को महान प्रयोगशील कलाकार
सिद्ध करने का दंभ होता है ।'[1]

बुद्धिजीवियों द्वारा बिककर सफल होने की विडम्बनामय स्थिति पर तीखा व्यंग्य चन्द्रकांत देवताले नें भी किया है । ' पत्थरों का गढ़ ' शीर्षक कविता में वे बिके हुए बुद्धिजीवी की खोखली सफलता की सूक्ष्म पहचान बड़े मनोवैज्ञानिक स्तर पर करते हैं तथा यौन - शब्दावली का प्रयोग करते हुए अत्यंत चुभता व्यंग्य करते हैं । कविता का कुछ अंश दृष्टव्य है -----

' बिके हुए बुद्धिजीवी फुसफुसाते हैं
डरते हुए
नपुंसक बनते हुए
सफलता का मुखौटा चढ़ाते हैं ।'[2]

इस प्रकार बुद्धिजीवियों के प्रति तीखी व्यंग्यात्मकता नयी कविता में प्रारम्भिक दौर से लेकर परवर्ती काल तक व्याप्त रही है ।

---

1. पुल पर पानी - ऋतुराज; पृ0 - 112, 113
2. दीवारों पर खून से - चन्द्रकांत देवताले; पृ0 - 82

अध्याय - षष्ठ

धार्मिक व्यंग्य

छायावादी कविता में मनुष्य के महत् तथा आदर्श स्वरूप की कामना और ईश्वरीय शक्ति एवं पारलौकिक जीवन का महत्व था । नयी कविता में समसामयिक परिवेश की जटिलता के दबावों, वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप विनाशक यंत्रों के आविष्कार तथा असाधारण खोजों के कारण यर्थाथवादी बौद्धिक दृष्टि का विकास हुआ था । अणुशक्ति तथा विनाशक यंत्रों का आविष्कार जहाँ मनुष्य की विनाशकारी अपरिमित शक्ति का द्योतक था, वहीं चिकित्सा - विज्ञान में टेस्टट्यूब बेबी जैसी महत्वपूर्ण उपलब्धियों तथा चाँद एवं अन्य ग्रहों पर मनुष्य के अधिपत्य की संभावनाओं द्वारा उसकी सर्जनात्मक क्षमता भी असंदिग्ध रूप में सम्मुख आई । अतः मनुष्य को निरीह, बेबस तथा ईश्वर की कृपा पर आश्रित रहने वाले प्राणी से अलग, अनन्त क्षमताओं तथा सहज रूप में लघु मानी जाने वाली प्रवृत्तियों से युक्त सामान्य मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठा मिली । वैज्ञानिक विचारधाराओं के प्रभाव स्वरूप नये कवियों में ईश्वर जैसी किसी सर्वशक्तिमान, अदृश्य , अव्यक्त सत्ता के प्रति विश्वास पूर्णतः खंडित हो गया । अतः नयी कविता में ईश्वर के परम्परित रूप तथा अस्तित्व के निषेध की प्रवृत्ति अत्यंत प्रबल रूप में दृष्टिगत होती है । सार्त्र और मार्क्स के अनीश्वरवादी विचारों से प्रभावित नये कवि एक ओर तो मनुष्य की विशिष्ट, अद्वितीय महत्ता में आस्था रखते हैं और दूसरी ओर धर्म तथा ईश्वर को भ्रामक तथा शोषण में सहायक तत्व के रूप में देखते हैं । इन सबका प्रभाव नयी कविता में धर्म, ईश्वर तथा धार्मिक अंधविश्वासों एवं परम्पराओं में जीने वाले मानव - समुदाय के प्रति तीखे व्यंग्य तथा विद्रोह की चेतना के रूप में प्रगट हुआ है ।

नयी कविता में ' लघु मानव ' की धारणा का जन्म भी उसके ईश्वर विरोधी, यथार्थवादी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण ही हुआ । नया कवि यथार्थ जीवन से परे किसी रहस्मय ईश्वरीय लोक की सत्ता स्वीकार नहीं करता । नयी कविता में यथार्थ - जीवन तथा उसमें जूझता मनुष्य अपनी समस्त क्षुद्र, लघु तथा हेयनीय प्रवृत्तियों के साथ विशेष प्रभामंडित होकर व्यक्त हुआ है । ' ..... लघु की कल्पना मनुष्य में जो ' महत् ' है, उसका निषेध नहीं करती ।'[1] मनुष्य को छोटा तथा विवश बनाने वाली किसी भी सत्ता या व्यवस्था के प्रति

---

1. 'नयी कविता - संयुक्तांक -5-6- 'लघु मानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' - विजयदेव नारायण साही ।

नये कवियों का रूख आक्रोश तथा विद्रोह का रहा है । नये कवियों की दृष्टि में ईश्वर का स्वरूप भी शोषक सत्ता का ही है । सर्वसम्पन्न, सर्वशक्तिमान, महिमामय तथा महान रूप में मान्य ईश्वर नये कवियों की जनवादी चेतना में तीखे आक्रोश, घृणा तथा व्यंग्य का कारण बना है । मानव को भ्रमित करके भाग्यवादी तथा अकर्मण्य बनाने वाली तथा उच्च वर्गो की सम्पन्नता को ईश्वरीय देन समझकर यथास्थिति में जीने के लिए प्रेरित करने वाली ईश्वरीय सत्ता तथा धर्म के प्रति विश्वास को पूर्णतः खंडित करने के लिए ही नयी कविता में धार्मिक विश्वासों, रूढ़ियों, मतवादों, ईश्वर और धर्म के ठेकेदारों पर स - चोट प्रहार किया गया है । नया कवि जिस प्रकार समाज में आभिजात्यभाव पर प्रहार करता है, वैसे ही धर्म तथा उससे सम्बद्ध लोगों की महानता को भी आभिजात्य का ही प्रतीक मान उस पर व्यंग्य करता है ।

नया कवि समकालीन भयावह जटिल परिस्थितियों के घात - प्रतिघात को झेलता हुआ सामान्य मनुष्य की करूण तथा विवश स्थिति का भी दर्शन करता है और ईश्वरीय आस्था को उनको प्रगति की बाधा के रूप में ही देखता है । कवि यह भी देखता है कि यथार्थ में असत् तत्वों की विजय हो रही है, वे बड़े से बड़ा कुकृत्य करके भी अपने बल तथा वैभव के सहारे बचे रहते हैं और साथ ही धार्मिक विश्वासों के प्रति अपनी आस्था भी व्यक्त करते हैं । उनमें महत् जीवन मूल्यों का अभाव रहते हुए भी धार्मिकता की प्रवृत्ति सतही तथा दिखावटी रूप में वर्तमान है । प्रभुता सम्पन्न वर्ग तथा धार्मिकता को ढोने वाले पंड़ित, आचार्य एवं पुजारी लोगों में भी धार्मिकता का केवल आडम्बर ही शेष रह गया है, वे इसे अपनी सुविधाओं की प्राप्ति के लिए अपनाते हैं, अपने कुकृत्यों पर पर्दा डालने के लिए इसे मुखौटे के रूप में लगाते हैं । भोली - भाली सामान्य जनता को भ्रमित करके उसकी अंधी श्रद्धा का फायदा उठाकर स्वयं एश्वर्य एवं सुख का जीवन जीते हैं । नयी कविता में समसामयिक यथार्थ के चित्रण के रूप में इन धार्मिक आडम्बरों पर से पर्दा उठाया गया है । नये कवियों में केवल समकालीन यथार्थ को चित्रित करने की ही प्रवृत्ति नहीं है, उनमें ऐतिहासिक युग - बोध तथा उसका तर्कसंगत विश्लेषण करने की प्रवृत्ति भी है । नया कवि सदियों से चले आ रहे ईश्वर के रूढ़ रूप एवं वर्तमान जीवन की विसंगतियों के बीच ईश्वरीय सत्ता की संदिग्ध एवं हास्यास्पद स्थिति का

कड़वा अनुभव करता है । इसलिए वह वैज्ञानिक, बौद्धिक तथा तार्किक दृष्टि से विस्तृत ऐतिहासिक सन्दर्भो में ईश्वर तथा मनुष्य की स्थिति को परखता हुआ धार्मिक विश्वासों तथा परम्पराओं के खोखलेपन को धार्मिक - पौराणिक प्रसंगों तथा चरित्रों के व्यंग्यात्मक प्रयोग के माध्यम से भी प्रत्यक्ष करता है । सदियों से ईश्वरीय सत्ता मनुष्य के सहज विकास में बाधक रही है । वह उसे महनीय बनने, आदर्शो को ग्रहणकर मानव सुलभ लघु वृत्तियों के त्याग की प्रेरणा देर्ने के साथ ही पूर्वजन्म के कर्म, परलोक के कल्पित भावी सुखों की धारणा आदि के द्वारा भ्रमित कर उसके शोषण में सहायक बनती रही है । अतः नया कवि एक ओर तो यथार्थ धरातल पर जीते हुए जीवन की कटु - तिक्त स्थितियों का सामना करता है, दूसरी ओर इन कल्पित, अयथार्थ, मायावी एवं रहस्यवादी धार्मिक धारणाओं की विडम्बनामय स्थितियों से भी साक्षात्कार करता है, जिसमें धर्म मनुष्य को अपने हित में गुमराह करने का एक साधन बना हुआ दिखता है । अतः उसका धार्मिक विश्वासों के प्रति आक्रामक होना स्वाभाविक हो उठता है । नयी कविता में धर्म के साम्प्रदायिक विषैले तथा क्रूर रूप के प्रति भी आक्रोश तथा विक्षोभ की भावना है । धर्म ने ईश्वर को भी बाँट दिया है, उन्हें आपस में लड़ाया है, मानवीयता के गुणों के स्थान पर पशुत्व की प्रवृत्तियों को भड़काया है । समकालीन यथार्थ में धर्म के इस घातक तथा अमानवीय रूप ने कवि - मानस को गहराई में उद्वेलित किया है । जैसे - जैसे समकालीन यथार्थ में जटिलतायें तथा विकृतियाँ बढ़ी है, धार्मिक आस्था के प्रति नयी कविता के कवियों का पूर्ण मोहभंग हुआ है । धर्म, ईश्वर तथा धर्मानुयायी केवल उपहास तथा व्यंग्य के पात्र बनकर रह गये हैं ।

नयी कविता दौर के कवियों में किसी भी विकृत एवं खोखली व्यवस्था के प्रति व्यंग्यशीलता अपने विविध रूपों में वर्तमान रही हे । समकालीन राजनीतिक - सामाजिक विकृतियों तथा बुद्धिजीवी वर्ग की असंगत एवं अवांछनीय मानसिकता पर व्यंग्य के साथ ही साथ धार्मिक विश्वासों के अप्रासंगिक, अतार्किक एवं असंगत रूपों पर भी नये कवियों की दृष्टि गयी है । राजनीतिक - सामाजिक व्यवस्था के अवसरवादी, ढोंगी तथा दिखावटी लोगों एवं उनके कृत्रिम जीवन को अनावृत्त करते हुए नये कवियों ने समाज में धार्मिक विश्वासों तथा परम्पराओं

का विकृत खोखला तथा आडम्बरपूर्ण प्रयोग भी देखा । अतः उन्होंने ईश्वर की धारणा को चूर - चूर करने के साथ ही समाज को छलने वाले पंडों, पुराहितों, ज्योतिषियों तथा पुजारियों पर भी व्यंग्य का प्रहार किया है । अज्ञेय के काव्य में धार्मिक आस्था पर व्यंग्य इसी रूप में मिलता है । इनकी ' शरणार्थी - 9: श्रीमद्धर्मधुरन्धर पंडा ' कविता में धर्म के ठेकेदार बने लोगों की श्रेष्ठता की ' भावना दंभ, पाखण्ड तथा अनैतिकता को नाटकीय ढंग से प्रत्यक्ष करता हुआ तीखा व्यंग्य है । इसमें धर्माचार्य पंडाजी की धर्म को रूढ़िवादी, विकृत रूप देने की मानसिकता को उपहासपूर्ण भाषा में व्यक्त किया गया हे । विवश, असहाय तथा त्रस्त शरणार्थियों के प्रति उनकी दया के पीछे धर्म का रूढ़ रूप तथा उनकी अहंभावना कवि की गहरी दृष्टि की पकड़ से बच नहीं सकी है -----

' बोलें - ' आय हो, हाँ आओ
बेचारों दुखियारों ।।
मंगल करनी सब दुख हरनी
माँ मरजादा
फतवा देंगी
सदा द्रौपदी की लज्जा को
ढका कृष्ण ने चीर बढ़ा कर
धर्म हमारा है करूणाकर
हम न करेंगे बहिष्कार
क्लेच्छधर्मिता का भी चाहे
उस लांछन की छाप अमिट है
साथ न बैठे साथ हमारे
वह पायेगी
सदा दया का टुक्कड़ ।'[1]

सातवें दशक में रचित कविता ' ज्योतिषी से ' में भी अज्ञेय की धर्मसम्बंधी व्यंग्यशीलता लोगों को ठगने वाले पोंगा पंडितों के प्रति ही व्यक्त हुई है । कवि ज्योतिषी की खिल्ली उड़ाते हुए उसके ज्ञान के दंभ तथा पाखंड को अपनी व्यंग्यात्मक पटकार द्वारा चूर - चूर कर देता है -----

---

1. सदानीरा भाग - 1 - अज्ञेय; पृ0 - 223

' और ज्योतिषी
तुम अपने मैले चीकट
पोथी पत्रे फैलाकर
पोंगा - पंडित
मुझे पढ़ाते हो पट्टी, रख दोगे
इतने बड़े गगन के सारे तारों के
रहस्य समझाकर ? '[1]

भारतभूषण अग्रवाल की अपनी कविताओं में समकालीन यथार्थ के बीच धार्मिक विश्वासों की सत्यता की पड़ताल की है । इन्होंने पंडा, पुजारियों के प्रति हास्योद्रेक के साथ व्यंग्य किया है । अपने प्रारम्भिक कविता - संग्रह ' कागज के फूल ' में कवि ने तुक्तकों के रूप में धर्म के ठेकेदारों की वास्तविकता को उजागर किया है । ये तुक्तक चुटकुलों की भाँति मनोरंजक हैं जिनमें विनोद पूर्ण मुद्रा में कवि धार्मिक विश्वासों की यथार्थ स्थितियों को सामने रख देता है । धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करता हुआ काशी का पंडा निम्न तुक्तक में जिस रूप में चित्रित है, उससे धर्म के व्यवसाय रूप में परिणत होनें की स्थिति हल्के - फुल्के, सहज ढंग से स्पष्ट हो उठी है -----

नित्यप्रति मथुरा का गोपीनाथ पंडा
शीश पर पाग धरे हाथ धरे डाण्डा
मंदिर में जाता है, मंगला सुनाता है.
लौटता है लिए दही, भिन्डी और बन्डा ।'[2]

एक अन्य तुक्तक में कवि ने भक्ति एवं भक्त की पोल खोली है । भक्त में भक्ति से अधिक भांग के उन्मादक नशे का लोभ है, इसी को चुलबुले व्यंग्य के रूप में निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया गया है -----

' भक्त बोला "भूतनाथ, इतनी दया करो
जितने भी वृक्ष हैं, सभी को विजया करो
रोज छनती रहे, मौज मनती रहे
चरणों के घोंसले का मुझको बया करो ।'[3]

---

1. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; पृ0 - 171
2. कागज के फूल - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 25
3. कागज के फूल - भारतभूषण; पृ0 - 52

सातवें दशक में भारत भूषण अग्रवाल की दृष्टि राजनीतिक - सामाजिक परिवेश एवं यथार्थ जीवन के सत्यों को टटोलते हुए धार्मिक आस्था से सम्बद्ध हुई है । ' एक उठा हुआ हाथ ' संग्रह में सातवें दशक के उत्तरार्द्ध की कवितायें संकलित हैं । इस संग्रह की एक कविता ' परिदृश्य 1967 ' में कवि ने बौद्धिक दृष्टि द्वारा धार्मिक विश्वासों का विश्लेषण करते हुए धार्मिक चरित्रों को आज के यथार्थ से जोड़ता हुआ उनकी स्थिति को व्यंग्यात्मक बनाता हे या फिर धार्मिक चरित्रों को प्रतीकात्मक ढंग से प्रयुक्त कर प्राचीन विश्वासों की प्रासंगिता व सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगाता है । इस प्रकार धर्म व आधुनिक जीवन - यथार्थ के परस्पर संगुफित स्वरूप में उनके विरोधाभाष के प्रस्तुतीकरण द्वारा अपनी व्यंग्यात्मक दृष्टि को स्पष्ट करता है । यहाँ धार्मिकता के वर्तमान स्वरूप के प्रति कवि का व्यंग वैचारिकता से संयमित है । इसमें धार्मिक, पौराणिक चरित्रों का प्रयोग करके कवि ने वर्तमान परिवेश की अमानवीय स्थितियों में उपहास किया है -----

> ' मंदिर की लाट पर गीता खोद दी गयी है / और फुटपाथ पर पीली किताबों का ढेर लगा है / × × × × / राजनीतिक पार्टियाँ / कनाट प्लेस के एक - एक खंभे को बजाकर देखती हैं / नरसिंह किसमें से प्रकट होंगे / और प्रहलाद / स्वेतलाना का जाप कर रहा है /' × × × × / जन्माष्टमी को रात बारह बजे जब घंटे बज उठते हैं / तब क्या जनमता है / कृष्ण ? विश्वास ? या कविता ? ...../ × × × / उम्मीद एक मीठा नाम है / उसे कोका कोला की तरह पीने के लिए / लेकिन स्ट्रा कहाँ है ? / और भूत के न आँखे होती हैं न हाथ / होती है एक अक्षितिज अहल्या चीख / जो स्पुतनिक की तरह धरती का चक्कर लगाती है / ब्लीप - ब्लीप - ब्लीप / उसके त्रिशंकु पर गऊमाता बनी है /'[1]

परवर्ती संग्रह ' उतना वह सूरज है ' में कवि धार्मिक विश्वासों की वैज्ञानिक दृष्टि से पड़ताल करता है और उसकी अविश्वसनीयता को आधुनिक युग के यथार्थ के सन्दर्भ में व्यंग्य के साथ उजागर करता है । वैज्ञानिक उपलब्धियों द्वारा मंगल ग्रह की धार्मिक अवधारणा के खंडित होनें की प्रक्रिया पर कवि बड़ी सहजविनोदमयता के साथ व्यंग्य करता है और उसकी खिल्ली उड़ाता है -----

---

1. एक उठा हुआ हाथ - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 54, 55

' और हम सोचते थे कि वे हमारे भाग्य के विधाता हैं
मंगल तक पहुँचने की होड़ में लगे
पगले वैज्ञानिक नहीं जानते
मंगल के भाग्य - सुधार की
पंचवर्षीय योजना
हमीं को बनानी होगी ।'[1]

भारतभूषण अग्रवाल धार्मिक पौराणिक चरित्रों को आधुनिक सामाजिक - आर्थिक विषम परिस्थितियाँ तथा सांस्कृतिक विघटन के सन्दर्भ में प्रयुक्त कर एक ओर यथार्थ की विसंगतियों का उद्घाटन करते हैं तो दूसरी ओर धार्मिक पौराणिक चरित्रों का मजाक बनाते हुए धार्मिक आस्था पर भी प्रहार करते हैं । ' टूटे सपनों का सपना ' कविता में कवि ने धार्मिक तथा पौराणिक चरित्रों को वर्तमान परिस्थितियों में हास्यास्पद बनाकर प्रस्तुत किया है -----

' रात मैंने एक स्वप्न देखा
मैंने देखा
मेनका अस्पताल में नर्स हो गई है
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे हैं
उर्वशी ने डांस स्कूल खोल दिया है
नारद गिटार सीख रहे हैं
गणेश टाफी खा रहे हैं
और वृहस्पति अँग्रेजी से अनुवाद कर रहे हैं ।'[2]

अभिव्यक्ति की सहज एवं सरल भंगिमा में विनोद के पुट के साथ धर्म के पाखंडी रूप तथा अंध - श्रद्धा का तर्कसम्मत अन्वेषण कवि की ' सावधान ' कविता में देखा जा सकता है । इसमें कवि ने धर्म की आड़ में सुख - सुविधायें भोगने वाले धर्म गुरूओं की वास्तविकता की पहचान करते हुए उन पर तथा ईश्वर पर व्यंग्य किया है । कविता का कुछ अंश निम्न है -----

---

1. उतना वह सूरज है - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 -
2. ओ अप्रस्तुत मन - भारभूषण अग्रवाल; पृ0 - 102

' और तब मैने पहली बार तुम्हारे पुजारियों पर नजर डाली
जो तुम्हारी ओट में
मेरा भविष्य, ... प्रतिभा, मेरी शक्ति
भोग रहे थे
मैं तो अब मुक्त हूँ

× × ×

पर देवता
यदि तुम निरे पत्थर ही नहीं हो
तो अपने इन पुजारियों से अपनी रक्षा करो ।'[1]

इसी प्रकार ' मूर्ति तो हटी परन्तु ....' कविता में कवि ने धर्म के विडम्बनामय स्वरूप को प्रत्यक्ष करते हुए व्यंग्य किया है, जो विचारोत्तेजक मार्मिकता से युक्त हे । मनुष्य धार्मिक रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों में जकड़कर अपने सहज स्वरूप को खो देता है और धर्म तथा ईश्वर को महान मानते हुए स्वयं अपने विकास का मार्ग अवरूद्ध कर छोटा बनता जाता है । इसी वास्तविकता का अवसादपूर्ण स्वर में उद्घाटन करते हुए कवि ने उसके प्रति हल्का सा व्यंग्य किया है, जिसमें यथार्थ स्थिति का वैचारिक - विश्लेषण एवं निष्कर्ष भी व्यक्त है ---

' प्रतिमा की ओट में जो जमी रही एक युग / उनकी वे दृष्टियाँ अब असमर्थ थी - / कि सह सकें सहज प्रकाश आसमान का / × × × / मूर्ति तो हटी, परन्तु सामने डटा था / प्रश्न चिह्न यहः / मूँद लें वे आँखें या कि प्रतिमा गढ़े नई ? / हर अंधी श्रद्धा की परिणति है यह खण्डन / हर खंडित मूर्ति का प्रसाद है यह प्रश्नचिह्न ।।/'[2]

' लय ' शीर्षक कविता में कवि स्वयं अपने मन एकांत में ईश्वर की निर्मित की प्रक्रिया की मनोवैज्ञानिक परख करते हुए ईश्वर के प्रति अपनी अनास्था को व्यंग्य के साथ व्यक्त करता है -----

' कोई एकांत का शिखर
शेषनाग के फन की कोर
या वट-वृक्ष का सिरा
क्या इसीके किसी पत्ते पर
ईश्वर अगूँठा चूसेगा ? '[3]

---

1. ओ अप्रस्तुत मन - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 112
2. ओ अप्रस्तुत मन - भारतभूषण अग्रवाल - पृ0 - 125
3. उतना वह सूरज है - भारतभूषण अग्रवाल; पृ0 - 13

गिरिजा कुमार माथुर भी धार्मिक आस्था के रूढ़िवादी रूप की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए धार्मिकता के मूल में छिपी भय की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करते हैं । ' लटके हुए लोग ' कविता कवि की परवर्ती काल की रचना है । आज के वैज्ञानिक युग में देवी - देवता तो मर चुके हैं, परन्तु उनकी धारणा खंडित हो जाने के बावजूद भी व्यक्ति के मन में डर के भूत बैठे हुए हैं । इसी तत्थ्य का उद्घाटन करते हुए कवि धर्म के परम्परागत रूप पर व्यंग्य करता है -----

' देवता सब मर चुके
लाखों किसम के भूत
हर एक के पीछे लग चुके
अब सबके भीतर
एक - एक भूत धर है
सबका अपना खास
अलग - अलग डर है ।'[1]

शमशेर बहादुर सिंह में धर्म के आडम्बर के पीछे निहित उद्देश्यों तथा वास्तविकताओं की तह तक जाकर उन पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति रही है । परवर्ती काव्य - संग्रह में ' संकीर्तन की बढ़ती हुई भावना रिक्त प्रभा पर ' कविता में कवि की दृष्टि धर्म के खोखले, दिखावटी एवं विकृत स्वरूप के प्रति व्यंग्यात्मक है । कवि कीर्तन को संक्रामक बताता हुआ उसके द्वारा हिन्दू जीवन में मात्र बाह्य झनझन भरनें तथा हृदय - पक्ष के रिक्त होते जाने की विडम्बना को व्यक्त करता है । आज हिन्दू संस्कृति कवि की दृष्टि में दु:संस्कृति बन गयी है, क्योंकि उसमें कर्म - भेद के आधार पर जातिगत भावनाओं को प्रश्रय दिया जाता है, जिसमें उच्च वर्ग को प्रतिष्ठा तथा निम्न वर्ग को निरादर एवं शोषण मिला है। तथाकथित धर्मानुयायी मानव के हृदय को चोट पहुँचाकर तथा उसे पीड़ित करके भी अपने को धार्मिक कहते हैं । कवि ऐसे हिन्दुओं को असुर की कोटि का मानता है । धर्म के जो मूल तत्व हैं वे दया, करूणा, समता तथा प्रेम हैं, पर आज हिन्दू धर्म में ये तत्व लुप्त दिखते हैं ।

---

1. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजा कुमार माथुर; पृ0 - 44

अतः कवि संकीर्तन की झन - झन से क्षुब्ध होकर हिन्दू धर्म के दोषों के मर्मस्थल पर चोट करता है -----

' संक्रामक संकीर्तन / खाली राम - नाम के सम - स्वर / हिन्दू जीवन में भर झन - झन / अन्तर करता निर्धन / दुःसंस्कृति के तारण / जिन मंत्रों के गुरू उच्चारण / हारण कर्म - विषम - तम के जो - / लुप्त अंधकर में सब ; गुण / भारत के अब गुप्त; / काल यह हिन्दू को यम / वेद अब संघ समाज / केवल कर्म - भेद ही धर्म; / जातियाँ अन्य अधम / हाँ - ' जीवनी शक्ति रस ' द्वारा / मानव का उर मांसाहार उत्तम औ ' अनिसिद्ध / हिन्दू है देवता या असुर / दान के मृग - जल / सब - छल /'[1]

विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा ईश्वर को अलग - अलग धर्मों में अलग - अलग रूपों तथा नामों में बाँटकर आपस में लड़ने की भावना से कवि का आहत मन ईश्वर तथा धर्म के प्रति अपनी वितृष्णा को स्वगत उद्‌गार के रूप में व्यक्त करते हुए उन पर व्यंग्य करता है ----

' हे ईश्वर, हे मेरे
अल्ला मुझे
क्षमा करना
अफ्व ! अफ्व !
तुम दोनों ही मिलकर
मेरा अंत कर दो
बेहतर है
वह
शांति जो आज
न होने में है
न होता मैं तो क्या होता ।'[2]

यहाँ कवि ने ईश्वर और अल्ला को अलग - अलग मानकर पूजने तथा उनके नाम पर लड़ने वालों पर व्यंग्य करने के साथ ही ईश्वर की ऐसी भ्रामक तथा हास्यास्पद धारणा पर

---

1. चुका भी हूँ नहीं मैं - शमशेर बहादुर सिंह; पृ0 - 94
2. चुका भी हूँ नहीं मैं - शमशेर बहादुर सिंह; पृ0 - 109

भी व्यंग्य का शर छोड़ा है । व्यंग्य के पीछे यथार्थ के कटु अनुभवों का प्रबल आवेग भी व्यंजित है । कवि ने अंतिम पंक्तियों द्वारा यह संकेत भी किया है कि ईश्वर की सत्ता तो मनुष्य के होने में ही निहित है । यदि मनुष्य धर्म के नाम पर लड़कर समाप्त होता रहेगा तो ईश्वर तथा धर्म का अस्तित्व कहाँ रह जाता है, पर आज धर्म के कारण ही अशांति फैलती है । अतः कवि धर्म द्वारा प्राप्त शांति की विडम्बना को दर्शाता हुआ न होने में ही शांति की बेहतर संभावना देखता है । इस प्रकार कवि ने कम भी अधिक व्यंजित करने की अपनी क्षमता को इन पंक्तियों में सिद्ध कर दिया है ।

प्रगतिशील चेतना के जनवादी कवियों ने धर्म तथा ईश्वर को भी शोषक वर्ग से सम्बद्ध करके उस पर व्यंग्य किया है । मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाववश ये कवि किसी भी धार्मिक मत या ईश्वर में आस्था नहीं रखते । वे धर्म को भी सुविधा सम्पन्न वर्ग का ही पोषण करने तथा रक्षा करने में प्रवृत्त देखते हैं । अतः उनमें धर्म को इसी कोण से देखने की प्रवृत्ति अधिक मिलती है । मुक्तिबोध की कविताओं में सामाजिक - आर्थिक वैषम्य के प्रति जो तीखी व्यंग्यात्मकता है, वह धर्म तथा ईश्वर के प्रति अनास्था तथा घृणा की अभिव्यक्ति के रूप में व्यक्त हुई है । कवि ने अपनी एक परवर्ती रचना ' ओ काव्यात्मक फणिधर ' में ब्रह्मदेव को धनवानों के संरक्षक के रूप में देखा है कवि ब्रह्म - देव की असलियत को इस रूप में सामने रखता है कि उसी की छत्रछाया में अमीर अधिक अमीर तथा निर्धन अधिक गरीब होते जा रहे हैं । अतः कवि को ऐसे ब्रह्म का मुख टेढ़ा दिखता है, जिसमें न कोई विवेक है न समत्व - भाव और इसीलिए श्रेष्ठता, महत्ता तथा सौंदर्य भी नहीं है । इसीलिये कवि ऐसी ईश्वरीय सत्ता में अपनी अनास्था व्यक्त करते हुए धार्मिक आस्थाओं की पोल खुलजाने के प्रति आश्वस्त है तथा ऐसे पक्षपाती ईश्वर से दूर रहने वाले आधुनिक बुद्धिजीवी साहित्यकार का आह्वान करते हुए उसे अपनी मिट्टी से जुड़ने, यथार्थ पर दृष्टि रखने तथा ईमान न खोने के लिए प्रेरित करता है -----

> ' उस ब्रह्मदेव का टेढ़ा मुख / जग देख चुकेगा पूरा ही / छत्रछाया में रह / अधिकाधिक दीप्तिमान होते / धन के श्रीमुख / पर निर्धन एक - एक सीढ़ी नीचे गिरते जाते / उस ब्रह्मदेव का विवेक - दर्शन / होगा उद्घाटित पूरा / ओ नागात्मन ! संक्रमण काल में धीर धरो / ईमान न जाने दो /'[1]

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - पृ0 - 184 (संभावित रचनाकाल - 1959-60)

इस प्रकार कवि ने ब्रह्मदेव के ब्रह्मत्व की विडम्बना को यथार्थ की असमान व्यवस्था में निहित शोषण के सन्दर्भ में उजागर करते हुए उस पर अत्यंत सारगर्भित व्यंग्य किया है । एक अन्य कविता ' ये आये वो आये ' में भी मुक्तिबोध ने अपनी आस्था निर्धन वर्ग से जोड़ते हुए अध्यात्म के असंगत तथा खोखले रूप के प्रति हल्का - सा व्यंग्य किया है -----

' वह तुलसी जो उल्टी रखी हुई
झाड़ू सी
घूरे के पास खड़ी हुयी है
क्योंकि अध्यात्म के चोगे सब
अकादमी कुर्सी पर शोभित हैं
इसीलिए तुलसी वह निंदित है ।'[1]

यहाँ सामान्य जन की निश्छल आस्था की प्रतीक तुलसी की दुर्दशा दिखाकर कवि यह प्रदर्शित करता है कि आज अध्यात्म भी एक चोंगे की तरह पहन कर पद और प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली चीज़ है, जो उच्च सत्तासीनों के पास है । निम्नवर्गीय आस्था तो घूरे के पास उगी हुई तुलसी की तरह बेबस, उपेक्षित एवं व्यर्थ है ।

विद्रोही चेतना तथा जनवादी भावना के कारण धार्मिक मान्यताओं तथा ईश्वर के अस्तित्व के प्रति नागार्जुन की दृष्टि भी तीखी व्यंग्यात्मकता से युक्त रही है । ईश्वर को हास्यास्पद का व्यंग्यास्पद रूप में चित्रित करने के अतिरिक्त नागार्जुन तथाकथित धर्माचार्यो, साधुओं तथा धर्मगुरूओं पर फसकर प्रहार करते हैं, क्योंकि ये सभी कवि को ढोंगी एवं धर्म की आड़ में ऐश्वर्यसुख भोगने वाले चालाक लोग दिखते हैं । धर्म सम्बन्धी नागार्जुन की व्यंग्यशील प्रवृत्ति छठें तथा सातवें दशक की कविताओं में अधिक मिलती है । इनके धार्मिक व्यंग्य कई रंगों में हैं । कहीं विनोद मिश्रित तीखा पर चटपटा व्यंग्य है और कहीं विचार प्रेरित मार्मिक व्यंग्य । कहीं - कहीं नागार्जुन धार्मिक चरित्र को प्रतीक रूप में प्रयुक्त कर राजनीतिक - सामाजिक विसंगतियों तथा विकृतियों को प्रत्यक्ष करते हुए धार्मिक चरित्रों को भी व्यंग्य का

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - 2 - पृ0 - 398 (संभावित रचनाकाल - 1963)

भाजन बनाते हैं । ' कल्पना के पुत्र हे भगवान ' शीर्षक कविता में नागार्जुन ईश्वर को मानव - मन की कल्पना तथा भ्रम बताते हुए उसके प्रति अपनी अनास्था को तीखे उपहास के साथ व्यक्त करते हैं । यह कवि की प्रारम्भिक दौर की रचना है । इसमें कवि ईश्वर तथा भाग्य पर विश्वास कर मंदिरों की देहली पर नाक रगड़ने वाली पुरानी पीढ़ी की अंध - श्रद्धा का मजाक बनाते हुए तथा अपने निर्भीक आत्मविश्वास की श्रेष्ठता दर्शाते हुए ईश्वर के भ्रामक अस्तित्व के प्रति चुभता हुआ व्यंग्य ' ठोस हो या पोल ' कहकर करता है -----

' बाप दादों की तरह रगड़ूँ न मैं निज नाक
मंदिरों की देहली पर पकड़ दोनों कान
हे हमारी कल्पना के पुत्र हे भगवान
पुत्रों से आराधना की आ गये अब तंग
× × ×
अंधेरे में लोग रहे टटोल
ठोस हो या पोल ।'[1]

प्रारम्भिक दौर की ही एक अन्य कविता ' मन करता है ' में कवि ईश्वर को मृत घोषित कर उसकी धारणा एवं विश्वास को अपने तीव्र आक्रोश तथा विद्रोहपूर्ण व्यंग्य का सीधा लक्ष्य बनाते हैं । ईश्वर की धारणा को चूर - चूर करने के लिए उसकी मृत्यु की कल्पना करते हुए उसकी अन्तेष्टि भी करता है तथा ईश्वर एवं देवी - देवताओं की इस युग की ज्वलंत समस्या मँहगाई के बीच अप्रासंगिकता को हास्यास्पद बनाकर प्रस्तुत करता है -----

' मुर्दा भगवान दिखाई दे
उस महामृतक को ले आऊँ फिर इस तट पर
अन्त्येष्टि करूँ
लकड़ी तो बेहद मंहगी है
इस बालू में ही दफना दूँ
नंगा करके
निर्ल्लज्ज देखता गण, ले लेना तुम उसका भी वह पीताम्बर ।'[2]

---

1. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ० - 15 (रचनाकाल 1946)
2. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ० - 31 (रचनाकाल 1945)

नागार्जुन न केवल धार्मिक कर्मकांडों एवं अनुष्ठानों के प्रति करारा व्यंग्य करते हैं बल्कि धार्मिक मतवादों तथा धर्माचार्यों की भी खिल्ली उड़ाते हैं । प्रयोगवादी दौर की ही एक अन्य कविता ' योगिराज अरविन्द ' में कवि का तीखा व्यंगय अरिविंद तथा उनके कोरे दार्शनिक सिद्धान्तों का उपहास करते हुए व्याज - स्तुति शैली में व्यक्त हुआ है -----

' जय जय हे योगेन्द्र
खोल रक्खा है वाह बुद्धिहत्या का बढ़िया केन्द्र
× × ×
सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् केवल ऊपर ऊपर मंडराते हैं
नीचे उतर नहीं पाते हैं
× × ×
हे विभ्रान्त बुद्धिजीवी तुम बने हुए हो भारी भ्रम भगवान ।'[1]

वस्तुतः कवि यथार्थ संसार से परे किसी भी रहस्य लोग में भटकाने वाले आकर्षक सिद्धान्तों को मुनष्य के लिए निरर्थक मानता है । ' आत्मा की बाँसुरी ' कविता में भी कवि आत्मा - परमात्मा की बातें करने वाले तथाकथित सन्तों और साधुओं पर व्यंग्य करता है, जिसमें कवि का विनोद भाव भी मुखर है और तीखा उपहास भी । कवि भूख प्यास की मारी दुनिया में आत्मा का राग अलापने वालों की खिल्ली उड़ाता हुआ कहता है -----

' पता नहीं कितने छेद हैं तुम्हारी आत्मा की बाँसुरी में
× × ×
पकड़ नहीं पाते उसे हम अभागों के कान
पहले उदर - पूर्ति तो हो ले
× × ×
पकड़ में आयेगी नहीं तो जायेगी कहाँ
आत्मा नानी ? ।'[2]

---

1. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 18,19 (रचनाकाल 1950)
2. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 21 (रचनाकाल 1955)

इसी कविता में आगे की पंक्तियों में कवि बड़ी नाटकीय मुद्रा में इन महात्माओं के ऐश्वर्यमय जीवन की झाँकी प्रस्तुत कर उनके धार्मिक प्रवचनों की असलियत को सामने रख देता है । ये धर्माचार्य स्वयं तो भौतिक सुख - साधनों का उपभोग कर तृप्त होते हैं और सामान्य जनता के लिये सांसारिक सुख को मिथ्या समझकर आत्मिक सुख का उपदेश देते हैं । कथनी-करनी के इस विरोध को बड़े चुलबुले व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्त किया गया है -----

' मटन चाप, आइसक्रीम, कटलेट, कॉफी,
करो तरोताजा दिल - ओ - दिमाग को
और फिर निकाल कर रेशमी रूमाल
तरल त्रिभुवन अधरोष्ठ चट से पोंछ लो
× × ×
आहिस्ते से बोलो
शी शी शी फू फू फू ....
आत्मा की बाँसुरी से उठता है अनहद नाद ।'[1]

यहाँ कवि ने कुण्डलिनी शक्ति के जागरण तथा ' अनहद नाद ' की दार्शनिक मान्यताओं का भी मजाक बनाया है । एक अन्य कविता ' चौराहे के उस नुक्कड़ पर ' में कवि ने साधु महात्माओं के वेष में जनता को ठगने तथा भ्रमित करके लूटने की प्रवृत्ति पर अत्यन्त पैना व्यंग्य किया है । चमत्कार प्रदर्शन द्वारा जन सामान्य की अंध - श्रद्धा को भुनाते साधू को देखकर कवि में आक्रोश जागृत होता है । इस दृश्य को प्रस्तुत करते हुए कवि लोगों की मूर्खता तथा साधु की धूर्तता पर बड़ी निर्भीक मुद्रा में तीखा व्यंग्य करता है । कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं -----

' काँटों पर सोया है कैसे
नागफनी पर गिरगिट जैसे
श्रद्धा का तिकड़म से नाता
जय हे भिक्षुक जय हे दाता

---

1. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; पृ0 - 23 (रचनाकाल 1955)

पियो संत हुगली का पानी
पैसा सच है दुनिया फानी ।'[1]

कवि ने पैसा सच है ' दुनिया फानी ' कहकर साधु की धार्मिक विरक्ति की सारी पोल खोलकर रख दी है । नागार्जुन देवी - देवता का प्रतीकात्मक प्रयोग कर एक ओर तो ईश्वर का उपहास करते हैं और साथ ही शोषक - सत्ता पर भी प्रहार करते हैं । ' काली माई ' कविता में कवि काली को शोषक वर्ग की पोषक के रूप में व्यंग्य का निशाना बनाता है । काली के माध्यम से कवि धनपतियों पर भी व्यंग्य करता है । निम्न पंक्तियों में ईश्वरीय सत्ता पर व्यंग्य करते कवि की समाजवादी दृष्टि स्पष्ट है -----

' मुण्डमाल के लिए गरीबों पर निगाह है
धनपतियों के लिए दया की खुली राह है
धन - पिशाच का लहू नहीं अच्छा लगता है
वह औरों की बलि देकर तुमको ठगता है
जाने कब से टपक रही है लार तुम्हारी ।'[2]

आगे की पंक्तियों में कवि काली के प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त कर सर्वोच्च शासकीय सत्ता के ऊपर कड़वा व्यंग्य करता है -----

' बीच - बीच में पाती हो ऊपर की पूजा
मुख रूचि के परिवर्तन की खातिर ज्यों भूजा
× × ×
चौरंगी में फिरती है डायन की बेटी
नाम तुम्हारा लेती है लेटी अधलेटी ।'[3]

' भूले स्वाद बेर के ' कविता में कवि धार्मिक चरित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग करके मूल्यों के विघटन की स्थिति का चित्रण करता है । इसके साथ ही उसके व्यंग्य की दुधारी

---

1. प्यासी पथराई आँखे - नागार्जुन; पृ0 - 32
2. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन; पृ0 - 36
3. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन; पृ0 - 37

तलवार ईश्वर के अवतार रूप की अवधारणा पर भी चलती है । आधुनिक युगीन सन्दर्भो में कवि राम के महत् चरित्र को व्यंग्यात्मक में प्रस्तुत करता है -----

' जी उठा दशकन्धर, स्तब्ध हुए मुनिगण
हावी हुआ स्वर्णमृग कंधों पर शेर के
बुढ़भस की लीला है काम के न रहे राम
शबरी न रही याद भूले स्वाद बेर के ।'

यहाँ कवि ने ' काम के न रहे राम ' कहकर यह प्रगट किया है कि आज के युग में राम या अन्य किसी ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व में आस्था निरर्थक एवं अप्रसंगिक है, क्योंकि ईश्वर दुखी एवं त्रस्त मानवता की कोई भी सहायता करने असमर्थ सिद्ध हो चुका है । अपने परवर्ती संग्रह ' तुमने कहा था ' में भी नागार्जुन ने योगिराज, भगवान अथवा ब्रह्मचारी का वेष धारण करके तथा जनता को भ्रमित करके ऐश्वर्यमय और भोग विलासपूर्ण जीवन जीने वाले तथाकथित धर्माचार्यों की पोल बड़े स्पष्ट रूप में खोला है उन पर भरपूर वार किया है -----

' ब्रह्मचारी, भगवान, योगिराज, परमहंस ....
कुच्छ भी कहलाओ ....
हमें लेकिन प्रवचनों की फहारों से नहलाओं
करो चाहे सौ - पचास का नितंब - भंजन
दो लेकिन पब्लिक को भरपूर मनोरंजन ।'[1]

यहाँ कवि ने धार्मिकता का ढोंग करने वालों की कथनी करनी के विरोधाभास को तीखे आक्रोश तथा लत्ख भाषा में नग्न रूप में प्रस्तुत किया है ।

' खिचड़ी विप्लव देखा हमने' संग्रह में आठवें दशक की एक अन्य कविता में कवि वर्तमान मठाधीशों की वास्तविकता को वैचारिक विश्लेषण के रूप में किन्तु अत्यन्त चुभते व्यंग्य के साथ व्यक्त करता है । कवि इन मठाधीशों को जन् समुदायों की संचित श्रद्धा से निर्मित भाँड़ के रूप में व्यक्त कर उनका तीखा उपहास करता है और मूढ़ जन साधारंण के प्रति भी हल्का -

---

1. तुमने कहा था - नागार्जुन; पृ0 - 68

सा व्यंग्य करता है । अन्ततः कवि स्वयं से प्रश्न पूछते हुए बड़े सांकेतिक ढंग से मठाधीशों के मठ के अन्दर आने का कारण उनकी पुष्टई प्राप्त करने की इच्छा बताकर उन पर करारा व्यंग्य करने के साथ ही धर्मभीरू समाज एवं आर्थिक विवशता के वातावरण में अपने नास्तिक ईमानदार व्यक्तित्व की स्थिति की भी मार्मिक व्यंजना कर देता है -----

" धर्मभीरू पारम्परिक जन समुदायों की बूँद - बूँद संचित श्रद्धा के सौ - सौ भाँड
जमा है जमा होते रहेंगे
मठों के अन्दर ....
तो क्या मुझे भी बुढ़ापे में ' पुष्टई ' के लिए
वापस नहीं जाना है किसी मठ के अन्दर ?'[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नागार्जुन के धर्म सम्बन्धी व्यंग्य भी समकालीन जीवन की विकृतियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं । तीखी, निर्भीक तथा आक्रमक मुद्रा यहाँ भी अपनाई गई है, जो नागार्जुन की विशिष्टता है । धर्म गुरूओं पर इनकी व्यंग्य - दृष्टि अधिक गई है । धार्मिक गतिविधियों तथा ईश्वरीय आस्था के प्रति नागार्जुन की व्यंग्यशीलता यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ प्रारम्भ से अन्त तक की रचनाओं में मिल जाती है ।

कुछ कवियों में नयी कविता के प्रारम्भिक दौर में धार्मिक विश्वासों तथा गतिविधियों के प्रति व्यंग्य अधिक मिलते हैं । केदारनाथ अग्रवाल के भी प्रारम्भिक काव्य - संग्रहों में धर्म सम्बन्धी व्यंग्य है । बाद में कवि की चेतना समाजिक राजनीतिक रूझान को व्यक्त करने में रमती गयी है । इनके प्रारम्भिक संग्रह ' युग की गंगा ' की ' चित्रकूट के यात्री ', ' देवताओं की आत्महत्या ' और अमीनाबाद ' कविताओं में ईश्वर, अंध - श्रद्धा तथा धर्म के औपचारिक रूप के प्रति व्यंग्य हैं । केदारनाथ धार्मिक आस्था को सामाजिक यथार्थ के रूप में चित्रित करते हैं । उनका व्यंग्य न केवल ईश्वर के अस्तित्व तथा धर्म के ठेकेदारों पर ही प्रहार करता है, बल्कि वे ग्रामों में बसे अशिक्षित, अनपढ़, गँवार तथा अंधविश्वासी जन समुदाय की धार्मिक आस्था की वास्तविकता को भी बड़ी बेबाकी से उजागर करते हैं । ' चित्रकूट के यात्री ' कविता इसका

---

1. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; पृ0 - 106 (रचनाकाल - 1975)

सर्वोत्तम उदाहरण है । इसमें कवि चित्रकूट की यात्रा पर निकले लोगों के कृत्यों के संदर्भ में उनकी धार्मिक श्रद्धा के खोखले, अंधविश्वासी तथा हास्यास्पद स्वरूप को प्रत्यक्ष कर देता है । जीवन भर पाप पूर्ण कर्मों में लिप्त रहने वाले इस आशा से टोली की टोली में अपने - अपने बिलों से चीटों की भाँति तीर्थ यात्रा के लिये निकल पड़ते हैं कि इससे उनके सारे पाप धुल जायेंगे । इसीलिए कवि उनकी धार्मिक आस्था को भी उनकी विकृति ही मानता है तथा उन्हें, ' गुड़ के लोभी चीटे ' कहकर तीक्ष्ण तथा सटीक व्यंग्य करता है -----

' दिनभर अधरम करने वाले
परनारी को ठगने वाले
पर सम्पत्ति को हरने वाले
भीषण हत्या करने वाले
धर्म लूटने के अधिकरी
टोली की टोली में निकले
जैसे गुड़ के लोभी चींटे
लम्बी एक कतार बनाके
अपने - अपने बिल से निकले ।'[1]

' देवताओं की आत्महत्या ' कविता में कवि ने आधुनिक वैज्ञानिक युग के सन्दर्भ में देवताओं के अस्तित्व को हास्यास्पद रूप में प्रस्तुत किया है और उसकी खिल्ली उड़ाते हुए व्यंगय किया है । इसके लिए कवि नाटकीय कथा शैली को अपनाता है । धरती पर आने पर इस युग में देवताओं की जो गति बनी, वह इस प्रकार की थी -----

' कितने ही दिनों से
जाने कितनों ने न था स्नान किया
भोग भी न पाया था
कंडा हो रही थीं आँखें कितनों की;
आया था ऐसा घोर कलियुग
पृथ्वी पर देवताओं की बात अब कोई नहीं पूछता था

---

1. गुलमेंहदी (युग की गंगा) - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 34

× × ×

कहाँ जायें ? क्या करें ?
भय था न देख लें यों दुर्गति मनुष्य कोई
अच्छे चलें,
घर के रहे न घाट के ।'[1]

' अमीनाबाद ' में कवि अंधश्रद्धाभिभूत जनों की रूढ़िगत एवं निर्जीव - भक्तिको यथार्थ - चित्रण शैली में व्यक्त करते हुए, धर्मान्ध जनों तथा ईश्वर के प्रति व्यंग्य करता है । इसमें कवि ने ईश्वर - भक्ति को मात्र औपचारिकता के रूप में देखा है और उसे यथार्थपरक अभिव्यक्ति दी है ।

केदारनाथ अग्रवाल के प्रारम्भिक संग्रह ' जो शिलायें तोड़ते हैं में भी धर्म सम्बंधी व्यंग्य हैं, जो प्रारम्भिक दौर की कविताओं का संग्रह है । इनमें ' अभयनाद ', ' बिड़ला मंदिर', और ' देवतों की नींद ' धार्मिक आस्था से सम्बंधित व्यंग्यात्मक कवितायें है । इनमें आर्थिक विषमताओं एवं सामाजिक अन्याय के सन्दर्भ में धार्मिक विश्वासों तथा तत्संबन्धी गतिविधियों पर चोट की गयी है । यथार्थ की विरूपताओं की पृष्ठभूमि पर मंदिर में हो रहे अभयनाद के प्रति कवि का व्यंग्य बड़ा तीखा तथा साथ ही मार्मिक भी है । कैसा है मंदिर में बैठा ईश्वर, जिसके निवास - स्थल पर भी भ्रष्टाचार के कार्य - व्यापार चलते हैं । कवि दौलतमंदों की श्रद्धा तथा भक्ति के पाखंड के पीछे छिपी उनकी स्वार्थवृत्ति का पर्दाफाश करता है । यहाँ भी यथार्थ - चित्रण शैली में धर्म के समाजसापेक्ष रूप की आलोचना नाटकीय चुटीले व्यंग्य के द्वारा की गयी है -----

'मैं तो प्रभु चोर हूँ;
मेरी भी माफ़ी हो,
भक्तों में आपके मेरा भी नाम हो

× × ×

देखो तो
सेठों ने लूटकर दुनिया की दौलत को

---

1. गुलमेंहदी (युग की गंगा) - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 35, 36

आपको थोड़ी दी;
उसको भी मंदिर के रक्षक ने
आपसे छीनकर;
चोरी से पेट में भर लिया ।'[1]

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित नये कवि धर्म को भी शोषण का एक उपकरण मानते हैं । ' बिड़ला मंदिर ' कविता में धर्म की शालीन आड़ में चल रहे पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण चक्र पर कवि की गहरी दृष्टि गई है । बिड़ला मंदिर को कवि शोषण के प्रतीक रूप में देखता है । वह उस मंदिर निर्माण के पीछे धार्मिक आस्था के स्थान पर स्वार्थ - भोग की आकांक्षा का कुत्सित रूप देखता है । कवि की जनवादी दृष्टि भभ्य मंदिर - निर्माण में लगी जनता से चूसी गई सम्पदा को देखती है, इसलिये उसे यह मंदिर देवकन्या के उर से लूटकर वेश्या के उरोज पर डाले गये रत्नहार सा दृष्टिगत होता है । इस कविता में धर्म के स्वार्थपूर्ण उपयोग तथा धार्मिकता के खोखले अमानवीय तथा प्रदर्शनकारी स्वरूप के प्रति कवि का व्यंग्य अत्यंत तीखा तथा सटीक होने के साथ ही कलात्मक सौंदर्य से भी युक्त है । इस कविता के सम्बन्ध में कवि की दृष्टि का विवेचन करते हुए ओंकार प्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं - ' वह दृष्टि बताती है कि जनमानस में रूढ़िगत आस्था का प्रतीक देव - मंदिर, जिसके सहारे शोषक वर्ग जनजीवन को लूटता खसोटता है और उसे भोगे जा रहे जीवन के यथार्थ से सपनों के स्वर्ग में जिन्दा रखने की साजिश करता है, स्वार्थ - सिद्धि का जाल ही है ।'[2]

कवि बिड़ला मंदिर को देखकर कहता है -----

' यह ऐसा है
जैसे कोई धनी लुटेरा
किसी देव कन्या के उर से
रत्नहार अनमोल लूटकर
× × ×

---

1. जो शिलायें तोड़ते हैं - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 84
2. कवि केदार - ओंकार प्रसाद त्रिपाठी; पृ0 - 70

अनुपम वेश्या के उरोज पर
उसे स्वार्थ सिद्ध में डाल गया है ।'[1]

यथार्थ जीवन में जनता के शोषित होकर भूख से तड़पकर मरने की स्थिति में देवताओं के अस्तित्व पर विश्वास करना कठिन हो जाता है । केदारनाथ अग्रवाल ने धार्मिक विश्वासों में बहुदेववाद की धारणा पर करारा व्यंग्य मनुष्य के पीड़ित जीवन के सन्दर्भ में किया है । कवि कहता है -----

' अन्न धरती उगलती ही रही
किन्तु जनता की अमानिशा ही रही
भूख से मरती तड़पती ही रही
मृत्यु की करवाल चलती ही रही
देवतों की फौज सोती ही रही ।'[2]

केदारनाथ अग्रवाल के परवर्ती काव्य में उनकी चेतना क्रमशः सामाजिक सन्दर्भयुक्त राजनीति से सम्बद्ध होती गयी है । ' मार प्यार की थापें ' संग्रह धर्म सम्बंधी एक व्यंग्य मिलता है, जिसमें कवि ने यथार्थ जीवन तथा मानवीय शक्ति में अपनी दृढ़ आस्था व्यक्त करने के साथ ही देवताओं पर व्यंग्य किया है । इस कविता में धार्मिक अंधविश्वासों में जी रहे मनुष्य के प्रति भी व्यंग्य है, जो वैचारिकता से समन्वित है -----

' नायाब बजाते हैं
नरक का सितार नेकनाम नारद
देवता और देवराज
जागती जमीन की तपस्या से
चौंकते थर्राते हैं ।'

× × ×

कीर्तन करते हैं हम और हमारे वंशज
देवी देवताओं को समर्पित किये तन और मन

---

1. जो शिलायें तोड़ते हैं - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 106
2. जो शिलायें तोड़ते हैं - केदारनाथ अग्रवाल; पृ0 - 155

× × ×
न देह को गरीबी छोड़ती है;
न ज्ञान की आँख को अमीरी खोलती है ।'

अतः यह स्पष्ट है कि केदारनाथ की कविताओं में धार्मिक आस्था पर प्रहार यथार्थ जीवन का सन्दर्भ ग्रहण करते हुए किया गया है । इसमें कवि की वैचारिक मुद्रा की झलक भी है तथा कलात्मक तटस्थता भी । मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव कवि की धार्मिक दृष्टि पर भी है ।

परम्परागत धार्मिक विश्वासों के ढोंगों, और उसके असंगत तर्कहीन स्वरूप के प्रति त्रिलोचन की दृष्टि भी विश्लेषणात्मक और विद्रोही रही है । त्रिलोचन भी मनुष्यता की भावना को महत्व देते हैं तथा यथार्थ - जीवन की त्रासद परिस्थितियों में धार्मिक परम्पराओं के पालन करने एवं मनुष्य की स्थिति, उसके दुख - दैन्य से कोई वास्ता न रखने की प्रवृत्ति के प्रति तीखा व्यंग्य करते हैं । निम्न कविता में कवि यह स्पष्ट करता है कि विकृत परिस्थितियों के बीच धार्मिक कर्मकांड घूरे पर बैठकर भागवत का पारायण करने जैसा है । ऐसे धार्मिक पाठ से ज़्यादा महनीय कृत्य है भूखे को रोटी देना -----

' कोई भूखा हो तो उस को लाकर रोटी
दो, मत लंबी चौड़ी बात बनाओ इसकी
× × × × ×
× × × × सम्मुख नाली
बदबूदार हो घिनौने कीड़े दुमवाले
खूब बिलबिलाते हों तो मिलकर कसाले
साफ कराना अच्छा है यह है उजियाली
बैठ घूर पर किया भागवत का पारायण,
काम क्या किया - शिव - शिव नारायण नारायण ।'[1]

---

1. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन; पृ0 - 87

त्रिलोचन के व्यंग्यों में उनकी सादगी तथा सरलता की जो झलक मिलती है, वह धर्म - सम्बंधी व्यंग्यों में भी है । ' अनकही भी कुछ कहनी है ' संग्रह में भी कवि ने परम्परावादी अंध - श्रद्धा की धार्मिक प्रवृत्ति एवं खोखली आस्था पर संयत व शिष्ट भाषा तथा विनोदपूर्ण तेवर में चुटीला व्यंग्य किया है । केवल पुरूखों के दिखलायें मार्ग की लीक पकड़कर चलना तथा वर्तमान वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों के बाद भी नवीन सोच तथा जागरूकता से रहित जीवन जीना कवि को उद्वेलित करता है । अतः वह अपनी व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कह उठता है -----

' पुरूखों ने जो करना था, कर दिया और क्या
शेष रह गया, शास्त्र दे गये. उसको बाँचों
उस के मर्यादित गँभीर ताल पर नाचो,
वही आम है जो सौरभ से भरा बौर था,
गुन के बल से चली घड़ारी घर्र घर्र कर
सत्य यही है साधक बोला टर्र - टर्र कर । '[1]

धार्मिक विश्वासों के अनुसार तीर्थ - स्थल मनुष्य के पापों को धोकर उसे शुद्ध बनाते हैं । अतः तार्थाटन को भी विशेष महत्व प्रदान किया गया है और तीर्थ स्थलों को अत्यन्त पवित्र माना गया है । तीर्थ स्थलों के प्रति इस धार्मिक अवधारणा को त्रिलोचन काशी नगरी के यथार्थ - चित्रण द्वारा चूर - चूर कर उसके प्रति सहजता से,किन्तु पैना व्यंग्य करते हैं ----

' काशीपुरी पवित्र है इसीलिए यहाँ पर
दुनिया की गंदगी इकट्ठा मिल जाती है;
ओर - छोर से लोग छोड़ने पाप यहाँ पर
पहुँचे, काशी दशा वहाँ की दिखलाती है,
म्युनिसिपैलिटी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड करें तो क्या क्या
करें, हुई मैष्कर्म्य सिद्धि है अनायास ही;।'[2]

---

1. अनकही भी कुछ कहनी है - त्रिलोचन; पृ0 - 58
2. अनकही भी कुछ कहनी है - त्रिलोचन; पृ0 - 73 (1951)

इन पंक्तियों का व्यंग्य धार्मिक विश्वासों के साथ ही व्यवस्था - पक्ष की दुर्व्यव्यवस्था को भी उजागर करता है । त्रिलोचन के धार्मिक रूढ़िगत मान्यताओं तथा आस्थाओं के प्रति किये गये व्यंग्य संयत स्वर में तथा विचारोत्तेजक रूप में हैं । ऊपर से तो इसमें सहजता व सादगी झलकती है, पर प्रभाव में यह अन्तर्मन को चोट पहुँचाने वाला तथा झिंझोड़ने वाला है ।

धर्म के प्रति प्रभाकर माचवे की दृष्टि भी परीक्षात्मक तथा व्यंग्यात्मक रही है । उनके विदेश - प्रवास के दौरान लिखी कविताओं के संग्रह ' मेपल ' में धर्म के विभिन्न मतवादों के प्रति कवि की यथार्थ चेता दृष्टि की व्यंग्यात्मकता स्पष्ट हुई है । इस संग्रह की कविताओं में कवि ने विभिन्न स्थलों के भ्रमण के दौरान धार्मिक स्थलों से सम्बन्धित धर्म - नायकों या धार्मिक विधि - विधानों के यथार्थ को उद्घाटित कर उन पर व्यंग्य किया है । 'तथता' कविता में शेन बौद्ध मंदिर में कवि बुद्ध एवं उनके दर्शन के प्रति व्यंग्य करता है । कवि बौद्ध - दर्शन में संसार को अनित्य मानने की भावना पर हल्का सा व्यंग्य विनोदपूर्ण शैली में करता है । कवि बुद्ध के प्रज्ञा - ज्ञान की महारिक्तता को यथार्थ जीवनानुभवों के सामने बेमानी बताता है -----

' किसने जानी प्रज्ञा - पारमिता
इस बे-मानी महारिक्तता की नीरव औ' सुप्त व्यथा
क्या पहचानी मूल कथा
अनुक्षण इस मिट्टी की बिखरन
युग - युग व्यापी अनवधि
त - थ - ता
(और बुद्ध के आगे कुत्ता ?
बुद्धि को पुनः मार दे गया बुत्ता ।'[1]

' वेदान्त सेन्टर शिकागो ' कविता में कवि योग भक्ति के नाम पर सुख - भोग की प्रवृत्ति के उद्घाटन द्वारा ' वेदान्त सेन्टर ' के यथार्थ स्वरूप को सम्मुख रख उस पर तीखा

---

1. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 26 (1960)

व्यंग्य करता है । भाषा परिष्कृत एवं सुसंस्कृत है तथा तुकों द्वारा विनोद का पुट दिया गया है -----

' योग - भक्ति का मान ‖ भोग आनन्द सरो सामान न किंचिद मन्द ‖
क्या कम सुख है ज्ञानः
कभी गरजे थे यहाँ
विवेकानन्द
मन को एक दिलासा ब्रह्मज्ञान का पाँसा
ठगिनी माया लासा ।'[1]

' + ‖क्रास‖ ' शर्भ्षक कविता में कवि ने आधुनिक युग की अशांति, हिंसा व कटुता की स्थितियों के सन्दर्भ में ईसा के जन्मस्थल पर उनके अनुयायियों की भावपूर्ण, अंधी भक्ति की व्यंग्यात्मकता को उजागर किया है । ईसा मसीह की पीड़ा व करूणा के सन्दर्भ में आज की अमानवीय प्रवृत्तियों की बहुलता वाली स्थितियों के बीच भक्तों की झूठी श्रद्धा में झुके शीशों की असंगति तथा विरोधाभास को कवि ने बड़ी मार्मिकता के साथ कविता में ढालकर प्रस्तुत किया है कवि में यथार्थ की असंगत स्थिति की त्वरित प्रतिक्रिया के रूप में ये व्यक्त हुए हैं । प्रस्तुत कविता का कुछ अंश दुष्टव्य है -----

' देखे ईसा के अनुयायी, भाविक, अंधें
देखे श्रद्धा के सतरंगी गोरख धन्धे
× × ×
पीप - पीप स्पूतनिक मारता एक आँख है
और क्रूस पर गिरि प्रवचन की सिर्फ राख है
मेरे हाथ यहाँ पर कीलित, मेरे हाथ वुके हैं
लज्जा से या श्रद्धा से ये इतने माथ झुके हैं
× × ×
बर्लिन में दीवार, हंगरी रक्त - क्रान्ति में
यूरोप में जग में, न अहिंसा, न ही शांति है ।'[2]

---

1. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 36 ‖1961‖
2. मेपल - प्रभाकर माचवे - पृ0 - 56 ‖1961‖

आधुनिक युग के यथार्थवादी जीवन में बुद्ध की संसार को दुःखमूलक एवं अनित्य मानकर विरक्त होनें की दार्शनिक मान्यतायें अप्रासंगिक हैं । कवि मानव - जीवन की समस्त क्षुद्रताओं तथा विशिष्टताओं के साथ भी उसकी जी जीविषा में विश्वास रखता है । कवि सिंहल देश की सुन्दरियों, सुन्दर कैण्डी नृत्य, सागर - तट, वनस्पतियाँ, इन सभी पर रागात्मक दृष्टि डालते हुए बुद्ध के सिद्धान्तों की अयथार्थ स्थिति के प्रति अपने व्यंग्यात्मक उद्‌गार विनोदपूर्ण शैली में व्यक्त करता है -----

' क्या यह सब माया है ?
बुद्ध, रूग्ण, मृत आर्य सत्य है
बुद्ध कह गये
दुख की सरणि अभी तक अविजित
× × ×
मैं इन्द्रिय - सुख लोलुप कर्महीन
चाहता नित्य ये सकल पदारथ ।'[1]

' पुरालोक, ऋषिकेश ' कविता में तीर्थस्थल ऋषिकेश की धार्मिक महत्ता को कवि वहाँ के मजदूरों की दयनीय स्थिति के सन्दर्भ में खण्डित करता है । धार्मिक तीर्थ - स्थल में अमानवीयता का पोषण तथा निर्बलों का सबलों द्वारा शोषण आधुनिक युग में धार्मिक आस्था की विडम्बना को उद्‌घाटित कर देता है -----

' कटे जंगलों में विदेश मुद्रा से निर्मित एक फैक्टरी
मज़दूरों के फटे हुए सर, रक्तिम गैरिक झंडे
नये रूपये उगलते हुए, नए देवताओं के आगे
गन्दी सीलन भरी बस्तियाँ
नल से टप - टप झरता पानी ।'[2]

शिव की नगरी काशी के विषय में यह धार्मिक विश्वास है कि वहाँ आने और गंगा

---

1. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 61, 62 (1963)
2. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 63

में स्नान कर लेने मात्र से सारे पाप धुल जाते हैं । पर कवि का काशी - भ्रमण का अनुभव तिक्त है । उसने वहाँ पर झूठ, छल तथा अमानवीय स्थितियाँ देखी, जिनमें कोई किसी का कुछ नहीं लगता । सब स्वार्थपूर्ण कर्म में लिप्त हैं । इन्हीं यथार्थ अनुभवों की व्यंजना के साथ ' ऊँ नमः शिवाय ' कविता में कवि काशी नगरी से सम्बंधित धार्मिक आस्था पर प्रश्नात्मक मुद्रा में विचारोत्तेजक व्यंग्य करता है -----

' शिव की नगरी में आया था जगह - जगह खा कितनी ठोकर
और बढ़ गया भीतर - बाहर बोध खोखलेपन का क्योंकर ?
स्वामी कौन हमारा, सखा कौन और हम किसके नौकर
जाऊँगा पापों को धोकर अथवा ज्यादा बोझिल होकर ? ।'[1]

इस प्रकार प्रभाकर माचवे वर्तमान जीवन - यथार्थ के बीच विभिन्न धर्मों की व्यंग्यात्मक स्थिति का उद्‌घाटन करते हैं । वे धार्मिक मतवादों के खोखलेपन के साथ ही भक्तों की दिखावटी एवं अंधी श्रद्धा के प्रति भी व्यंग्य करते हैं । व्यंग्य आक्रोशपूर्ण नहीं विचारपूर्ण हैं, जिनमें विनोद का पुट सहज रूप में वर्तमान है । यात्रा के संस्मरण के रूप में ' मेपल ' की कविताओं में कवि ने विभिन्न धर्मों, मान्यताओं, विश्वासों को यथार्थ - भूमि पर अनावृत्त कर उसके व्यंग्य को प्रत्यक्ष कर दिया है ।

विजयदेव नारायण साही ने अपने काव्य में धार्मिक विडम्बनाओं पर कम दृष्टि डाली है । ' मछलीघर ' के बाद की कविताओं के संग्रह ' साखी ' में ' वरदान देने वाले देवताओं की ओर से ' शीर्षक कविता में देवताओं के प्रति मनुष्य की झूठी आस्था के मनोविज्ञान का व्यंग्यात्मक विवरण है । धार्मिक आस्था के फलस्वरूप मानव की अकर्मण्यता एवं उसमें स्वावलम्बी दृढ़ता के अभाव का वैचारिक व्योरा देते हुए कवि देवताओं के वरदान की विडम्बना को प्रत्यक्ष कर देता है । इसके साथ ही मानव की सहज प्रगति में बाधक धार्मिक आस्था पर भी व्यंग्य करता है -----

---

1. मेपल - प्रभाकर माचवे; पृ0 - 64 (1963)

' देखो प्रार्थना के फलस्वरूप / कम्पन रूक गया है / पैरों के नीचे धरती सख्त हो गयी है / सन्नाटा बढ़ता जा रहा है / हमारे अदृश्य हाथों ने बढ़कर / ऊपर से नीचे तक सबकी आत्माओं में / गाँठ बाँध दी है / और तुम तेज नहीं चलोगे / और जब भी तनकर खड़े होओगे / तुम्हारी रीढ़ की हड्डी में दर्द होगा /'[1]

कुँवर नारायण की कविताओं में भी धर्म के प्रदर्शनकारी स्वरूप तथा देवताओं की धारणा के प्रति तीखी व्यंग्यात्मक चेतना है । नये कवियों को जीवन का संघर्ष करते मनुष्य के दर्द अधिक प्रिय हैं । वह देवताओं की कृपाओं के प्रति विद्रोही हो उठता है, क्योंकि उसे देवता पर नहीं अपने विश्वास की शक्ति पर भरोसा है । कुँवर नारायण ने प्रारम्भिक दौर की अपनी एक कविता ' अजन्मे देवता ' में देवताओं के अस्तित्व को मनुष्य के भय का एक रूप बताते हुए उसकी महत्ता के प्रति व्यंग्य किया है । यहाँ मनुष्य की धार्मिक आस्था के स्वरूप के वैचारिक विवेचन में उस पर तथा देवता पर अत्यन्त संयत तथा सजग भाषा में जो व्यंग्य है, वह प्रभाव में अत्यंत नुकीला है -----

' न डर
निर्व्याख्या गहराइयाँ जब तक
अलख ऊँचाइयाँ तब तक
कहीं
तब तक सुरक्षित देवता तू
और सारी दया के आभार भी तेरे
भले ही मैं यहीं मानू
अपाहिज देवता है
शक्ति है विश्वास में मेरे ।'[2]

अपनी परवर्ती काल की एक कविता ' लाउडस्पीकर ' में कुँवर नारायण धर्म के आडम्बरपूर्ण रूप के प्रति व्यंग्यशील दिखते हैं । लाउडस्पीकर पर तेज ध्वनि के साथ कीर्तन करके शांति भंग करने वालों के तेज व कर्कश स्वर सी तुलना कुत्तों के भूँकने से करते हुए

---

1. साखी - विजयदेव नारायण साही; पृ0 - 107
2. चक्रव्यूह - कुँवर नारायण; पृ0 - 128

कवि कीर्तन करने वालों के प्रति वक्रोक्तिपूर्ण ढंग से अत्यन्त गहरा वार करता है । कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -----

' मुझे खुशी थी कि लोग थूँक नहीं रहे थे
(कीर्तन तो अच्छी चीज़ है)
और कुत्तों के सामने लाउडस्पीकर नहीं थे
(गो कि भूँकना भी सच्ची चीज है) ।'[1]

यहाँ कवि ने कीर्तन की धार्मिक क्रिया के निस्सार तथा खोखले रूप और उसके प्रदर्शनकारी भोंडे रूप को बड़ी बारीकी से उजागर किया है ।

नरेश मेहता धार्मिक आस्था के वर्तमान स्वरूप की सारी व्यंगयात्मकता को नाटकीयता से यथर्था चित्रण द्वारा प्रस्तुत करते हैं । ' आखिर समुद्र से तात्पर्य ' संग्रह की ' अखंड रामायण' कविता में कवि ने रामायण पाठ करते हुए व्यक्ति की मुद्राओं तथा उसकी प्रार्थना द्वारा उसकी धार्मिक आस्था की स्वार्थी वृत्ति को हास्यास्पद बनाकर प्रस्तुत किया है -----

' मुकदमें का ध्यान आते ही
जल्दी से भरत प्रकरण समाप्त कर
सिर से लगा
रख दी रामायण रील पर
आज ही तो
भाई से पट्टीदारी की तारीख है
हे प्रभु !
जिता देना.
अखण्ड रामायण पक्की है ।'[2]

यहाँ कवि ने भक्त के द्वारा पूजा में शीघ्रता करने, भाई से पट्टीदारी का मुकदमा करने तथा ईश्वर से जीत के लिए प्रार्थना करने के वर्णनों द्वारा उसकी औपचारिक भक्ति - भावना, दुर्भावना तथा स्वार्थ प्रेरित ईश्वरीय आस्था की बड़ी सहज तथा सटीक व्यंजना की है ।

1.

2. आखिर समुद्र से तात्पर्य - नरेश मेहता; पृ0 - 39

अंतिम पंक्तियों द्वारा कवि ने ईश्वर को प्रलोभन देनें की उसकी मानासिकता पर भी व्यंग्य किया है ।

धर्म सम्बन्धी व्यंग्य नयी कविता के प्रारम्भिक दौर में अधिक किये गये हैं । छठें दशक की नयी कविता में दुष्यन्त कुमार के काव्य में भी धार्मिक आस्थाओं तथा ईश्वरीय चरित्रों को जसकालीन युगीन परिस्थितियों में व्यंग्यास्पद रूप में चित्रित किया गया है । ' गौतमबुद्ध से' कविता में बुद्ध की धार्मिक स्थापनाओं की परख आधुनिक मनुष्य की चिन्ताओं के सन्दर्भ में की गयी हे जिसमें उसकी व्यर्थता के प्रति व्यंग्य निहित है । नये कवियों ने पुराने धार्मिक मूल्यों तथा मान्यताओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में रखते हुए बड़े तर्कसंगत ढंग से उनकी निस्सारता को उजागर किया है । दुष्यन्त कुमार की यह कविता भी उसी श्रृंखला की एक कड़ी है । कवि बुद्ध से प्रश्न करता हुआ वैचारिक गरिमा के साथ हल्का - सा व्यंग्य करता है -----

' आज धुएँ के इस घेरे में / तुम जीते होते तो बोलो /
तुम 'दर्शन' की सीख माँगते / या कहते ' यह खिड़की खोलो '/
× × × ×
कल की चिन्ता में जब तुम / जीवन को जीते आँखें मींचे /
क्या तुम उसका भी हल पा सकते थे बोधिवृक्ष के नीचे ? /
× × × ×
आज नहीं तो कल, जब ऋतु बदलेगी / अपने ज़ख्म भरेंगे /
जिनको तुमने छेड़ा, हम भी, / उन प्रश्नों पर मनन करेंगें /'[1]

दुष्यन्त कुमार धार्मिक चरित्रों को आज के वैज्ञानिक - यांत्रिक युग में रखकर उनकी स्थिति का व्यंग्यात्मक विवेचन भी करते हैं । ' भविष्य की वन्दना ' कविता में कवि रामायण के सीता - हरण प्रसंग एवं उससे सम्बद्ध चरित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग, आधुनिक मानव एवं सभ्यता की व्यंजना करने के लिए करके उन चरित्रों तथा मान्यताओं को हास्यास्पद बना देता है -----

---

1. आवाजों के घेरे - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 87, 88

' सुनो आहत राम ने लक्ष्मण को पुकारा / हरी गई सीता / × × × × / अव्वल तो जटायू नहीं आज / और हो भी तो कब तक लड़ पायेगा / राम युद्ध ठानेंगे सामने मशीनों के / वानरों की सेना से / जोकि स्वयं भूखी है आज । अपने नगर के घरों में / मुंडरों पर बैठकर / रोटी ले भागने की फिक्र में रहती हैं /'[1]

यहाँ धार्मिक कथाओं की अप्रासंगिता के साथ ही उनकी अविश्वसनीयता को भी विनोदपूर्ण व्यंग्य के साथ प्रत्यक्ष किया गया है । ' इसमें यांत्रिक सभ्यता के आधुनिक परिवेश में सापेक्ष मानवीय संवेदनाओं के मूल अन्तर को स्पष्ट करने के लिए जिन पौराणिक प्रतीकों की रचना हुयी है, वह मानवीय सन्दर्भ में मूल्य विघटन के साथ ही उस स्थिति में निहित व्यंग्य - विपर्यय की ओर भी मार्मिक रूप में संकेत करता है ।'[2] अतः कहा जा सकता है कि दुष्यन्त कुमार के प्रारम्भिक दौर की कविता में धर्म - सम्बंधी व्यंग्य - दृष्टि वर्तमान यथार्थ - परिवेश की सापेक्षता में मूल्यों के विघटन की चेतना से सम्पृक्त है । इनके व्यंग्य में संयत और शिष्ट भाषा का प्रयोग किया गया है ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में ' बाँस का पुल ' से लेकर ' कुआनो नदी ' संग्रह तक में धार्मिक आडम्बर तथा धर्म के अमानवीय स्वरूप के प्रति व्यंग्य मिलता है । कवि को किसी भी ईश्वरीय शक्ति के बजाय मनुष्य तथा उसकी सामर्थ्य एवं शक्ति पर भरोसा है । ईश्वरीय धारणा के पीछे इस युग के धार्मिक लोगों की छलपूर्ण, स्वार्थी तथा धूर्त भावनायें देखकर सर्वेश्वर दयाल में उन पर व्यंग्य की प्रवृत्ति जागृत होती है, जिसमें कवि स्थिति को गंभीर चिन्तक की दृष्टि से विश्लेषित भी करता है । इन व्यंग्यों में ईश्वर के प्रति कवि की घोर अनास्था तथा तीखे तेवर के साथ ही कवि की मानवतावादी दृष्टि भी अपनी सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ वर्तमान रहती है । धर्म द्वारा मानवीय गुणों के विकास के स्थान पर उनका पतन ही हुआ है । इसीलिए कवि का विक्षोभ भाव भी इन व्यंग्यों में व्यक्त हुआ है । ईश्वर के जिस महत् रूप की कल्पना प्राचीन काल में की गयी थी , आज उसका स्वरूप विकृत तहो चुका है । स्वार्थ - भावना तथा लोभ के वशीभूत होकर ईश्वर की आराधना करने वाले लोगों ने ईश्वर को

---

1. आवाजों के घेरे - दुष्यन्त कुमार; पृ0 - 34
2. नयी कविता - संयुक्तांक - 5-6; 'नयी कविता और पौराणिक प्रतीक '; मलयज; पृ0 - 52

भी क्षुद्र बना डला है । कवि को लगता है कि ईश्वर अब केवल पेट है, जिसकी करूणा की आँखे स्वार्थ द्वारा नष्ट हो चुकी हैं । वस्तुतः ईश्वर की आराधना द्वारा करूणा, प्रेम, दया तथा अहिंसा जैसे जिन मानवीय गुणों का विकास होना चाहिए था, उनके बदले आज मनुष्य में स्वार्थ प्रेरित क्रूरता तथा अपना पेट भरने की भावना ही प्रबल हो गयी है । प्रारम्भिक संग्रह बाँस का पुल ' की ' सर्प - मुख के सम्मुख ' कविता में कवि धार्मिक आस्था के इसी पतित रूप को दर्शाते हुए ईश्वर तथा उससे अनुयायियों पर व्यंग्य करता हे -----

' यह करूणा की मूर्ति है
जिसकी आँखें स्वार्थ की भट्टी के सामने
खड़े रहने से जाती रही हैं
यह मूर्ति ईश्वर के विराट रूप की थी - जिसका अब केवल
पेट ही पेट रह गया है ।'[1]

' एक सूनी नाव संग्रह ' में भी धार्मिक व्यंग्य है, जो प्रायः कवि द्वारा यथार्थ परिवेश में स्वयं के वैचारिक विश्लेषण के रूप में ईश्वर एवं उसका उपयोग करने वालों के प्रति तीखा व्यंग्य बनकर प्रकट हुआ है । ' इस अपरिचित नगर में ' कविता में कवि का व्यंग्य घृणामूलक है । धर्म आज विकृतियों को छिपाने तथा उन्हें और फलने - फूलने देने की सुविधा बन गया है । इसलिये धार्मिक क्रियाओं, पूजा - पाठ तथा ईश्वर के नाम को कवि हर कमीने चेहरे पर मुखौटे की तरह लगा हुआ देखता है । निम्न पंक्तियों में सर्वेश्वर दयाल का आक्रोश तथा घृणा दृढ़, निर्भीक स्वर तथा सत्यान्वेषी वैचारिक दृष्टि के कारण कबीर के व्यंग्यों का स्मरण दिलाती है -----

' प्रार्थनाओं के घंटे तक
जंगली जानवरों की तरह
दुर्गन्ध सूँघते मिलते हैं
और ईश्वर का नाम
हर कमीने चेहरे पर मुखौटा बन जाता है

---

1. कविताएँ - 1 (बाँस का पुल) - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 25।

आस्था के नाम पर मूर्खता
विवेक के नाम पर कायरता
सफलता के नाम पर नीचता
मुहर की तरह हर व्यक्ति पर लगी हुई है ।'[1]

इसी संग्रह की ' युद्ध स्थिति ' कविता में सामाजिक - राजनीतिक सन्दर्भों में मानव मात्र की स्थिति से सरोकार रखते हुए धर्म के साम्प्रदायिक स्वरूप पर व्यंग्य है । आज विभिन्न धर्म ग्रन्थों की शिक्षायें मनुष्य को मनुष्य से लड़ाने वाली साबित हो रही हैं, एक धर्म के व्यक्ति का दूसरे धर्मावलम्बी के प्रति क्रूर तथा अमानवीय व्यवहार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक व्याप्त है । साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित युद्धों की भयंकरता के बीच कवि, धर्म - ग्रन्थों तथा उनमें स्थापित ईश्वर के अलग - अलग रूपों के प्रति, अपनी घृणा भाव की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करते हुए धार्मिक विश्वासों का सम्पूर्ण निषेध करता है -----

' कौन सी आयतें पढ़ते हैं ये बममार जहाज ?
किसका नाम पुकारते हैं ये गड़गड़ाते टैंक
मैं थूकता हूँ उन धर्म - ग्रन्थों पर
जितनी जिल्द के भीतर नकली सफ्रों में
शैतान दिमागों के नक्शे हैं । और खूनी चालों की इबारतें ।'[2]

आगे की पंक्तियों में कवि धर्म के उन्माद में लड़ते - जूझते सैनिकों के उद्देश्य की व्यंगयात्मकता को स्पष्ट करता है । यदि ईश्वर एक है, तो फिर क्यों ये सम्प्रदाय अपने ईश्वर को प्रतिष्ठातिप करना और दूसरे के ईश्वर को मारना चाहते हैं ? -----

' मैं हर क्षण उन सैनिकों ' को रोकता हूँ
जो भूखे - प्यासे पीछे से आती किसी आवाज की ललकार पर
दूसरे के ईश्वर को मारकर अपने ईश्वर को प्रतिष्ठित करने के लिये
जूझ रहे हैं ।'[3]

---

1. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ; पृ0 - 37, 38
2. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 52, 53
3. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 53

ईश्वर के प्रति कवि का उपहासपूर्ण तथा घृणामूलक व्यंग्य अपने वैचारिक तेवर के साथ ' गर्म हवाएँ ' संग्रह में भी मिलता है । ' सूखा ' शीर्षक कविता में यथार्थ - स्थिति के सन्दर्भ में ही कवि ईश्वर एवं धार्मिक आस्था के विद्रूप को प्रस्तुत कर उस पर व्यंग्य करता है । आर्थिक - वैषम्य में पिसते मानव की दुर्दशा के साथ ही कवि आत्मा तथा परमात्मा के अस्तित्व पर व्यंग्य करता है -----

' एक खाली पेट की तरह
मेरी आत्मा पिचक गयी है
और ईश्वर मरे हुए डॉगर - सा गंधा रहा है
फिर भी अभ्यासवश मैं यहाँ खड़ा हूँ
पूजागृहों की दीवारों से टिका ।'[1]

यहाँ आत्मा के खाली पेट की तरह पिचक जाने के कथन द्वारा कवि ने आज के आर्थिक अभावों, भूख की जिंदगी और रिक्तता की अनुभूति के कारण आत्मा की धारणा के प्रति अनुत्साहित तथा विरक्त हो जाने की बड़ी सटीक व्यंजना की है । आज के जीवन में धर्म तथा ईश्वर के नाम पर फैली हुई विकृतियों तथा दुर्भावनाओं के कारण ईश्वर को मरे हुए डॉगर - सा गंधाता बता कर भी कवि ने बड़ी कलात्मक व्यंजना के साथ ईश्वरीय धारणा पर प्रहार किया है । आज की वैज्ञानिक खोजों ने ईश्वर की सत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाया है । अब ईश्वरीय भक्ति में वह प्राचीन सच्ची श्रद्धा तथा आस्था का अभाव है परन्तु ईश्वरीय आस्था मृत होकर भी वर्तमान है, जिससे वह मात्र दुर्गन्ध पैदा कर रही है । अब मनुष्य केवल अभ्यास तथा औपचारिकतावश ही मंदिरों में ईश्वर की आराधना कर रहा है । इन सभी की व्यंजना बड़े तीखे रूप में इस कविता में की गयी है ।

' कुआनो नदी ' संग्रह में भी कवि यथार्थ की भूमि पर अवस्थित करके धार्मिक आस्था तथा ईश्वर की सत्ता को व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है । ' जब पसलियाँ ही किला हों ' में कवि ईश्वर की महानता का निषेध करता हुआ उसके प्रति विनोद तथा उपहासपूर्ण मुद्रा में

---

1. गर्म हवाएँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; पृ0 - 46

व्यंग्य करता है, जिसमें मनुष्य की स्वतंत्र सत्ता की गरिमा को स्वीकार करते हुए कवि की मुद्रा संयत तथा गंभीर है -----

लेकिन इन्सानियत का सर
एक लाश के घाव के सामने ही झुकता है
आज़ाद आदमी की लाश के घाव के सामने
क्योंकि उसमें से एक ऐसी रोशनी फूटती है
जो कभी गुल नहीं होती
सदियों तक उसके सहारे
धर्मग्रन्थों पर बैठे निरीह ईश्वर का मुह देखा जा सकता है ।'[1]

यहाँ इनसानियत की गरिमा के आगे ईश्वर की स्थिति कितनी निरीह है, इसे कवि ने अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना धार्मिक व्यंग्य ईश्वर के अस्तित्व तथा उसके भ्रामक स्वरूप के प्रति ही अधिक हैं । ' दंगों के बाद ' कविता भी ईश्वर तथा धर्म के नाम पर इन्सान के जानवर में बदल जानें की विडम्बना को प्रत्यक्ष करती है । आज धर्म के कारण क्रूर तथा भयानक स्थितियाँ पैदा हुई हैं उनके कारण कवि का व्यंग्य अत्यन्त घृणापूर्ण हो गया है । आज ईश्वर का नाम लेते हुए तथा धर्म ग्रन्थों का स्पर्श करके भी मनुष्य अमानवीय हिंसता का परिचय देता है, इसलिये कवि को ' ईश्वर का नाम ' गलीज मुख में ' झिंझोड़ गये ठंडे गोश्त सा ' लगता है -----

' एक गलीज मुख में.
ईश्वर का नाम
झिंझोड़े ठंडे गोश्त - सा
ऐसा क्यों होता है कि धर्म - ग्रन्थ छूकर भी
किसी आदमी के हाथ
जंगली जानवर के पंजे में बदल जाते हैं
जहरीले नाखून से वह इन्सान की सूरत नोचने लगता है
× × ×
मंत्रों और आयतों की जगह दहाड़ सुनाई देती है ।'[2]

---

1. कुआनों नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - पृ0 - 61 (1971)

इस कविता में कवि का व्यंग्य समकालीन यथार्थ से सम्बद्ध है । देश के भीतर साम्प्रदायिक तनावों तथा उन्मादी हत्याओं का दृश्य - प्रस्तुत करते हुए कवि का व्यंग्य वैचारिक स्तर पर झकझोरने वाले तीखेपन से युक्त है । एक अन्य कविता ' यही वह पत्थर है ' में कवि ईश्वर के मूर्ति रूप में पूजित होनें के प्रति अपना करारा व्यंग्य अत्यन्त तल्ख स्वरों में करता है । ईश्वर के प्रतीक-उसकी मूर्ति के प्रति कवि का आक्रोश निमन पंक्तियों में मुखर है -----

' मैं इससे ठोकर खाकर
प्रार्थना - मंत्रों की जगह
बेतहाशा गालियाँ दे सका हूँ
× × ×
हो सकता हे
कल कोइ कुत्ता इस पर
पेशाब करके चला जाये
पर इससे मुझे क्या ?
मैं बड़े मजे में
इस पर सिर रख कर सो सकता हूँ
क्योंकि इसमें ईश्वर नहीं है ।'[1]

मलयज, लीलाधर जगूड़ी तथा कैलाश बाजपेयी के काव्य में भी ईश्वर के अस्तित्व तथा धार्मिक परम्पराओं के प्रति व्यंग्य किये गये हैं । सन् ' 60 के बाद के नये कवियों ने भी सामाजिक - राजनीतिक सन्दर्भो में धर्म की अप्रासंगिक तथा व्यंग्यास्पद स्थिति को व्यक्त किया है । मलयज ने एक स्थल पर प्रतीक रूप में धार्मिक परम्परा के व्यंग्य को प्रयुक्त किया है । सत्यनारायण की कथा का प्रतीकात्मक प्रयोग वर्तमान समय की सामाजिक - आर्थिक जटिलताओं के सन्दर्भ में करके धार्मिक क्रियाकलापों की स्थिति के प्रति विनोदमयता के साथ व्यंग्य किया गया है -----

----

1.

' कलावती से पूछकर / सत्यनारायण जी ने कहा कल कराना कथा / परसों जो मकान मिलेगा उसमें / यथासंभव / × × × / और अब तो जनतंत्र का युग है / हर मकान की अपनी एक कथा है / किश्तों में चुकाता हूँ वह मकान , हुत्तुल इमकान / एक साथ चुकना नहीं चाहता / कथा में भी लिखा है / अब न चूक चौहान /'[1]

यहाँ धार्मिक कथा के पात्र को ही आधुनिक युग के सामान्य मनुष्य के समस्यापूर्ण जीवन के बीच दिखाकर कवि ने कपोलकल्पित कथा को यथार्थ धरातल पर व्यंग्यास्पद बना दिया है ।

साठोत्तर नये कवियों में कैलाश बाजपेयी ने भी धर्म, ईश्वर तथा भक्त एवं भक्ति के खोखले तथा अवांछित स्वरूप को अपनी यथार्थवादी दृष्टि से तीखी व्यंग्यात्मकता के साथ प्रत्यक्ष किया है । ' संक्रान्त ' संग्रह की एक कविता ' नयी प्रार्थना ' में कवि आज के जटिल जीवन के तनावों तथा कटुताओं की प्रतिक्रिया में ईश्वर को तीखे व्यंग्य के साथ सम्बोधित करते हुए उससे जो कुछ माँगता है, वह अस्वाभाविक होते हुए भी वर्तमान मनुष्य की टूटन, घुटन, रिक्तता, जड़ता तथा पीड़ा को व्यंजित करता है । इसमें ईश्वर के प्रति कवि की अनास्था, उपेक्षा तथा घृणा उसके सम्बोधन में ही निहित है । आज ईश्वर या तो बूढ़ी महिलाओं तथा अपाहिजों में पूजित हैं या फिर क्रूर कर्म करने वालों में । अतः कविता की केवल एक पंक्ति ही ईश्वरीय आस्था के वर्तमान स्वरूप को नग्न रूप में प्रस्तुत कर देती है । कवि ईश्वर को सम्बोधित करते हुए कहता है -----

' ओ तमाम बूढ़ी महिलाओं, अपाहिजों, हत्यारों
के ईश्वर !'[2]

' देहान्त से हटकर ' संग्रह में कवि अत्यन्त संक्षिप्त कलेवर में ' ईश्वर भक्त ' कविता में भक्त की वास्तविकता का चित्र खींचता हुआ उस पर व्यंग्य करता है -----

---

1. जख्म पर धूल - मलयज; पृ0 - 42
2. संक्रान्त - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 14

' चुका हुआ
नंगे पत्थर
के आगे
झुका हुआ
औरों के
वास्ते
विपदायें
माँगता
नाली मेंपानी रूका हुआ ।'[1]

यहाँ कवि ने स्थिति तथा मुद्रा के चित्रण द्वारा व्यंग्य को प्रत्यक्ष किया है । आज के भक्तों की भक्ति की विडम्बना यह है कि वे दूसरों के प्रति द्वेष - भाव से ईश्वर से प्रार्थना कर, दूसरों के लिए विपदा का वरदान माँगते हैं । वे मनुष्यों से तो मिलकर नहीं रह सकते पर पत्थर के आगे झुकते हैं । उनकी ईश्वर भक्ति उनकी विकृत मानसिकता का परिचायक होती है, जिससे उनके विकास की गति भी रूद्ध हो जाती है । कवि ने ईश्वर के अनास्तित्व को ' नंगे पत्थर ' द्वारा तथा भक्तों की विकृत मानसिकता की सटीक व्यंजना ' नाली में पानी रूका हुआ ' कथन द्वारा की है । ' तीसरा अंधेरा ' संग्रह की एक अन्य कविता 'कार्लमार्क्स ' में कवि मार्क्स के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में उसके जीवन संघर्ष एवं उद्देश्यों का विवेचन करने के पश्चात भारत देश के हिन्दू धर्म की खिल्ली अनोखे ढंग से उड़ाता है । कवि कहता है कि -----

' कभी मगर सोचा न होगा तुमने मार्क्स
नक्शे पर है देश ऐसा भी
जहाँ ईश्वर में भी मालिक गुलाम हैं
इधर बेगारी हुनमान
उधर राजा राम हैं ।'[2]

' महास्वप्न का मध्यान्तर ' कवि का नवीनतम काव्य संग्रह है । इसमें ' प्रतिबद्ध

---

1. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 122

2. तीसरा - अंधेरा - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 51

का बयान ' कविता में कवि धार्मिक विश्वासों एवं धर्मगुरूओं पर त्वरित दृष्टिपात करते हुए उनके प्रति तीखे व्यंग्यात्मक उद्गार व्यक्त करता है -----

नंगे, लुच्चे महावीर और बुद्धों से
पस्त मैं
विश्रामघाट तक आता हूँ
मैं कहीं जाऊँ बद किस्मती
पादरी, पंडों, भाई
मुल्लों में
जारों के ही दर्शन पाता हूँ ।'[1]

यहाँ कवि ने अपने देश में भ्रमण करते हुए नंगे, लुच्चे लोगों को धर्म का मुखौटा लगाये देखकर उनपर कटु व्यंग्यात्मक प्रहार अपनी त्रस्त मनोदशा की अभिव्यक्ति के साथ किया है । ' मेरी शह (दो) कविता में भी कवि ने भारतीय सांस्कृतिक - धार्मिक परम्परा पर प्रहार करते हुए उसके वासियों के भाग्यवादी तथा ईश्वरवादी अकर्मण्य जीवन पर व्यंग्य करते हुए ईश्वर के प्रति अंध विश्वास पर भी व्यंग्य का कुठाराघात किया है -----

' भिनभिनाते हुए थाल पर/ मोक्ष के लड्डू / सजे रखे हैं / गोलक मुँह बायें / है घात में / हड़प कर जाने को / खून की कमाई / फिर भी भारत / महान है - सुसंस्कृत मेरे वत्स / पड़े रहो बजाते / करताल / अवतार होने ही वाला है /'[2]

ईश्वर की धारणा के प्रति कवि का चिन्तनपूर्ण व्यंग्य ' फिर विषकंभक ' कविता में व्यक्त है । कवि ईश्वर को केवल मानव - मन की विविध अवस्थाओं की निर्मिति मानता है -----

' ईश्वर रामबोला की ग्लानि है
मीराई मतिभ्रम, डर अरविंदी
वह निठल्लों का दिमागी फितूर है ।'[3]

---

1. महास्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 29
2. महास्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 47
3. महास्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बाजपेयी; पृ0 - 54

लीलाधर जगूड़ी के परवर्ती संग्रहों में उनकी धार्मिक व्यंग्य - दृष्टि मिलती है । ' रात अब भी मौजूद है ' संग्रह की कविता ' ईश्वर और आदमी की बातचीत ' में जगूड़ी बड़े विनोदपूर्ण लहजे में ईश्वर को सम्बोधित करते है और वर्तमान यथार्थ की विसंगतियों के बीच बड़ी सहजता से ईश्वर के अस्तित्व के प्रति संदेह व्यक्त करते हुए उसका मजाक बताते हैं---

' जो पाँचवी योजना में नहीं
वह तुम कैसे दे सकते हो ?
जबकि मेरा कोई व्रत नहीं, फिर भी मैं भूखा हूँ
× × ×
तुम किताबों से उठकर
बार - बार यहाँ क्यों चले आते हो
हमने तुम्हें कैलेण्डरों पर दे दिया है
जाओ जूते और घड़ियों के ऊपर रहो
आदमियों के ऊपर इस वक्त खतरा है ।'[1]

यहाँ प्रथम पंक्तियों में कवि का व्यंग्य इस तत्थ्य के उद्घाटन में निहित है कि आज के मनुष्य को व्रत और उपहास स्वेच्छापूर्णक करने की क्या आवश्यकता है, जबकि वह गरीबीवश विवश भाव से भूखा रह जाता है । क्या ईश्वर इस विवशता में भूखे रह जानें की मानव की नियति में कुछ परिवर्तन कर सका है ! इसी प्रकार अंतिम पंक्तियों मे कवि ईश्वर की धारणा को आज के मनुष्य के लिये व्यर्थ सिद्ध करता हुआ यह संकेत करता है कि अब ईश्वर केवल चित्रों में, कैलेण्डरों में, घर के किसी कोने में टाँगे जाने तक सीमित है । लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में धार्मिक आस्था के मनोवैज्ञानिक पहलू पर चिन्तनपरक व्यंग्यात्मकता भी है । ईश्वर वस्तुत. मनुष्य के डर का ही प्रतिरूप है । कवि ईश्वर पर व्यंग्य करने के साथ ही मनुष्य की धर्मभीरूता तथा डर से ऋण पाने के लिए ईश्वर पर आस्था रखने की उसकी प्रवृत्तियों पर निम्न कविताओं में हल्के - फुल्के ढंग से व्यंग्य करता है -----

' यह सिखाया गया था मुझे
कि हृदय है तेरा घर

----

1. रात अब भी मौजूद है - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 65

पर इसमें क्यों भरे हुए हैं
इतने सारे डर ?
कि कोई भी मेरी जान निकाल सकता है
हे ईश्वर तू चिन्ता न कर
तू तो रहेगा ही रहेगा
क्योंकि मेरे डर तुझको बनाये रहेंगे अमर ।'[1]

यहाँ प्रारम्भिक पंक्तियों में कवि ईश्वर के सर्वशक्तिमान तथा रक्षक स्वरूप के प्रति व्यंग्य कर रहा है । आज के भयानक यथार्थ के डर मनुष्य को त्रस्त किये हुए हैं, तब यह विश्वास कैसे किया जा सकता है कि ईश्वर घट - घट वासी है । परन्तु विडम्बना यह है कि लोग डर के कारण ही ईश्वर की कल्पना करके उससे सहायता की आशा करते हैं ।

सुरेन्द्र तिवारी ने भी धार्मिक के स्वार्थलिप्त होते जाने तथा धार्मिक आयोजनों के बहाने राजनीतिक लोगों द्वारा अपना उल्लू सीधा किये जाने की प्रवृत्ति के प्रति व्यंग्य किया है ' आठवें दशक की शाम ' संग्रह की एक कविता में कवि धार्मिक आस्था की असलियत को सामने रखकर धर्म को मात्र एक सुविधाजनक औपचारिकता में बदल जाने की स्थिति पर व्यंग्य करता है -----

' मंदिर में मनौती चढ़ाने गयी है माँ / लाल लँगोटी वाले / मेरे बच्चे को दरोगा बना / × × × / तम्बू के नीचे / चलेगा सब / महीने भर / उसके अगले पखवारे/ इसे उखड़ना है / सबकुछ मुफ्त है / इस महीने में / पंडित जी को / एमेले का चुनाव लड़ना है /'[2]

॥ 'यादों की बारात' ॥

---

1. घबराये हुए शब्द - लीलाधर जगूड़ी; पृ0 - 18
2. आठवें दशक की शाम - सुरेन्द्र तिवारी; पृ0 - 14, 15

आधार ग्रन्थ

हिन्दी:-

(क) काव्य - संग्रह:-

1. अतुकांत - लक्ष्मीकांत वर्मा; प्रथम संस्करण - 1965; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

2. अपने - सामने - कुँवर नारायण; प्रथम संस्करण - 1979; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

3. अपूर्वा - केदारनाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1984; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

4. अंतिम वसंत - रवीन्द्रनाथ त्यागी; प्रथम संस्करण - 1985; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 6 ।

5. अनकही भी कुछ कहनी है - त्रिलोचन; प्रथम संस्करण - 1985; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

6. अनुपस्थित लोग - भारत भूषण अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1985; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

7. आखिरकार - रवीन्द्रनाथ त्यागी; प्रथम संस्करण - 1978; प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

8. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैने - नागार्जुन; प्रथम संस्करण - 1986; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

9. आग का आइना - केदारनाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1970; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

10. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय; प्रथम संस्करण - 1967; राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

11. आवाजों के घेरे - दुष्यंत कुमार; प्रथम संस्करण - 1963; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 6 ।

12. आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएँ; प्रथम संस्करण - 1966; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

13. आठवें दशक की शाम - सुरेन्द्र तिवारी; संस्करण - 1977, राधाकृष्ण प्रकाशन; नई दिल्ली ।

14. आखिर समुद्र से तात्पर्य - नरेश मेहता; प्रथम संस्करण - 1988; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

15. इतिहासहंता - जगदीश चतुर्वेदी; प्रथम संस्करण - लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

16. इतने पास अपने - शमशेर बहादुर सिंह; प्रथम संस्करण - 1980; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

17. इस यात्रा में - जगूड़ी; राजकमल प्रकाशन से प्रथम बार - 1983; दिल्ली ।

18. इस धरती पर - त्रिलोचन; प्रथम संस्करण - 1981; संभावना प्रकाशन, हापुड़ ।

19. उस जनपद का कवि हूँ - त्रिलोचन - प्रथम संस्करण - 1981; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली - 2 ।

20. उतना वह सूरज है - भारत भूषण अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1977; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली - 2 ।

21. एक उठा हुआ हाथ - भारत भूषण अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1970; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

22. एक दिन बोलेंगे पेड़ - राजेश जोशी; प्रथम संस्करण - 1980; संभावना प्रकाशन, हापुड़ ।

23. एक सूनी नाव - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; प्रथम संस्करण - 1966; अक्षर प्रकाशन, दिल्ली - 6 ।

24. ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! - नागार्जुन; प्रथम संस्करण - 1985; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली - 2 ।

25. ओ अप्रस्तुत मन - भारत भूषण अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1958; प्रकाशक : श्रीमती बिन्दु अग्रवाल, भोपाल ।

26. कल्पवृक्ष - रवीन्द्रनाथ त्यागी; प्रथम संस्करण - 1965; राजकमल प्रकाशन; दिल्ली - 6 ।

27. कल्पान्तर - गिरिजा कुमार माथुर; प्रथम संस्करण - 1983; प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

28. कविताएँ - 9 - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; प्रथम संस्करण - 1978; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

29. कहें केदार खरी - खरी - केदार नाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1983; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

30. कल सुनना मुझे - धूमिल; प्रथम संस्करण - 19 युगबोध प्रकाशन, वाराणसी ।

31. कंचन मृग - लक्ष्मीकांत वर्मा; प्रथम संस्करण - 1981; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

32. काठ की घंटियाँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; प्रथम संस्करण - 1959; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

33. कागज के फूल - भारत भूषण अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1963; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता - 27 ।

34. कुआनो नदी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; प्रथम संस्करण - 1973; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

35. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय; प्रथम संस्करण - 1989; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

36. कोई मेरे साथ चले - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; प्रथम संस्करण - 1985; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

37. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन; प्रथम संस्करण - 1980; संभावना प्रकाशन, हापुड़ ।

38. खूँटियों पर टँगे लोग - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; प्रथम संस्करण - 1982; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

39. गर्म हवाएँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; संस्करण - 1969; राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली - 6 ।

40. गुलमेंहदी - केदार नाथ अग्रवाल - प्रथम संस्करण; 1978; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

41. घबराये हुए शब्द - लीलाधर जगूड़ी; द्वितीय संस्करण - 1982; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

57. तुमने कहा था - नागार्जुन; प्रथम संस्करण - 1980; वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

58. तुम्हें सौंपता हूँ - त्रिलोचन; प्रथम संस्करण - 1981; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

59. तेल की पकौड़ियाँ - प्रभाकर माचवे; प्रथम संस्करण - 1962; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली - 6 ।

60. दिनारम्भ - श्रीकांत वर्मा; प्रथम संस्करण - 1967; प्रकाशक - सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली ।

61. दीवारों पर खून से - चन्द्रकांत देवताले; संस्करण - 1975; राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

62. देहान्त से हटकर - कैलाश बाजपेयी; प्रथम संस्करण - 1967; अक्षर प्रकाशन, दिल्ली ।

63. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1970; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

64. नाटक जारी है - लीलाधर जगूड़ी; प्रथम संस्करण - 1972; अक्षर प्रकाशन, दिल्ली - 6 ।

65. नंगे पैर - विपिन कुमार अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1970; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

66. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन; कापीराइट - 1962; यात्री प्रकाशन, इलाहाबाद ।

67. परिवेश : हम तुम - कुँवर नारायण; प्रथम संस्करण - 1961; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

68. पंख और पतवार - केदार नाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1979; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

69. पिछले दिनों नंगे पैरों - नरेश मेहता - प्रथम संस्करण - ; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

70. प्रारम्भ - संपादक - जगदीश चतुर्वेदी; प्रथम संस्करण - 1963; भारत - भारती प्रकाशन, दिल्ली ।

71. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन; प्रथम संस्करण - 1983; वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

42. चक्रव्यूह - कुँवर नारायण; प्रथम संस्करण - 1956; राजकमल पब्लिकेशन, बम्बई ।

43. चट्टानों का जलगीत - वेणु गोपाल - प्रथम संस्करण - 1980; शीर्षक प्रकाशन, हापुड़ ।

44. चुका भी हूँ नहीं मैं - शमशेर बहादुर सिंह; द्वितीय संस्करण - 1981; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

45. जख्म पर धूल - मलयज; द्वितीय संस्करण - 1982; प्रकाशक - ग्रन्थ भारती, इलाहाबाद ।

46. जलसाघर - श्रीकांत वर्मा; प्रथम संस्करण - 1973; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

47. जलदते हुए वन का वसंत - दुष्यंत कुमार; प्रथम संस्करण - 1962; अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद ।

48. जंगल का दर्द - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; प्रथम संस्करण - 1976; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

49. जुझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी; प्रथम संस्करण - 1971; राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

50. जो शिला में तोड़ते हैं - केदार नाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1986; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

51. डूबते इतिहास का गवाह - जगदीश चतुर्वेदी; प्रथम संस्करण - 1980; प्रवीण प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

52. ताप के ताए हुए दिन - त्रिलोचन; प्रथम संस्करण - 1980; संभावना प्रकाशन, हापुड़ ।

53. तार - सप्तक - संकलन कर्ता - अज्ञेय; द्वितीय संस्करण - 1966; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

54. तीसरा अंधेरा - कैलाश बाजपेयी; प्रथम संस्करण - 1972; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 6 ।

55. तीसरा पक्ष - लक्ष्मीकांत वर्मा - प्रथम संस्करण - 1975; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली ।

56. तीसरा - सप्तक - संलग्न कर्ता - अज्ञेय - प्रथम संस्करण; 1959; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

72. पुल पर पानी - ऋतुराज; प्रथम संस्करण - 1981; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

73. फूल नाम है एक - त्रिलोचन; प्रथम संस्करण - 1985; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

74. फूल नहीं रंग बोलते हैं - केदार नाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1965; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

75. बलराम के हजारों नाम - मणि मधुकर; प्रथम संस्करण - 1978; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

76. बची हुई पृथ्वी - लीलाधर जगूड़ी - प्रथम संस्करण - 1977; राजकमल प्रकाशन, नीय दिल्ली ।

77. बोले बोल अबोल - केदार नाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1985; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

78. भीतरी नदी की यात्रा - गिरिजा कुमार माथुर - प्रथम संस्करण - 1975; प्रकाशक: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

79. महा स्वप्न का मध्यान्तर - कैलाश बांजपेयी - प्रथम संस्करण - 1980; प्रकाशक: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

80. मछलीघर - विजयदेव नारायण साही; प्रथम संस्करण - 1966; प्रकाशक - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

81. मार प्यार की थापें - केदार नाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1981; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

82. माया - दर्पण - श्रीकांत वर्मा; प्रथम संस्करण - 1976; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

83. मुक्तिबोध रचनावली - 1 - प्रथम संस्करण (पेपर बैक्स में) - 1985; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

84. मुक्तिबोध रचनावली - 2 - पहला संस्करण (पेपर बैक्स में) - 1985; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

85. मेपल - प्रभाकर माचवे; प्रथम संस्करण - 1967; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

86. लोग भूल गये हैं - रघुवरी सहाय; दूसरा संस्करण - 1979; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

87. वे हाथ होते हैं - वेणु गोपाल - द्वितीय संस्करण - 1978; अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद ।

88. श्रम का सूरज - संपादक - डॉ0 राम विलास शर्मा; प्रथम संस्करण - 1986; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

89. शिलापंख चमकीले - गिरिजा कुमार माथुर - प्रथम संस्करण - 1961; प्रकाशक - साहित्य - भवन, इलाहाबाद ।

90. सदानीरा भाग - 1 - अज्ञेय - प्रथम संस्करण - 1986; प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नीय दिल्ली ।

91. सदानीरा - भाग - 2 - अज्ञेय; प्रथम संस्करण - 1986; प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

92. सतरंगे पंखों वाली - नागार्जुन; कापीराइट - 1959; यात्री प्रकाशन, कलकत्ता - 7 ।

93. सलीब से नाव तक - रवीन्द्र नाथ त्यागी; प्रथम संस्करण - 1983; पराग प्रकाशन, दिल्ली ।

94. संक्रान्त - कैलाश बाजपेयी; प्रथम संस्करण - 1964; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

95. संसद से सड़क तक - धूमिल - चौथा संस्करण - 1985; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

96. साखी - विजयदेव नारायण साही; प्रथम संस्करण - 1983; प्रकाशक - सातवाहन पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली ।

97. साक्षी रहे वर्तमान - गिरिजा कुमार माथुर; प्रथम संस्करण - 1979; प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

98. सीढ़ियों पर धूप में - रघुवीर सहाय; प्रथम संस्करण - 1960; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

99. सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र - धूमिल; प्रथम संस्करण - 1984; वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

100. सूखे और हरे पत्ते - रवीन्द्र नाथ त्यागी; प्रथम संस्करण - 1962; प्रकाशक - भारती भंडार, इलाहाबाद ।

101. सूर्य का स्वागत - दुष्यंत कुमार; संस्करण - 1957; राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

102. हजार - हजार बाहों वाली - नागार्जुन; प्रथम संस्करण - 1981; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

103. हँसो हँसो जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय; प्रथम संस्करण - 1960; द्वितीय संस्करण-1979; प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

104. हे मेरी तुम - केदार नाथ अग्रवाल; प्रथम संस्करण - 1981; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

(ख) सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन - चन्द्रकांत महादेव बादिवड़ेकर; प्रथम संस्करण - 1971; प्रकाशक - सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

2. अज्ञेय : सृजन और संघर्ष - रामकमल राय; प्रथम संस्करण - 1978; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

3. आज की हिन्दी कविता - संपादक - जगदीश चतुर्वेदी, हरदयाल; प्रथम संस्करण - 1987; प्रभात प्रकाशन ।

4. आधुनिक कविता : नये सन्दर्भ - डॉ0 वीरेन्द्र सिंह; संस्करण 1975; पंचशील प्रकाशन, जयपुर ।

5. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - डॉ0 शिव प्रसाद सिंह; संस्करण - 1970; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

6. आधुनिक व्यंग्य का स्रोत और स्वरूप - छविनाथ मिश्र; संस्करण - 1979; क्लासिकल पब्लिकेशन, नयी दिल्ली ।

7. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - कृष्ण बिहारी मिश्र; प्रथम संस्करण - 1972

8. आधुनिक हिन्दी कविता - संपादक - जगदीश चतुर्वेदी; प्रथम संस्करण - 1975; दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड ।

9. आधुनिक हिन्दी - साहित्य का इतिहास - डॉ0 बच्चन सिंह; प्रथम संस्करण - 1978; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

10. कबीर - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी; तीसरा संस्करण - 1985; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

11. कविता और कविता - डॉ0 इन्द्रनाथ मदान - द्वितीय संस्करण - 1979; प्रकाशक - साहित्य सहकार, दिल्ली ।

12. कवि केदार - व्योम शेखर त्रिपाठी - द्विवेदी; प्रथम संस्करण - 1986; लोकालोक प्रकाशन, गाजियाबाद ।

13. कवि - दृष्टि - अज्ञेय; प्रथम संस्करण - 1983; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

14. कवि मुक्तिबोध : एक विश्लेषण - रमेश शर्मा; प्रथम संस्करण - 19 ; प्रकाशक - लक्ष्मी नारायण, सस्ता साहित्य भंडार, दिल्ली ।

15. कविता से साक्षात्कार - मलयज; प्रथम संस्करण - 1979; संभावना प्रकाशन, हापुड़ ।

16. कॉंग्रेस के सौ वर्ष - मन्मथनाथ गुप्त; संस्करण - 1985; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली - 6 ।

17. दिशानतर - संपादक - डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी; तृतीय संस्करण - 1975; अनुराग प्रकाशन, वाराणसी ।

18. नयी कविता के बाद - डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी; संस्करण - 1974; प्रकाशक - पुस्तक संस्थान, कानपुर ।

19. नयी कविता की पहचान - डॉ0 राजेन्द्र मिश्र; प्रथम संस्करण - 1980; वाणी प्रकाशन, दिल्ली ।

20. नयी कविता - डॉ0 कान्ति कुमार; प्रथम संस्करण - 1972; प्रकाशक : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल ।

21. नयी कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा; 2014; भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद ।

22. नयी कविता की रचना - प्रक्रिया - डॉ0 ओम प्रकाश अवस्थी; प्रथम संस्करण - 1972

23. नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें - डॉ0 जगदीश गुप्त; द्वितीय संस्करण - 1971; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली - 6 ।

24. नयी कविता का आत्म संघर्ष - गजानन माधव मुक्तिबोध; परिवर्द्धित - संपरिवर्तित प्रथम संस्करण - 1983; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

25. नयी कविता और अस्तित्ववाद - डॉ0 रामविलास शर्मा; प्रथम संस्करण - 1978; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

26. नयी कवितायें : एक साक्ष्य - रामस्वरूप चतुर्वेदी; संस्करण - 1976; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

27. नयी कविता का परिप्रेक्ष्य - डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव; प्रथम संस्करण - 1968; नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद ।

28. नयी समीक्षा : नये सन्दर्भ - डॉ0 नगेन्द्र; प्रथम संस्करण - 1970; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस; नयी दिल्ली ।

29. नये प्रतिमान : पुराने निकस - लक्ष्मीकांत वर्मा; प्रथम संस्करण - 1966; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

30. नये साहित्य का सौंदर्य - शास्त्र - मुक्तिबोध; संस्करण - 1971; राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ।

31. प्रयोगवादी नयी कविता और हस्ताक्षर परिशोध - डॉ0 श्री मोहन प्रदीप; संस्करण - ; सद्भावना प्रकाशन,

32. प्रगतिशील काव्य - धारा और केदार नाथ अग्रवाल - डॉ0 रामविलास शर्मा; प्रथम संस्करण - 1986; परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद ।

33. बीसवीं शताब्दी : हिन्दी - साहित्य : नये सन्दर्भ - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय; प्रथम संस्करण - 1966; प्रकाशक - साहित्य - भवन, इलाहाबाद ।

34. मनो विश्लेषण - फ्रायडकृत - अनुवादक - देवेन्द्र कुमार वेदालंकार; पाँचवां संस्करण - 1971; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली ।

35. मुक्तिबोध : काव्य - बोध का नया परिप्रेक्ष्य - डॉ0 वीरेन्द्र सिंह; प्रथम संस्करण - पंचशील प्रकाशन; जयपुर ।

36. मुक्तिबोध रचनावली - 6 - मुक्तिबोध; पेपर बैक्स में पहला संस्करण - 1985; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

37. रघुवीर सहाय का कवि कर्म - सुरेश शर्मा; प्रथम संस्करण - 1981; एम0 अली द्वारा पीपुल्स लिटरेसी के लिए प्रकाशित, दिल्ली ।

38. रचना एक यातना है - प्रभाकर श्रोत्रिय; प्रथम संस्करण - 1985; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

39. व्यंग्य का सौंदर्य शास्त्र - मलय; प्रथम संस्करण - 1983; प्रकाशक - साहित्य वाणी, इलाहाबाद ।

40. स्वतंत्र भारत की एक झलक - बाबूराम मिश्र; संस्करण - 1959; प्रकाशक - सूचना - विभाग, उत्तर प्रदेश ।

41. व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों - संपादक - श्याम सुन्दर घोष; प्रथम संस्करण - 1983; सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली ।

42. सदाचार का ताबीज - हरिशंकर परसाई; तृतीय संस्करण - 1975; ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

43. समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य - डॉ० मदन गुलाटी; प्रथम संस्करण - 1981; इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन; दिल्ली ।

44. समकालीन कविता का संघर्ष - संपादक - डॉ० कामेश्वर प्रसाद सिंह; प्रथम संस्करण - 1990; प्रकाशक - संजय बुक सेन्टर; वाराणसी ।

45. समकालीन बोध और धूमिल का काव्य - डॉ० हुकुमचंद राजपाल; संस्करण - 1983; कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली ।

46. समकालीन कविता और धूमिल - डॉ० मंजुल उपाध्याय; प्रथम संस्करण - 1986; अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद ।

47. समावेशी आधुनिकता - धनञ्जय वर्मा; प्रथम संस्करण - 1991; प्रकाशक : विद्या प्रकाशन मंदिर, नयी दिल्ली ।

48. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य - डॉ० शेरजंग गर्ग; प्रथम संस्करण - 1973; प्रकाशक - साहित्य भारती; दिल्ली ।

49. सर्वेश्वर का काव्य : संवेदना और संप्रेषण - हरिचरण शर्मा; प्रथम संस्करण - 1980; पंचशील प्रकाशन, जयपुर ।

50. साहित्य और संस्कृति - डॉ० देवराज; संस्करण - 1958; प्रकाशक : नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी ।

51. साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशायें - विजय कुमार; प्रथम संस्करण - 1986; प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली ।

52. हास्य रस - लेखक - नृसिंह चिंतामणि केलकर (मराठी आणि विनोद); हिन्दी रूपान्तरक - रामचन्द्र वर्मा; वैशाख - 2010; प्रकाशक : साहित्य रत्नमाल, वाराणसी ।

53. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना - डॉ० जनेश्वर वर्मा; प्रथम संस्करण - 1974; ग्रन्थम, कानपुर - 12 द्वारा प्रकाशित ।

54. हिन्दी काव्य में अन्योक्ति - डॉ0 संसार चन्द्र; द्वितीय संस्करण - 1966; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 6 ।

55. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ0 रणजीत; प्रथम संस्करण - 1971; प्रकाशक - हिन्दी साहित्य - संसार, दिल्ली - 6 ।

56. हिन्दी की हास्य - व्यंग्य - विधा का स्वरूप और विकास - डॉ0 इन्द्रनाथ मदान; संस्करण - 1978; प्रकाशक : हिन्दी - साहित्य - सम्मेलन, प्रयाग ।

57. हिन्दी नाट्य - साहित्य में हास्य - व्यंग्य - डॉ0 सभापति मिश्र; संस्करण - 1978; प्रकाशक : साहित्य - रत्नालय, कानपुर ।

58. हिन्दी व्यंग्य उपन्यास - डॉ0 राधेश्याम वर्मा; प्रथम संस्करण - 1990; निर्माण प्रकाशन, दिल्ली ।

59. हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य - संपादक - प्रेमानारायण टंडन; प्रथम संस्करण; प्रकाशक हिन्दी - साहित्य भंडार, लखनऊ ।

60. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ0 नगेन्द्र - द्वितीय संस्करण - 1976; प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

61. हिन्दी - साहित्य - तृतीय खण्ड - संपादक मंडल - प्रधान संपादक - डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा; प्रथम संस्करण - 1969 ; भारतीय हिन्दी परिषद प्रयाग ।

62. हिन्दी साहित्य में हास्य - रस - डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी; तृतीय संस्करण - 1975; प्रकाशक : आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली ।

(ग) कोशः-

1. भारतीय साहित्य कोश - संपादक - डॉ0 नगेन्द्र; प्रथम संस्करण - 1981; प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

2. हिन्दी साहित्य - कोश - प्रधान संपादक - डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा; द्वितीय संस्करण - 2020

संस्कृतः-

(क) सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. अभिनव नाट्य शास्त्र - प्रथम खण्ड - आचार्य सीताराम चतुर्वेदी; द्वितीय संस्करण - 1964; प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद ।

2. काव्यालंकार - आचार्य भामह - भाष्यकार - देवेन्द्र नाथ शर्मा; प्रकाशक : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना ।

3. काव्यालंकार - आचार्य रूद्रट - व्याख्याकार - श्री रामदेव शुक्ल; संस्करण प्रथम - संवत् 2023 विक्रमी ।

4. काव्य - प्रकाश - मम्मटाचार्य - टीकाकार एवं संस्करण पृष्ठ फटा होने के कारण अज्ञात ।

5. नाट्य शास्त्रम् - श्रीमद्भरतमुनि - टीकाकार - आचार्य मधुसूदन शास्त्री; विक्रम संवत - 2028; संपादक - श्री मधुसूदन शास्त्री ।

6. रस गंगाधर - पंडितराज जगन्नाथ - व्याख्याकार - पं0 मनमोहन झा; 1955, प्रकाशक : चौखम्भा विद्या - भवन, बनारस ।

7. वक्रोक्तिजीवितम् - आचार्य कुन्तक - व्याख्याकार - श्री राधेश्याम मिश्र; 1967; चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी ।

8. साहित्य - दर्पण - आचार्य विश्वनाथ - टीकाकार - पं0 शालग्राम शास्त्री; 1956; प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी ।

(ख) कोशः-

1. शब्द कल्पद्रुम - चतुर्थो भाग - स्यार राजा राधाकान्त विरचित; संस्करण - 1961; चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी ।

अंग्रेजीः-

(क) संदर्भ ग्रन्थः-

1. The Anatomy of satire - by Gilbert Highet. Published 1962, by Princeton University Press.

2. Comedy - by - L.J. Potts, Hutchinson's University Lib. - 1948.

(ख) कोशः-

1. Encyclopedia Britanica - Volume - 12; Volume - 20; William Benton Publisher. (The University of Chicago.) 1965.

2. Encyclopedia Americana - Volume - 24, Enternational Edition; Americana Corporation, New York. Copyright - 1965.

पत्रिकायें:-

1. आलोचना
2. इन्द्रप्रस्थ भारती
3. नयी कविता - अंक । से 8 तक
4. प्रतीक
5. वीणा